"स्वामी श्रद्धानन्द"

(समग्र मूल्यांकन)

लेखक

रणजीत सिंह

सम्पादक

प्रो. भारतभूषण विद्यालंकार

निदेशक – श्रद्धानन्द वैदिक शोध एवं प्रकाशन संस्थान
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

अजय प्रिन्टर्स एवं पब्लिशर्स
रुडकी – 247 667

स्वामी श्रद्धानन्द
(समग्र मूल्याकन)

प्रकाशक :
श्रद्धानन्द शोध सस्थान
गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

लेखक :
डा. रणजीत सिह

सम्पादक :
प्रो० भारत भूषण विद्यालकार

प्रथम संस्करण : 22 दिसम्बर, 1996

ISBN : 81-86463-13-5

मूल्य : 300.00 रुपये

मुद्रक :
अजय प्रिन्टर्स एवं पब्लिशर्स
19, सिविल लाईन, (निकट शताब्दी द्वार)
रुडकी — 247 667, उ.प्र., भारत
दूरभाष : 01332 - 73140, 74740
फैक्स : 01332 - 74740

दो शब्द

जिस वीर सन्यासी की वाटिका मे मुझे रहने व कार्य करने का अवसर मिला, यह मेरा सौभाग्य ही है। गगा के पावन तट पर एक मुशी ने जो विरवा बोया था, वह खूब फला–फूला। उसके पुष्पो के पराग–कण आज भी उस तट को सुवासित एव तप- पूत कर रहे हैं। वह सुगन्ध फैली तो ससार भर के भँवरो को आकर्षित कर गई। गुरुकुल के अगणित स्नातको का कुल–पिता मुशीराम महात्मा था, शिक्षा–प्रणाली का पुनरुद्धारक शिक्षा शास्त्री था। जो शिष्यो का पिता ही नहीं माता भी था।

महात्मा गाधी के शब्दो मे "आर्य समाज का सर्वश्रेष्ठ कार्य गुरुकुल का सचालन है। मुझे मालूम है कि इसकी शक्ति का स्रोत महात्मा मुशीराम जी का महान व्यक्तित्व है। सरकारी सहायता के बिना इन्होने इतनी विशाल सस्था को सफलतापूर्वक चलाया, यह उनके ही वीरतापूर्ण जीवन के कारण सभव हो सका"

उन "कल्याण मार्ग के पथिक" स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की अनेक जीवनियाँ प्रकाशित हुई हैं। सभी अपने अपने दृष्टिकोण से बहुमूल्य हैं, वे चाहे उनके शिष्यो की भेट हो या जोर्डन्स सरीखे विदेशियो की। वस्तुत उनके जीवन के समग्र मूल्याकन के विचार से प्रस्तुत पुस्तक अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिस व्यक्ति की यह जीवनी है वह सदा विवादो से घिरा रहा। वह श्रद्धानन्द सन्यासी कभी काग्रेस का स्वागताध्यक्ष है तो कभी उसका आलोचक, कभी सादर आमन्त्रित कभी निष्कासन से पीडित।

ऐसे व्यक्ति की जीवनी लिखना सहज नहीं होता। शिक्षा के क्षेत्र के विस्तृत अनुभव व विभिन्न जीवनियाँ लिखकर जिसने अपनी कलम को मॉज लिया है वह ही इसका अधिकारी विद्वान हो सकता है। डा रणजीत सिह मे ये दोनो ही गुण हैं। उन्होने जिस तटस्थ बुद्धि से इस कार्य को पूर्णता प्रदान की वह सराहनीय है।

मैं गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय के श्रद्धानन्द शोध सस्थान की ओर से इसके प्रकाशन पर हार्दिक प्रसन्नता अनुभव करता हूँ।

डा. धर्मपाल
कुलपति
गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

सम्पादकीय

भारतवर्ष के नाति प्राचीन इतिहास मे गत शताब्दी का बहुत बडा महत्व है। सैकडों वर्षों की दासता के अन्धकार मे प्रकाश की क्षीण ज्योति से भविष्य के सूर्योदय की सूचना मिलने लगी थी। लम्बे समय के बाद एक ऋषि ने अनेक दीपक प्रज्वलित कर दिये थे। इनका सेवाकार्य और सेवामय जीवन धर्म की आभा से आलोकित थे। सत्य की बाती ओर श्रद्धा के तेल से ये लबालब भरे थे। इन लोगो ने शिक्षा व समाज सुधार को जीवन समर्पित किये। जहाँ जहाँ मनुष्य उस विश्वात्मा का दर्शन करता है वहाँ वहाँ उसे अपनत्व की अनुभूति होती है हम सब उस विश्वात्मा के स्फुलिंग हैं। एक ही शक्ति के अश हैं, एक ही पिता की सन्तान हैं। इस महान सत्य को जितना जितना कोई व्यक्ति आत्मसात करता है उतना उतना उसके प्रेम का क्षेत्र विस्तृत होता जाता है। इस प्रकार वे समाज के विकास के मूर्तरुप आन्दोलन बन जाते हैं। इस आन्दोलन के परिणाम स्वरूप इस देश मे स्वतत्रता का सूर्योदय हुआ। परन्तु बहुत शीघ्र ही इस सूर्य पर महा मोहमय बादल घिर आये। इस देश का नवयुवक उस सूर्य की ओर पीठ करके पश्चिमी आदर्शों की ओर उन्मुख हो गया।

आज 'जयहिन्द' का नारा नव युवको के खून मे उबाल नहीं लाता, 'सर फरोशी की तमन्ना' की जगह माइकल जैक्सन ने ले ली है। किसान और जवान' आज उपेक्षित हो रहे हैं। समाज सेवा उपहास हो गया है। सत्य व धर्म की चर्चा पोगापन हो गया है, चरित्र व सस्कृति की चर्चा कानों को पीडा पहुँचाती है। गुरुजनो के आशीर्वाद बुर्जुआ कहे जाने लगे हैं।

ऐसे समय मे जो लेखक देश और समाज के उन सेवको की गाथाएँ लोगो के सामने रखता है जिन्होने स्थिति –प्रज्ञ की भाँति सुख–दुख, मानापमान, निन्दास्तुति की चिन्ता किये बगैर, निस्वार्थ भाव से , श्रद्धा व निष्ठा से अपनी समस्त शक्ति को अपने लक्ष्य पर केन्द्रित करके, जनता को जनार्दन मानकर निविड अन्धकार मे प्रकाश स्तम्भ खडा करने का प्रयास किया, वह भी तत्तुल्य आदर व श्रद्धा का भाजन बनता है।

आर्य समाज मे वीर–पूजा से सम्बन्धित साहित्य बहुत बाद मे प्रारम्भ हुआ, वह भी उस पूर्णता के साथ नहीं हो सका जैसा अन्य लोगो ने अपने महापुरुषो के प्रति किया। इन महापुरुषो मे स्वामी श्रद्धानन्द एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होने समाज एव राजनीति मे सुधार की भावना के साथ मैकाले की चुनौती को स्वीकार किया और एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की पुन स्थापना की जो इस देश व सस्कृति का मूलाधार थी, जिसके सहारे इस देश का वटवृक्ष खडा था, न केवल खडा था अपितु विश्वगुरु के पद पर प्रतिष्ठित था।

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन
स्व स्व चरित्र शिक्षेरन पृथिव्या सर्वमानवा ।।

इसमे सन्देह नही कि महात्मा मुशीराम बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध मे एक ऐसी सस्था स्थापित करने मे सफल हुए थे, जिसका स्वरुप प्राचीन भारत के भारद्वाज, कण्व, वशिष्ठ, सन्दिपनी और शौनक ऋषियो के आश्रमो के तुल्य था, जिसकी शिक्षा मे प्राच्य और पाश्चात्य तथा प्राचीन और अर्वाचीन तत्वो का सुन्दर समन्वय था और जिसका वातावरण देश भक्ति पूर्ण और राष्ट्रीय था।

दीर्घ सुडौल काया पर फहराती लम्बी दाढी के नीचे हृदय मे मानव मात्र के प्रति प्रेम से भरा हृदय ही जामा मस्जिद के मिम्बर से वेद–ध्वनि करने का अधिकारी हो सकता है। जिससे भय स्वय भयभीत रहता है उस कुलपिता को उसी की वाटिका का एक और पुष्प समर्पित है।

त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।

गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

भारत भूषण विद्यालंकार
निदेशक श्रद्धानन्द शोध सस्थान
गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

प्राक्कथन

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनू स्वाम् ।।
कठोपनिषद् 1/2/23

माता ने जिस बच्चे को जादूगर के प्रभाव से बचाना चाहा, वही बच्चा बडा होकर उसी जादूगर का अनुयायी बन गया। बस, इसी को कहते हैं 'जादू का सिर पर चढकर बोलना' । स्वामी दयानन्द का जादू स्वामी श्रद्धानन्द के सिर पर ऐसा चढा कि कभी उतरा नहीं प्रत्युत् उसकी खुमारी दिन प्रतिदिन सवाई होती गई । आत्मा ने आत्मा का वरण किया और नास्तिकता का पर्दा हटा । पतन की अतल गहराईयो मे आकण्ठ फँसा मुशी राम स्वामी दयानन्द के सत्सग से पतन की गहराईयो से निकल कर स्वामी श्रद्धानन्द के रुप मे विश्रुत हुआ। अन्धकार पर प्रकाश की विजय हुई। इस विजय गाथा के सघर्ष के इतिहास को स्वयं स्वामी श्रद्धानन्द ने 'कल्याण मार्ग का पथिक' नाम से लिपिबद्ध किया है । ऐसी स्थिति मे स्वामी जी के जीवन चरित्र मे नई घटनाओ का समावेश सम्भव नहीं है । परन्तु इसे लेखको का सौभाग्य ही समझिए कि स्वामी जी द्वारा लिखित 'आत्मकथा' (1892 ई.) का यह पूर्णविराम अकारण न होकर सकारण था । सकारणता को स्पष्ट करते हुए स्वामीजी ने अपनी 'आत्मकथा' मे लिखा है कि (1892) "पजाब के समस्त आर्य समाजो की प्रतिनिधि सभा का वार्षिक चुनाव था जिसमे मुझे उक्त सभा का प्रधान बनाया गया । उस समय से मेरा जीवन निजी नहीं रहा, सार्वजनिक जीवन हो गया और इसीलिए अपनी जीवन यात्रा की दूसरी मजिल को मैं यहा समाप्त करता हूँ ।"

दूसरी मजिल की समाप्ति के बाद स्वामी श्रद्धानन्द सन् 1926 ई तक जीवित रहे। 34 वर्षों की इस लम्बी अवधि को हम स्वामी जी की तीसरी मजिल (1917 ई. तक) तथा शेष अवधि को चौथी मजिल कह सकते है । इन्हीं मजिलो के कार्यकलापो को आधार बनाकर अनेक लेखको ने अपनी–अपनी पकड के अनुसार स्वामी जी की जीवनियाँ लिखीं। प्रस्तुत पुस्तक भी इसी श्रृखला मे एक कडी है ।

प्रेरणा स्वत हो या परत वह नोदन करती है और सोई हुई शक्ति को जाग्रत करती है। प्रस्तुत पुस्तक की रचना की प्रेरणा स्वामी ओमानन्द आचार्य गुरुकुल झज्जर (हरियाणा) से मिली। स्वामी जी की इच्छा थी कि आर्य सन्यासियो की बृहद्–जीवनियाँ लिखी जानी चाहिए, जिससे भावी पीढी इनको पढकर प्रेरणा ले सके । ई सन् 1986 मे कुछ ऐसा घटा कि मैं गुरुकुल कुरुक्षेत्र मे प्राचार्य के रुप मे एक वर्ष के लिए चला गया । वहाँ छात्रावास के ऊपर बने एक चौबारे की ओर ध्यान गया । पता चला स्वामी श्रद्धानन्द यहाँ आकर ठहरा करते थे । चौबारा खुलवाया और एक अजीब सी शान्ति अनुभव हुई । पूर्व दिशा के द्वार से प्रवहमान प्रात कालीन पवन ने प्राचीन शिक्षा प्रणाली के पुनरुद्धारक के विषय मे लेखनी को आगे बढाने की ओर सकेत दिया । शनैः शनैः सामग्री का सकलन आरम्भ हो गया । गुरुकुल कागडी के वर्तमान कुलपति डा0 धर्मपाल को जब इस बात का पता लगा कि मैं स्वामी श्रद्धानन्द जी की जीवनी से सम्बन्धित लिखने के कार्य मे व्यस्त हूँ, तो उन्होने चैन न लेने दी और शीघ्र ही पाण्डुलिपि तैयार करने का भाईचारे का फरमान जारी कर दिया और साथ ही यह आश्वासन भी दे दिया कि पुस्तक का प्रकाशन विश्वविद्यालय की ओर से किया जाएगा । 'अन्धे को क्या चाहिए, बस दो नयन' मन मागी मुराद पुरी हुई । प्रो. शेरसिह कुलाधिपति गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय का पदे–पदे सहयोग और परामर्श मिलता रहा । कुलपति

एव कुलाधिपति दोनों ही महानुभावो का मेरे प्रति जो सद्भाव है, उसी का यह परिणाम है कि पुस्तक पाठको के सामने है ।

इस पुस्तक की पाठ्य सामग्री के प्रस्तुतिकरण के सम्बन्ध मे मैंने यथाशक्ति लेखक की अन्तरात्मा की आवाज पर निष्पक्षता का सूत्र पकड लिया है । स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा लिखित आत्मचरित (कल्याण मार्ग का पथिक) की प्रथम दोनो मंजिलों की घटनाओ का विश्लेषणात्मक अध्ययन करके स्वामी जी का मूल्याकन किया है । घटनाओं में नवीनता न होते हुए भी पाठकों को वर्णन मे नवीनता अवश्य दिखाई पडेगी । सन् 1892 ई. से लेकर 1926 ई. तक की घटनाओं की प्रस्तुति मे आलोचनात्मक विधि का सहारा लेकर मूल्याकन प्रस्तुत किया गया है । इस मूल्याकन मे सम्पूर्ण घटनाओं को परिवेशीय आधार पर परख कर स्वामी जी की कमियो की ओर भी ध्यान दिलाया गया है । इस पुस्तक में मैने एक ऐसे शीर्षक को भी जोडा है जो अपने आप में अन्य जीवन चरित्र लेखकों की लीक से हटकर है । वह शीर्षक है 'साहित्यिक योगदान' । विष्णु द्वय (विष्णुदत्त राकेश और विष्णु प्रभाकर) के अतिरिक्त किसी अन्य लेखक ने इस विषय की ओर ध्यान नहीं दिया है ।

पुस्तक की सामग्री के चयन मे गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय के पुस्तकालय विभाग के कर्मचारियों का सहयोग अविस्मरणीय है । पुस्तकालय के कर्मचारियो ने बिना समय गवाँए सामग्री उपलब्ध करा कर मेरा काम सरल किया है । परिवार के सदस्यों का आभार प्रकट करना मात्र औपचारिकता है, क्योंकि उन्हे तो पता है कि कागज काले करना मेरा स्वभाव है।

रणजीत सिंह

लोहान चिल्ड्रन हॉस्पीटल
एन.आई.टी. 5 फरीदाबाद

अनुक्रम

प्रथम अध्याय

श्रद्धा के टूटते तार (1856-83)

दूसरा अध्याय

श्रद्धा के जुड़ते तार (1883-1901)

तीसरा अध्याय

श्रद्धा का प्रकाश स्तम्भ गुरुकुल (1902-17)

चौथा अध्याय

स्वामी श्रद्धानन्द के रूप में (1917-22)

पाँचवाँ अध्याय

श्रद्धानन्द का शुद्धि के लिए बलिदान (1923-26)

प्रथम अध्याय
श्रद्धा के टूटते तार (1856-83)

परिवार, जन्म तथा बाल्यकाल

स्वामी श्रद्धानन्द के स्वभाव मे अपरिवर्तनशीलता का अत्यन्त अभाव था । प्रशसक और निन्दक इस स्वभाव को अपने-अपने मानदण्डो से नापते हैं । प्रशसक इसे गतिशीलता का नाम देकर गुण की सज्ञा देते हैं तो निन्दक इसे स्वभाव की अस्थिरता मानते हैं । वास्तविकता तो यह थी कि उन्हे परिवर्तन करने मे प्रायः क्षण भर भी देर नहीं लगती थी । किसी नई घटना का उनके मन और मस्तिष्क पर ऐसा तीव्र असर होता था कि उनके साथी वहीं खडे रह जाते थे, जहा पहले खड़े थे और वे पाँच ही मिनट मे सैकडो मील जा खडे होते थे[1] । इस प्रवृत्ति को देखकर ही लाला साईदास ने स्वामी जी के विषय मे आर्य समाज मे प्रवेश करते समय कहा था "आर्य समाज में यह नई स्पिरिट (स्फूर्ति) आई है । देखे आर्य समाज को तारती है या डुबो देती है[2] ।

आर्य समाज के क्षेत्र मे नई स्पिरिट वाले स्वामी श्रद्धानन्द ने किशोरावस्था मे मुशीराम के नाम से कदाचारिता के गलियारो का प्रत्येक अन्धेरा कोना अपना बनाया हुआ था । उनकी आस्तिकता की चूल हिल गई थी। वे भक्ति के क्षेत्र मे तुलसी कृत रामायण मे आस्था रखते हुए भी श्रद्धा के तारो को तोडकर चार्वाकीय शैली मे 'अन्नमय कोश' की ओर उन्मुख हो रहे थे । उनका यह अकुलीन चारित्रिक स्वभाव पुरखो की देन था अथवा परिवेशीय कुप्रभाव ने ही ऐसा बना दिया था। इस बात की तह मे जाने के लिए हम स्वामी जी के पुरुखाओ का पुरातात्विक और परातात्विक विश्लेषण करना चाहते हैं ।

सतलुज और व्यास की मनमोहक गोद मे फैले पजाब प्राप्त के 'दुआबा' क्षेत्र को प्रकृति ने खुले हाथो सब कुछ दिया है । हरियाली ओर खुशहाली यहा के खेतो और चेहरो पर बरसती दिखाई पडती है । इसी क्षेत्र मे जालन्धर नामक एक जिला है । पौराणिक कथानको के अनुसार इस का सम्बन्ध दैत्य जालन्धर से जुडा हुआ मिलता है। परन्तु हमे तो जालन्धर के दैत्य से कोई अभिप्राय न होकर इस जिले की पूर्वी सीमा पर बसे तलवन नामक कस्बे के दैत्यो के मारने वाले राम 'मुशीराम' से ही सरोकार है । कभी समय था जब जालन्धर दुआब मे ढाई शहरो की गिनती हुआ करती थी पूरा शहर तलवन, पूरा बिजवाडा और आधा हदियाबाद । परन्तु हमारे चरित्र नायक के जन्म समय मे तलवन पुरानी प्रसिद्धि के खण्डहरो मे उसासे लेता हुआ भी ब्याह-शादियो पर होने वाले धूम-धडाके के कारण ही चर्चा का विषय बना हुआ था ।

इसी तलवन कस्बे मे क्षत्रिय (पजाबी खत्री) वश का सुखानन्द नामक व्यक्ति बाहर से आकर बस गया । पुरातात्विक दृष्टि से कद-काठ और रुप-रग मे सुखानन्द का परिवार आर्य नस्ल का जीता-जागता उदाहरण था । ऊचा कद, उठी हुई प्रोन्नत नाक, गौर वर्ण, काले बाल और काली आँखो की विशेषता लोगो को बरबस अपनी ओर खींच लेती थी । यही व्यक्ति स्वामी श्रद्धानन्द का ज्ञात आदि पुरुष था । स्वामी श्रद्धानन्द के शब्दो मे "वे सचमुच सुख और आनन्द की मूर्ति ही थे। मैंने अपने पिता जी से सुना था कि उनका चित्त हर समय प्रसन्न तथा उनके मुख पर शान्ति और कान्ति का मेल रहता था[3] । लाला सुखानन्द के कन्हैया लाल, हीरा लाल, माणिक चन्द, गुलाबराय और महताब राय नामक पाँच पुत्र हुए । कन्हैया लाल राजा कपूरथला की ओर से महाराजा रणजीत सिह के दरबार मे वकील बन कर रहते थे । उन्होंने तलवन में एक शिव मन्दिर बनवाया जहा उनके पिता सुखानन्द शिव भक्ति में मस्त रहते थे । सुखानन्द का अन्य लडका गुलाब राय भी कपूरथला रियासत मे रानी हीरा देवी की सेवा मे मुख्तार कार के उच्च पद पर आसीन था । उसमे पैतृक

सस्कारो के कारण अनायास भक्ति भाव के विचार बचपन से ही घर कर चुके थे । वे नित्य प्रति ब्रह्म मुहूर्त मे स्नान करके सुखमणि (सिख धर्म की पाठोपासना की पुस्तक) तथा भगवद् गीता का पाठ करते फिर कबीर तथा अन्य भक्तो के शब्द गाते थे । इस प्रकार भक्ति के क्षेत्र मे इनका जीवन धार्मिक सकीर्णताओ के प्रभाव से रहित था । परन्तु वशानुगत सस्कारिता के कारण इनका मूल धर्म पौराणिक हिन्दू धर्म था । ये गुलाब राय ही स्वामी श्रद्धानन्द के दादा थे । सासारिक दृष्टि से प्रलोभनो द्वारा इनको जीतना कठिन था। कपूरथला मे महाराजा नौनिहाल सिह के गद्दीनशीन होने पर जब रानी हीरा देवी अपने पुत्रो विक्रम सिह और सुचेत सिह के साथ जालन्धर आईं तो गुलाब राय को अनेक प्रलोभन देकर रानी के साथ जालन्धर जाने से रोकना चाहा । परन्तु उन्होने प्रलोभनो को धत्ता बता दिया और रानी के साथ जालन्धर चले आए । उनकी स्पष्टवादिता की तो हद ही थी । जब ये ब्रह्ममुहूर्त मे नित्य प्रति उच्च स्वर मे भगवद् भक्ति के गीत गाते, तो विक्रम सिह को नींद लेना दूभर हो जाता था । लाचार होकर एक दिन विक्रम सिह कह भी बैठे – लाला जी ! क्या आप परमेश्वर का नाम मन मे नहीं ले सकते। विक्रम सिह को तुरन्त सपाट उत्तर मिला "उनके मन मे हरदम परमात्मा बसते हैं, परन्तु जो मूढ भजन की अमृत वेला मे बेहोश सोये रहते हैं, उन्हे सचेत करने के लिए उच्चस्वर मे भजन बोले जाते हैं[5] ।

प्रलोभन से रहित ऐसे स्पष्ट वक्ता के घर स्वामी श्रद्धानन्द के पिता नानक चन्द का जन्म हुआ । वे अपने छह: भाई–बहिनो मे सबसे बडे थे । बचपन मे दादा जी ने भक्तिभाव के विचार ऐसे बैठाए कि 14 वर्ष कि आयु से जो सगुण पूजा का विधान स्वीकार किया । उसे जीवन पर्यन्त (59 वर्ष की आयु तक) निभाया । इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्वामी श्रद्धानन्द का परिवार पुरातात्विक (ईश्वर, आत्मा, पुनर्जन्म, शुभ कर्म आदि) दृष्टि से परम भागवत था । इस प्रकार के परम भागवतो के परिवार मे जन्मे स्वामी श्रद्धानन्द के मन मे नास्तिकता के विचारो का समावेश परिवेशीय परिस्थितिया के कारण ही माना जा सकता है । चोर–उच्चके को नजर से ताडने वाले नानक चन्द कोतवाल, अपने पुत्र की गतिविधियो को नहीं देख सके । प्रत्येक पिता की भाति उन्होने अपने पुत्र पर विश्वास किया । आँख बन्द कर विश्वास करना कोताही ही मानी जा सकती है । स्वामी श्रद्धानन्द खरा लोहा था, उन्मुक्त परिवेश ने उन्हे जग लगा लोहा बना दिया और आर्य समाज ने इस जग लगे लोहे को सोना बना दिया । बस इन्हीं परिस्थितियो के आकलन से ही जीवन–चरित्र का मूल्याकन आरम्भ होता है ।

स्वामी श्रद्धानन्द के पिता स्पष्टवादिता में अपने पिता जी से दो गज आगे ही थे । इसीलिए उनको एक नौकरी छोडकर शीघ्र ही दूसरी तलाशनी पडती थी । कपूरथला मे थानेदारी की, परन्तु वजीर दानिशबद से कहा सुनी होने पर त्याग–पत्र दे दिया । सियाल कोट मे फौजदारी मे खजाची का काम किया । वहा भी अग्रेज हाकिम को खुली सुनाकर नौकरी छोड आए । फिर अमृतसर मे मुहाफिज दफ्तर (निरीक्षक) हुए और ईमानदारी का डका बजाया । तहसीलदार शोभाराम लगडा के विरुद्ध रिश्वत का मुकदमा चला । स्वामी जी के पिता जी को छोडकर तहसील दफ्तर के सारे कर्मचारी रिश्वत के अपराध मे हटा दिए गए । परन्तु नानक चन्द ने तहसील के भ्रष्टाचार पूर्ण वातावरण से उकता कर कुछ दिनो के उपरान्त नौकरी छोड दी और तलवन मे ही कुछ समय बिताया । यहाँ पर ऐसी सनक उठी कि बिना कुछ पैसा लिए एक कोठरी और दालान लेकर परिवार से अलग हो गए । एक समय की पारिवारिक स्थिति यह थी कि सीताराम, प्रेम देवी, मूलाराम, द्रौपदी और आत्माराम नामक पाँच सन्तानो के पिता होते हुए भी छठी की प्रतीक्षा की जा रही थी । फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी, विक्रमी सम्वत् 1873 (फरवरी, 1856) को छठी सन्तान के रुप मे एक बालक ने जन्म लिया ।

गाँव के पाधा को बुला कर लडके का नाम शोधवाया गया । पाधा ने पचाग शोधकर लडके का नाम बृहस्पति रखा । घरवालो के यह कहने पर कि नाम कुछ कठिन है, अत कोई प्रसिद्ध नाम

बताइए । पाधा ने प्रसिद्ध मुशी राम सुझाया । हमारे चरित्र नायक के जीवन मे बृहस्पति नाम लुप्त ही रहा । इसे सयोग ही कहिये कि बृहस्पति और मुशी दोनो ही शब्दो का अर्थ विद्या के क्षेत्र से सम्बन्धित है । यही लडका अपने दोनों नामो को सार्थक बनाकर गुरुकुल कागडी का जन्मदाता बना । मुशीराम नाम 11 अप्रैल, 1917 तक साथ देता रहा । इसके बाद स्वय ही श्रद्धानन्द नाम धारण करके भारत विख्यात हुए । इस नाम के लिए किसी पाधे या गुरु को पचाग शोधन की आवश्यकता नहीं पडी। सिर पर छहः सन्तानो का भार आने पर मुशीराम के पिता ने लाहौर मे चौकीदारो के बख्शी (वेतन देने वाला कर्मचारी) की नौकरी पकड ली । बडी लडकी प्रेम देवी के विवाह की चिन्ता न होती तो शायद इसी नौकरी मे पडे रहते । तलवन के खत्री परिवार की हैसियत के अनुसार लडकी का विवाह होना चाहिए, यह सोचकर रुपये–पैसे के जुगाड की चिन्ता हुई । बस, धन कमाने की सनक सवार हुई और लाहौर की नौकरी को ठोकर मारकर देशवासियो के देश–प्रेम को दबाने के लिए एक काने टट्टू पर सवार होकर अग्रेजो की सहायता के लिए दिल्ली की ओर चल दिए। काने टट्टू पर सवार नानक चन्द की किस्मत काफी नहीं थी । भाग्य के बलवान होने से हिसार शहर (हरियाणा) के परकोटे मे उस दिन पहुचे जिस दिन 1857 ई के विप्लवकारियो ने हिसार को घेर रखा था । एक सिख सरदार भी दो सौ सवारो का दस्ता लेकर हिसार मे उस सरकार की जडे मजबूत कर रहे थे, जिसने कुछ वर्ष पहिले ही पजाब को गुलाम बनाया था । सिख सरदार की सहायता से अग्रेजो को सफलता मिली । नानक चन्द का भाग्य मुस्करा रहा था । उसने एक चौधरी के घर मे ब्रह्मभोज के लिए तैयार सामान को लेकर गोरी फौज के भोजन का प्रबन्ध कर दिया । इस सामयिक सहायता से प्रसन्न होकर पुरस्कार स्वरुप उन्हे हिसार का कोतवाल नियुक्त कर दिया और विप्लवकारियो को फॉसी पर लटकाने का काम भी उन्हीं को दे दिया । कुछ निरपराध और कुछ सापराध व्यक्तियो को फॉंसी देकर छह फुट से ऊँचे और बलिष्ठ नानक चन्द ने क्षेत्र मे शान्ति स्थापित कर दी । लोगों को बनावटी मुकदमो मे फँसा कर खूब रुपया कमाया और लडकी के विवाह के लिए पर्याप्त धन राशि घर पर भेज दी ।

उन्नति के महत्वाकाक्षी नानक चन्द यहीं नहीं रुके प्रत्युत उन्होने घोडे खरीद कर और अपने से सम्बन्धित 25 आदमियो को रिसाले के छोटे अफसरो के रुप मे नियुक्त कर दिया । इस प्रकार निजी व्यक्तियो की भर्ती के कारण विश्वसनीय व्यक्तियो की एक टोली उनके पास हो गई । वे अपने को अधिक सुरक्षित समझने लगे । अग्रेजी सरकार का सकेत पाते ही वे 75 जाट घुडसवारो को साथ लेकर विप्लवकारियो को दबाने की इच्छा से मेरठ कूच कर गए। वहाँ रिसालदार नियुक्त होकर तीन महीनो मे सहारनपुर जिले के विप्लवकारियो के हथियार छीन लिए । इस जिले मे गुलामी की हसली डालकर नेपाल की तराई मे मेलाघाट की लडाई मे सम्मिलित हो गए और वहाँ से विजयी होकर बाँस बरेली लौटे ।

यहाँ अग्रेजी सरकार ने 'सेना पुलिस' के सब रिसाले तोड दिए । सरकार ने नानक चन्द की सेवाओ को देखते हुए दो विकल्प उनके सामने रखे । पहले विकल्प के अनुसार 1200 बीघे कृषि भूमि लेकर अलविदा होना था और दूसरे विकल्प मे पुलिस इन्सपैक्टर की नौकरी का प्रस्ताव था । नानक चन्द ने हिसार की कोतवाली मे घूसखोरी का आनन्द ले लिया था । अतः प्राचीन कहावत 'उत्तम खेती मध्यम बान । अधम चाकरी भीख निदान' के विरुद्ध अधम चाकरी का रास्ता ही अगीकार किया ।

अब वे बरेली के पुलिस इन्सपैक्टर थे । ठाठ–बाठ मे कोई कमी नहीं थी । यदि कोई कमी थी तो यही कि परिवार पास नहीं था । इस कमी को परिवार बुला कर पूरा किया । नानक चन्द की पत्नी अपने तीन पुत्रो सीता राम, आत्मा राम और मुशीराम के साथ बरेली में आकर प्रसन्न हुई।

उस समय मुशी राम की आयु तीन वर्ष की थी। नानक चन्द ने अपने दोनो लडको के लिए मौलवी को नियुक्त कर दिया। मुशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) छोटे होने के कारण मौलवी के अनुशासन से बाहर रहे और खेल–कूद में ही मस्ती से समय गुजारते रहे । दोनो बडे भाई पाठ घोकते–घोकते थक जाते थे, परन्तु मुशीराम खेलते–खेलते जो कुछ सुन लेता, उसे पूरा का पूरा मौलवी को सुनादेता। मुशीराम उस आयु मे पर्यायवाची शब्द जोड कर अन्वय बना लिया करता था[6]। परन्तु मुशीराम के मन और शरीर के विकास को सही दिशा देने वाला कोई नहीं था । वह तो धीरे–धीरे खुदरौ (स्वयमू वृक्ष) की तरह बढता जा रहा था। खुदरौ वृक्ष की भाति बढने वाले मुशीराम की तरफ यदा–कदा माता ही ध्यान देती थी। छोटी आयु मे जब मुशीराम ने शराबी मामा की पगलाई अवस्था समीप से देखी, तो माता ने नौकर को डाँटते हुए कहा – इसे क्यो यहाँ आने दिया । नौकर कुछ उत्तर देता, उससे पहले वह उसे बगल के कमरे में ले गई और उसका ध्यान दूसरी ओर लगा दिया। अनपढ माता द्वारा अशुभ से बचाने के प्रयास को अबोध होने के कारण मुशी नहीं समझ सका। इस बात का उसको जीवन भर पश्चाताप भी रहा[7]।

बरेली से एक दर्जा उन्नति पाकर मुशीराम के पिता बदायूँ आ गए। वहाँ के तीन वर्ष भी मुशीराम ने लाड–प्यार और स्वच्छन्दता मे व्यतीत किए । बरेली की पुलिस लाइन्स में सीखी फौजी सलाम से वे कचहरी के कर्मचारियो को रिझाते और पुरस्कार मे जो कलम और कागज पाते, उन्हीं से पढाई के प्रति स्वतः रुझान हो गया । एक दिन पिता जी ने जब मुशीराम को 'करीमा और खालिकबारी–नामक पुस्तको के पन्नो पर मक्खी पर मक्खी मारते के समान नकल करते देखा तो दग रह गए। मुशीराम की पढाई आरम्भ करने की सोचने लगे। इतने मे सम्वत् 1922 (सन् 1865) मे नानक चन्द का एक दर्जा और बढा और वे विजिटिग कोर्ट इस्पैक्टर बन कर बनारस तब्दील हो गए। अत पढाई की योजना खटाई मे पड गई ।

शिक्षा - वेदारम्भ संस्कार

बनारस आगमन के समय मुशीराम की आयु लगभग नौ वर्ष की हो गई थी । अब वह जीवन के सुख–दुख, शुभ–अशुभ को थोडा बहुत समझने लगा था । बनारस के बडे मकान मे नानक चन्द की पत्नी ने सगति के लिए बिना किराये लिए एक पजाबी परिवार को रख लिया था। उस परिवार की गृहस्वामिनी निहाल देवी ने बनारस मे रहते हुए चाहे और कुछ न सीखा हो, परन्तु छुआछूत का नया मन्त्र अवश्य सीख लिया था। निहाल देवी की दकियानूसी छुआछूत से सारा घर परेशान रहने लगा था। खेल–खेल मे मुशीराम का पैर दीपक के टूटे हुए एक टुकडे से टकरा गया । निहाल देवी ने छू गया, छू गया का शोर मचाकर घर को सिर पर उठा लिया । पूछने पर व्याख्या करते हुए – चिराग को कौआ लेकर उडा होगा । उसकी चोच से गिर कर वह टुकडे–टुकडे हो गया और लडके का पैर उससे छू गया । अब तो छूत उतारने के लिए उसे स्नान कराना ही पडेगा। मुशीराम के ननुनच करने पर भी कडकती सर्दी मे गर्म पानी करके नहलाया गया। 'न रहे बास न बजे बासुरी' का अनुसरण करते हुए निहाल देवी को घर छोडने के लिए कह दिया गया । छुआछूत की भूतनी घर से विदा हुई और घर मे बच्चो की निशक धमाचौकडी का राज्य हो गया।

मुशीराम ने अब तक जो कुछ ढाई अक्षर सीखे थे, वे निगुरा रह कर ही सीखे थे । 'काशी माहात्म्य' और कुछ स्तोत्र सुनते–सुनते कण्ठस्थ हो गए थे । काशी मे आकर उनका वेदारम्भ सस्कार किया गया । सस्कार विधि के अनुसार सामान्यतः 11 वर्ष मे क्षत्रिय का वेदारम्भ सस्कार होना चाहिए। परन्तु जिसको शीघ्र विद्या, बल और व्यवहार की इच्छा हो और बालक पढने मे समर्थ हो, तो क्षत्रिय के लडके का जन्म अथवा गर्भ से छठे वर्ष में यह सस्कार किया जा सकता है[8]। मुशीराम की आयु

सामान्य आयु से कम थी और विशेष छूट की आयु पार हो चुकी थी । इससे स्पष्ट पता चलता है कि तत्कालीन हिन्दू समाज मे विधि के अनुसार संस्कार करने की परम्परा शिथिल हो चुकी थी और मात्र उसका नाटक ही रह गया था । इस नाटक मे पजाब के पाधाओ ने बहन को न जाने कहाँ से जोड लिया। पजाबी प्रथा मे जब भाई यज्ञोपवीत धारण करके ब्रह्मचारी वेश में काशी पढने के लिए जाता था, तो उससमय वह कहता था – "मैं काशी पढने जाउँगा" । इस उक्ति के बाद बहिन बाँह पकड कर कहती – भाई! तुम्हे यहीं पढा देंगे और भाई लौट आता । संस्कार के समय मुशीराम की कोई सगी बहन काशी में नहीं थी । एक धर्म बहिन बनाई गई । काशी में तो मुंशीराम थे ही, अतः उसके स्थान पर काश्मीर शब्द को रखा गया और बहिन भाई को लौटा लाई । अस्तु । इसके पश्चात् मुशीराम को सगुरा बनाने के लिए एक पण्डित का सौंप दिया गया । बाद मे उन्हे एक पाठशाला मे प्रविष्ट करा दिया गया । पढाई का यह क्रम सवा डेढ वर्ष ही चलने पाया था कि उनके पिता जी की बदली जिला बाँदा मे हो गई । काशी निवास की अल्पावधि में दो घटनाएँ ऐसी घटी, जिन्होंने इनके भावी जीवन को प्रभावित किया ।

प्रथम घटना डाकू सग्राम सिह से सम्बन्धित है । सग्राम सिह बनारस जिले का एक साधारण राजपूत किसान था । किसी अपराध के प्रसग में उसकी अनुपस्थिति में पुलिस ने घर की तलाशी लेते हुए उसकी पत्नी के सतीत्व को भ्रष्ट करने की चेष्टा की । सग्राम सिह ने पुलिस के व्यवहार की उच्च अधिकारियो से शिकायत की । लेकिन वहाँ उसके साथ पिशाचत्व का व्यवहार हुआ । राजपूती खून खौल उठा । घर आकर सर्वप्रथम अपनी पत्नी को मारा और फिर पुलिस की जान का दुश्मन बन कर डाके डालने लगा । शहर कोतवाल आलम सिंह ने एक मास के भीतर सग्राम सिह को पकडने की डींग हाकी । कुछ दिन पश्चात् कोतवाली के बोर्ड पर एक इश्तहार लगा पाया – "चन्द्र ग्रहण पर बनारस मे स्नान करने आउँगा । यदि क्षत्रिय के बेटे हो, तो सामने आना – सग्राम सिह" । चन्द्र ग्रहण पर सग्राम सिह अपनी माता जी के साथ स्नान करने आया। स्नान के बाद जाते-जाते आलम सिह को कह गया – "सग्राम सिह स्नान करके जा रहा है" ।

ऐसे साहसी डाकू को पकडने का काम मुशीराम के पिता जी को सौंपा गया । मुशीराम के पिता के साथ हुई एक मुठभेड मे सग्राम सिह के सभी साथी मारे गए और सग्राम सिह का गोलियो से छिदा शरीर बनारस के अस्पताल मे लाया गया । डाक्टर ने उसके घावो को देख कर कहा – आखिर तू पकडा ही गया । वीर क्षत्रिय का उत्तर था – "इस प्रकार पकडना बहादुरी नहीं। मेरे हाथ मे एक तलवार दे दो और सामने बीस सिपाही खडे कर दो, फिर देखूँ कौन पकडता है"। ऐसे साहसी क्षत्रिय को मुशीराम ने चारपाई पर पडे हुए देखा था ।

उपर्युक्त घटना का प्रभाव मुशीराम के भावी जीवन में दो अवसरो पर दिखाई पडता है । एक अवसर वह था जब सुलताना डाकू ने डाक द्वारा गुरुकुल को लूटने का नोटिस भेजा था[9] । इस अवसर पर मुशीराम ने अपने पिताजी के समान सुलताना को सबक सिखाने का सकल्प लिया था । सुलताना न आया यह बात अलग थी । दूसरे अवसर पर सग्राम सिह जैसा क्षत्रियोचित साहस दिखला कर गोरखा सिपाहियो की सगीनो के सामने छाती तान कर पूछा था – "गोली क्यो चलाई"।

दूसरी घटना एक नास्तिक जादूगर की आँखो से मुंशीराम की रक्षा से सम्बन्धित थी । उन दिनो काशी मे यह प्रसिद्ध हुआ कि एक वेदशास्त्र का ज्ञाता बडा भारी नास्तिक नगरी मे आया हुआ है । जिसके दोनो ओर दिन में मशाले जलती हैं । जो भी पण्डित उससे शास्त्रार्थ करने जाता है, उसके तेज से दब जाता है । इस साधु के भय से मुंशीराम को अकेले घर से बाहर जाने नही दिया जाता था[10] । यह साधु अन्य कोई न होकर स्वामी दयानन्द ही थे । भावी जीवन मे मुशीराम इसी साधु द्वारा स्थापित आर्य समाज के अनुयायी बने ।

बाँदा पहुँच कर फिर पढाई का माध्यम बदला । यहाँ हिन्दी की प्रतिष्ठा नही थी और उर्दू का ही बोलबाला था । मुशीराम उर्दू के 'अब्जद' (अलिफ, बे, नीम, दाल) ज्ञान से कोरे थे[11]। अत पहली ही श्रेणी में दाखिल होना पडा । यहाँ तुलसीकृत रामायण और हिन्दी पद्य मे महाभारत पढने का गहरा चस्का पड गया । बुद्धु भक्त की रामकथा ने इस चस्के को चार चाँद लगाए । यहीं रहते हुए राम जीवन से सम्बन्धित चित्रकूट नामक स्थान की यात्रा भी की ।

विक्रमी सवत् 1928 (सन् 1871) मे मुशीराम के पिता जी का स्थानान्तरण मिर्जापुर को हो गया । मिर्जापुर की सेवा काल अवधि पाँच महीने थी । इस अल्पावधि मे मुशीराम के अनुभव बडे मजेदार रहे । यहीं पर बन्दूक चलाना भी सीख लिया और पिता जी के अर्दली जोखू मिसर की चौंके–चूल्हे की (छुआछूत वाली दोहरे व्यक्तित्व की पवित्रता की पेट लीला भी देखी) । मुफ्त मे मिले सात बकरो के सिर जुआरी, भगड, गजड और चरसू जोखू मिसर की गोद मे समा जाते थे । एक दिन मॉस पकाते समय मुशीराम के पिता जी के नौकर ने चिमटे से आग लेकर चिलम भर ली । मिसिर इस कृत्य पर आग बबूले हो गए । कारण पूछने पर कहने लगे – कि अरे सरकार! हमने अपना धर्म कभी नहीं छोडा ! झूट बोला, जुआ खेला, गाँजे का दम लगाया, दारु पी, रिश्वत ली, चोरी–दगाबाजी की । ऐसे कौन से फरेब हैं जो नहीं किए । लेकिन सरकार अपना धर्म नहीं छोडा[12] । जोखू के उपर्युक्त विचार सुनकर मुशीराम के पेट मे हसते–हसते बल पड गए । चिमटे द्वारा चिलम के लिए आग लेने पर जोखू का धर्म बिगड गया और दुष्टाचारणो द्वारा धर्म नहीं बिगडा। कैसा विपर्यय धर्मबोध । जिनमानस की अन्धकारमयी अधर्ममूलक धर्म की अनोखी सोच ।

सस्कारिता के निम्न वातावरण मे पले जोखू मिसर का मामला तो धर्म की व्याख्या के लिए हास्यास्पद था । परन्तु मुशीराम द्वारा थाने की छत से एक राजा को स्त्री को नग्न करके देवी पूजते देखने को हम हास्यास्पद कह कर नहीं टाल सकते[13] । क्योकि इस क्रिया को एक सँस्कारिता सम्पन्न उच्च स्थिति वाला व्यक्ति कर रहा था । धर्म के सम्बन्ध मे इन विकृतियो को देखकर किशोर मुशीराम का मन विचलित हुआ ।

पाँच महीने के उपरान्त मुशीराम के पिता जी की पदोन्नति हो गई और वे पुन बनारस आ गए । इस बार का बनारस तीन वर्ष की आयु मे प्रथम बार बनारस आए मुशीराम को अधिक लुभावना लगा । यहाँ पहुँच कर कुछ महीनो के लिए पढना–लिखना सब चौपट हो गया । कजरी सुनने, देवी–देवताओ के दर्शन करने और गौनहारियो के नाच देखने मे समय गुजारने लगा । पितृ–पक्ष की समाप्ति पर दशहरा देखने मे 20 दिन उडा डाले । बच्चो की नए स्थान के दर्शन स्थलो को देखने की उत्सुकता के शान्त होने पर पिता ने बच्चों की पढाई की ओर ध्यान दिया पढाई के लिए एक गजेडी कायस्थ मुशी लगाए गए । मुशी जी पढाते कम और फडकती कहानियाँ अधिक सुनाते थे । मुशी जी की करतूत का पता लगाते ही पत्ता काट दिया गया । इसके बाद बाबू देवकीनन्दन के 'घण्टाकरण' स्कूल मे दाखिला लिया । यहाँ भी पुलिस की धौंस से सब रगरलियाँ मनाई । पढना–लिखना छोड दिया। नवाब बेमुल्क बनकर हुकूमत का खालिस मजा लिया । इन सब व्यवधानो के होते हुए भी अग्रेजी की पढाई बदस्तूर चलती रही।

इन्हीं दिनो बनारस शहर मे एक मुसलमान वकील के घर एक लडकी मर गई। मुखबिर ने कोतवाली मे रपट दी कि लडकी मार डाली गई है। पुलिस ने शव–परीक्षण हेतु मृतक शरीर को रुकवा दिया। वकील ने सर सय्यद अहमद की मदद से तहकीकात बन्द करा दी और मुशीराम के पिता जी, नायब कोतवाल और मुखबिर पर फौजदारी नालिश डाल दी। पुलिस ने बनारस में न्याय की आशा न होने के सन्देह में मुकदमा इलाहाबाद बदलवा लिया। इस मुकदमें में मुशीराम के पिता जी साथियों सहित ससम्मान छूट गए। परन्तु इनकी बदली बलिया को अवश्य हो गई।

उपर्युक्त घटना के साथ मुशीराम का साक्षात् सम्बन्ध रहा। क्योकि उनके पिता जी द्वारा इस मुकदमें से सम्बन्धित जितने भी पत्र अग्रेजी भाषा मे भेजे गए, वे सब के सब मुशीराम द्वारा लिखे जाते थे[14]। यह पहला अवसर था जब कि पिता ने पुत्र को इस योग्य समझा कि वह अग्रेजी मे पत्र लिख कर उनका विश्वास प्राप्त कर सके। बनारस मे रहते हुए मुशीराम को एक अच्छी आदत भी पड गई थी। वह नित्य प्रति प्रात: काल उठकर व्यायाम और कुश्ती करके गगा स्नान करते थे। तदनन्तर मन्दिरो मे देवार्चन करते हुए घर वापिस आते थे। यह विचार स्व प्रत्यय बुद्धि की उपज था, इसमे पर प्रत्यय नेयता का नितान्त अभाव था। किशोरावस्था मे ऐसा व्रताभ्यास अदृष्ट रुप से किसी भावी महाव्रत के सकेत का सूचक था। आगे चलकर गुरुकुल कागडी की स्थापना करने पर मुशीराम ने व्यायाम और कुश्ती को ब्रह्मचारियो की दैनिक चर्या मे विशेष महत्व दिया। गुरुकुल के प्रारम्भिक वर्षों मे बिजनौर जिले के नारायण सिह नामक वकील ब्रह्मचारियो को कुश्ती सिखाने के लिए आया करते थे[15]।

बलिया मे पढाई मे कुछ–कुछ मन लगा। परन्तु अधिक समय बनारस मे सीखी कुश्ती के अतिरिक्त गतका–लाठी सीखने मे जाने लगा। यह शारीरिक बलिष्ठता आगे चल कर आडे समयो मे सहायक सिद्ध हुई। बलिया मे उनके पिता जी नित्य प्रति तुलसी कृत रामायण की कथा कहा करते थे। एक दिन कथा मे पाप का प्रसग आने पर उनके पिता जी ने कहा कि यदि मनुष्य अपने पाप को स्वीकार करले, तो उससे बढकर कोई प्रायश्चित नहीं। भगवान शरणागत को त्यागते नहीं। रामकथा का श्रोताओ पर इतना प्रभाव पडा कि एक अपराधी ने साष्टाग लेटकर यह कहते हुए "राम ते अधिक रामकर दासा" चोरी और खून का अपराध स्वीकार कर लिया। इस घटना का मुशीराम पर बडा प्रभाव पडा। भावी जीवन मे उन्हे कई बार इस घटना का स्मरण आया। बलिया में रहते हुए उन्हे सभ्य कहे जाने वाले सरकारी अधिकारियो से इसलिए घृणा हो गई कि वे सब के सब वेश्यागामी और प्रजा को लूटने वाले थे । बलिया प्रवास के समय वे नियमपूर्वक पढाई नहीं कर सके । वहाँ की पढाई के विषय मे उन्होने अपनी आत्मकथा मे लिखा है "जिस प्रकार रुखड बैरागी बाबा ने *अठारह अध्याय गीता रगड मारी थी और गुरु एक भी नहीं बनाया था, इसी प्रकार अब तक* मैं 'लै भज' (जो मिले उसे ले लो) बना रहा । इधर–उधर की बाते और हिन्दी, उर्दू, अग्रेजी सब रगड मारी और गुरु किसी एक को भी धारण नहीं किया[16] ।"

पढ़ाई के लिए बनारस जाना

बलिया मे रहते हुए मुशीराम के पिता नानक चन्द्र को अपने लडको की पढाई की चिन्ता हुई। इस समय तक लडके किशोर हो चुके थे और उन्हे अपने से दूर कहीं भी शिक्षा के लिए भेजा जा सकता था। बहुत विचार करने के पश्चात् पिता ने मुशीराम को बनारस भेजने का निश्चय किया। इस प्रकार बनारस मे तीसरी बार आने पर विधिवत् पढाई आरम्भ हुई। बनारस का क्वीन्स कॉलेज उस समय सयुक्त प्रान्त के सर्वश्रेष्ठ महाविद्यालयो मे से एक था। तत्कालीन शिक्षा नीति के अधीन इस कॉलेज के साथ स्कूल की कक्षाएँ भी चलती थी। इस कॉलेज की आधारशिला 1857 के विप्लव से पहले ही रखी गई थी। इस कॉलेज का मुख्य उद्देश्य प्राच्य विद्याओ की शिक्षा देना था। परन्तु शनै –शनै इसमे प्रतीच्य शिक्षा के विषय भी पढाए जाने लगे। इसी कॉलेज के स्कूल विभाग मे मुशीराम ने पौष सम्वत् 1930 (1873 ई) मे प्रवेश लिया। बनारसी वातावरण का मुशीराम के मन पर असर पडना आरम्भ हो गया और जीवन के व्यावहारिक और मानसिक चिन्तन मे स्पष्ट परिवर्तन दीखने लगे । इस परिवर्तन को मुशीराम ने वर्णित करते हुए लिखा है "मेरे स्वभाव का ज्ञान मुझे काशी मे 'गगा गये गगादास, यमुना गये यमुना दास' हुआ। बनारस पहुँचते ही मैंने अपने जीवन की सारी गति बदल डाली । बलिया मे तीन महीने के अन्दर ही मैं भोजपुरी बोली और हुकूमत के झकोलो

से मस्त होकर ठाठ–बाठ से सिह–सरदारो की पोशाक पहिनने लग गया था। बनारस पहुँच कर एक महीने के अन्दर बनारस की खडी बोली बोलने लग गया था। स्कूल में प्रवेश के पन्द्रह दिन पीछे ही हुकूमत का सारा नशा हिरन हो गया और विद्वानो के विद्यार्थी जीवन की कहानियाँ पढ–पढकर उनके अनुकरण की चेष्टा करने लगा। बाँके दस्तारे का स्थान बनारसी दुपल्लियाँ टोपी ने ले लिया, शानदार लबादे के स्थान मे अगरखा पहिन लिया, दुपट्टा बाँकेपन का तिर्छापन छोड कर गले का हार बना, चुस्त चुडीदार पाजामे का स्थान सीधे–सीधे घुटन्ने ने लिया और चमकते हुए सल्मे सितारो की जूती को ठोकर मारकर लक्कडतोड बूट पैरो का श्रृगार बना[17]।" इस प्रकार कोतवाल का बेटा ठेठ बनारसी गवँई का बेटा प्रतीत होने लगा।

परिधान परिवर्तन ने मानसिक विचारो को प्रभावित किया। पूर्वजो के भागवत धर्म के प्रति आस्था के अकुर फूटे और ब्रह्म मुहूर्त मे चार बजे उठकर गगा स्नान आरम्भ कर दिया। स्नानोपरान्त डलिया मे फूल और झारी में पानी लिए धर्मभीरु श्रद्धालु भक्त की भाँति विश्वनाथ की सारी परिक्रमा देवपूजन करते। निवास स्थान पर आकर नियमित व्यायाम करना और भीगे चनों के साथ दूध लेना भी कभी नहीं भूलते और स्वाध्याय मे लग जाते। इस दिनचर्या को देखकर बलात् यह कहने को बाध्य होना पडता है, मानो कोई अदृश्य शक्ति 1902 ई. मे हरिद्वार मे गगा की धारा के तीर पर खुलने वाले गुरुकुल कागडी के लिए ही यह पूर्वाभ्यास करा रही थी। बनारस और गुरुकुल मे प्रातः काल चार बजे उठकर गगा स्नान करने की समानता है। परन्तु दोनो स्थानो के गगाजल मे अवश्य अन्तर था। हरिद्वार का गगाजल बनारस मे जाकर उतना पवित्र और शीतल नहीं रहता था, जितना पवित्र और शीतल हरिद्वार मे था । बनारस के देवपूजन के स्थान पर गुरुकुल मे अग्नि पूजन (यज्ञ) आरम्भ हो गया था । डलिया और झारी के स्थान पर सोटा और लोटा आ गया था। शेष प्रातराश मे दोनो स्थानो मे सात्विकता थी।

वस्त्रो एव विचारो मे सात्विकता आने पर अध्ययन के क्रम मे कोई दुविधा दिखाई नहीं पडी। पढाई की तेज गति के साथ सायकलीन भ्रमण भी तेज गति से होने लगा । वस्तुतः मुशीराम की स्वभाव से तेज चलने की आदत थी। उन दिनों वे शीघ्रगामी आँधी की भाँति चलते थे। प्रायः सायकालीन दिनचर्या भी सामान्य से परिवर्तन के साथ पूर्वाह्न की दिनचर्या के समान ही थी।

बनारसी जीवन के पहले वर्ष के सात्विक जीवन का यह अभिप्राय नहीं कि वे ब्रह्मचारी बन चुके थे । उनकी रगो मे कहीं न कहीं कोतवाल पिता के शौर्य प्रदर्शन का उन्माद भी उबल पडता था । इस उन्माद का ही परिणाम था कि वे कभी–कभी बनारसी गुण्डो के समान अपनी कमर मे छुरी लटका कर सायकाल को अकेले ही घूमने के लिए निकल पडते थे। माता–पिता से सुडौल शरीर और खुले हाथ–पाँव प्राप्त हुए थे । इसके साथ व्यायाम ने शरीर को ओर भी गठित कर दिया था। इस प्रकार उनके छैले शरीर पर छुरी बडी फब्ती थी । परन्तु इतना सब होने पर उन्होने अकारण ही किसी से उलझने का कभी प्रयास नहीं किया । इसके विपरीत उनकी शारीरिक शक्ति ने पीडितो की अथवा अपनी ही रक्षा की थी। इस प्रकार की घटनाओ का वर्णन आगे आएगा ।

श्रद्धा के तार टूटने लगे

किशोर अवस्था की कोमल भावनाओ में औचित्य और अनौचित्य का भेद करना अपरिपक्व बुद्धि वाले बालको के बस की बात नहीं होती। इस अवस्था में तो मित्र और साथी की वे बातें ही भाती हैं जो पारिवारिक परम्पराओं का अवमूल्यन करती हैं। मित्रो के प्रभाव मे आकर ऐसी ही एक बात मुशीराम भी कर बैठे। बनारस में पढते हुए बसन्त पचमी पर स्कूल की छुट्टी होने पर वे बलिया चले गए। वहाँ मुहल्ले के सिख लडकों श्याम सिह और अजीत सिह ने मुशीराम को 'मुजरा' मे

सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया । मुशीराम के पिता रामचरितमानस के भक्त थे और सदा नाच तमाशों से दूर रहते थे। अत. पिता जी से आज्ञा मागने का प्रश्न ही नहीं उठा और उन्होंने मित्रों द्वारा सुझाई विधि को अपनाया और पिता जी के सोने पर चुपके से घर से निकल कर मुजरे में उपस्थित हो गए। माता–पिता के विश्वास को ठुकरा कर जब कुल परम्परा को प्रथम बार तोड़ा जाता है, तो मन मे एक अजीब सी घबराहट होती है। यही स्थिति मुशीराम की थी। उन्हे पहले शका ने घेरा और लज्जा भी आने लगी। लेकिन इन दोनो भावों को दबाने के लिए बेभाव के पचासों पान एक घण्टे मे खाकर कहीं चैन की सास ली। उन्हे मुजरा देखने मे कितना आनन्द आया, यह तो निश्चित रुप से नहीं कहा जा सकता, परन्तु प्रात काल नींद से उठने पर उनका गला सूख कर काटा हो गया था और पिता से विश्वासघात करने की झेप चेहरे पर स्पष्ट दिखाई दे रही थी। वे अपने इस कृत्य पर पछताये तो बहुत, परन्तु प्रायश्चित करके पिता से क्षमा मॉंगने का साहस न जुटा सके।

जीवट की घटनाऍं

छुट्टी समाप्त होने पर बनारस आना ही था। वहाँ आकर तीन घटनाएँ ऐसी हुई जिन्होने मुशीराम की आँखें खोलनी आरम्भ कर दीं और उन्हे शहरी जीवन के अनाचार और कुवासना के चेहरो से हिसाब चुकता करने मे कोई झिझक नहीं हुई। बात ऐसी थी कि मुशीराम के एक मामा ने बनारस मे दुकान खोल रखी थी। एक दिन रविवार को वे उनसे मिलने के लिए गए। मार्ग ठठेरी बाजार मे से था, जहाँ गुण्डो का एक टोल बैठता था। एक गुण्डा आवाजे करता हुआ उनके पीछे लग गया । वापिसी पर उस गुण्डे ने मुशीराम के कन्धे पर हाथ रखा ही था कि वे चौकन्ने हो गये और ऐसे जोर से थप्पड मारा कि वह भूमि चाटने लगा और सब आँई–बॉंई भूल गया ।

दूसरी घटना मे मुशीराम ने एक लडके को बदमाशो के चगुल से बचाया । एक दिन वे स्कूल जा रहे थे तो उन्होने देखा कि कुछ गुण्डे एक कमसिन लडके के पीछे लगे हुए हैं । उस लडके के साथ नौकर भी था और वह बस्ता उठाये चल रहा था। भला, नौकर मे इतना साहस कहाँ कि पाँच–छह गुण्डो का सामना कर सके। मुशीराम ने उस लडके को अपने तागे मे बैठाया और स्कूल पहुँचा दिया। गुण्डे मुँह ताकते रह गए।

तीसरी घटना की कहानी मुशी की निजी कहानी है। एट्रेन्स (मैट्रिक) मे पाँच बार अनुत्तीर्ण होने पर रामलखन मिश्र नाम का 22 वर्ष का लडका स्कूल मे पडता था। वह अपनी कुचेष्टाओ से विद्यार्थियो के नाक मे दम रखता था। वह एक दिन मन मे कुवासना के विचार को लेकर मुशीराम के निवास पर पहुँच गया और मुशीराम के साथ कुचेष्टा का प्रयास करने लगा । रामलखन को क्या पता था कि वह एक ऐसे लडके से शरारत करने जा रहा है जिसने राममक्त हनुमान की तरह अपने शरीर को व्यायाम से कसा हुआ है। मुशीराम ने उसे बरामदे से ऐसा धकेला कि उसके होश ठिकाने आ गये और गिडगिडा कर मिन्नते करता हुआ बोला कि वे इसकी पोल न खोले । परन्तु मुशीराम कहाँ मानने वाला था। अगले दिन स्कूल मे जाकर उसकी पोल खोल कर दुर्गति की कहानी सुना दी । रामलखन तीसरे दिन ही स्कूल से नाम कटाकर घर को चल दिया।

किशोरावस्था से मुशीराम को सकटो से खेलने मे बडा आनन्द आता था । बनारस के अपने पहले प्रवासो मे वे डोगी चलाने में निपुणता प्राप्त कर चुके थे । इस निपुणता की परीक्षा कभी नहीं हुई थी । वह समय भी अचानक आ पहुँचा । बात ऐसे बनी कि वर्ष के अन्त मे होने वाली छुट्टियों मे मुशीराम बलिया के लिए चल दिए और इसकी सूचना पिता जी को दे दी । उस वर्ष उस क्षेत्र मे वर्षा अत्यधिक हुई थी और बलिया से डुमराव के मार्ग पर 18 से 20 मील तक पानी ही पानी

भरा हुआ था । अतः मुशी राम के पिता ने बक्सर के स्टेशन पर एक आदमी इसलिए भेजा हुआ था कि वह मुशीराम को सुरक्षित रुप मे सही रास्ते से बलिया ले आए। बक्सर स्टेशन पर मुशीराम की उससे मुलाकात न हो सकी और वे सीधे डुमराव जाकर उतर गए। यहाँ से पैदल और किश्ती मे बैठ कर बलिया जाने का मार्ग था । अब साहसिक यात्रा का प्रथम चरण आरम्भ हुआ। मालूम हुआ तागा एक डेढ मील तक जाकर रुक जायेगा और शेष मार्ग घुटनो से लेकर कमर तक के पानी मे चल कर पार करना पडेगा। मुशीराम ने तागा न लेकर एक मजदूर को किराये पर लिया और सारा सामान उसको दे कर पैदल ही जल यात्रा आरम्भ कर दी। मजदूर नाटा था गहरे पानी मे स्वय सामान उठाते और उथला पानी आने पर फिर बौने मजदूर के सिर पर भार आ जाता। इसी लेन देन के खेल मे उन्होने बरसाती पानी को पार किया और दिन के एक बजे गगा किनारे पहुँचे और उसके दूसरे किनारे पर बलिया था।

मजदूर को मजदूरी देने के लिये जब जेब मे हाथ डाला तो जेब कटी हुई मिली। मजदूर को मजदूरी कैसे दी जाये, इसी चिन्ता मे थे कि सामने बलिया के दो किसान दिखाई दिए । पुलिस इन्सपैक्टर का पुत्र जानकर उन्होने चार रुपये उधार दे दिए। मजदूरी देने की समस्या समाप्त हुई। अब भूख ने आ घेरा, वहाँ सतपकवानी हलवाई की दुकान की कल्पना करना निरा अनाडीपन था। एक भडभूजे की दुकान ही वहाँ का मिठाई बाजार था । मुशीराम को इसमे पेटपूजा के लिए केवल आठ ही लड्डू मिले। लड्डुओ का शरीर वज्रसार की भाति दृढ था। मुशीराम के दृढ दाँत भी उन्हे काट नहीं सके। पत्थर पर फोड कर जब निगलने का प्रयास किया तो गले मे अटक गए। जैसे-जैसे उन्हे उदरीकृत करके सन्तोष की साँस ली। इन लड्डुओ को खाकर मुशीराम को जो तृप्ति हुई वह बनारस के गोपाल मन्दिर के छप्पन प्रकार के भोजन से भी कहीं अधिक थी।

घटना का दूसरा चरण बडा रोमाचक है। घाट पार करने के लिए कोई भी मल्लाह तैयार नहीं हुआ। मुशीराम निराशा मे रेतीले मैदान मे ही रात काटने की सोचने लगे थे कि इतने मे डाक वाले की छोटी सी डोगी आ गई और अन्य सवारियो के साथ मुशीराम उसमे बैठ गये जब तक डोगी उथले पानी मे चलती रही सबको आनन्द आता रहा, परन्तु तेज धारा मे आते ही डोगी डगमगाने लगी। चप्पूवाला आदमी चक्कर खाकर गिरा। मुशीराम ने चप्पू सभाल कर डोगी ठीक की और माझी को धकेल कर पतवार स्वय अपने हाथ मे ले ली। अब माझी ने समझ लिया डोगी डूबी। परन्तु उसे बडा आश्चर्य हुआ कि तीस-चालीस फीट ऊची लहरो मे भी एक अल्हड किशोर डोगी को साफ निकाल ले गया।

छुट्टियो की समाप्ति पर मुशीराम बनारस लौटे और परीक्षा की तैयारी मे लग गए। उस समय परीक्षा भी शिक्षा विभाग द्वारा ली जाती थी। उसमे अनुत्तीर्ण होने वाला छात्र एट्रेन्स पास नहीं माना जाता था।

विवाह की बाधा

लगभग तीन वर्ष पूर्व जालन्धर के रईस शालिग्राम तहसीलदार ने अपनी लडकी के लिए मुशीराम को 'रुकवा' लिया था। मुशीराम की परीक्षा के पश्चात् वे नाते का शकुन उसके पल्ले डालना चाहते थे। मुशीराम ने परीक्षा के लिए पूरी तैयारी की, लेकिन भाग्य दो लाठी आगे चला। सोमवार को अंग्रेजी, मंगल को गणित और बुधवार को इतिहास भूगोल के पर्चों के उत्तर उत्तम रीति से किये। बृहस्पतिवार को फारसी का प्रश्नपत्र ऐसा हुआ कि अनुत्तीर्ण होने के लिए पर्याप्त था, लेकिन दूसरा प्रश्न पत्र आते ही परीक्षा अधीक्षक ने घोषणा कर दी कि अग्रेजी का प्रश्नपत्र परीक्षा के दिन से पूर्व ही छात्रो का पता चल गया था, अतः अग्रेजी की पुनः परीक्षा सोमवार को होगी। इस घोषणा से

मुंशीराम की सारी योजनाये गडबडा गई, क्योकि उनके पिता जी का आदेश था कि हर परिस्थिति मे उन्हे शुक्रवार को तलवन (जन्म स्थान) पहुँच जाना चाहिए। सोमवार की पुनः परीक्षा और शुक्रवार को तलवन पहुँचने की आज्ञा के मध्य छिडे अन्तर्द्वन्द्व मे तलवन की विजय रही। शगुन का, विवाह के लिए पक्के बन्धन का अधकचरा ज्ञान जहाँ मुशीराम के मन को गुदगुदा रहा था, वहाँ मातृ मिलन की उत्सुकता ने भी तलवन की राह की ओर मुख कर दिया । परीक्षा परिणाम निकलने पर असफल घोषित होना ही था, क्योकि अग्रेजो की पुनः परीक्षा मे अनुपस्थित होने पर शून्य ही मिलना था। अतः अगली कक्षा मे उन्नति नहीं मिली। दस–बारह दिन मुशीराम नियमपूर्वक अपनी पुरानी कक्षा मे पढते रहे । परन्तु कुछ दिनो बाद लगभग सभी पुराने साथियो के, उच्च कक्षा मे चले जाने के कारण आत्म ग्लानि तथा नये विद्यार्थियो के साथ बैठने मे लज्जा अनुभव होने से पढाई से मन उचाट हो गया। पूर्व पठित पुस्तको को पुनः पढने मे अरुचि होने लगी। परिणाम यह हुआ कि समय काटने के लिए स्तरहीन अग्रेजी उपन्यास पढने लगे । उपन्यासो ने मन को और भी डावाडोल कर दिया। शनै· शनै स्कूल जाना छूट गया और स्कूल से नाम कट गया ।

नाम कट जाने की बात को घर वालो से छिपाये रखा। स्कूल की छुट्टिया होने पर पाठ्य पुस्तको को छोडा। उपन्यास, इतिहास एव जीवन चरित्र की पुस्तके खरीदी और पिता जी के पास चले गए । वहाँ जाकर इन पुस्तको से मन बहलाने लगे। पिताजी को यह भ्रम रहा कि पुत्र परीक्षा की तैयारी मे दिन–रात एक कर रहा है । स्कूल खुलने पर पुन· बनारस की राह पकडी । एक दिन किसी कार्यवश मुशीराम के पिता कमिश्नर से मिलने के लिए बनारस आए । वहाँ आने पर उन्हे अपने पुत्र की करतूत का पता चला और व्यथा की गहरी सॉस लेते हुए कहा "बेटा मैं तुम पर इतना विश्वास करुं और तुम ऐसा अविश्वास करो" । इस वाक्य ने बिना दण्ड दिये भी सबसे बडा दण्ड दे दिया था। मुशीराम आठ–आठ ऑसू रोये । ऑसू बन्द होने पर आँखें पथरा गईं और भूख तथा प्यास ने भी साथ नही दिया और बिना खाये ही सो गए। अगले दिन प्रात· काल मन कुछ हल्का हुआ और उनके पिता जी ने अपने प्रभाव से पुन· स्कूल मे नाम लिखवा दिया। परीक्षा का मात्र एक महीना शेष था । इतने थोडे समय मे मुशीराम पहले पढी पुस्तको की धूल भी नहीं झाड सके, अतः अनुत्तीर्ण होना निश्चित था, परीक्षा मे बैठे ही नहीं और स्कूल से नाम कटवा लिया ।

धर्मो के प्रति अनास्था

अब प्रवेश लेने के लिए नये स्कूल की खोज आरम्भ हो गई। बनारस का 'रेवडी स्कूल' अच्छा लगा और पौष सम्वत् 1932 (1875 ई) मे इसमे प्रवेश ले लिया । यहाँ भी कुछ दिनो के लिए आवारगी और धमाचौकडी चलती रही । स्कूल के तीन–चार फेलशुदा बिगडैल लडको के ये नेता बने । ठीक ही तो था 'समानशील व्यसनेषु सख्यम्'। रेवडी स्कूल मे पढते हुए मुशीराम के साथ दो घटनाये ऐसी हुई कि जिन्होने धर्म के विषय मे इनके विचारो मे आमूल चूल परिवर्तन कर दिया ।

प्रथम घटना का सम्बन्ध पुन· नियमित रुप से गंगा स्नान, कुश्ती और विश्वनाथ आदि की पूजा से है। बनारस का विश्वनाथ मन्दिर एक गली मे है जिसके दोनो ओर पुलिस का पहरा रहता था। मुशीराम एक दिन जब मन्दिर के फाटक पर पहुँचे तो सिपाही ने यह कह कर रोक दिया कि रीवॉं रियासत की रानी दर्शन कर रही है। इस रुकावट से किशोर मुशीराम के मन को गहरी ठेस लगी और बिना पूजा किये अपने निवास स्थान पर लौट आए। घटना देखने मे सामान्य थी। प्राय· लोक व्यवहार मे महिलाओ को महत्ता प्रदान की ही जाती है, परन्तु मुशीराम के मन मे तो लोक व्यवहार न होकर 'भगवान व्यवहार' हलचल मचा रहा था। सारी रात उन्नीदे रहे और सोचने लगे 'क्या यह सचमुच जगत्स्वामी का दरबार है जिसमे एक रानी भक्तो को रोक सकती है या वे देवता

कहला सकते हैं जिनके अन्दर ऐसा पक्षपात हो"। इस प्रकार मुशीराम का हिन्दू धर्म के प्रति श्रद्धा का पहला तार झनझना कर टूट गया । मूल शंकर (स्वामी दयानन्द) और मुशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) दोनों की जडमूर्तियो मे अश्रद्धा का कारण "न रोक सकना" और "रोक सकना" ही तो था। शिव अपनी मूर्ति पर चढे चूहे को मल–मूत्र आदि करने से नहीं रोक सका था, दूसरी ओर एक रानी की उपस्थिति ने सामान्य भक्तो को विश्वनाथ दर्शन से रोक दिया। इस प्रकार दोनो के मनो ने जड सत्ता की अन्ध भक्ति के तटबन्धों को तोड दिया। बस अन्तर इतना ही था कि एक सच्चे शिव की खोज के लिए व्याकुल हो गया और दूसरा अन्य धर्मों मे दीक्षित होकर धार्मिक होने की चाह मे भटकने लगा। इसी भटकन में मुशीराम को पादरी ल्यूपोल्ट (रेवडी स्कूल के प्रिंसिपल) मिल गए। पादरी बडा प्रसन्न हुआ कि एक हिन्दू विद्यार्थी ईसाइयत अपनाने की ओर बढ रहा है। उसने मुशीराम को ईसाईयों के प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय मे दीक्षित करने का प्रयास किया। किन्तु वह मुशीराम की धार्मिक शंकाओ का समाधान नहीं कर सका। अत· उसने ऐसा करने की आशा ही छोड दी। एक भवर से निकल कर मुंशीराम शीघ्र ही दूसरी भवर मे फँस गया। ईसाई मत के चक्कर मे कुछ दिनो के बाद एक रौमन कैथोलिक सम्प्रदाय के लीफ नामक पादरी मिल गए। उन्होने मुशीराम को समझाया कि ईसाईयत का तत्व जानना है, तो कैथोलिक सिद्धान्तो का अध्ययन करना चाहिए।

मुशीराम उस पादरी के विचारो और तर्कों से इतने प्रभावित हुये कि वे ईसाई धर्म मे दीक्षित होने का मन बना बैठे। उसी सन्दर्भ मे दीक्षा लेने की तिथि निश्चित करवाने की इच्छा से पादरी लीफू के निवास की ओर चल पडे। वहाँ जाकर पादरी के अध्ययन कक्ष मे पैर ही रखा था कि एक पादरी और नन (ब्रह्मचर्य व्रतधारिणी) को ऐसी पापाचार की स्थिति मे पाया कि उल्टे पाँव ही लौट आए। मुसलमानी मत के विषय मे मुशीराम के अच्छे विचार नहीं थे। अतः उस ओर झुकने का प्रश्न ही नहीं उठा। साराश यह है कि मुशीराम को हिन्दू मूर्ति पूजा से घृणा हो गई। ईसाइयत पोच मालूम हुई। कुश्ती और गगा स्नान का नित्य कर्म चला और दर्श–स्पर्श से छुट्टी हुई। वे नास्तिकता की राह के राही बन गए। यह नास्तिकता यहाँ तक बढी कि उन्होने पडित विद्याधर को यहाँ तक कह दिया कि 'सस्कृत मे अक्ल की कोई बात नहीं', इसलिए अब वे 'कौमुदी' नहीं पढेगे[18] ।' परन्तु एक महान् आश्चर्य! सस्कृत मे अक्ल की बात न मानने वाले मुशीराम ने आगे चलकर इसी भाषा को और इसके साहित्य को पुनर्जीवित करने के लिये ही गुरुकुल कागडी की स्थापना की। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो सस्कृत भाषा अर्थात् अपनी सस्कृति के प्रति असत्य कथन के प्रायश्चित के रूप मे उन्होने अपना भावी जीवन समर्पित कर दिया था।

माता की मृत्यु से नव चेतना

नास्तिकता के इसी झकोले मे मुशीराम की माता तलवन से बलिया जाते हुए बनारस ठहरी थी। मुशीराम ने देखा माँ के सिर मे पीप से भरा एक बडा फोडा निकला हुआ था। इस फोडे के कारण उनकी माँ की बचने की कोई आशा नहीं थी। अतः स्कूल की छुट्टिया होते ही मुंशीराम बलिया पहुँच गए और माता जी की सेवा मे जुट गए। स्कूल का अवकाश समाप्त होने पर माँ का स्नेह और मृत्यु सूचक माँ के फोडे की चिन्ता, दोनो ही विरोधी भावो को अपनी झोली मे डालकर बनारस आ गए। परन्तु युवको को उदासी देर तक नहीं सताती। मुशीराम शीघ्र ही माँ की बीमारी को भूल गए और उसी पुराने ढर्रे से रेवडी स्कूल मे चहकने लगे। तुलसीदास का 'रामचरितमानस' छूटा और उर्दू शायरो के कलामो मे गोते लगाने लगे। कवि–सम्मेलनो मे मजा लूटने लगे। इसी प्रसग मे वे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सम्पर्क मे भी आए[19]। उनकी श्रृगार रस की कविता ने मुशीराम की मानसिक पवित्रता को ढीला करने का काम किया। वाल्टर स्काट के आचार सम्बन्धी उपन्यासो ने अपेक्षया कुछ स्थिरता अवश्य प्रदान की।

आवारगी के जीवन मे एक झटका लगा और मुशीराम को माता जी के देहान्त की सूचना मिली। माता जी की मृत्यु से उन्हे अपार दुःख हुआ। बलिया जाकर शोक–सन्तप्त पिता के चरणो मे आँसुओ का अम्बार लगा दिया। माता जी के अभाव मे सब सूना–सूना लगा। यह शून्यता उस समय टूटी जब उनके पिता जी ने माँ की अन्तिम इच्छा का हवाला देते हुए इस प्रकार कहा – "एक ही इच्छा मन मे रह गई, अपने मुशी का विवाह मैं अपने हाथो से करती। आप भूलना मत, मेरे बच्चे का विवाह उसी हौसले से करना जैसे मैं करना चाहती थी। मैं तो उस दिन की प्रतीक्षा कर रही थी जब मेरा बच्चा वकील बनेगा और मैं अपनी पुत्रवधू सहित उसका ऐश्वर्य देखूँगी[20]।

उपर्युक्त वाक्यो को सुनकर मुशीराम के चेहरे पर शोक के भाव तिरोहित हो गए और एक विशेष उत्तरदायित्व पूर्ण गम्भीरता छा गई।

माता जी की मृत्यु के उपरान्त की जाने वाली क्रियाओ से निवृत्त होकर एक दृढ निश्चय के साथ बनारस लौट गए। स्कूल के प्रिंसिपल से पुस्तकालय का कमरा अध्ययन के लिए माँग लिया और परीक्षा की तैयारी मे लग गए। इस सम्पूर्ण तैयारी के समय माँ की अन्तिम इच्छा की पूर्ति का लक्ष्य सामने था। अन्तत परिश्रम फल लाया और मुशीराम स्कूल मे उत्तीर्ण होने वाले छात्रो मे प्रथम स्थान पर रहे। कॉलेज मे प्रवेश लेने से पूर्व मुशीराम ने हुक्का पीने की आदत पकड ली थी।

कॉलेज में प्रवेश और असंयमित जीवन

सन् 1876 ई मे क्वीन्स कॉलेज बनारस मे प्रवेश लेकर पढाई आरम्भ कर दी। शनै शनै मुशीराम के निवास स्थान पर हुक्काई विद्यार्थियो का जमाव होने लगा और शाम को शानदार दरबार होने लगा। यौवन और धन सम्पत्ति की गर्मी मे पडे मुशीराम अपने साथियो के शीघ्र ही नेता बन गए। इनकी नेतागिरी का कारण भुजबल था। कॉलेज की पहली छमाही मे ही 'गाढी कम्पनी' की बुनियाद पड गई। इस 'गाढी कम्पनी' (मित्र मण्डली) ने कॉलेज मे अपनी ही साकेतिक भाषा गढ रखी थी। जिसमे 'चगल, मगल और पगल' आदि शब्दो के प्रकरणानुकूल बीसियों प्रयोग होते थे। रविवार के दिन मुशीराम के मकान पर 'गाढी कम्पनी' की बैठक होती। इस बैठक मे हुक्का पीते हुए केवल ताश और शतरज की ही बाजियाँ नहीं होती थी, प्रत्युत वहाँ मुशीराम द्वारा लिखे जाने वाले अग्रेजी उपन्यास की चर्चा–परिचर्चा भी होती थी।

कॉलेज की दो महीने की लम्बी छुट्टियो में मुशीराम अपने पिता के पास बलिया चले गए। बलिया मे गये तो यह सोचकर थे कि परीक्षा सम्बन्धी पुस्तकों के अध्ययन के साथ–साथ उपन्यास लेखन का कार्य भी होता रहेगा। परन्तु वहाँ जाकर उल्टी आवारगी बढ गई और आनन्द प्राप्ति मे भी ताजगी का अभाव महसूस हुआ। शीघ्र ही मन उचाट हो गया और छुट्टिया समाप्त होने के दिन अगुलियो पर गिनने लगे।

छुट्टियाँ समाप्त हुई और मुशीराम बनारस पहुँचे। इस बार का बनारस निवास मुशीराम के जीवन की उस घटना से आरम्भ होता है जब कि वे सतीत्व के रक्षक होने के साथ–साथ सतीत्व के भक्षक भी बने। बनारस मे गगा की बाढ से सेधिया घाट हिल चुका था और उसके नीचे एक गुफा सी बन गई थी। उसमे कुछ समय से एक नगा साधु रहता था जो एक समय उस के भोजन को ग्रहण करता था, जो सर्वप्रथम भेट मे लाता था। अतः अनेक स्त्री–पुरुष उत्तम से उत्तम भोजन तैयार करके सर्वप्रथम पहुँचने का प्रयत्न करते थे। एक दिन मुशीराम उस घाट की ओर सैर करने के लिए निकल गए। अचानक उन्हे नारी–स्वर मे एक चीख सुनाई पडी। वे दौडकर गुफा के पास गये तो देखा कि एक स्त्री को कोई बलात् गुफा मे खींच रहा है और वह बाहर निकलने का प्रयास

कर रही है। मुशीराम से यह दृश्य देखा नहीं गया। उसने वहाँ पहुँच और पैर गुफा के द्वार पर मजबूती से लगाकर उस स्त्री की दोनो भुजाओ को अपने हाथो मे पकड कर बाहर की ओर खींचने का प्रयास किया। परन्तु अन्दर का पापिष्ठ पिशाच कामान्धता के कारण दुगनी शक्ति का प्रयोग करता दिखाई दिया। बेचारी अबला दोनो ओर से खींची जाकर रबड के समान बढ रही थी। मुशीराम ने घाट के चौकीदार को पुकारा। तब कहीं जाकर दोनो ने मिल कर उस स्त्री को बाहर खींचा। उसकी आयु सोलह वर्ष से अधिक न थी। उसके कपडे चीथडे–चीथडे हो गए थे, शरीर से रक्त बह रहा था और वह भय के कारण थर–थर कांप रही थी। इतने मे उसके साथ आई स्त्री भी आ गई। मुशीराम ने फटे वस्त्रो के कारण लज्जा मे गडी उस षाडशी को अपनी चादर देकर विदा किया। इस घटना ने नास्तिकता की लहर के कारण और पुराने अग्रेजी उपन्यासो को पढने वाले मुशीराम के मनोभावो को बदल दिया। वह अपने आप को ललित नायक मान बैठा और उस अपरिचित षोडशी को मन ही मन मे 'प्रिया' की उपाधि दे बैठा। उन्ही दिनो बनारस मे रहने वाले मामा की सगति से मुशीराम को शराब पीने का चस्का भी लग गया था।

बात यहीं समाप्त हो जाती तो कोई हानि नहीं थी । ललित नायक की भावना दो कदम और आगे बढी। उपर्युक्त घटना के एक सप्ताह के भीतर ही मुशीराम विजय दशमी के दिन प्रातःकाल हो गगा–स्नान के लिए निकल पडे। वह गगा स्नान को भीड मे दो कदम भी नहीं बढा पाये थे कि एक स्त्री भीड से घबरा कर उस ओर आई जिस ओर मुशीराम चल रहे थे। एक गुण्डे ने उस स्त्री पर हाथ डाला। मुशीराम ने तपाक से उसके मुँह पर दमदार तमाचा मारा। गुण्डे को यदि दीवार का सहारा नहीं मिलता तो वह निश्चित रुप से गिर पडता। वह स्त्री घबराहट के कारण आगे जाने से डरने लगी। उसका पति गगा स्नान के लिये अपने लोगो को रेल–पेल मे बिछड गया। मुशीराम अन्य कोई उपाय न देखकर उस स्त्री को अपने मकान पर ले आया। उस स्त्री को तसल्लीपूर्वक मकान मे बैठा कर उसके पति की खोज मे चल पडा और शीघ्र ही उसे खोज लाया।

इसी भागा–दौडी मे दोपहर के भोजन का समय हो गया। मुशीराम का नौकर दो दिन से अवकाश पर था। अतः बाजार से पूरी लाकर भूख मिटानी चाही। परन्तु परदेशी जोडे ने ऐसा नही करने दिया और उस स्त्री ने ही भोजन बनाया। भोजन करते–करते परस्पर आत्मीयता बढी और वह दम्पत्ति जहाँ आकर ठहरे हुए थे, वहाँ से सामान उठाकर मुशी राम के मकान मे आ गए। तीसरे पहर उस स्त्री का पति विजय दशमी का मेला देखने चला गया। 'पर स्त्री' का दर्शन, स्पर्शन और भाषण तो पहले ही हो चुका था। काम के इन तीन मैथुनी दूतो ने भूमिका बाँध ही दी। अब विविक्तासन की स्थिति का लाभ उठाकर शेष बचे पाँच मैथुनो ने (विषयकथा, परस्पर क्रीडा, विषय का ध्यान और सग) दोनो ओर से यौवन को भडका दिया और वर्षों की अमूल्य कमाई एक घण्टे मे ही डूब गई और अमृत–बिन्दू ढुलका बैठे। इस स्थिति मे रामचरितमानस के नायक राम के 'एक पत्नीव्रत का गुणगान करने वाला राम का मुशी रावण ही तो बन गया। श्रद्धा का दूसरा तार उत्तेजित होकर टूट गया। श्रद्धा के पहले तार की टूटन भी नारी थी (रीवाँ रियासत की रानी की घटना) और दूसरी टूटन का कारण भी नारी ही थी। पश्चाताप मे रात का भोजन भी नहीं किया। प्रायश्चित मे स्त्रियो से दूर रहना आरम्भ कर दिया।

देवी–देवताओ मे अश्रद्धा हो चुकी थी, शराब की आदत भी पड चुकी थी, व्याभिचार की पहली सीढी पार कर ली थी, बस एक जूए का ऐब ही तो बचा था और शीघ्र ही उसमे फँस गए। भग पीना भी सामान्य सी बात हो गई थी। कहने का अभिप्राय यह है कि मुशीराम ने अनाचार की अधियारी गलियो के प्रत्येक कोने को अपना बनाया हुआ था।

मथुरा के अनुभव

पढाई मे मन लगाया ही था कि इतने मे मुशीराम के पिता जी की बदली बलिया से मथुरा हो गई। मथुरा की बदली के समय में ही उन्होने जुलाई मास मे मुशीराम का विवाह करने का निश्चय कर लिया। इस निश्चय के अनुसार मुशीराम को बनारस से मथुरा होते हुए तलवन पहुँचने का आदेश था। वे मथुरा पहुँचे। मथुरा की दो बाते उनके दिमाग मे सदा के लिये जम कर बैठ गई – एक का सम्बन्ध 'भोजनमट्ट' चौबो से था और दूसरी घटना का सम्बन्ध गुसाई जी की पापलीला से जुडा हुआ था।

पिता–पुत्र दोनो मथुरा में ही थे। एक दिन मुशीराम के पिता जी ने भागवत सस्कारों से प्रेरित होकर पुत्र की मगल कामना के लिए ब्राह्मणो को भोजन कराने का निश्चय किया। इनके चौबे ने आदेश पाकर पूछा – यजमान मन के दस निमन्त्रित किये जाये या मन के चार। मुशीराम को चौबे की बात अटपटी सी लगी। चौबा खुलासा देते हुए बोला – एक मन भोज्य पदार्थ (चालीस किलो) को खाने वाले दस चौबे हो या इसी मार के भोज्य पदार्थ को खाने वाले चार हों। मुशीराम के पिता जी ने रहस्यमय मुस्कान के साथ कहा – चार ही हो तो अच्छा है। क्योकि वे सोचते थे कि एक आदमी के बस का दस किलो खाना नही हो सकता। मथुरा में मन के चार खाने वालो की एक चौकडी थी। इसके सदस्यो के नाम भी सोटा, मोटा, छोटा और लगोटा आदि बडे बेतुके थे। भग पीकर चौबे भोजन के आसन पर बैठे। पहले डेढ–डेढ सेर लच्छेदार मलाई अन्दर गई। फिर भाग पी। फिर तो क्या कहना था दो–दो सेर पेडे, उन पर भाजी–पकौडी आदि के साथ तीस–तीस पूरियाँ की तह, फिर खुर्चन, फिर उतनी ही पूरियो की तह, फिर हलवा और अन्त में मलाई की पूर्णाहुति। मुशीराम के पिता जी इनका पेट न फट जाये इस भय से व्याकुल थे, परन्तु साय की सैर के बाद लौटे तो मुशीराम ने जब यह बताया कि वे चारो तो कुश्ती लड रहे है और प्रतीक्षा मे हैं कि कोई लड्डुवा खिलाने वाला यजमान मिल जाए[21]। उपर्युक्त घटना की पुनरावृत्ति गुरुकुल मे ब्रह्मचारी यदा–कदा करते रहते थे। कभी–कभी ब्रह्मचारी यह निश्चय कर लेते थे आज आटा दोबारा–तीबारा गुधवाना है। ऐसे समय उनकी वृत्ति 'मन के चार चौबो' की भाति होती थी। सायकाल उन्हीं ब्रह्मचारियो को व्यायाम करते देखकर मन ही मन मथुरा की घटना को याद करके मुस्करा देते थे।

दूसरी घटना का आरम्भ मुशीराम के गोपाल मन्दिर की झाकी देखने से ज्ञात होता है। इनके साथ सफेद कपड़ो मे एक पुलिस का आदमी भी था। उसने कहा चलो गुसाई के अन्दर महल की सैर करा लाऊँ। अभी अन्दर गये इनको पाँच ही मिनट हुए थे कि चीख की आवाई आई। ये चीख वाले कमरे का दरवाजा खोलकर अन्दर गये। एक अबला कुमारी को गुसाई जी अपनी ओर खींच रहे थे और वह छुडाकर भागने का प्रयास कर रही थी। जब कुमारी ने गुसाई के चरण स्पर्श करने का प्रयत्न किया तो उसने इसे पकड लिया और पापाचार के लिये अन्दर घसीट ले गया। मुशीराम ने उस कुमारी को उसके पिता के पास पहुँचा दिया[22]।

इस घटना ने मुशीराम को यह सोचने के लिये बाध्य कर दिया कि साधु समाज में सच्चरित्रता का ताना–बाना बिखर गया है। काशी की पहली घटना एक कामान्ध गुफाशायी अकिकर नागा साधु की थी, तो दूसरी घटना मथुरा के मन्दिर महल शायी सकिकर वस्त्रो से ढके स्वादु (साधु) गुसाई की थी। दोनो घटनाओं के मूल मे कारण एक ही था। इसके बाद तो मुशीराम के मन मे मन्दिरो की लीलाओ के प्रति बिल्कुल ही अनास्था हो गई और श्रद्धा की तन्त्री का तीसरा तार भी टूट गया। शेष कोई चीज बाकी थी, तो अपनी भावी पत्नी के विचारों में खो जाने की थी।

विवाह

मथुरा से चलते ही विवाह की धुन ने सब कुछ भुला दिया। अपनी होने वाली पत्नी के विषय मे मुशीराम ने अग्रेजी उपन्यासो की नायिकाओ की कल्पना मन मे सजो रखी थी। विवाह धूम–धाम से हुआ पर पौराणिक परम्परा के अनुसार मुशीराम को पत्नी का मुख देने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ और ससुराल का ब्राह्मण उस को विदा करा ले गया। अग्रेजी उपन्यासो की कल्पना की पहली कली अनखिली ही रह गई। मुकलावा (गौणा) होने पर भी वही ढाक के तीन पात निकले और बडे भाई ने मुशीराम से परिचय कराये बिना ही विदा कर दिया। इस बार भी कल्पनाओ के सजीले बादलों को भाई की तेज हवा ने उडा दिया। अनपढ धर्मपत्नी को पाकर कॉलेज के भावुक विद्यार्थी की भाति उसे स्वय पढाने का सकल्प मुशीराम के मन मे जागा और धीरे–धीरे प्रयास हुआ। इसमे मुशीराम को सफलता मिली। अनपढ पत्नी को पढाते समय मुशीराम ने यह निश्चय कर लिया था कि समय आने पर वे स्त्री–शिक्षा की ओर भी ध्यान देगे। 'सद्धर्म प्रचारक' के दूसरे अक से ही उन्होने एक लेखमाला आरम्भ की थी। उस लेख माला का शीर्षक था 'अधूरा इन्साफ'। उसमे उन्होंने स्त्रियो को सुशिक्षिता होने का पुरुषो के समान अधिकार है, को बतलाते हुए लिखा था । सभी को आत्मिक विद्या पर वैसा ही अधिकार है जैसा पुरुषो को, इसलिये जिस प्रकार पुत्रो पर पवित्र वेद की आज्ञानुसार, पहले छोटी आयु मे माता–पिता का अधिकार है कि शिक्षा दे और जब यज्ञोपवीत सस्कार हो जावे तो तत्काल ही लडका गुरुकुल मे भेजा जाना चाहिये, वैसे ही लडकियो के साथ भी बर्ताव होना चाहिये[23]। इसीलिये कन्या गुरुकुल को स्थापित करने के लिये फिरोजपुर मे पुत्री पाठशाला बनाने का प्रस्ताव मुशीराम ने ही प्रस्तुत किया था। हमारी तो मान्यता है कि यदि उनकी धर्मपत्नी का इतना शीघ्र देहान्त नहीं होता तो निश्चित रुप मे वे पत्नी से भी कन्या गुरुकुल के लिए सर्वस्व देने को कहते और आर्यसमाज के इतिहास मे इस त्याग की कहानी स्वर्णाक्षरो में लिखी जाती।

उसी समय मुशीराम ने बालविवाह की कुप्रथा के परिणामो को अनुभव किया था। बडे होने पर उन्होने इस प्रथा को दूर करने का प्रयास किया। अपने अनुभव को उन्होने इन शब्दो मे प्रकट किया था। 'मेरा निश्चय है कि यदि उस समय विवाह का ख्याल ही मेरे अन्दर न डाला जाता तो काशी से ग्रेजुएट बनकर मैं किसी ऊँची दशा मे चला जाता। कम से कम यदि धर्मपत्नी की आयु 16 वर्ष की होती और परस्पर की प्रसन्नता से आँखे खोलकर विवाह होता तो मैं उस अन्धकूप मे गिरने से बच जाता जिसमे आगामी दो–ढाई वर्ष के लिये गिरा था[24]।" मुशीराम ने जालन्धर आर्य समाज मे जो सबसे पहला व्याख्यान दिया था, उसका विषय भी बाल विवाह के दोष और ब्रह्मचर्य की महिमा ही था। स्वामी श्रद्धानन्द बनने के पश्चात् 'हिन्दू सगठन' नाम से जो पुस्तक लिखी, उसके पाँचवे प्रकरण (अध्याय) का आरम्भ ही 'बाल विवाह और पददलित स्त्री समाज' है। इस प्रकरण मे उन्होने बाल विवाह के सम्बन्ध मे अपने विचार रखते हुये लिखा है–

"साराश यह है कि लगभग 1300 वर्ष पूर्व हर्षवर्धन के राज्य काल के समय भारत की यह अवस्था थी – बाल विवाह एक अज्ञात वस्तु थी। इसलिए बाधित वैधव्य नहीं था और हिन्दू समाज की शान्ति मे खलल पैदा नहीं हुआ। परन्तु जब अत्यन्त रूप से, सुदृढ धार्मिक श्रद्धा से और पौरुष के साथ मुस्लिम आक्रान्ताओ ने इस देश पर आक्रमण करके असगठित हिन्दू शत्रुओ को पराजित कर दिया तो हिन्दू नव युवतियाँ विजेताओं की कामुकता का शिकार होने लगीं । उत्तर भारत के कुलाचार भ्रष्ट हिन्दुओ ने हिन्दू घरों पर मुस्लिम गाजियो के आक्रमणो से बचने के लिय बाल–विवाह और पर्दे जैसी अप्राकृतिक वस्तुओ को रिवाज के रूप मे अपने में ग्रहण कर लिया। छोटी–छोटी कन्याओ का छोटे लडको से ब्याह होने लगा और कभी तो उदरस्थ बच्चो का वाग्दान दिया जाता था[25]।

बरेली में काया पलट

विवाह के उपरान्त सम्वत् 1934 (1877 ई) के आश्विन मास मे बरेली पहुचे और सवत् 1937 मे अपने पिता के साथ खुर्जा चले गये। बरेली निवास के ढाई वर्षो मे मुशीराम रईस लडको की टोली मे फँस गये। बरेली के रईसो का यह हाल था कि कोई चाहे कितना ही धनाढय हो वह तब तक रईस कहलाने का अधिकारी नहीं होता था जब तक उसके घर मे कम से दो घोडो वाली एक चौपहिया गाडी, घर मे डाली एक वेश्या और कुछ हजार रुपये ऋण के रूप मे सिर पर चढा हुआ न हो। बरेली मे मुशीरम ने ऐसा कोई सप्ताह खाली नहीं जाने दिया, जो बिना शराब और नाच–रग के हो। इसका परिणाम यह हुआ कि बनारस जाकर पढने का विचार ही छूट गया। पढाई तो चालू रखनी ही थी। अत इलाहाबाद के म्योर कॉलेज मे दाखिला ले लिया। इसी कॉलेज मे प. मोतीलाल भी पढते थे। राजनीति के भावी जीवन मे दोनो की अचानक मुलाकात भी हुई। परीक्षा देने से पूर्व मुशीराम अस्वस्थ हो गए। बनारस के कॉलेज की पढाई में विवाह फाँस बन गया। इलाहाबाद के कॉलेज की पढाई मे माँ की बीमारी ने फच्चर ठोक दी और परीक्षा को बीच मे छोडना पडा। एफ ए तो करनी ही थी। यह कार्य अलीगढ के कॉलेज मे जाकर पूरा किया।

बरेली निवास के दिनो मे एक घटना ऐसी घटी कि उसने मुशीराम के नास्तिकपन को भगा दिया। इस घटना के नायक थे स्वामी दयानन्द। स्वामी दयानन्द 14 श्रावण, सवत् 1936 मे प्रचारार्थ बरेली आये थे। इनके व्याख्यानो से मुशीराम के पिता बडे प्रभावित हुए। रात को घर आते ही उन्होने कहा – "बेटा मुशीराम! एक दण्डी सन्यासी आये हैं, बडे विद्वान और योगिराज हैं। उनकी ओजमयी वाणी से तुम्हारे सशय दूर हो सकते हैं"। उत्तर मे मुशीराम 'हाँ' कर बैठे। परन्तु मन मे यही भाव रहा कि केवल सस्कृत जानने वाला साधु बुद्धि की बात क्या करेगा ? दूसरे दिन वे पिता जी के साथ व्याख्यान–स्थल पर गए। प्रथम दर्शन से ही स्वामी जी के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई। श्रोताओ में यूरोपीय लोगो की उपस्थिति ने मुशीराम की श्रद्धा को सबल दिया। मुशीराम के मन मे स्वामी दयानन्द के प्रति इतनी आस्था हो गई कि उनकी दैनिक चर्या के विषय मे भी रुचि होने लगी। इस रुचि को हम उन्ही के शब्दो मे इस प्रकार प्रकट करते हैं–

"मुझे आचार्य दयानन्द के सेवको से मालूम हुआ कि वह नित्य प्रातः शौच से निवृत्त होकर, केवल कोपीन पहने, लट्ठ हाथ मे लिये साढे तीन बजे बाहर निकल जाते हैं और छह बजे लौटकर आते हैं। मैंने निश्चय किया कि उनका पीछा करके देखना चाहिए कि बाहर वे क्या करते हैं? 'दबदबे केसरी' अखबार के एडिटर मेरे साथ हो लिये। दयानन्द ठीक साढे तीन बजे बाहर निकल कर चल दिये। हम पीछे हो लिये। पाव मील धीरे–धीरे चलकर वह इस तेजी से चले कि मुझ सा शीघ्रगामी जवान भी उन्हे निगाह मे न रख सका। आगे तीन मार्ग फटते थे। हमे कुछ पता न लगा कि किधर गए। दूसरे प्रात काल हम ढाई बजे ही घात मे उस जगह छिपकर जा बैठे जहाँ तीन मार्ग फटते थे। उस विशाल रुद्र मूर्ति को आते देखकर हम भागने को तैयार हो गये। वह तेज चलते थे और मैं पीछे भाग रहा था। मेरे पीछे बनिये एडिटर भी लुडकते–पुढकते आ रहे थे। बीच मे एक–आध मील की दौड भी रुद्रस्वामी ने लगाई। परन्तु वहाँ मैदान था, मैने आँख ओझल नहीं होने दिया। अन्त को पाव मील धीरे–धीरे चलकर एक पीपल के वृक्ष तले बैठ गए। घडी से मिलाया तो पूरे डेढ घण्टे आसन जमाये समाधि मे स्थित रहे। प्राणायाम करते नहीं प्रतीत हुए, आसन जमाते ही समाधि लग गई । उठकर दो अगडाइयाँ ली और टहलते हुए अपने तत्कालीन आश्रम की ओर चल दिये[28] ।

मुशीराम को अपने नास्तिकपन पर अभिमान था। एक दिन स्वामी दयानन्द से ईश्वर के अस्तित्व पर आक्षेप कर बैठे। पाँच मिनट के प्रश्नोत्तर मे मुशीराम की जिह्वा पर मोहर लग गई। फिर भी दो–तीन बार वे पूरी तैयारी के साथ गए, किन्तु परिणाम पूर्ववत् रहा। अन्त मे हार कर मुशीराम ने कहा कि आपने मुझे चुप तो करा दिया, किन्तु ईश्वर के अस्तित्व पर तो विश्वास नहीं दिलाया। स्वामी जी का सीधा–साधा उत्तर था – "तुमने प्रश्न किये, मैने उत्तर दिये, यह युक्ति की बात थी । मैने कब प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारा विश्वास परमेश्वर पर करा दूँगा । तुम्हारा परमेश्वर पर विश्वास उस समय होगा जब वह प्रभु स्वय तुम्हे वरण करेगे[27]।

मुशीराम पर तुरन्त ही स्वामी दयानन्द का कोई जादूमन्त्र चला हो और वे कदाचारो को छोड बैठे हो, यह बात हमे दिखाई नहीं पडती। क्योकि हम उन्हे उसी प्रकार व्यसनी देखते हैं। हाँ इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वे स्वामी दयानन्द की तर्कणा शक्ति एव शारीरिक गठन से अवश्य प्रभावित हुए। यही प्रभाव आगे चलकर जीवन को नया मोड देने मे पर्याप्त सिद्ध हुआ।

भारतीय नारी के प्रति आस्था

पत्नी शिवदेवी के व्यवहार ने उन्हे भारतीय नारी के प्रति अवश्य आस्थावान् बनाया। विवाह के उपरान्त मुशीराम ने गृहस्थी को सजीदगी से नहीं लिया। वे एक दिन अपने मित्र त्रिवेणी सहाय के हाथ चढ गए। उसने गजक सामने रखी और यह कह कर जाम भर दिया कि तुम्हारे लिये ही तो 'आतशा' खिचवाई है और यह जौहर है। दरअसल वह बडी नशीली दारु थी। मुशीराम गटागट पी गए। वहाँ से उठते ही असर मालूम हुआ। नशे की हालत मे एक वेश्या के चौबारे पर जा चढे। वेश्या कोतवाल साहब के बेटे को चौबारे मे आया देखकर अपना अहोभाग्य समझने लगी और मुजरा करने का हुक्म दिया। अचानक ही मुशीराम 'नापाक–नापाक' कहर कर कोठे से नीचे उतर गए। घर आने पर नौकरो ने सहारा देकर ऊपर चढाया। ऊपरले बरामदे के पास पहुँचे ही थे कि उलटी कर दी। उसी समय नाजुक छोटी अगुलियो वाला हाथ सिर पर पहुँचा पाया। अब मुशीराम पत्नी की गोद मे बालकवत् पडे थे। पत्नी ने सती के समान सर्वभावेन सेवा की। उस समय अग्रेजी उपन्यासो की रीति कालीन नायिकाओ के चित्र आँखों से ओझल हो गये और तुलसी की श्रद्धामयी सीता के समान एक सौम्य एव करुणा की मूर्ति हृदय पटल पर छा गई[28]। मुशीराम ने बचपन मे भी होली के रग मे शराब मे धुत अपने मामा की सेवा मे लगी अपनी माँ को देखा था। परन्तु उस समय नारी के कारुण्य भाव को वे समझ नहीं पाए थे। अब आपबीती को अनुभव करके उनका रोम–रोम पसीज रहा था।

सेवा से नहीं प्रत्युत अपने हृदय की विशालता से भी शिव देवी ने मुशीराम को भावविभोर कर दिया था। छावनी के पारसी शराबी ठेकेदार का बिल दिन–रात भूत की तरह मुशीराम को सता रहा था। अपनी कोई कमाई नहीं थी और पिता जी से किस मुँह से शराब के भुगतान के लिए रुपये मागे जाए, बस इसी दुविधा मे वे चिन्तित से रहते थे। पत्नी के अनुनय करने पर उन्होने सारी बात उगल डाली। सुनने के उपरान्त धर्मपत्नी का सच्चा कर्त्तव्य निभाते हुए शिवदेवी ने अपने हाथो से सोने के कडे उतार कर भुगतान करने के लिए दे दिए। मुशीराम स्वभावत आभूषण प्रिय नारी का यह त्याग देखकर नतमस्तक हो गए। पत्नी के बार–बार आग्रह करने पर कडो को बेच कर शराब के तीन सौ रुपयो का भुगतान किया[29]।

नौकरी का अनुभव

मुशीराम के पिता जी ने सारे पापड बेलने के उपरान्त अनुमान लगा लिया कि बेटा पढने की पटरी से उतर गया है। अन्तिम सन्तान होने के कारण रिटायर्ड होने से पूर्व लडको को अपने

पैरो पर खडा करना नानकचन्द अपना वर्त्तव्य समझते थे। अतः उन्होने कमिश्नर एडवर्ड को पहुँच की। शुभ परिणाम निकला और अवकाश पर गये नायब तहसीलदार के स्थान पर मुशीराम की नियुक्ति हो गई। ढाई–ढाई तीन जुम्मा ही गये थे कि नायब तहसील के क्षेत्र मे ठहरकर सेना को रात काटनी थी। फौज गोरो की थी। इसके लिये रसद–पानी की देखभाल करना मुशीराम का कार्य था। गोरी सेना के कुछ सिपाहियो ने दुकानदारो से अण्डे खरीद कर दाम देने से इन्कार कर दिया। सिपाहियो की इस हरकत से दुकानदारो मे असन्तोष फैल गया। इस घटना की सूचना देने तथा अण्डो के पैसे देने के सम्बन्ध मे बातचीत करने के लिये वे कर्नल से मिले। बातचीत के प्रसग मे मुशीराम ने कर्नल को स्पष्ट कह दिया यदि भुगतान नहीं किया तो वे सब के सब दुकानदारो को वापिस जाने के लिये कह देगे। कर्नल को यह बात अटपटी लगी और तैश मे आकर बोल उठे – "ऐसा करोगे तो तुम नुकसान उठाओगे। तुम्हारी गुस्ताखी का क्या मतलब है" । 'गुस्ताख' शब्द को सुन कर सरकारी नौकरी मे नये घुसपैठिया मुशीराम को भी क्रोध आ गया और उन्होने सपाट शब्दो मे कहा कि वे अपने आदमियो को ले जा रहे हैं आप जो कुछ कर सकते हैं, कर ले। कर्नल इस प्रकार की मुँहजोरी की बात सुनने के अभ्यस्त नहीं थे। कर्नल ने हाथापाई करने की सोची, परन्तु मुशीराम के हाथ मे हन्टर देख कर सहम गए और मुशीराम अपने घोडे को एड लगाकर चलते बने।

अगले दिन प्रात अपनी रिपोर्ट को बगल मे दबाये मुशी राम कलेक्टर साहेब के दफ्तर पहुँच गए। कर्नल वहाँ पहले ही बैठा था। कलैक्टर ने मुशीराम को माफी मागने के लिए कहा। मुशीराम को अपमानित करने के लिये कलेक्टर ने उनको कुर्सी नहीं दी। इससे वे मन ही मन मे अपमान रूपी विष से खौलते रहे। अन्त मे मुशीराम ने अवकाश की समाप्ति पर लौटे नायब तहसीलदार को नियमपूर्वक चार्ज दिया और अग्रेजो की चाकरी से सदा के लिये मुक्त हो गये[30]। काजल के समान नायब तहसीलदारी की काली कोठरी से मुशीराम बेदाग निकल आए। इस प्रकार नौकरशाह मुशीराम की अपेक्षा एकनये निर्भीक मुशीराम का जन्म हुआ। मुंशीराम का यही रूप आगे चल कर दिल्ली मे गोरखो की सगीनो से भी नहीं घबराया था। दिल्ली की और नायब तहसीलदारी की घटनाओ मे अन्तर था। नायब तहसीलदारी की घटना मे मुशीराम अपने बचाव के लिये भागा था, तो दूसरी घटना में अपने प्राणो का मोह त्याग कर देश की स्वतन्त्रता के लिए परवाना बना श्रद्धानन्द अडिग था।

मुशीराम के पिता जी की आयु पैशन पाने की दहलीज छू रही थी। पिता ने पुन एक बार लडके को सरकारी पुर्जा बनाना चाहा। बुलन्दशहर मे निरीक्षण के समय आए कारमाईकेल (सीनियर मेम्बर ऑफ दी बोर्ड ऑफ रेवेन्यू) से नानक चन्द ने मुशीराम की नौकरी की बातचीत की। कारमाईकेल ने मुशीराम को बुलाकर 150 से 350 के ग्रेड मे नौकरी देने को कहा और भविष्य मे उन्नति का दाना भी डाला। परन्तु मुशीराम ने दो मास पश्चात् उपस्थित होने का वचन देकर छुट्टी पाई। पिता को पुत्र का भविष्य तो निश्चत करना था। पिता–पुत्र मे परस्पर विचार–विमर्श हुआ और मुशीराम वकील बने यह निर्णय हुआ। पिता का मन हलका हुआ और बात सिरे पर चढाने की सोचने लगे। अस्तु, पिता ने मुशीराम को तलवन की जायदाद का प्रबन्धक बनाकर भेज दिया।

वकालत का धन्धा

मुशीराम अपनी घरेलू जमीदारी का दायित्व और लाहौर मे कानून की पढाई की इच्छा लेकर सयुक्त प्रान्त के रसीले वातावरण को छोडकर पजाब के सजीले वातावरण मे आ गए। पजाब की धरती पर जन्म लेने पर भी सयुक्त प्रान्त में रहने के कारण 'पजाबियत' से अछूते ही रहे। पजाब

मे उन्होने दत्तक पजाबी के रूप मे यौवनावस्था मे पदार्पण किया। गॉव मे आकर वे मुशीराम से लाला मुशीराम हो गए। पजाब मे खत्रियो के नाम मे लाला शब्द जुड जाने कीपरम्परा क्यो और कब आरम्भ हुई, यह बताना कठिन है। तलवन मे बहियो के हिसाब के गोरखधन्धे और जमीनो की पैदावार की बटाई के कार्य मे इतने उलझ गए कि पढना लिखना छूट गया, परन्तु मद्य–मॉस न छूटा। दिन कटी शतरज से होती रही।

पिता जी की इच्छा पूर्ति का ध्यान आया और जनवरी 1881 ई के तीसरे सप्ताह मे लाहौर मे 'मुखतारी' मे प्रवेश ले लिया। वहाँ बखशीश सिह नामक व्यक्ति के झाँसे मे आकर अनार कली मे 500 रुपये व्यय करके दुकान भी खोल दी। बखशीश सिह बडा कॉइया किस्म का व्यक्ति था। मैनेजर के रूप मे दुकान पर बैठ गया। वह दुकान मे घाटा ही घाटा दिखाता रहा। मुशीराम को उस पर सन्देह हो गया और सामान को बेच कर जो लिया जा सकता था, उसे लेकर व्यापारी बनने की इच्छा को सदा के लिए छोड दिया। कानून की पढाई मे बडे भाई मूलराज की लडकी के विवाह के कारण और भाई आत्माराम की पत्नी को गाजीपुर पहुँचाने के कारण और कुछ अपनी आवारगी के कारण पिचहत्तर प्रतिशत उपस्थिति नहीं हो सकी और परीक्षा देने से रह गए। वकालत का पहला चरण असफल रहा। मुशीराम अकृत कार्य होकर घर लौट आए।

अगले वर्ष (1882) मे पुन. प्रवेश लेकर 75 प्रतिशत से अधिक उपस्थिति करके घर पर ही रहकर परीक्षा की तैयारी करने की इच्छा से मुशीराम गाँव मे आ गए। गाँव का वातावरण अध्ययन मे अनुकूल न होने के कारण वे जालन्धर मे श्वसुर–गृह मे जाकर पढने लगे। उनकी ससुराल मे मास खाना सामान्य बात थी और मद्य पान को सभ्यता का चिन्ह माना जाता था। दामाद को दोनो चीजे बिना दमडी खर्च किये मिलती थी। इससे आवारगी बढी और वकालत की पुस्तको से किनारा करके अग्रेजी उपन्यास पढने आरम्भ कर दिये। रात का समय अपने सालो को उपन्यास की कथा सुनाने मे व्यतीत होने लगा। इस प्रकार जालन्धर मे रह कर पढाई करना असम्भव हो गया और लाहौर की राह पकडी। लाहौर मे आकर ये 'सर्वहितकारी सभा' के अधिवेशनो से लेकर ब्रह्म समाज और आर्य समाज तक के साप्ताहिक सत्सगो मे जाने लगे। मद्य पान भी कम हो गया। परन्तु जिस कार्य के लिए आए थे, उस कार्य (वकालत की परीक्षा) मे सफलता नहीं मिली। वकालत करने का दूसरा चरण भी पहले ही चरण मे मिल गया।

मुशीराम के पिता रिटायर्ड होकर तलवन मे आ गए थे। भाई आत्माराम भी नौकरी से अलग होकर परिवार सहित घर लौट आए थे। ऐसी परिस्थिति मे पिता जी पर भार न डालने की इच्छा से मुशीराम ने नौकरी करने का विचार बनाया। कमाने की धुन मे कानून की परीक्षा का विचार पीछे रह गया और नौकरी के लिए प्रार्थना पत्रो को लिखने और फाडने मे ही समय व्यतीत होने लगा। अग्रेजो की चाकरी करके देख ली थी, वहाँ पटती न देखकर राजपूताना की रियासतो मे अपने भाग्य को आजमाने का विचार तरगे मारने लगा। फिर देर कैसी? टिकट लेकर लाहौर के लिए कूच किया। मार्ग मे विचार आया कि गुलामी समझ कर पहली नौकरी छोडी थी, राजपूताना मे भी तो वही गुलामी मिलेगी। बस, 'मियाँ मीर' स्टेशन तक पहुँचते–पहुँचते विचारो ने पलटा खाया और उल्टे पाँव मुखतारी की परीक्षा देने का सकल्प कर लिया। इस बार उन्हे परीक्षा में सफलता मिली। मुशीराम के पिता के आनन्द की सीमा नहीं रही। ठाकुरो का ऋगार करवाया गया और ब्रह्मभोज भी हुआ। वेश्या का नाच कराना भी नहीं भूले।

मुशीराम जालन्धर की अदालत में अपनी वकालत का काम करने लगे। पहला मुकदमा फिल्लौर के तहसीलदार की अदालत का मिला। मुकदमें मे सफलता मिली। मित्रों के आग्रह पर

फिल्लौर को अपने लिये शुभ समझ कर वहीं वकालत करने का विचार बना लिया और घर से बरेली कोर्ट और मुश्कन घोडी, बर्तन आदि नौकर सहित आ गए। वकालत चल निकली और कुसगति के अभाव मे शराब आदि पीने की आदत भी कम हुई। अपनी पहली कमाई की बचत (75 रुपये) तलवन जाकर पिता जी के चरणो मे भेट करके उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। इसी समय पिता जी के आदेश से भाइ आत्माराम के मुकदमे की पैरवी के लिये मेरठ जाना पड गया। फिल्लौर छोडना पडा। मेरठ मे दो–तीन महीने लग गए। आत्माराम ससम्मान मुक्त हुए। वहाँ से आकर जालन्धर मे पुन वकालत आरम्भ कर दी। काम खूब चलने लगा, आमदनी बढती गई और भोग के सभी साधन सुलभ हो गए। परन्तु शराब इतनी हावी हो गई थी कि उसने शरीर और आत्मा दोनो को खोखला कर दिया था।

अपने वकीली जीवन को उन्नत बनाने की इच्छा से मुखतार से एक कदम आगे बढकर वकील बनने का मन बनाया। सौभाग्य से मुखतारो को वकील बनने के लिए एक वर्ष का समय बढा दिया गया था। इसके पश्चात् कोई भी मुखतार बी ए. पास किये बिना वकालत की परीक्षा मे नहीं बैठ सकता था। मुशीराम इस अवसर को खोना नहीं चाहते थे। जब हम निवाला और हमप्याला दोस्तो को मुशीराम के विचार का पता चला तो सायकालीन दावतो मे मुर्गो के गले काटे जाने लगे और प्याले के दौर दावत की दरिया मे रगीनी भरने लगे।

एक दावत के बाद जब ये एक पियक्कड मित्र के साथ वापिस आ रहे थे, तो शराब के नशे मे मित्र के पैर लडखडा रहे थे। मुशीराम उसको पकडे हुये ले जा रहे थे। वह अचानक बॉह छुडा कर एक घर मे चला गया। मुशीराम जब वहाँ पहुँचे तो देखा कि एक वेश्या थी। जैसे तैसे 'पॉचो एव शायरी' मुखतार मित्र को उसके घर पहुँचा कर अपने मित्र के डेरे (जहाँ वे ठहरे हुए थे) पर गए। मित्र भी बोतल खोले बैठे थे। फिर दौर चला। बोतल पर बोतल खुली। मित्र को बहुत चढ गई थी। मुशीराम ने उन्हे रोका और सोने को कहा। मित्र बीच का किवाड खोलकर साथ के कमरे मे चले गए। उनके जाते ही मुशीराम ने एक जाम और गटक लिया। दूसरा भर ही रहे थे कि साथ के कमरे से एक नारी की चीख सुनाई दी। किवाड धकेल कर जब अन्दर गये तो देखा कि नशेडी मित्र के हाथो मे एक युवती छटपटा रही है। मुशीराम ने मित्र को धकिया दिया और युवती के सतीत्व की रक्षा की। इस दृश्य को देखकर मुशीराम को गुफाशायी साधु के चगुल से छुडाई गई राजरानी नाम युवती की घटना स्मरण हो आई।

इस घटना के बाद नींद कहाँ थी ? जागते–जागते अपने गत जीवन की जुगाली करने लगे। इस चिन्तन का परिणाम यह निकला कि शराब के प्रति उत्कट घृणा उत्पन्न हो गई। परन्तु पुराने अभ्यास के अनुसार यह सूझा कि शेष बोतल समाप्त करके सदा के लिए इससे छुट्टी पाऊँगा। छुट्टी पाने की कहानी उन्हीं के शब्दो मे इस प्रकार है–

"इस विचार से पूरा गिलास भरा ही था कि मानसिक दृष्टि के सामने से एक और पर्दा उठा और यति दयानन्द की विशाल मूर्ति कौपीन लगाये, शरीर मे विभूति रमाये और हाथ में मोटा लट्ठ लिये सामने आ खडी हुई। ऐसा जँचा मानो महात्मा कह रहे हैं–क्या अब भी परमेश्वर पर तेरा विश्वास न होगा ? आँखे मली। मूर्ति कहीं सामने न थी, परन्तु हृदय काँप उठा। मेरा कमरा सडक की ओर था – जहॉ किसी दूसरे के घर की दीवार थी। गिलास उठाकर जो फेका तो सामने की दीवार मे लग कर चूर–चूर हो गया। फिर बोतल उठाकर जोर से फेकी, वह भी दीवार से टकरा कर टुकडे–टुकडे हो गई[31]"।

प्याला चूर–चूर हुआ, बोतल टुकडे–टुकडे हुई, परन्तु इससे मुशीराम का चूर–चूर होता

शरीर और टुकडे–टुकडे होती आत्मा का जुडाव हुआ। उनका मन आदर्श जीवन के प्रति लालायित हो उठा और वे निश्चिन्त होकर सो गये। प्रातःकाल होने पर वकील बनने की साथ लेकर लाहौर के लिये चल दिए। मित्रो की मनुहारे भी उन्हे न रोक सकीं। श्रद्धा का टूटता तार जुडता प्रतीत हुआ। नारी पुन. परिवर्तन का कारण बनी। पर सद्‌बुद्धि उन्हे सत्ताइसवे वर्ष मे प्राप्त हुई। इस प्रकार निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि 17 से 27 वर्ष की आयु के मध्य मुशीराम ने अपने जीवन में उत्थान और पतन के सात झटके देखे। इन सात मे से चार झटके यौन समस्या और शराब से सम्बन्धित कहे जा सकते हैं तथा शेष तीन परिवार की घटनाओं से सम्बन्धित हैं। ये सातो झटके यह सिद्ध करते हैं कि मुशीराम के जीवन मे स्थिरता का अभाव था और वे वातावरण से शीघ्र प्रभावित होते थे। 'जैसा देश वैसा वेश' अपना लेना उनके स्वभाव का अग था। इस कमी के होने पर भी हमें उनमे एक विशेषता भी दिखाई पडती है। वे चाहे औपचारिक परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण होते रहे हो, किन्तु उनमें स्वतन्त्र रूप से स्वाध्याय करने की प्रवृति अत्यधिक थी। तुलसीकृत 'रामचरितमानस' इनकी सास्कृतिक पूजी थी। इसी के भरोसे डूबती जीवन नैया को उभार देते रहे। अपने जीवन की इस अवधि को वे 'अन्धकार और प्रकाश' युद्ध मानते रहे।

सन्दर्भ
प्रथम अध्याय

1 (क)	इन्द्र, मेरे पिता	सस्करण		पृष्ठ 148		
(ख)	निरुपण एव विनोदचन्द्र, स्वामी श्रद्धानन्द एक विलक्षण व्यक्तित्व "					548
2.	भवानी लाल भारतीय, स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली–खण्ड एक				101	
3	"	"	"	9		
4.	"	"	"	10		
5.	"	"	"	11		
6	"	"	"	12		
7.	"	"	"	13		
8.	स्वामी दयानन्द, सस्कार विधि		"		94–95	
9	निरुपण एव विनोदचन्द			143		
10.	भवानी लाल भारतीय, स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली				खण्ड एक	18
11	"	"	18			
12.	"	"	20			
13.	"	"	20-21			
14.	"	"	24			
15	इन्द्र	वही	123			
16.	भवालीलाल भारतीय वही			खण्ड	27	
17.	"	"	"	33		
18	"	"	"	46		
19.	"	"	"	48		
20	"	"	"	49		
21.	"	"	"	63–64		
22.	"	"	"	64		
23.	"	"	"	187		
24.	"	"	"	65–66		
25	"	"	खण्ड पॉच		212	
26.	"	"	खण्ड एक 74			
27	"	"	"	77		
28.	"	"	"	79–80		
29.	"	"	"	81–83		
30.	"	"	"	94		

दूसरा अध्याय
श्रद्धा के जुड़ते तार (1884 - 1901)

आर्य समाज में प्रवेश

मुशीराम को सद्बुद्धि मिल चुकी थी। मानसिक दृष्टि से ईश्वर पर विश्वास हो चुका था। अब डगर साफ थी। अत. लाहौर मे पहली रात जब सो कर उठे तो सब कुछ मनभावन लगा। लॉ क्लास मे प्रवेश लेकर पढाई आरम्भ कर दी। लाहौर आने के उपरान्त रविवार को 'आर्यसमाज' मन्दिर मे गए। दो मुसलमान रबाबियो के भजन अच्छे लगे। व्याख्यान अच्छा नहीं लगा, क्योकि उसमे विषयो की विविधता होने के कारण सगति नही थी। इसके बाद सायकाल को 'ब्रह्म समाज' मे गए। वहाँ भी वही रबाबी गा रहे थे। वहाँ विश्वनाथ शास्त्री का 'भक्ति का महत्व' विषय पर व्याख्यान सुना। शास्त्री जी के भाषण से इतने प्रभावित हुए कि तत्सम्बन्धी पुस्तके लेकर पढ डालीं। ब्रह्म समाज के साहित्य मे जीवात्मा की उत्पत्ति साथ ही उसकी अनन्त उन्नति का सिद्धान्त मन में नही बैठा। अतः पुस्तक के लेखक काशीराम के पास जा पहुँचे और अपनी शकाएँ उनके सामने रखीं। उनके उत्तर से मुशीराम को सन्तोष तो होना दूर की बात थी। प्रत्युत पुनर्जन्म और कर्मफल सिद्धान्त पर निश्चय और भी दृढ हो गया। तब पादरी स्काट के साथ 'पुनर्जन्म' विषय पर बरेली मे हुये स्वामी दयानन्द के शास्त्रार्थ का स्मरण आया। मुशीराम सीधे बच्छोवाली आर्य समाज की ओर "सत्यार्थ प्रकाश" खरीदने चल दिये। बडी दौड–धूप के बाद सत्यार्थ–प्रकाश मिला। इसको पढकर पुनर्जन्म और कर्मफल के सन्देहो का निवारण हो गया। उनके हितैषी सुन्दर दास जी का प्रयास था कि ब्रह्म समाज की ओर झुका हुआ मुशीराम आर्य समाज मे प्रविष्ट हो जाए। 'सत्यार्थ प्रकाश' ने यह कार्य सरल कर दिया।

आर्य समाज एव ब्रह्म समाज दोनो के साप्ताहिक सत्सगो मे मुसलमान रबाबियो के भजन गाने की बात से हम एक निर्णय पर पहुँचते हैं कि सुधारवादी आन्दोलनो के आरम्भिक दिनो मे भक्ति के क्षेत्र मे वर्ण, जाति, सम्प्रदाय अथवा धर्म की सकुचित दीवार खडी नहीं हुई थी। उस युग मे सगीत कला का स्वागत खुले दिल से किया जाता था। लेकिन कला के प्रति यह उदारता शनै शनै लुप्त हो गई और सिद्धान्तवादी भजनो की टोली आर्य समाजो के मचो पर छा गई। इससे भक्ति का महत्व घटा।

मुशीराम के सदेह निवारण के पश्चात् अचानक उनके हितैषी सुन्दरदास जी आ गए। उन्होने पूछा – किस चिन्ता मे हैं, कहिए कुछ निश्चय हुआ। मुशीराम ने उत्तर दिया – "पुनर्जन्म के सिद्धान्त ने फैसला कर दिया, आज मैं सच्चे विश्वास से आर्यसमाज का सदस्य बन सकता हूँ[1]"। अब कोई रुकावट नहीं थी। सुन्दरदास के साथ रविवार को आर्य समाज मे चले गए। आर्य समाज के मन्त्री जवाहर सिह ने मुशीराम की आर्य समाज मे प्रविष्ट होने की घोषणा कर दी और उनको कुछ कहने के लिए आमन्त्रित किया। यह सब इतनी शीघ्रता से हुआ कि मुशीराम स्तब्ध रह गए और उन्हें सोचने का अवसर ही नहीं मिला। उस समय मुशीराम ने जो विचार प्रकट किए थे, उनका साराश यह था, "हम सब के कर्त्तव्य और मन्तव्य एक होने चाहिएँ और इसलिये जो वैदिक धर्म के एक–एक सिद्धान्त के अनुकूल अपना जीवन नहीं ढालता है उसे उपदेशक बनने का साहस नहीं करना चाहिए"। . भाडे के टट्टुओ से धर्म का प्रचार नही हो सकता। इस पवित्र कार्य के लिए स्वार्थ त्यागी पुरुषो की आवश्यकता है[2]।" मुशीराम के उपर्युक्त विचारो को सुनकर लाला साईंदास प्रधान आर्यसमाज लाहौर ने अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करते हुए कहा था – "आर्य समाज मे एक नई

स्पिरिट आई है। देखे आर्य समाज को तारती है या डुबो देती है[3]।" इस प्रकार पुराने आर्य नेताओ ने मुशीराम को भावी नेता के रूप मे देखने का प्रयास किया और अपने-अपने नेतृत्व के लिये एक शक्ति सम्पन्न और प्रतिभाशाली प्रतिद्वन्दी समझा। आगे आने वाली घटनाये हमारी मान्यता को सत्य सिद्ध करेगी।

जब जालन्धर मे यह समाचार पहुँचा कि मुशीराम ने आर्य समाज मे प्रवेश ले लिया है तो उनकी अनुपस्थिति मे ही उन्हे जालन्धर आर्य समाज का प्रधान बना दिया गया। आर्य समाज जालन्धर चाहे छोटा आर्य समाज था और तीन-चार टोटरु इसके सदस्य थे[4], परन्तु मुशीराम को इस समाज ने प्रधान बनाकर उनके नेतृत्व की पहली सीढी तैयार कर दी। इसके उपरान्त मुशीराम ने लाहौर आर्य समाज मे दिये गये वक्तव्य के अनुसार अपने जीवन को ढालना आरम्भ कर दिया। स्वामी दयानन्द कृत 'सत्यार्थ प्रकाश' का अध्ययन करते समय दसवे समुल्लास मे 'भक्ष्याभक्ष्य' को पढकर भोजन सम्बन्धी वर्जनाओ मे मास को भी पाया।

मांस का त्याग

पजाब मे मुसलमानो के प्रभाव से हिन्दुओ मे भी मांस भक्षण करना सामान्य बात थी। मुशीराम ने अपने परिवार मे बाल्यकाल से ही मास भक्षण को देखा था। वे मास त्याग के विषय मे अभी पूर्णतया सोच भी नहीं पाये थे कि अचानक आँखो के सामने गुजरने वाली घटना ने इस लत से भी छुट्टी दिला दी। होली के चार-पाँच दिन पहले जब वे प्रात कालीन भ्रमण करके लौट रहे थे तो अनारकली बाजार मे एक मनुष्य के सिर पर रखे माँस के टोकरे मे भेड-बकरियो की कटी हुई टाँगे बाहर लटकती हुई देखीं। इस वीभत्स दृश्य को देखकर उनके मन मे स्वत ही मास भक्षण के प्रति घृणा हो गई। रात्रि भोजन के समय साथियो के सामने मास का कटोरा फेक कर सभी को अचम्भे मे डाल दिया। मुशीराम का यह व्यवहार अत्यधिक घृणा का सूचक होते हुये भी उनकी अपनी दृष्टि मे कायरता थी, क्योकि बचपन मे पडे हुये अभ्यास और सस्कार की बेडियो को शान्ति से काटने की शक्ति अभी उनमें नहीं थी[5]।

व्रत एवं मूर्ति पूजा में अश्रद्धा

होली के दिनो मे जालन्धर आने पर आर्य समाज के प्रधान के रुप मे उनका पहला व्याख्यान हुआ। व्याख्यान का विषय था 'बाल विवाह के दोष और ब्रह्मचर्य का महत्व'। व्याख्यान की सफलता पर कुछ वकील साथी बधाई दे ही रहे थे कि एक साथी ने अट्टाहास करते हुए कहा कि बधाई हो राय शालिग्राम (मुशीराम के श्वसुर) अपने एक वर्ष के पोते की सगाई सवा वर्ष की लडकी से कर रहे हैं। यह लडका अन्य कोई न होकर जालन्धर आर्य समाज के मन्त्री और मुशीराम के साले देवराज का पुत्र था। इस समाचार को सुनकर मुशीराम रिवसिया गए। यहाँ पाठको को यह बताना आवश्यक है कि यह विवाह नहीं हो सका क्योकि देवराज ने अपने लडके की 25 वर्ष की आयु पूर्ण होने से पहिले विवाह के प्रस्ताव की स्वीकृति नहीं दी। पर लोगो को तो मजाक का विषय मिल ही गया।

मद्य-मास का सेवन सर्वथा छूट जाने से मुशीराम की बुद्धि और मन दोनो शान्त और निर्मल हो गए और वकालत की पढाई अधिक तत्परता से करने लगे। मिस्टर ई डब्ल्यू पारकर उन दिनो 'जुरिस्प्रडेस' का विषय पढाते थे। जुरिस्प्रडेस मे अन्य छात्रो की अपेक्षा मुशीराम को अधिक प्रतिभाशाली समझ कर उन्होने 'वाग्वर्धिनी सभा' खोल दी और प्रधान मुशीराम को बना दिया। मुशीराम ने जुरिस्प्रडेस के विषय मे भिन्न-भिन्न देशो की पुस्तके पढनी आरम्भ कर दी। इसका कारण यह था कि कि वे अपने मन मे एक ऊची आशा बना बैठे थे। वह आशा थी लाहौर 'चीफकोर्ट' की कुर्सी

की। लेकिन उन्हे चीफकोर्ट की कुर्सी तो नही मिली, हाँ, आर्य समाज के चीफ नेता की कुर्सी अवश्य मिल गई।

मुंशीराम के अब तक के जीवन में जितनी घटनाये हुई थीं, वे समाज के अन्य लोगो से टकराने के कारण हुई थीं। उन घटनाओ मे पारिवारिक हस्तक्षेप शून्य ही था। लेकिन आगे जो घटित हुआ वह तो मात्र पारिवारिक घटना ही थी। कानून की पढाई से कुछ फुर्सत निकाल कर मुशीराम अवकाश के दिनो में लाहौर से जालन्धर आये। यहाँ आकर दो–तीन व्याख्यान ही देने पाये थे कि पिता जी के रोगग्रस्त होने का समाचार मिला और पैर तलवन की ओर चल पडे। पिताजी की सेवा सुश्रूषा करने की अवधि मे ही ज्येष्ठ मास की निर्जला एकादशी का व्रत आ गया यह व्रत लाहौर मे आर्य समाज मे प्रविष्ट होते समय दिए गये वक्तव्य की अनुपालना की परीक्षा का अवसर लेकर था। क्योकि मुशीराम की ज्ञात वशावली मे दो–तीन पीढियो से प्रचलित था। व्रत की समाप्ति पर परिवार के सभी सदस्यो को सकल्प पढना अनिवार्य था। अब मुशीराम के सामने एक तरफ आर्य समाज था और दूसरी तरफ परिवार मे मनाये जाने वाले सस्कारो, त्याहौरो एव व्रतो को पाखण्ड कह कर दुत्कारना था। परिवार के सस्कारो की पक्की दीवार को सहसा तोडना कठिन था। अत पहले पुस्तक पढने का बहाना करके अपनी बैठक मे जा बैठे और सोचा शायद टकराव की घडी टल जावे। क्या कभी आँख बन्द करने से कबूतर का भय जाताहै ? पिता जी के बुलावे पर जाना ही पडा । पिता जी ने पुत्र को सकल्प पढने को कहा। मुशीराम ने भयभीत होकर उत्तर मे इतना ही कहा – "सकल्प तो दिल से सम्बन्ध रखता है, जब आपने सकल्प किया है, तो आपका दान है, जिसे चाहे दे। इसलिये मैंने आना आवश्यक नहीं समझा"।

मुशीराम के पिता जी को यह सुनकर झटका लगा और बोल उठे – "क्या तुम एकादशी और ब्राह्मण पूजा पर विश्वास नही रखते।" मुशीराम ने अन्य कोई उपाय न देखकर स्पष्ट ही तो कह दिया कि ब्राह्मणत्व पर तो उन्हे विश्वास है, किन्तु जिसको दान देना चाहते हैं, वह उनकी दृष्टि मे ब्राह्मण नहीं है और एकादशी के दिन मे भी कोई भी विशेषता नहीं है'। दो–एक दिन के लिए पिता पुत्र तनाव मे रहे। इसके बाद पिता के व्यवहार मे सहजता देखकर निर्जला एकादशी की घटना का बोझ मन से उतर गया। सारी छुटिटयाँ पिता जी की सेवा और स्वामी दयानन्द कृत पुस्तके के पढने में बीती। हाँ, आर्यसमाज मे प्रवेश करते समय शतरंज खेलने की जो आदत छूट गई थी, वह जाग गई और उससे समय कटने लगा। सितार का पुराना शौक भी जागा। इस प्रकार सब कुछ मिलाकर जो कुछ हुआ अच्छा ही रहा।

छुटि्टयाँ समाप्त होने पर लाहौर के लिए तैयारी कर ली। चलने से पूर्व पिता जी के चरणो मे नतमस्तक हुए। एक कदम भी नहीं बढाया था कि पिता जी का सकेत पाकर रुकना पडा। इतने मे भीमा सेवक ने एक थाली मे मिठाई और उसके ऊपर एक अठन्नी रखकर मुशीराम की ओर बढा दी। पिता जी का आदेश हुआ – "ठाकुर जी की पूजा करके विदा होवो"। मुंशीराम इतना सुनते ही सकते मे आ गए। काटो तो खून नहीं। उत्तर भी कुछ नहीं सूझ रहा था। इस स्थिति को देखकर पिता जी ने यह समझ कर शायद मुशीराम 'ठाकुर जी' की भेट मे अठन्नी को कम समझता है, थाली मे रुपया रखवा दिया। फिर भी मुशीराम उसी स्थिति मे खडे रहे। अन्त मे उन्हे मुँह खोलना ही पडा – "मैं अपने सिद्धान्तो के विरुद्ध कोई कार्य कैसे कर सकता हूँ। हाँ सासारिक व्यवहार मे जो आप आज्ञा दे, उसके पालन के लिये हाजिर हूँ"।" पिता गुर्राये और कहने लगे कि तुम्हारी दृष्टि में हमारे ठाकुर जी धातु–पत्थर के हो गए। बात कुछ आगे बढी। मुशीराम ने विनम्रता से कहा कि बात ऐसी नहीं है, वस्तुत. ये मूर्तियाँ भगवान नहीं है, इनके आगे भेट रखना मक्कारी होगी। इस उत्तर से सर्वथा निराश होकर मुशीराम के पिता के मुख से निकल पडा – "मुझे विश्वास नहीं कि

मरने के बाद मुझे कोई पानी देने वाला भी मिलेगा।" रुढिगत पारिवारिक सस्कारो से टकराने की यह दूसरी घटना थी। प्रथम टकराव की अपेक्षा इस टकराव के समय मुशीराम ने कोई बहाना नहीं बनाया अपितु पिता को अपने व्यवहार से स्पष्ट बता दिया कि उन्हे परिवार की अवैज्ञानिक परम्पराओ की तुलना में आर्य समाज के सिद्धान्त अधिक प्यारे हैं।

लाहौर के लिए चलते समय पिता जी ने पचास रुपये थमा दिए। रुपये तो मुशीराम ने ले लिये, लेकिन दूसरे किसी व्यक्ति के हाथ लौटा दिये। लौटाने का कारण यह था कि जब वे पिता के मन्तव्य के विपरीत विचार रखते है, तो उनको कोई अधिकार नही कि उनसे कुछ ग्रहण करे। पिता जी ने उल्टे पाँव रुपयो सहित आदमी भेजा और प्रतिज्ञा स्मरण करा कर रुपये रखने को कहा।

गुरुदत्त से परिचय

मुशीराम सितम्बर, 1885 ई की समाप्ति पर लाहौर पहुँच गए और वकालत की परीक्षा की तैयारी मे लग गए। दिसम्बर मे परीक्षा होनी थी। सितम्बर और दिसम्बर के मध्य मुशीराम ज्वर के कारण अस्वस्थ रहे। इसी अस्वस्थता की अवधि मे नवम्बर, 1885 ई के लाहौर आर्य समाज के उत्सव मे सम्मिलित होना अपना कर्त्तव्य समझा। इसी उत्सव पर उनका परिचय गुरुदत्त से हुआ। इस परिचय को उन्होने अपनी ही तूलिका से इस प्रकार प्रकट किया है – "यह पहला ही अवसर था कि पण्डित गुरुदत्त को मैंने दयानन्द कॉलेज के लिए लाहौर आर्य समाज की वेदी पर से अपील करते हुए सुना। उसी व्याख्यान से मेरा चित्त पण्डित गुरुदत्त की ओर आकर्षित हो गया और अधिक मिलने से मैंने शनै शनै अनुभव किया कि यही एक आत्मा है, जिसके साथ मेरे आत्मिक भाव ऐक्य को प्राप्त हो सकते हैं। जब मै दूसरे दिन विशेष प्रकार से पण्डित गुरुदत्त से मिलने गया, तो उन्होने भी अपने भावो से यही प्रकट किया कि हम दोनो एक–दूसरे को समझते हैं[9]।" वकालत के प्रथम वर्ष की परीक्षा का समय निकट आया, परिणाम भी निकला। मुशीराम लिखित परीक्षा मे उत्तीर्ण थे, परन्तु फौजदारी कानून की मौखिक परीक्षा मे दो अक से अनुत्तीर्ण रहे। मुशीराम ने तो परीक्षाओ में प्रथम बार असफल होने की परम्परा डाल रखी थी, फिर वह इसे कैसे तोडते ? अब लाहौर में ठहरने का कोई प्रयोजन नहीं था, अत मुशीराम जालन्धर आ कर मुखतारी के काम मे लग गए।

पिता के विचारों मे परिवर्तन

जब सुयोग होता है तो सब ठीक होता चला जाता है। मुशीराम के पिता जी के विचारो मे भी उदारता ने प्रवेश किया। वे शनै शनै अपने पुत्र के विचारो के समर्थक बनते गए। स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि जब एक बार आर्य समाज जालन्धर के सत्सग के अन्तिम कार्यक्रम को छोडकर मुशीराम अपने पिता जी से मिलने आये तो पिता जी ने कहा – "सारा कार्यक्रम समाप्त करके आना चाहिए था"। बदलाव की प्रक्रिया मे पास के मास्टर पण्डित काशीराम ने भी सहायता की और वे मुशीराम के पिताजी को 'सत्यार्थ प्रकाश' का पहला समुल्लास सुनाकर परिवर्तित करने मे लगे रहे। इस का अन्तिम परिणाम क्या रहा ? इस विषय मे मुशी राम ने लिखा है कि पिता ने कहा – "पण्डित जी ! हम तो अविद्या मे ही पडे रहे, हमारा मोक्ष कैसे होगा ? हमने तो निरर्थक क्रियाएँ ही कीं, अब से वैदिक सन्ध्या करेगे। बस फिर क्या था, पिता जी ने वेदमन्त्र तथा उनके अर्थकण्ठस्थ करना आरम्भ कर दिया। अब वैदिक सन्ध्या और पचायतन अर्थात् पाँच देव–मूर्तियो की पूजा साथ ही साथ होने लगी[10]।" परिवार मे एक से डेढ आर्य समाजी बने। पिता के व्यवहार ने पुत्र को आनन्दित किया।

फरवरी, 1886 ई मे मुशीराम के पिता जी को अर्धांग रोग हो गया। अत वे जालन्धर से प्राय प्रत्येक रविवार तलवन पहुँच कर पिता जी की सेवा–सुश्रूषा मे तल्लीन रहते। एक दिन

मुशीराम के पिता जी ने वह वसीयतनामा जो उन्होने लिखा था, मुशीराम को सौंप दिया। उसके अनुसार मुशीराम को अन्य दोनो भाईयो की तुलना मे अधिक धन–सम्पत्ति दी गई थी। यदि अन्य कोई सामान्य व्यक्ति होता तो, इसे स्वीकार करके नितान्त प्रसन्न होता, लेकिन मुशीराम वसीयतनामे को पढकर उदासीन हो गए और पिता से बोले – कि उन्हे उनके अधिकार से बढकर कुछ नहीं चाहिए। यदि वसीयत कर दोगे तो वे अपना भाग लेने से भी इन्कार कर देगे। यदि आप इस वसीयत नामे को फाड देते हैं, तो वे निश्चित रुप मे उन धार्मिक कार्यों को अवश्य सम्पन्न करेगे जो आप कहते हैं[11]। पिता का उत्तर भी बडा सन्तुलित था – "यह वसीयतनामा तुम्हारा माल है, जैसा बर्ताव चाहो करो।" पिता जी के सकेत को अपने अनुकूल जानकर मुशीराम ने वसीयतनामा फाड दिया। पिता–पुत्र सात्विक भावो मे शरदकालीन निरभ्र चन्द्र ज्योत्सना के समान दिखाई पडे। मुशीराम की पैतृक सम्पत्ति मे से, अधिकार से अधिक न लेने की त्याग भावना स्वार्जित सम्पत्ति के सम्पूर्ण त्याग की भावी घटना की साकेतिक सूचना देने वाली थी।

प्रथम शास्त्रार्थ

एक बार जब मुशीराम अपने पिता जी की सेवा से निवृत्त होकर जालन्धर पहुँचे, तो उन्हे सूचित किया गया कि श्यामदास नामक सनातनी पण्डित आर्य समाज को शास्त्रार्थ के लिए ललकार रहा है। मुशीराम ने उसकी चुनौती स्वीकार कर ली। शास्त्रार्थ का विषय 'मूर्ति पूजा तथा अवतारवाद मण्डन' निश्चित हो गया। जालन्धर आर्य समाज के पास अपना कोई सस्कृतज्ञ पण्डित नहीं था। अत· लाहौर आर्य समाज से प्रार्थना की गई। उस समय आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब की स्थापना नहीं हुई थी और सिवाय लाहौर आर्य समाज के किसी अन्य आर्य समाज को यह अधिकार नही था कि वे शास्त्रार्थ के लिए अपने अधिकार का प्रयोग कर सके। लाहौर से कोरा उत्तर मिला। ऐसी स्थिति मे अमृतसर से लाजपत नामक पडित को तैयार किया गया। शास्त्रार्थ की एक शर्त यह थी कि वह सस्कृत भाषा में ही होगा। शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। आर्य समाज की तरफ से प्रस्तुत पण्डित लाजपत सस्कृत मे बोलते रहे। सनातनी पण्डित श्यामदास ने उपस्थित जनता पर प्रभाव डालने के लिए हिन्दी भाषा मे बोलना आरम्भ कर दिया। प्रतिज्ञा भग का लाभ उठाकर मुशीराम बीच मे कूद पड़े और हिन्दी भाषा मे सनातनी पण्डित के प्रश्नो का उत्तर देना आरम्भ कर दिया। मुशीराम के तर्कपूर्ण एव सटीक उत्तरो एव प्रश्नो से सनातनी पण्डित दाये–बाये देखने लगा और जैसे–तैसे पीछा छुडाया। इस शास्त्रार्थ ने आर्य समाज के शास्त्रार्थ मे नया युग ला दिया। इस शास्त्रार्थ से पूर्व आर्य समाज और सनातन धर्म के जितने भी शास्त्रार्थ पजाब मे होते थे, वे सस्कृत भाषा में ही होते थे और दोनो ओर के प्रवक्ता भी ब्राह्मण ही होते थे। इसके बाद शास्त्रार्थ के क्षेत्र मे सस्कृत की अनिवार्यता समाप्त हुई और साथ मे ही धार्मिक ग्रन्थो की व्याख्याओ के विषय मे ब्राह्मणो का एकाधिकार ढीला हुआ और गैर ब्राह्मणो को भी यह अधिकार प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त इस शास्त्रार्थ से आर्य समाज जालन्धर, आर्य समाज लाहौर के समानान्तर शास्त्रार्थ के क्षेत्र मे द्वितीय शक्ति के रूप मे उभर कर आया।

जाति बहिष्कार की धमकी

शास्त्रार्थ मे चारो खाने चित्त होने पर जालन्धरी सनातनी लोगो ने आर्य समाज मे प्रविष्ट हुए व्यक्तियो को जाति–बहिष्कृत करने की दुर्भावना से एक पचायत बुलाने की घोषणा की। इस घोषणा से आर्य समाजी बने विभिन्न जातियो के सदस्यो मे हडकम्प मच गया। परन्तु लाला देवराज और मुशीराम की बुद्धिमता ने पचायत मे जाति बहिष्कार की व्यवस्था देने वाले पडितो के जारी–जुआरी आदि दोषों को उजागर करके उन्हे जाति–बहिष्कृत करने की धमकी देकर पचायत से दूर ही रहने दिया। इसका परिणाम यह निकला कि पचायत टॉय–टॉय फिस हो गई।

फिर कुछ दिनो के उपरान्त सनातनी जालन्धरी उसी पुराने पडित श्यामदास को ले आए। उसने आते ही आर्य समाज के विरुद्ध बोलना आरम्भ कर दिया। तलवन से आकर मुशीराम सीधे उस पडित की सभा मे पहुँचे। उस समय वह 'सत्यार्थ प्रकाश' के एक अश को उसके सन्दर्भो से काटकर लोगो को आर्य समाज के विपरीत भडका रहा था। मुशीराम ने श्रोताओं के मध्य से जोर से बोलकर कहा – जरा पूरे सन्दर्भ को पढ कर सुनाइये। पडित जी ने जब इस बात को अनसुना कर दिया तो मुशीराम अपने को रोक नहीं सके और सीधे मच पर पहुँच गए और बडी शालीनता से हाथ से पुस्तक लेकर सारे सन्दर्भ को पढ गए। उन्होने वहीं घोषणा कर दी कि वे अगले दिन भाषण देगे। यदि उत्साह है तो आइए। अगले दिन पडित जी अपने साथियो के साथ मुशीराम की सभा मे गये, परन्तु मध्य मे 'जय राधाकृष्ण' की करके उठ गए।

पिता की मृत्यु

मुशीराम के पिता जी की बीमारी कम होने की अपेक्षा बढती ही गई। अपने जीवन मे उन्हे सुरा–सुन्दरी की कभी चाह नहीं रही, हाँ वे मांस भक्षण के आदि अवश्य थे। इस आदत को भी उन्होने मृत्यु से पूर्व ही छोड दिया था। इसके छोडने मे मुशीराम कारण थे अथवा नहीं यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। मास त्याग की मन स्थिति यहाँ तक पहुँच चुकी थी कि मुशीराम के बडे भाई गिलास में कुछ पीने की वस्तु लिये खडे थे। उन्होने (पिता ने कहा – "यदि मुशीराम कह दे कि इसमे मास नहीं है तो मै पी लूगा, मेरे भले के लिए भी झूठ नहीं बोलेगा[12]। मुशीराम के कहने पर उन्होने दवाई पी ली। मुशीराम का मन पिता जी के इस विश्वास के कारण विनीत से विनीत होता गया और श्रद्धा के कारण आँखे तरल हो गई।

26 जून, 1886 ई का दिन ग्रीष्म काल का प्रचण्ड सूर्य अपराह्न बेला के अन्तिम छोर की ओर शनै शनै बढ रहा था। मुशीराम के पिता नानक चन्द जी भी शनैः शनैः अपने जीवन के अन्तिम श्वासो को गिन रहे थे। इस स्थिति मे भी वह मुशीराम को यह प्रदर्शित करना नहीं भूले कि उन्हे – उसके धार्मिक सिद्धान्तो में विश्वास होता जा रहा है। पिता ने पुत्र से कहा – "वैदिक हवन कराओ[13]"। रात्रि के प्रथम पहर के आठ बजे थे। मुशीराम के हाथ में नाडी थी और वे वेद मन्त्रो का पाठ कर रहे थे। वैदिक हवन मे आहुति डालने की चाह मन मे लेकर 9 बजे नानक चन्द इस ससार से विदा हो गये और जीवन की अन्तिम सन्ध्या मे "वैदिक हवन कराओ" कह कर पूर्ण आर्य समाजी बन कर शरीर त्याग गए। मरणोपरान्त सारा परिवार शोक में मलिन–मुख हो गया। अन्तिम सस्कार की क्रियाओ के सम्बन्ध मे भाईयो के धार्मिक विचारो मे अन्तर होने के कारण वैदिक रीति से सस्कार न होने का भय मुशीराम को आशकित कर रहा था। परन्तु भाई ने अर्थी उठने से पूर्व तक पारिवारिक रीति–रिवाजो को किया। घर से बाहर अर्थी जाने पर श्मशान भूमि मे दाह सस्कार मुशीराम की इच्छानुसार हुआ।

पिता की मृत्यु के उपरान्त सम्पत्ति के बँटवारे मे मुशीराम ने हद दर्जे की ईमानदारी का परिचय दिया। पिता जी की मृत्यु के उपरान्त बारहवे दिन भीमा ने मुशीराम के सामने चाबियाँ लाकर रख दी। मुशीराम ने भाईयो की इच्छानुसार सम्पत्ति का बँटवारा किया। तीनो भाईयों ने नगदी अधिक ली और निरन्तर खर्च मागने वाली वस्तुओ (घोडे, बग्घी) का पूरा मूल्य लगाकर मुशीराम को सौंप दीं। इसके पश्चात् एक महीना लगाकर खुर्जा, बरेली और बनारस की कोठियो में पिता जी द्वारा जमा किया रुपया प्राप्त करने मे बिताया। यह रुपया भी परस्पर बाँट दिया।

अब मुशीराम को अपने भविष्य के विषय में सोचने की कुछ फुर्सत मिली। पिता जी की बीमारी और देहान्त पर जालन्धर से वे लगातार लम्बी अवधि तक अनुपस्थित रहे। इस कारण मुखतारी का काम बन्द हो चुका था। दशहरे तक जालन्धर ही रहे और इसके बाद लाहौर चले गए तथा दूसरी

बार परीक्षा दी। परीक्षा से निवृत्त होकर जालन्धर आर्य समाज के प्रथम वार्षिकोत्सव की तैयारी मे लग गए। जालन्धर आर्य समाज के पश्चात् गुरुदत्त के सत्सग ने काया ही पलट दी। ऋषिकृत ग्रन्थो का स्वाध्याय बढ गया। गुरुदत्त के प्रभाव को स्वीकार करते हुए उन्होने लिखा कि "पडित गुरुदत्त की यह साक्षी मेरे लिए बहुत उत्तेजक हुई कि ऋषि दयानन्द के ग्रन्थो की प्रत्येक नयी आवृत्ति पर नये भाव विदित होते हैं[14]।" इसी अवधि मे 'आर्य प्रतिनिधि सभा', पजाब की स्थापना हो गई थी।

दिसम्बर, 1886 ई मे दी गई वकालत का परीक्षा परिणाम महीनो तक रुका रहा। इसका कारण था पजाब विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार मिस्टर लार्पेण्ट का दोनो हाथो से रिश्वत लेना। इस काम मे गण्डासिह उनका बिचौलिया था। मुखतारी के प्रार्थियो से एक हजार और वकालत पास करने के पन्द्रह सौ देना पडता था। परीक्षा मे उत्तीर्ण लोगो को भी यह राशि देने के लिए यह कह बाध्य किया जाता था कि प्रमाणपत्र नहीं मिलेगा। मुशीराम इस बार परीक्षा मे उत्तीर्ण थे। परन्तु लार्पेण्टशाही की शिकायत हिसार के प्रसिद्ध वकील लाला चूडामणि ने तत्कालीन वायस चासलर रैटिगन से कर दी। विश्वविद्यालय की सीनेट ने लाला चूडामणि को छोडकर सबको अनुत्तीर्ण कर दिया और बलवे की भीड मे निरपराध मुशीराम भी कुचला गया।

पं. दीनदयाल को चुनौती

परीक्षा मे अनुत्तीर्ण होने पर मुशीराम की रुचि धार्मिक कार्यों की ओर झुक गई। सन् 1887 ई. मे सनातन धर्म के प्रसिद्ध व्याख्याता रोहतक जिले के झज्जर नामक कस्बे के निवासी प दीनदयालु व्याख्यान वाचस्पति (प. मौलिचन्द्र के पिता) जालन्धर पधारे। उन्होने जालन्धर की सनातन धर्म सभा से आर्य समाज के मन्तव्यो का खण्डन आरम्भ किया। उन दिनो मुशीराम तलवन मे थे। उनके पास जालन्धर से एक आदमी पत्र लेकर गया, जिसमे लिखा था कि आर्य सभासदो को मुँह दिखाना कठिन हो रहा है। प दीनदयालु मे दूसरे पक्ष को उल्टा दिखाने और उपहास करने की शक्ति उस समय यौवन पर थी। मुशीराम ने पत्र पढते ही सर्वप्रथम प दीनदयालु को शास्त्रार्थ की चुनौती लिख कर भेज दी। इसके बाद जालन्धर आकर आर्यों के उत्साह वर्धन के लिए भाषण दिया। एक दिन पडित दीनदयालु के व्याख्यान मे सैकडो व्यक्तियो के साथ अचानक पहुँच गए। उस समय पण्डित जी ने एक पत्र की व्याख्या की, जो कि उनके हाथ मे था। वह पत्र किसी अन्य का न होकर मुशीराम का शास्त्रार्थ सम्बन्धी पत्र था। पण्डित जी ने पत्र की हसी उडाते हुए पत्र के कुछ भाग को छोडकर वह भाग पढा। जिससे लेख की श्रखला टूट कर पण्डित जी का स्वार्थसिद्ध होता था। भीड मे से ही मुशीराम ने कहा कि बीच मे और भी कुछ है, उसे भी पढिये। मुशीराम का इतना कहना था कि सनातन धर्म सभा के प्रधान ने पण्डित जी को बताया था कि यही तो मुशीराम है। पण्डित जी परिस्थिति को भाप गए और उन्होने शेष बचे अपने भाषण मे वैराग्य के अतिरिक्त अन्य किसी विषय पर कुछ बोला ही नहीं। पण्डित जी के भाषण की समाप्ति पर आर्य समाज के एक व्यक्ति ने घोषणा कर दी कि पण्डित जी के व्याख्यान का उत्तर आर्य समाज मन्दिर मे दिया जाएगा। सारे नगर मे ढोल पिट गया "आर्य बडे जबरदस्त हैं, दूसरे के घर पहुँच कर खबर ले डालते है[10]"।

दूसरे दिन मुशीराम ने आर्य समाज मे 'चाऊ चाऊ का मुरब्बा' नाम से पण्डित जी के व्याख्यान का उत्तर दिया। इस भाषण को लोगो ने बडे चाव से सुना। इस वक्तृता का प्रभाव यह पडा कि कि एक सरदार ने एक बडे मुकदमे मे मुशीराम को एक हजार पर नियत करके पाँच सौ रुपये तुरन्त दे दिए। इस अवधि मे मुशीराम ने अपने परिवार की ओर भी ध्यान देना आरम्भ कर दिया और अपनी पत्नी को पढाने तथा पर्दा आदि कुरीतियो के दोषो को समझाने मे भी समय देने लगे। मुशीराम की धर्मपत्नी ने शनैःशनै इतनी योग्यता प्राप्त कर ली कि वे स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थो का सुविधापूर्वक अध्ययन करने लगीं। मुशीराम के विचारो से प्रभावित

होकर वे बिना पर्दे के सामाजिक कार्यो मे आने –जाने लगीं। उस आदर्श नारी ने सदा पति के अनुकूल रह कर धार्मिक कार्यो मे पति को सदा स्वतन्त्र विचरने का अवसर प्रदान किया। इस समय मुशीराम की बडी लडकी वेद कुमारी सात वर्ष की और अमृत कला (पूर्व नाम हेमन्त कुमारी) अनुमान से चार वर्ष की हो चुकी थी।

अच्छे उपदेशकों का अभाव

इसी वर्ष (1887 ई.) मे मुशीराम अपने साले रायजादा भक्तराम को इग्लैण्ड के लिए छोडने बम्बई गए। बम्बई मे उन्होने प्रसिद्ध–प्रसिद्ध आर्य समाजियो से भेट की और एक व्याख्यान भी दिया और जालन्धर लौट आए और मुखतारी के काम के साथ साथ अपने मुख्य उद्देश्य वकालत पास करने की ओर भी ध्यान दिया । वकालत की परीक्षा दिसम्बर, 1887 मे होनी थी। नवम्बर 26 तथा 27 को आर्य समाज लाहौर के वार्षिकोत्सव की तिथियॉं निश्चित हो चुकी थीं। मुशीराम ने सोचा चलो, एक पन्थ दो काज, परीक्षा भी दे आएँगे और उत्सव भी देख लेगे और लाहौर के लिए चल दिए। 27 नवम्बर, रविवार के दिन प्रात 10 बजे जब ये लाहौर आर्य समाज के उत्सव पर गुरुदत्त का भाषण सुन रहे थे तो उन्हे बडे पुत्र हरिश्चन्द्र के जन्म की सूचना तार द्वारा मिली। आर्य निहाल सिह (आर्य समाज के दान मॉंगने वाले) ने झोली फैलाते हुए कहा – कुछ डालिए। मुशीराम ने बडी प्रसन्नता से सौ रुपये का नोट झोली मे डाल दिया। निहाल सिह ने दान सुनाते हुए एक चुटकला छोडा – "ईश्वर करे, हमारे प्रधानो के घर नित्य पुत्र उत्पन्न हो, जिससे नित्य दान मिले। वातावरण प्रसन्नता के अट्टाहास से गूज उठा।

वार्षिकोत्सव के पीछे अभी वे दो दिन ही ठहरने पाये थे कि सूचना मिली की परीक्षार्थियो के आग्रह पर परीक्षा दो मास आगे जा रही है, अब चौथी बार कैसे होगी, यही चिन्ता मुशीराम को सता रही थी । अब लाहौर रहने का कोई औचित्य नहीं रहा, अत वे दिसम्बर के आरम्भ में ही जालन्धर लौट आए। जालन्धर आकर आर्य समाज के द्वितीय वार्षिकोत्सव की तैयारी मे लग गए। अच्छे उपदेशक के लिए लाहौर आर्य समाज को लिखा। वहॉं से टका सा उत्तर मिला। मुशीराम ने अपने प्रयास से काली बाबू को आने के लिए मना लिया। अच्छे उपदेशक के अभाव मे काली बाबू, मुशीराम और देवराज ने उत्सव को यथाशक्ति सम्पन्न किया किन्तु मुशीराम काली बाबू के आर्य सिद्धान्तो की आधी–अधूरी जानकारी से दु खी हुए।

पजाब मे तत्कालीन आर्यसमाजियो की सदस्य सख्या तो अवश्य बढ रही थी, परन्तु आर्य सिद्धान्तो के अनुकूल आचरण का स्वभाव नही बन पाया था। इस बात की जानकारी हमे मुशीराम की लेखनी से मिलतीहै। जब वे 17 जनवरी, 1888 ई को चौथी बार वकालत की परीक्षा देने लाहौर गए तो मार्ग मे गुरदासपुर आर्य समाज के उत्सव के लिए ठहर गए। इस समाज के विषय मे अपनी सम्मति देते हुए उन्होने लिखा कि "इस समाज की दशा बडी शोचनीय है। सब अधिकारी है तो धनाढय, किन्तु सब शराबी, कबाबी और शिकारी हैं। इसलिए समाज की सेवा करने के स्थान मे वे उल्टे हानिकारक हो रहे है[16]"। इस हानि को पहुँचाने मे थोडा बहुत हाथ हमारे आर्यसमाजी नेताओ का भी था। जब फरवरी मे आरम्भ होने वाली परीक्षा देने के लिए लाहौर पहुॅंचे तो वहॉं लाला साईदास से मिले और उपदेशक काली बाबू की शिकायत करते हुए कहा कि उन्हे आर्य सिद्धान्तो की जानकारी के लिए सत्यार्थ प्रकाश पढने को कहा जाए। काली बाबू का उत्तर विचित्र होते हुए भी सत्यता से युक्त था। उन्होने कहा – "लाला जी मुझे कैसे कह सकते है ? इन्होने तो मुझे भाई तारु सिह और बाध सिह व धोल सिह की कहानियॉं सुनाकर आर्य समाजी बनाया था। तुम्हारी जो मर्जी आवे कहो[17]।"

चिरंजीव के वकील

इस बार की वकालत की परीक्षा मे उत्तर अच्छे लिखे थे और परिणाम भी अच्छा ही निकला। अब मुशीराम पूरे वकील थे। उन्होने जालन्धर मे वकीलो और अन्य अग्रेजी पढे–लिखो की एक डिबेटिंग सोसायटी (वाग्वर्धिनी सभा) खुलवायी, जिसका मन्त्री उन्हीं को चुना गया। यह सभा कुछ दिन चलकर समाप्त हो गई। आर्य समाज के सम्बन्ध मे सन् 1888 ई के मार्च के मास मे एक घटना ऐसी हुई जिसकी वकालत मुशीराम को करनी पडी। लुधियाने का चिरजीव नामक एक बाँका पहलवान था। वह आर्य समाजी होकर बैतुल बाजी (कवित्त) किया करता था। वह प्रचार मे राहु–केतु आदि की पूजा का खण्डन किया करता था। एक दिन किसी ब्राह्मण ने ग्रहो की शान्ति के लिए यजमान से प्राप्त दान को सामने किया और कहा – यदि हिम्मत है तो ले ले। चिरजीव ने अगोछे मे बधे चावल–नकदी सब ले लिये और चलता बना। ब्राह्मण हक्का–बक्का रह गया। ब्राह्मण ने लक्ष्मीनारायण के यहाँ दावा दायर कर दिया। वे ब्राह्मण थे। चिरजीव को कैद का दण्ड मिला। उसी समय एक आदमी मुशीराम के पास भेजा गया। उन दिनो लुधियाने की अपीले जालन्धर सेशन जज के यहाँ होती थीं। उन्होने अपील दायर की और चिरजीव बरी हो गया। चिरजीव अपनी बैतुल बाजी द्वारा समा बाँधकर लोगो की भीड लगा कर मुशीराम के भाषणो मे सहायता करने लगा।

राजनीति में प्रवेश :

सन् 1888 ई मे मुशीराम के जीवन मे एक परिवर्तन आया। अब तक का उनका जीवन आर्यसमाज के लिए समर्पित था। परन्तु उपर्युक्त वर्ष मे उनका सम्बन्ध काग्रेस पार्टी से आरम्भ हो गया और आगे चलकर एक ऐसा समय आया जबकि ये स्वामी श्रद्धानन्द के रूप मे इसमे आकण्ठ डूब गए। लाहौर के ट्रिब्यून के सहकारी सम्पादक काली बाबू आर्यसमाजी होने के साथ–साथ मुशीराम के मित्र भी थे, काली बाबू को जालन्धर नगर मे काग्रेस कमेटी की स्थापना का कार्य सौंपा गया। मुशीराम ने उनकी सहायता के लिए अपने रिश्तेदार बालक राम को बुलाया। वे नगरपालिका के सदस्य और आनरेरी मजिस्ट्रेट भी थे। उनके उद्योग से जालन्धर मे काग्रेस कमेटी की स्थापना हो गई और मुशीराम का उसका मन्त्री बना दिया गया। कार्यकारिणी की एक बैठक मे मुशीराम ने काग्रेस के प्रचार के लिए स्वयसेवको का आह्वान किया। इस प्रस्ताव पर उनके साथियो ने व्यगात्मक टिप्पणी करते हुए कहा – "महाशय जी, यह आर्य समाज नहीं है, जहाँ सदस्यो को केवल भावना के वशीभूत होकर अपने सासारिक हितो की बलि के लिए कहा जाता है। इस टिप्पणी से मुशीराम का मन खट्टा हो गया और उन्होने मन्त्री पद से त्याग–पत्र दे दिया[16]।

जालन्धर में अपनी कमाई से कोठी बनाना

अब मुशीराम पूर्ण रूप से अपने व्यवसाय और आर्य समाज के कार्यों मे व्यस्त हो गए। 3 जून, 1888 ई मे उन्होने अपनी विशाल कोठी की आधार शिला रखी, जिसको आगे चल कर सन् 1910 ई मे गुरुकुल के लिए दान मे दे दिया। इस कोठी के विषय मे विस्तृत विवरण देना अनिवार्य है, क्योकि महात्मा मुशीराम की आलोचना करने वाले व्यक्तियो ने उन पर आरोप लगाते हुए कहा था कि वकालत चलती नहीं थी, गुरुकुल में शाही ठाठ से रहते हैं। मुशी ने त्याग ही क्या किया है ? नीच प्रवृत्ति के लोग जीवन दान को त्याग नही मानते, उनके लिए भौतिक वस्तुओ का त्याग ही प्रदर्शन की वस्तु है। कोठी क्या थी ? एक सामन्त के निवास से होड लेने वाली थी। कोठी का नक्शा किले के ढग का बनाया गया था। सडक की ओर जो दीवार थी, उसके दोनो कोनो पर गोलाई लिए हुए बुर्ज थे। दीवार के मध्य मे बडा फाटक था। फाटक के अन्दर दाँई ओर अस्तबल था। अस्तबल मे दो गाडियाँ, एक गाडी घोडा और एक सवारी का घोडा और प्रायः दो गौएँ रहती

थी। एक बन्द गाडी थी, जो उस समय का फैशन था। .... फाटक के दूसरी ओर 'सद्धर्म प्रचारक' प्रेस और अखबार का कार्यालय था। . .. अस्तबल और प्रैस के बाद दूसरा बडा सर्वथा बन्द रहने वाला फाटक था, जिसमे एक खिडकी थी। ..... फाटक के अन्दर एक छोटी सी बाँकी–वाटिका थी। वाटिका मे एक कुऑ था। वाटिका में घास का मैदान, फलो के पेड और सब्जियो की क्यारियाँ थीं। घास के मैदान के चारो तरफ बहुत सुन्दर फुलवारी थी। फुलवारी से लगता हुआ एक लम्बा–चौडा पक्का चबूतरा था, जिसके पश्चात् तीन मुख्य कमरे थे, जिनमे एक बैठक, दूसरा दफ्तर और तीसरा शयनागार था। इन कमरो की सजावट बहुत बढिया थी। वाटिका से दूसरा रास्ता हवेली मे जाता था, जिसकी दो ड्योढिया थीं। अन्दर की ड्योढी दाएँ–बाएँ दो ओर खुलती थी, दाएँ ओर की ड्योढी रसोई घर मे और बाँई ओर की हवेली मे जाती थी। हवेली मे चौकोर आगन था, जिसके तीन ओर बडे–बडे कमरो की पक्तियाँ थी। प्रत्येक पक्ति मे पाँच–पाँच कमरे थे[19]।"

अछरुमल की धमकी

सन् 1888 ई को मुशीराम वैदिक धर्म के प्रचार के लिए कपूरथला जाते दिखाई पडते हैं। वहाँ उन्होने 'मूर्तिपूजा' विषय पर पोल्होमल से शास्त्रार्थ किया। कपूरथला मे वैदिक धर्म के प्रचार के भारी विरोधी अकाउन्टटैन्ट जनरल मिश्र अछरुमल थे। यदि उनके मकान की दीवार पर कोई आर्य समाज के अधिवेशन का विज्ञापन लगाने जाता, तो उसे वे मार कर भगा देते थे। यदि कोई ऑख बचा कर लगा भी जाता, तो उसे धुलवा डालते थे। मुशीराम से इनकी टकराहट का समय भी आया। मुशीराम 2 अगस्त को एक आर्य भाई की माता के देहान्त पर उसका अन्त्येष्टि सस्कार करवाने कपूरथला गए। अछरुमल ने बडा विरोध किया। इस सस्कार का बडा भारी प्रभाव पडा। इस बार दीवान अछरुमल ने कहला भेजा – अबके तो मौत के कारण छोड दिया, फिर आवेगे तो कैद करा दूँगा। इस चुनौती को सुनकर मुशीराम अनेक बार कपूरथला गए, किन्तु दीवान साहेब की धमकी कार्य रूप मे कभी परिणत नहीं होने पाई।

कन्या-पाठशाला खोलना

सितम्बर, 1889 मे ये तलवन मे कुछ अवधि के लिए चले गए। वहाँ उन्होंने एक कन्या पाठशाला खुलवाई, किन्तु अध्यापिका की अयोग्यता के कारण जालन्धर आते समय उसको बन्द करना पडा। तलवन की कन्या पाठशाला तो बन्द हो गई, लेकिन कन्याओ की पढाई का विचार मन को कुरेदता रहा। इस कुरेदना को लाडो माई की हरकत ने और भी गम्भीर बना डाला। उस समय जालन्धर मे एक पहाडी वृद्धा रहती थी जिसे सभी "लाडो माई" कहते थे। इसी ने जालन्धर शहर की हिन्दू महिलाओ को देवनागरी अक्षरो की टूटी–फूटी शिक्षा दी थी। मुशीराम की धर्मपत्नी तक ने इससे कुछ पढा था। 'लाडो माई' को विशेष प्रलोभन देकर ईसाइयो ने अपनी पुत्री पाठशाला मे रख लिया था। यह माई अपने सम्बन्धो के कारण हिन्दू लडकियो को शनै शनैः.ईसाई पाठशाला मे ले जाने लगी। मुशीराम की लडकी भी इसी पाठशाला मे पढने लगी। एक दिन कचहरी से लौटे पिता को लडकी ने पाठशाला मे गाया जाने वाला यह भजन सुनाया–

"इक बार ईसा-ईसा बोल, तेरा क्या लगेगा मोल।

ईसा तेरा राम रमैया, ईसा तेरा कृष्ण कन्हैया।।"

इस भजन को सुन कर मुशीराम सन्न रह गए। शनै.शनैः लडकी को कुरेदा तो पता चला कि वैदिक ग्रन्थो की निन्दा करनी भी सिखाई जाती है। ईसाइयो द्वारा अबोध बालिकाओ की 'मस्तिष्क धोवन' को देखकर आर्य समाज की पुत्री पाठशाला आरम्भ करने का विचार कौंधा। इस विचार को

हवा देने मे बख्शी सोहन लाल वकील भी पीछे नहीं रहे, क्योकि उनकी लडकी भी 'ईसा ईसा बोल' का भजन गाती थी और उसी स्कूल की छात्रा थी। फिर देरी किस बात की थी, रातो–रात बैठकर एक अपील लिखी और चन्दा लिखना आरम्भ कर दिया। इस अपील को लोगो तक पहुँचाने के लिए 3 नवम्बर, 1888 ई को अपनी कोठी पर स्वामी दयानन्द निर्वाण दिवस के दिन एक वृहद् यज्ञ करवाया और कन्या पाठशाला के लिए अपील की। कन्या पाठशाला का विचार लोकप्रिय होता गया और देवराज जी ने इसे सिरे चढाने का सकल्प ले लिया। मुशीराम को व्यस्त रहने का एक कार्य मिल गया। स्कूल का यही पौधा आगे चलकर 'कन्या महाविद्यालय' जालन्धर के नाम से उत्तर भारत मे लडकियो की शिक्षा का सिरमौर बन गया। ऋषि दयानन्द का 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' का सकल्प पूरा हुआ।

सन्यासियों के विषय में संशय की निवृत्ति

उन दिनो आर्य समाज लाहौर वैदिक धर्मियो के लिए तीर्थ स्थान के समान था। इस तीर्थ स्थान के धार्मिकोत्सवो पर जाना प्रत्येक आर्य समाजी अपना कर्त्तव्य समझता था। नवम्बर, 1888 ई मे हुए लाहौर आर्य समाज के उत्सव पर जालन्धरियो की टोली के साथ मुशीराम सम्मिलित हुए। इस उत्सव पर पण्डित गुरुदत्त के व्याख्यान ने इनको इतना प्रभावित किया कि हुक्का पीना छोड दिया। हुक्का छोडने से शरीर की सुस्ती जाती रही और भूख भी खुल कर लगने लगी।

इसके बाद दिसम्बर, 1888 ई. मे जालन्धर आर्य समाज का तीसरा वार्षिकोत्सव मनाया गया। इस वार्षिकोत्सव पर लाला साईदास, महात्मा हसराज और गुरुदत्त सहित लगभग 40 आर्यजन लाहौर से मण्डली बनाकर पधारे। लाहौर के शीर्षस्थ नेताओ के मण्डली सहित पधारने से यह स्पष्ट हो गया कि जालन्धर आर्य समाज भी लाहौर के समान शक्तिशाली समाज है। मुशीराम के मन मे अनेक महीनो से यह बात घूम रही थी कि क्या आर्यसमाजी सन्यासियो का सन्ध्या–अग्निहोत्र मे सम्मिलित होना उचित है। इस उत्सवपर उन्होने पण्डित गुरुदत्त के सम्मुख यह सशय उपस्थित किया। गुरुदत्त ने उत्तर मे कहा "जो सन्यासी महात्मा, योगी हैं और सासारिक वासनाओ से सर्वथा मुक्त हैं, अल्पाहारी तथा उच्चकोटि के साधन–सम्पन्न हैं, उनके लिए इन बन्धनो से सर्वथा मुक्ति का विधान है। किन्तु जो सन्यासी रात–दिन गृहस्थो की सेवा मे लगे हुए सब प्रकार के भोजन–छादन में फँसे हुए हैं, उन्हे दो काल सध्या तथा अग्निहोत्र करना ही उचित है[20]।" गुरुदत्त की यह व्याख्या कितनी सिद्धान्तानुकूल है और कितनी उनकी व्यावहारिक बुद्धि की उपज है, इस विषय में यह कहना उचित है कि इससे मुशीराम के सशय की निवृत्ति हो गई । इसी उत्सव पर अग्रेजी उपन्यास के पठन को सदा के लिए नमस्ते कर दी।

सद्धर्म प्रचारक पत्र का आरम्भ

मुशीराम मे कॉलेज जीवन से ही लिखने की प्रतिभा थी। लेकिन वकालत और आर्य समाज के प्रचार के कारण लेखनी की अपेक्षा वाणी की विदग्धता ही जोरदार हो गई थी। वाणी को भी स्थायित्व के लिए निज रूप की आवश्यकता होती है, यह सोचकर 'सद्धर्म प्रचारक' उर्दू साप्ताहिक पत्र निकालने की सोची। पच्चीस–पच्चीस रुपये के सोलह हिस्सेदार बना कर, एक वैशाख, 1947 को पहला अक निकाल दिया। अब मुशीराम के पास वाणी और लेखनी दोनो के साधन आर्य समाज के प्रचार के लिए उपलब्ध थे। इस प्रकार 1888–89 की अल्पावधि मे उपर्युक्त दोनों कार्य आरम्भ करके अपने कार्य क्षेत्र को विस्तृत कर लिया। 1886–87 की अवधि मे उपजी निराशा और खिन्नता को इन योजनाओं ने दूर कर दिया और उनके जीवन में नवीनता का उदय हुआ। नवीनता के लाने मे गुरुदत्त का हाथ भी कम नहीं था। एक दिन गुरुदत्त ने मुशीराम से पूछा – क्या वकालत करते

हुए मनुष्य ईमानदार रह सकता है ? मुशीराम का स्पष्ट उत्तर था – ऐसा होना सम्भव नही। इसी व्यवसाय के अपनाने के कारण एक बार गुरुदत्त ने लाला लाजपतराय का अवमूल्यन भी किया था। अतः वे अपने अनुयायी रामभजदत्त से कह उठे – वकील मत बनना। यह बात कही तो गई थी रामभजदत्त को, लेकिन वह मुशीराम को प्रभावित किए बिना नहीं रह सकी। इसके अतिरिक्त गुरुदत्त की सगति से पूर्व तक मुशीराम की दृष्टि मे मास भक्षण केवल व्यक्तिगत रुचि और आदत का ही एक अग था, परन्तु इस सगति के बाद उनके लिए यह आर्य समाज के मन्तव्यो का प्रश्न बन गया। मास भक्षण का विषय ही मुख्य रूप से आगे चलकर आर्यसमाज में दो दल बनाने का मूल कारण बना।

उपदेशक कक्षा खोलने का विवाद

मुशीराम अपनी लग्न और परिश्रम के कारण शीघ्र ही आर्यसमाज मे एक शक्ति के रूप मे उभर कर आए। उनके आर्यसमाज मे बढते हुए प्रभाव के समय मे ही पजाब आर्यसमाज मे विचार भिन्नता के कारण ऐसा वातावरण बना जो कि 1893 ई के आर्यसमाज विभाजन के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

विभाजन से बहुत पहिले जालन्धर मे 'द्वाबा उपदेशक मण्डली' खोलने का विचार पक्का हो चुका था। तभी जालन्धर मे साधु पूर्णानन्द नामक व्यक्ति आए। इस व्यक्ति को स्वामी रामानन्द ने आर्य समाज मे दीक्षित किया था। रामानन्द और पूर्णानन्द उपदेशक पाठशाला खोलना चाहते थे। इसके लिए मुशीराम से सहायता मॉगी। उन्होने सुझाव दिया कि उपदेशक पाठशाला के लिए काशी की अपेक्षा लाहौर अत्यधिक उपयोगी स्थान रहेगा, जहाँ दयानन्द कॉलेज से भी अच्छी सहायता मिल जाएगी। लाहौर जाकर इन दोनो साधुओ ने पण्डित गुरुदत्त तथा अन्य लोगो से परामर्श किया। गुरुदत्त को योजना पसन्द आई और धन की अपील पर हस्ताक्षर कर दिए। परन्तु जब उपदेशक–क्लास खोलने का आन्दोलन खडा हुआ, तो उस समय पूर्णानन्द स्वय पढने के लिए कपूरथला चले गए और सारा बखेडा मुशीराम के गले पड गया। उन दिनो पण्डित गुरुदत्त लाहौर की आर्य सामाजिक व्यवस्था से अप्रसन्न थे। अप्रसन्नता के दो कारण थे – एक दयानन्द कॉलेज छात्रावास मे मास का भोजनालय होना और दूसरा मास भक्षण के पक्षपाती राय मूलराज का आर्य समाज मे नेतृत्व होना। दयानन्द कॉलेज की प्रबन्ध समिति मे मूलराज की तूती बोलती थी। मुशीराम ने 'सद्धर्म प्रचारक' मे उस समय यह लिख दिया कि जब तक दयानन्द कॉलेज कमेटी उपदेशक कक्षा को अपने अधीन खोलना स्वीकार न करे तब तक इस कार्य के लिए धन पण्डित गुरुदत्त के नाम भेजा जाए। इस अपील से मूलराज के अनुयायी यह सोचने लगे कि डी ए वी कमेटी के समानान्तर गुरुदत्त को खडा किया जा रहा है। मुशीराम गुरुदत्त के पक्ष मे थे। अत उन्होने मूलराज के अनुयायियो के आक्षेपो का मुँहतोड उत्तर दिया। 'सद्धर्म प्रचारक' के प्रथम तीन वर्ष के अक इसकी गवाही देते हैं।

प्रियजनों की दुःखद मृत्यु

आगे आने वाले कुछ वर्ष मुशीराम के लिए कष्टदायक सिद्ध हुए। इन वर्षों मे भगवान ने उनके हाथों से उनके पथप्रदर्शको एव प्रियजनो को सदा के लिए छीन लिया। मृत्यु तो अवश्यम्भावी है, तथापि बडे से बडे विद्वान को भी प्रियजनो की मृत्यु पर शोक होता ही है। मुशीराम इसके अपवाद नहीं थे। गुरुदत्त को क्षय रोग ने आ घेरा। उनकी सेवा–शुश्रुषा मे सम्वत् 1946 बीत गया।

उपदेशक कक्षा के विवाद के समय में ही मुशीराम जी के साले बालक राम बीमार हो गए। इन्हीं के सहयोग से मुशीराम ने जालन्धर मे काग्रेस कमेटी की स्थापना करवाई थी। थोडे

दिन बीमार रह कर इनकी मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय उनके पिता घर पर नहीं थे और सबसे छोटे भाई पिताजी के साथ गए हुए थे। दूसरे भाई भक्तराम इग्लैण्ड मे बैरिस्टरी की तैयारी कर रहे थे। घर में केवल देवराज ही थे। इस परिस्थिति में मुशीराम को देवराज के पास रहना पडा। तीसरी रात को मुशीराम के पेट में असहय पीडा होने लगी। अनेक औषधियाँ देने पर भी जब दर्द दूर नहीं हुआ तब उपस्थित वैद्य ने चिलम में कुछ रख कर दम लगवाया, जिससे पीडा दूर हो गई। फिर दो वर्षों तक हुक्का पीते रहे। इसके बाद इस व्यवसन से सदा के लिए मुक्ति पाई।

हरिद्वार की यात्रा

बालक राम की मृत्यु ने मुशीराम की पत्नी को बहुत उदास कर दिया। पत्नी के उदास मन को प्रसन्न रखने की इच्छा से हरिद्वार की यात्रा का विचार बनाया। सितम्बर, 1889 ई मे मेह बरसते में हरिद्वार पहुँचे। वहाँ पण्डा जी ने उस स्थिति मे भी आ घेरा जबकि उसको स्पष्ट बता दिया था कि वे आर्य समाजी हैं। 'पण्डा पुराण' को समझ पाना प्रत्येक व्यक्ति के बस की बात नही। नित्य घर से बाँस का अचार और दही लाकर देने लगा। इससे उसने आत्मीयता स्थापित की। चलते समय मुशीराम ने पाँच का नोट थमा दिया। मुशीराम ने सोचा पाँच दिन की सेवा मे पॉच रुपये प्राप्त करके पण्डा टोटे मे रहा होगा। परन्तु पण्डा पजाबी वकील मुशी राम के भी कान कतर गया। उसने वकील के मुशी की तरह अपने दॉव–पेच से पाँच रुपये मुशीराम की धर्मपत्नी से प्राप्त कर लिए। जाते समय पण्डा ने आग्रह किया कि बही मे यहाँ के आगमन के विषय मे कुछ तो लिख दीजिए। मुशीराम ने व्यग्यात्मक मुस्कराहट चेहरे पर लाकर लिख दिया – "हरिद्वार मे सैर के लिये आया, यदि यहाँ पण्डे और बन्दर न हो, तो स्थान बडा रमणीक और निवास के योग्य है"[1]।

हरिद्वार से वापिसी पर मुशीराम मेरठ ठहरे और 8 सितम्बर को आर्य समाज मन्दिर मे 'अमर जीवन' पर उपदेश दिया। वहाँ से भाई से मिलने बहादुरगढ चले गए, जो कि थानेदार लगा हुआ था। इस प्रकार हरिद्वार की यात्रा सम्पन्न हुई।

मुंशीराम पर आक्रमण

उस समय पजाब का धार्मिक वातावरण गर्माया हुआ था। एक तरफ आर्य समाज का घरेलू विवाद आरम्भ हो चुका था, तो दूसरी तरफ सनातन धर्म के साथ धार्मिक प्रतियोगिता मे खण्डन–मण्डन का नाद गूँज रहा था। सनातन धर्म अपने सिद्धान्तो के अस्तित्व के लिए चिन्तित था, तो आर्य समाज अपनी सदस्य सख्या बढाने के लिए आतुर था। दोनो मे वागयुद्ध चल रहा था। धर्म प्रचार मे हिंसा का आश्रय लेकर भयभीत करना अभी आरम्भ नहीं हुआ था। सर्वप्रथम सनातनियो ने कपूरथला मे हिंसा द्वारा धर्म प्रचारको को भयभीत करने का प्रयास किया। हिंसा का यह प्रयोग सामान्य आर्यसमाजी प्रचारक पर न करके मुशीराम पर ही किया गया। 1,2,3 नवम्बर, 1889 मे कपूरथला मे स्वामी पूर्णानन्द ने पौराणिक मत के खण्डन में भाषण दिए और प्रचार के लिए मुशीराम को शीघ्र पहुँचने के लिए लिखा। मुशीराम 3 नवम्बर को कपूरथला पहुँच गए। कपूरथला जाने मे उनका विशेष उद्देश्य अछरुमल द्वारा दी गई वह चुनौती भी थी, जिसमे उन्होने भविष्य मे आने पर गिरफ्तार कराने की धमकी दी थी। मुशीराम के व्याख्यान के समय कुछ दगाई प्रकार के व्यक्ति व्याख्यान के समीप एक छत पर बैठ गए। उनमे से एक ने पक्की ईंट उनके सिर को निशाना बनाकर मारी (सौभाग्य से मुशीराम दूसरी ओर अचानक मुड करके बोलने लगे। निशाना चूक गया। मारने वाले से बचाने वाला प्रबल निकला। अछरुमल की धमकी तो धमकी ही रही।

स्वामी पूर्णानन्द जालन्धर आ गए और सस्कृत पढाना आरम्भ कर दिया। मुशीराम और देवराज आदि इनके शिष्य बने। पढने वालों में सुकेत के राजकुमार भी थे। मुंशीराम ने संस्कृत में काफी

योग्यता प्राप्त कर ली थी। एक भाषण मे जब मुंशीराम सस्कृत उद्धरणे को बहुतायत से कह रहे थे, तो लाला लाजपतराय ने आश्चर्य मे पडकर पूछा था कि इतनी सस्कृत कब सीख गए?

19 मार्च, 1890 ई को पण्डित गुरुदत्त का देहान्त हो गया। प गुरुदत्त मुशीराम के लिए एक प्रेरणा थे और उनके दिव्य आत्मिक ज्ञान के चक्षु थे। मुशीराम गुरुदत्त की मृत्यु के शोक से उभर भी नहीं पाए थे कि 13 जून, 1890 ई को पजाब आर्य समाज के देदीप्यमान नक्षत्र साईदास इस ससार से विदा हो गए। गुरुदत्त एव साईदास की मृत्यु से मुशीराम का लाहौर के साथ इतना लगाव नहीं रहा, जितना पूर्व मे था। गुरुदत्त की मृत्यु के उपरान्त मुशीराम के ही कन्धो पर गुरुदत्त के विचारो एव मन्तव्यो के प्रचार और प्रसार का दायित्व आ गया। अब मुशीराम गुरुदत्त धडे के अग्रणी व्यक्ति थे। मुशीराम के जीवन के अगले कार्यकलापो का वर्णन करने से पूर्व हम पजाब के आर्य समाज मे घरेलू विवाद के कारणो पर प्रकाश डालना उपर्युक्त समझते हैं, जिससे मुशीराम की भूमिका को स्पष्टतया समझा जा सके।

पंजाब आर्य समाज में घरेलु विवाद

ऋषि दयानन्द की मृत्यु के उपरान्त देश भर मे स्थान--स्थान पर शोक सभायें हुई। ऐसी ही एक शोक सभा लाहौर मे भी हुई, जिसमे ऋषि के आदर्शों के अनुकूल एक स्मारक बनाने का विचार उत्पन्न हुआ। 6 नवम्बर 1883 को लाहौर आर्य समाज ने अपनी अन्तरग सभा मे स्वामी दयानन्द की स्मृति मे डी ए वी स्कूल स्थापित करने का प्रस्ताव पारित कर दिया। इसके तुरन्त बाद ही 23 दिसम्बर, 1883 ई मे कॉलेज के लिए पहली अपील प्रसारित की गई। स्कूल ठीक प्रकार से चल निकला। 31 जनवरी, 1886 ई को आर्य समाज लाहौर के निमन्त्रण पर पजाब के प्रमुख आर्य समाजी एकत्रित हुए। सारी स्थिति पर विचार करने के बाद दयानन्द कॉलेज प्रबन्धक सभा तथा ट्रस्ट सोसायटी का औपचारिक रूप मे गठन कर लिया गया। इसके बाद 27 अगस्त, 1886 ई को दयानन्द एग्लो वैदिक कॉलेज सोसायटी की रजिस्ट्री करवा दी गई। रजिस्ट्री मे सोसायटी के उद्देश्यो मे लिखा गया था[22] कि –

1 (क) हिन्दी साहित्य के अध्ययन को प्रोत्साहित और प्रचलित करना। (ख) प्राचीन सस्कृत और वेद के अध्ययन को उत्साहित और प्रचलित करना। (ग) अग्रेजी साहित्य, सैद्धान्तिक तथा क्रियात्मक विज्ञान की शिक्षा उत्साहित और प्रचलित करना।

2. दयानन्द एग्लो वैदिक कॉलेज सस्था के साथ तकनीकी शिक्षा देने के साधनो को प्रदान करना जहाँ तक वे प्रथम उद्देश्य की पूर्ति मे बाधक न हो।

इस प्रकार यह सस्था पूर्व और पश्चिम के शैक्षिक क्षेत्र मे समन्वय को स्थापित करने के लिए सेतु के रूप मे आरम्भ हुई थी। इसमे कहीं पर भी आर्य समाज के लिए उपदेशक तैयार करने का सकल्प नहीं है। परन्तु इसमे कोई सन्देह नहीं कि धनोपार्जन के लिए अपील तो ऋषि दयानन्द, वेद, सस्कृत, ब्रह्मचर्य और आर्य समाज के प्रचार के नाम पर ही होती थी। लोग भी दान एग्लो की अपेक्षा वैदिक शब्द से आकृष्ट होकर ही देते थे। इसी वैदिक शब्द पर गुरुदत्त ने अपना जीवन समर्पित करने का विचार बनाया था। परन्तु इसे आर्य समाज का दुर्भाग्य ही कहिये कि 'वैदिक' को लेकर पजाब आर्य समाज में घरेलु युद्ध आरम्भ हो गया। इस घरेलु युद्ध के चार प्रमुख कारण कहे जा सकते हैं। प्रथम और आरम्भिक कारण 1889 ई. में नियमित रूप से आरम्भ होने वाले कॉलेज की नीतियों के विषय में था। गुरुदत्त के नेतृत्व में एक आवाज उठी कि कॉलेज ने स्वामी दयानन्द के सन्देश को भुलाना आरम्भ कर दिया है। आर्षपाठ विधि के स्थान पर सरकारी नौकरियों के लिए शिक्षा पर बल दिया जा रहा है। इस प्रकार यह विवाद

रजिस्ट्री मे लिखे प्रथम उद्देश्य की धारा (क) से सम्बन्ध रखता है। गुरुदत्त के नेतृत्व मे यह आवाज भी उठी कि कॉलेज का कार्य आर्य समाज के लिए धार्मिक क्षेत्र मे प्रचारक तैयार करना है। गुरुदत्त की इस माग का उद्देश्यो मे कहीं भी स्पष्ट उल्लेख नहीं है। इसके बाद 'मास भक्षण' का विषय घरेलु युद्ध का दूसरा महत्वपूर्ण कारण बना। यही कारण आगे चलकर दो फाड होने का प्रमुख कारण माना जाने लगा। 'मास भक्षण' के विषय मे तर्क भावनाओ के आगे झुकते दिखाई पडते है। और सिद्धान्तो की अपेक्षा व्यक्तियो को निशाना बनाना आरम्भ हो गया। लाला साईदास और महात्मा हसराज के विषय मे तरह–तरह की बाते कही जाने लगीं। हसराज के भाई मूलराज ने तो स्पष्ट रूप मे मचो से 'मास भक्षण' के पक्ष मे भाषण देने आरम्भ कर दिए। विवाद का तीसरा विषय 'नारी शिक्षा से सम्बन्ध रखता है। घरेलू विवाद में यह विषय बाद मे जुडा इसको इतना महत्वपूर्ण नहीं माना गया। चौथा विषय 'प्रचार' से सम्बन्धित था। धार्मिक वृत्ति से बँधे हुए कॉलेज–विरोधियो की यह माग थी कि धर्म प्रचारको के प्रशिक्षण के लिए आर्थिक सहायता दे।

उपर्युक्त मतभेदो के अतिरिक्त तीन बाते और भी थीं, जिनसे आर्य समाज के दो दलो में विभक्त होने मे मदद मिली। प्रथम बात यह थी कि डी.ए.वी प्रबन्ध समिति ने कॉलेज खोलकर लाला हसराज को उसका प्रिंसिपल लगा दिया, जबकि मुशीराम आदि इस पद के लिए गुरुदत्त को अधिक योग्य समझते थे। क्योकि गुरुदत्त की शैक्षिक योग्यता एव सस्कृत भाषा का ज्ञान हसराज से अधिक था। इसके अतिरिक्त गुरुदत्त ने सबसे अधिक बढकर डी.ए.वी कॉलेज के लिए चन्दा भी किया था। इससे गुरुदत्त के अनुयायी बडे निराश हुए। दूसरा आघात भी शीघ्र ही इन लोगो को सहना पडा। गुरुदत्त ने कॉलेज प्रबन्धक कमेटी मे 'सस्कृत पुस्तकालय' खोलने के लिए पाँच सौ रुपये के अनुदान की माँग का प्रस्ताव भेजा। इस प्रस्ताव को भी प्रबन्ध समिति ने अस्वीकार कर दिया। तीसरी बार उनको उस समय निराशा हुई जब कि गुरुदत्त का प्रस्ताव जिसमे स्कूल और कालेज मे 'अष्टाध्यायी' पढाने की माँग थी, अस्वीकार हो गया। सस्कृत पुस्तकालय और अष्टाध्यायी के प्रस्ताव का विरोध महात्मा हसराज ने ही किया था।

निराश होकर बैठ जाना मुशीराम ने कभी सीखा ही नहीं था। अत शीघ्र अपनी विचारधारा के लोगो को एकत्रित किया और डी.ए.वी कमेटी के प्रभाव से मुक्त स्वतन्त्र 'प्रचार मण्डल' स्थापित करने का प्रस्ताव रखा इस उद्देश्य के लिए एक समिति बनाई और इसका प्रधान मुशीराम को बनाया। पजाब के आर्य समाजी इस कार्य से चौंके। यह स्पष्टत डी.ए.वी. कॉलेज कमेटी को चुनौती थी।

परन्तु यह आर्य समाज का दुर्भाग्य था कि डी.ए.वी समिति को चुनौती देने वाले गुरुदत्त की 19 मार्च, 1890 को मृत्यु हो गई। आर्य समाज का एक देदीप्यमान नक्षत्र अस्त हो गया। मुशीराम का पथ प्रदर्शक चल बसा। पजाब ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत के आर्यसमाजी विद्वानो मे गुरुदत्त अकेला ही ऐसा लेखक था, जिसने अग्रेजी माध्यम से वैदिक सिद्धान्तो पर लिख कर विदेशी विद्वानों का ध्यान आर्य समाज की ओर खींचा था। इसके प्रमाण मे 'वैदिक मैग्जीन' नामक पत्रिका के वे तीन अक हैं, जिन्होने वैदिक विचारो की धूम विश्व मे मचा दी थी।

मुशीराम ने जहाँ गुरुदत्त को खो दिया वहाँ लेखराम के रुप मे अन्य साथी मिल गया। लेखराम के साथ मिलकर मुशीराम ने पजाब के क्षेत्र मे आर्य समाज की धूम मचा दी। सन् 1890 ई में जालन्धर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर द्वाबा गुरदासपुर उपप्रतिनिधि सभा के नियम स्वीकार किए गए। इस सभा का प्रधान मुशीराम को बनाया गया।

मियाँ शिव सिंह का मुकदमा और सुकेत यात्रा

सुकेत पजाब के पहाडो मे एक छोटी सी रियासत थी। उसके राजा दुष्ट निकन्दन सेन

ने अपने चाचा मियाँ शिवसिह के घर को लूट कर रियासत से निकाल दिया था। निष्कासन के बाद वे जालन्धर मे रह रहे थे। उन्होने राजा पर एक लाख का दावा किया हुआ था राजा साहेब ने वाद की समाप्ति के लिए कमिश्नर साहेब को निर्णायक मान लिया। इस सम्बन्ध मे जब मियाँ शिवसिह सुकेत गए तो उन्होने मुशीराम को अपनी ओर से वकील नियत करके तार द्वारा उन्हे सुकेत बुला लिया। मुशीराम ने इस वाद को निबटाने मे पूरी शक्ति लगा दी। और उन्हे सफलता भी मिली। सुकेत से आकर वैदिक धर्म के प्रचार के लिए हरिद्वार मे कुम्भ मेले के लिए चल पडे।

कुम्भ के अवसर पर वैदिक सन्यासी मण्डल

हरिद्वार मे आर्य सन्यासियो से 'वैदिक सन्यासी मण्डल' की स्थापना के सम्बन्ध मे चर्चा चली। निश्चय हुआ कि कुम्भ की समाप्ति पर सन्यासी मुशीराम के निवास (जालन्धर) पर एकत्र होकर इस योजना को सिरे चढाने का प्रयास करेगे। इस निर्णय के अनुसार कुम्भ की समाप्ति पर आर्य सन्यासी जालन्धर इकट्ठे हुए। सन्यासियो की 'अह अहमिका' के कारण वातावारण मे खटास हो गयी। इसी खटास को मुशीराम ने इस प्रकार वर्णित किया है – "कुम्भ की समाप्ति पर सब सन्यासी – महात्मा मेरे गृह पर जमा हुए। स्वामी आत्मानन्द, स्वामी विश्वेश्वरानन्द, स्वामी पूर्णानन्द, ब्रह्मचारी नित्यानन्द, ब्रह्मचारी ब्रह्मानन्द सभी महाशयो के व्याख्यान हुए। परन्तु जब एक म्यान मे दो तलवार का ठहरना कठिन है तो एक स्थान मे इतने वीतराग सन्यासियो का शान्ति से ठहराना कैसे सम्भव हो सकता था ? स्वामी पूर्णानन्द तो काशी पढने के लिए चले गए, स्वामी आत्मानन्द को अपने व्याख्यानो की प्रशसा की चिन्ता हुई। इस प्रकार यह मण्डल उस समय छिन्न–भिन्न हो गया[23]।"

आर्ष ग्रन्थो की पढ़ाई और डी.ए.वी. प्रबन्धक समिति का इन्कार

गुरुदत्त की मृत्यु के उपरान्त मुशीराम का यह प्रयत्न रहा कि आर्षग्रन्थो के पठन पाठन के लिए कुछ न कुछ प्रबन्ध होना चाहिए। सन् 1891 ई के मई मास मे डी.ए.वी का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन के विचारणीय विषयो मे से एक विषय 'आर्षग्रन्थो' की पढाई की व्यवस्था सम्बन्धी भी था। इस प्रस्ताव के पक्ष मे मुशीराम ने पूरा जोर लगाया। लेकिन अधिवेशन मे इस प्रस्ताव के विरुद्ध ऐतिहासिक निर्णय ले लिया और युक्ति मे कहा गया कि आर्षग्रन्थो की पृथक रूप मे पढाई कराने के लिए सोसायटी के उद्देश्य बदलने होगे और इसलिए उक्त सोसायटी की रजिस्ट्री नाजायज हो जाएगी[24]। डी.ए.वी. प्रबन्धक समिति के तत्कालीन पदाधिकारियो की लचर दलील को मान्यता मिल गई। इस प्रकार मुशीराम जैसे अनेक आर्यसमाजियो के मन मे यह धारणा बैठ गई कि कॉलेज प्रबन्ध समिति के धनार्जन तो 'वैदिक धर्म के सिद्धान्तो के ज्ञाता कॉलेज से निकलेगे' इसके नाम पर कर रही है और मॉग होने पर वैदिक ग्रन्थो के अध्ययन की सुविधा को बहाने बना कर टाल रही है।

पत्नी की मृत्यु

भारतीय वाड्.मय मे धर्मपत्नी सहधर्मिणी और अर्धांगिनी आदि शब्द एक ऐसे अटूट सम्बन्ध के परिचायक हैं, जिनके अर्थ इनके स्वरुप से ही प्रकट हो जाते हैं। इन शब्दो के लिए पृथक् व्याख्या की आवश्यकता नही होती। छोटी सी आयु की जिस अबोध बालिका का हाथ अग्नि को साक्षी करके मुशीराम ने पकडा था लगभग चालीस वर्षो की सगति ने उसे अटूट सम्बन्ध के रूप मे दृढ कर दिया था। शिवदेवी ने भी अपने व्यवहार से मुशीराम को मोहित कर लिया था। मुशीराम ने भी अपनी तरफ से उसके सुख–साधनो मे कोई कमी नही आने दी थी। लेकिन सयोग की सीमा को कोई नही टाल सकता। मुशीराम के शब्दो मे "सहधर्मिणी के साथ मेरा शनै शनै. अटूट सम्बन्ध हो चुका था। शिवदेवी जी

से कभी बिछुडने का ख्याल तक न आता था और उन्होंने 'वैदिक संस्कार विधि' का पाठ करके यह धारणा दृढ की थी कि पति से कभी वियोग न होना चाहिए[25]। यह तो मानव की अपनी सोच है। निरन्तर शक्ति का स्रोत बनी मुंशीराम की धर्मपत्नी पाँचवी सन्तान के जन्म के बाद अचानक साघातिक रोग से बीमार हो गई। लडकी का जन्म होते ही देहान्त हो गया। मुंशीराम की परिवार सहित धर्मशाला नामक स्थान पर जाने की भावी योजना समाप्त हो गई। पत्नी को स्वस्थ करने के लिए जो कुछ उपचार किया जा सकता था, किया। काल के आगे किसी का वश न चला। वह स्वयं समझ गई थी कि अब न बच सकेगी। पुत्री वेद कुमारी से अपना कलमदान मँगवाया। पर्चे पर कुछ लिखा और कलमदान के नीचे के खाने मे रख दिया। अन्तिम बार मुशीराम ने दवाई पिलाई, मानो ऐसा करके वे भूमण्डल से विदाई लेते अपने प्रियजन को गगा जल की घूट पिला रहे हो। शिवरानी ने धीमे स्वर से अपनी माँ को कहा – "मुझसे बडे अपराध हुए हैं जिनकी मुझे सेवा करनी थी, ये मेरी सेवा कर रहे है। पत्नी के भाई देवराज भी वहीं बैठे थे, बोल उठे – बीबी जी भजन सुनोगी। देवराज ने – 'प्रभु जी! भेट धरुँ क्या मै तेरे' पद गाया। होठ हिले पर सुन न सकी। माता ने पूछा –'बच्चे किसके सुपुर्द कर चली हो ? उत्तर मिला – 'आप ही पल जाएँगे[26]। हालत गम्भीर होती गई। मुशीराम ने नाडी हाथ मे ली। शिवदेवी ने 'ओ' का स्पष्ट उच्चारण करके माता जी की गोद मे प्राण त्याग दिए। जिस शान से पति द्वारा प्रथम पाणिग्रहण करने पर डोली मे बैठ कर पतिगृह आई थी, उसी शान से जीवन के अन्तिम क्षणो मे भी पति द्वारा नाडी पकडवाकर सकल ब्रह्माण्ड के पति परमेश्वर के पास चली गई। परन्तु दोनो स्थितियो मे एक महान् अन्तर था। एक मे डोली कहारो के कन्धे पर थी, परन्तु दूसरी मे अर्थी पति के कन्धे पर थी।

शिव देवी अपने पीछे वेद कुमारी 10 वर्ष, हेमन्त कुमारी 6 वर्ष, हरिश्चन्द्र 4 वर्ष और इन्द्र 2 वर्ष, नामक चार सन्ताने छोड गई थी। चार सन्तानो वाले चहकते घर मे भी मुशीराम को शून्य ही नजर आता था। इस शून्य को कागज के उस टुकडे ने भर दिया जो मृत्यु से पूर्व कलमदान मे रखा गया था। इस कागज के टुकडे पर लिखा था – "बाबू जी ! मै अब चली। मेरे अपराध क्षमा करना। आपको तो मुझ से अधिक रूपवती और बुद्धिमती सेविका मिल जाएगी, परन्तु इन बच्चो को कभी मत भूलना। मेरा अन्तिम प्रणाम स्वीकार करो[27]।" इसको पढकर शून्यता के स्थान पर स्नेह उमड पडा। रात को सब बच्चो को सुलाकर एक घन्टे तक परमात्मा से बल प्राप्ति के लिए प्रार्थना की और व्रत धारण किया कि बच्चो के लिए वे माता का स्थान भी पूरा करेगे। पत्नी के मृत्यु सस्कार से सबन्धित सभी क्रियाओ के समाप्त होने पर मुशीराम पुन सक्रिय हो गए। मुशीराम की सक्रियता के साथ–साथ सम्बन्धी और हितैषी भी दूसरे विवाह के प्रस्तावो को लेकर सक्रियता दिखाने लगे। दूसरे विवाह के लिए आयु से लेकर बच्चो के पालन–पोषण के तर्क उपस्थित किए जाने लगे। परन्तु मुंशीराम टस से मस नहीं हुए। मुशीराम के दृढ निश्चय का सबल स्वामी दयानन्द और शिवदेवी थे। इस सम्बन्ध मे मुशीराम ने लिखा है "इसमे सन्देह नहीं कि, ऋषि दयानन्द के उपदेशो और वैदिक धर्म के आदेशो ने सम्बन्धित, मित्रो और हितचिन्तको के सामने धरे प्रलोभनो से मुझे बचाया। परन्तु देवी के अन्तिम सन्देश ने मेरे अन्दर मातृभाव का सचार करके मुझे इस योग्य बना दिया था कि मैं गुरुकुल का आचार्य बन सकूँ। जहाँ वेदाज्ञा के अनुकूल आचार्य को माता और पिता दोनो का स्थान पूरा करना पडता है[28]।"

क्या मृत्यु के उपरान्त मुशीराम शिवदेवी को अपने हृदय से तुरन्त उतार सके ? नहीं, उन्होंने अपनी पत्नी की स्मृति को किसी न किसी रूप मे बहुत देर तक सुरक्षित रखा। इस सम्बन्ध मे इन्द्र का निम्न सस्करण उद्धरणीय है–

"एक सुन्दर सी सन्दूकची थी, जिसमें तरह-तरह के तेल और सुगन्धित पदार्थों की शीशियाँ रखी हुई थी। बहुत दिनो तक उस सन्दूकची को खोलने की हिम्मत नहीं हुई। हम चारों भाई बहनों में हरिश्चन्द्र ही साहसिक थे। हम लोगो का विचार था कि पिता के लाडले होने के कारण वे डरते भी नहीं थे। एक दिन बहुत सी मानसिक तैयारी के बाद हरिश्चन्द्र जी ने उस सन्दूकची को खोल ही डाला। हम लोग बडी उत्सुकता से देखने लगे कि अन्दर क्या है ? देखा कि उसमें भी छोटी-छोटी और सुन्दर रूपवाली रग-बिरगी शीशियाँ रखीं हुई हैं, जिन मे प्रत्येक में से जुदा-जुदा खुशबु आ रही है। इसी तरह की आकर्षक सामग्री से वह कमरा (मुशीराम का शयन कक्ष) सजा हुआ था। परन्तु जहाँ तक मुझे याद है, उन दिनो मे भी हम लोगो ने कभी भी पिता जी को सुगन्धित तेल लगाकर बाहर जाते नहीं देखा। मै समझता हूँ कि वह सब सामग्री पिता जी के पूर्व जीवन का अवशेष थी, जिसे उन्होने हमारी माता जी की स्मृति रुप मे ही सुरक्षित रख छोडा था[16]।"

स्मृति के सहारे कब तक व्यक्ति निष्क्रिय रह सकता है। स्मृति तो एक शक्ति है जो इति-कर्त्तव्यता की ओर प्रेरित करती है। स्मृति तो शनै शनै लुप्त होकर मन के किसी कोने में दुबक कर बैठ जाती है। स्मृति को पीछे धकेल कर मुशीराम ने पुन आर्य समाज और वकालत के काम को करना आरम्भ कर दिया। और वे अपने चार वर्षीय पुत्र हरिश्चन्द्र को साथ लेकर धर्मशाला के आर्यसमाज के उत्सव मे भाग लेने चले गए। वहाँ व्याख्यान देने के पश्चात् उन्होंने गोरखा पल्टन और पहाडो मे रहने वाली गद्दी जाति के लोगो मे धर्म प्रचार किया। वहाँ से लौटकर वकालत सम्भाली। घर-गृहस्थी की चिन्ता से मुशीराम को मुक्त करने के लिए नि सन्तान बडे भाई आत्माराम सपत्नीक जालन्धर की कोठी मे आकर बैठ गए। अब मुशीराम निश्चिन्त थे। ताऊ व ताई की स्नेहमयी छाया तले चारो बच्चे आनन्दपूर्वक रहने लगे। मुशीराम की घर मे उपस्थिति की सूचना तो 'खडाऊ' के शब्दों से ही होती थी। खडाऊ की आवाज से ही बच्चो को यह अनुभव होता था कि उनकी देखभाल करने वाला अन्य व्यक्ति भी घर मे विद्यमान है। इन्हीं खडाऊ ने गुरुकुलीय जीवन मे भी हरिश्चन्द्र और इन्द्र की सम्भाल रखी थी। खडाऊ की आवाज का अभिप्राय था, कोई प्रहरी है जो सबकी रक्षा का दायित्व लिए हुए है। अत निश्चिन्त होकर कर्त्तव्य पथ पर बढे चलो।

पत्नी वियोग का दु ख मुशीराम के स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डाल गया और वे 1982 ई. के प्रारम्भ मे एक विचित्र प्रकार के रोग से पीडित हो गए। डाक्टरी परीक्षण मे सब कुछ ठीक निकलता, परन्तु ज्यो-ज्यो सूर्य चढता जाता शरीर मे तीव्र जलन उत्पन्न होने लगती और सायकाल समाप्त हो जाती । डाक्टरों की सलाह पर चार मास के लिए धर्मशाला जाना पडा। वहाँ जाकर स्वास्थ्य मे यत्किचित सुधार हुआ। परन्तु आर्य समाज का प्रचार नहीं छूटा।

पंजाब आर्य समाज दो दल और आर्य प्रतिनिधि सभा का प्रधान बनना

मुशीराम जब पहाडो पर से अक्टूबर मास मे जालन्धर आए, तो उन्होंने देखा कि पजाब के आर्यसमाजी क्षेत्र मे मास भक्षण का विषय गर्मा रहा है। इस विषय पर स्पष्ट दो दल बन गए है। इस विषय को लेकर मासखोर और घासखोर, मास प्रचारक और महात्मा बुद्ध आदि विशेषण पक्ष और विपक्ष को मिलने आरम्भ हो गए थे। पंजाब आर्य समाज की तीनो प्रतिनिधि सस्थाओ पर कॉलेज पार्टी का ही प्रभुत्व था। महात्मा हसराज लाहौर आर्य समाज, डी ए वी कमेटी और आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब तीनो ही के प्रधान थे । ऐसी स्थिति मे मुशीराम मास विरोधी विचारधारा एव सस्कृत की शिक्षा के सम्बन्ध में किसी भी योजना को सार्थक बनाने मे असमर्थ थे। इन्ही दिनो अक्टूबर 1892 ई मे लेखराम जालन्धर आए। दोनों ने परस्पर परामर्श करके अक्टूबर मे ही होने वाले आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब के चुनाव में सक्रिय भाग लेकर मुशीराम को सभा का प्रधान बनाने का निश्चय किया। चुनाव

के समय दोनो ओर से प्रत्येक प्रकार के तर्कों, कुतर्कों द्वारा मतदाताओ को अपने पक्ष मे करने का प्रयास किया। अन्त मे आर्य प्रतिनिधि सभा, से सम्बन्धित आर्य समाजो, सन्यासियो और प्रचारको के कारण मुशीराम प्रधान चुने गए। कॉलेज पार्टी को एक धक्का लगा और मुशीराम की कीर्ति मे वृद्धि हुई। इसी प्रकार मन्त्री पद के लिए भी मुशीराम के दल के दुर्गा प्रसाद निर्वाचित हुए। प्रधान बन जाने पर मुशीराम के जीवन मे नया मोड आया। उन्होने स्पष्ट शब्दो मे लिखा "पजाब के समस्त आर्य समाजो की प्रतिनिधि सभा का वार्षिक चुनाव था, जिसमे मुझे उक्त सभा का प्रधान बनाया गया। उस समय से मेरा जीवन निजी नही रहा, सार्वजनिक हो गया। इसलिए अपनी जीवन यात्रा की दूसरी मजिल को मै यहाँ समाप्त करता हूँ[30]।" अब एक प्रकार से वे महात्मा थे।

सभा का प्रधान बनते ही उन्होने सभा के कार्यों मे जीवन्तता लाने का सकल्प किया। इस सकल्प के साथ प्रधान के नाते उनका सम्पूर्ण समय आर्य समाज की गतिविधियो के लिए समर्पित हो गया। इसी वर्ष लाहौर आर्य समाज के उत्सव पर लाला मूलराज (महात्मा हसराज के भाई) ने यह घोषणा करके कि 'मास भक्षण वेद सम्मत है, एक धमाका कर दिया। फिर क्या था आर्य समाज के क्षेत्र मे हगामा मच गया और लेखो तथ भाषणो द्वारा इसका खण्डन आरम्भ हो गया। आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब के प्रधान के नाते मुशीराम ने ही सर्वप्रथम सभा मे यह प्रस्ताव रखा कि मासाहारी व्यक्तियो को सभा का सदस्य नहीं बनाना चाहिए। लेकिन इस प्रस्ताव को पारित करवाने मे असफल रहे।

लाहौर मे मास भक्षण का प्रश्न बडा विवादास्पद बन गया। मास भक्षण के समर्थक लाहौरी नेताओ ने सन् 1893 ई मे साधु प्रकाशानन्द को अजमेर भेजा कि वह स्वामी दयानन्द के परमभक्त सर प्रतापसिह से मास भक्षण के पक्ष मे फतवा दिला कर कॉलेज दल को मजबूत करे। सर प्रतापसिह वैदिक धर्मानुयायी होते हुए भी क्षत्रिय राजपूतो को अपनी वीरता रखने के लिए मास भक्षण करना चाहिए, ऐसा मानते थे। साधु प्रकाशानन्द ने ऐसा जाल बिछाया कि अपने समर्थन मे मेरठ से प गगाप्रसाद और इलाहाबाद से प भीमसेन (स्वामी दयानन्द के शिष्य) को मेरठ बुलवा लिया। यह सूचना मिलते ही मुशीराम ने पण्डित लेखराम को भीमसेन को अपने पक्ष मे करने के लिए भेजा। प. लेखराम की प्रतिभा से प भीमसेन परिचित थे। अत. उन्होने लेखराम के द्वारा मासभक्षण के विरुद्ध दी गई युक्तियो को प्रमाणित मान कर मास भक्षण का स्पष्ट खण्डन कर दिया। इससे मुशीराम के दल के लोगों का उत्साह बढा।

अब उन्होने डी ए वी. कमेटी पर भी अपना अधिकार बनाने की सोची। 28 मई 1893 ई को कॉलेज कमेटी का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन से पूर्व कॉलेज दल वालो ने स्वच्छन्दता पूर्वक अनेक व्यक्तियो के नाम सदस्यता से काट दिए थे। अधिवेशन मे जिसको चाहा उसे जाने दिया। इस पर सिर फुटव्वल हो गई और दोनो और से थाने मे रिपोर्ट दर्ज कराई गई। मुशीराम को जब यह पता चला कि उनके आदमियो को अन्दर नहीं आने दिया जा रहा, तो वे अधिवेशन से यह कह कर उठ आए कि "तुम हमको इस शानदार मकान से निकाल सकते हो, पर वेद और धर्म हमारे हृदय से नहीं निकाल सकते[31]।" मुशीराम के अनुयायियो द्वारा बहिर्गमन करने से डी ए वी.कॉलेज कमेटी को इच्छानुरूप प्रस्ताव पारित करने मे कोई कठिनाई नहीं हुई। इससे एक बात स्पष्ट हो गई कि कॉलेज पर सदा के लिए मासाहारी विचार धारा के व्यक्तियो का आधिपत्य ही रहेगा।

अगस्त, 1893 ई मे लाहौर आर्य समाज की कार्यकारिणी मे एक प्रस्ताव इस आशय का आया कि लाला मूलराज को खुले रुप मे आर्य समाज लाहौर के मच से मास भक्षण के पक्ष मे प्रचार करने के कारण निष्कासित कर देना चाहिए। प्रस्ताव अवश्य गिर गया, लेकिन इससे यह स्पष्ट हो

गया कि आर्य समाज लाहौर की बागडोर शीघ्र ही कॉलेज दल से खिसकने वाली है। इसी वर्ष के सितम्बर मास में यह वास्तविकता बन गई। लाला लाजपतराय के मुकाबले मे दुर्गाप्रसाद लाहौर आर्य समाज के प्रधान चुने गए। वे इस हार को पचा नही सके और शीघ्र ही बच्छोवाली आर्य समाज के मुकाबले मे अनारकली मे नई आर्य समाज की स्थापना कर दी। । इस आर्यसमाज का लाला लाजपतराय को प्रधान बना कर अपनी झेप मिटाई। इस प्रकार आर्य समाज के विभाजन की एक लीक तैयार हुई और इसका बीज भी लाहौर मे ही पडा। इसमे मुशीराम का कोई हाथ नहीं था। मुशीराम ने तो विवाद को मिटाने के लिए प्रयास ही किया। उन्होने 'सद्धर्म प्रचारक' मे दुर्गाप्रसाद पार्टी और हसराज पार्टी के सामने समझौते की शर्तें भी दीं। परन्तु मुशीराम की समझौता योजना दो कारणो से सिरे नहीं चढ सकी। प्रथम मुशीराम की योजना उस समय आई जब दोनो दल प्रभुता की प्राप्ति के सघर्ष मे अन्तिम चरण मे जा चुके थे और दोनो के लिए लौटना सम्भव नहीं था। द्वितीय इस विवाद के वर्ष मे मुशीराम के क्रिया कलाप कॉलेज दल के विरोध मे थे, फिर वे मुशीराम की निष्पक्षता और ईमानदारी मे कैसे विश्वास कर सकते थे। वास्तव मे मुशीराम को कालेज दल वाले दुर्गा प्रसाद से अधिक अपना विरोधी मानते थे।

कांग्रेस अधिवेशन में मुंशीराम की भागीदारी

पजाब आर्य समाज के अन्तर्विरोधो के समय मे ही प्रथम बार पजाब की ओर से भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस का नौवाँ वार्षिक अधिवेशन 1893 ई के आरम्भ मे आमन्त्रित किया गया और बख्शी जैशीराम वकील को इसका कार्यवाहक मन्त्री बनाया गया। बख्शी जी मुशीराम के घनिष्ठ मित्रो मे से एक थे। उन्होनें आग्रह किया कि वे प्रचार कार्य मे उनकी सहायता करे। मुशीराम ने वचन दिया कि वे पजाब के विभिन्न स्थानो मे दस या बारह भाषण देगे। मुशीराम का प्रथम व्याख्यान अमृतसर मे होना निश्चित हुआ। व्याख्यान मे उपस्थित लोगो की सख्या सडसठ (67) से किसी भी रूप मे अधिक नही थी। मुशीराम भाषण देकर वापिस आ गए। परन्तु भाषण के तीन दिन बाद अग्रेजी समाचार पत्र 'ट्रिब्यून' मे यह पढा कि श्रोताओ की अपार उपस्थिति के कारण सारा हाल भर गया था और मुशीराम के भाषण को सुनकर श्रोताओ ने महान हर्षध्वनि की। वस्तुत यह समाचार सख्या की दृष्टि से अतिशयोक्ति पूर्ण था। मुशीराम ने अपने स्वभावानुसार इसका प्रत्याख्यान भेजा। परन्तु उनका बयान तो कभी छपा नही साथ काग्रेस की सभाओ मे बोलने से छुट्टी मिल गई। इसका यह अभिप्राय नही कि मुशीराम ने काग्रेस से पल्ला झाड लिया। वे काग्रेस अधिवेशन मे प्रतिनिधि के रूप मे उपस्थित हुए। काग्रेस के इस अधिवेशन मे यह देखकर उनको दुख हुआ कि किस प्रकार मुसलमान प्रतिनिधियो से प्रतिनिधि शुल्क और भोजन शुल्क न लेकर अधिवेशन मे प्रवेश दिया जा रहा है।

मुशीराम को इस अधिवेशन मे भाग लेने से अनेक लाभ हुए। गोखले और महादेव गोविन्द रानाडे से परिचय यहीं हुआ। उस समय की परिपाटी के अनुसार काग्रेस अधिवेशन पर 'सामाजिक सम्मेलन भी हुआ करता था। इस सम्मेलन मे प्रस्तुत किये जाने वाले प्रस्ताव को तैयार करवाने के लिए मुशीराम को रानाडे के पास भेजा गया। इस सम्मेलन मे अनेक प्रस्तावो के साथ एक प्रस्ताव पजाब मे चीफ कोर्ट के स्थान पर हाईकोर्ट की स्थापना का भी रखा गया था। इस प्रस्ताव का अनुमोदन करने का दायित्व मुशीराम पर डाला गया। मुशीराम ने प्रस्ताव की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए बताया कि उच्च न्यायालय बहुत कुछ स्वतन्त्र होते हैं, जबकि चीफ कोर्ट की नियुक्ति भारत के वायसराय द्वारा की जाती है, अत. वे पूर्ण स्वतन्त्र नहीं होते। मुशीराम के तर्कों को श्रोताओ ने बहुत

सराहा। इस प्रकार मुशीराम का अखिल भारतीय स्तर की राजनीति मे प्रवेश का पहला चरण उनको अन्य प्रान्तो से आए अपरिचित चेहरो से असामान्य रूप मे परिचित करा गया।

डी.ए.वी. पर अधिकार की इच्छा समाप्त

यह अधिवेशन तो सामयिक बात थी, इससे पजाब आर्यसमाज के चिन्तन मे कोई विशेष प्रभाव नहीं पडा, और विवाद गहराता ही गया। लाहौर में दो आर्यसमाजे बन चुकी थी। अब यह प्रश्न उठा कि इनमे से कौन सी आर्य समाज को डी ए वी प्रबन्धक कमेटी मे सदस्य भेजने का अधिकार होगा। इस विषय पर विचारार्थ डी ए वी प्रबन्धक समिति के सदस्यो की बैठक दिनाक 24 फरवरी, 1894 को बुलाई गई। इस बैठक मे मुशीराम का पहला प्रयास रहा कि यह विषय स्थगित कर दिया जाए। जब यह बात सिरे नहीं चढी तो उन्होने दूसरा सुझाव दिया कि इस विषय पर विचार करते समय लाहौर समाजो के सारे सदस्य उठ कर चले जाए, जिससे उत्तेजना रहित वातावरण मे कुछ निर्णय लिया जा सके। जब मुशीराम की दोनो बाते अमान्य कर दी गई, तो वे अपने अनुयायियो सहित बैठक से बाहर आ गए। इनके बाहर आते ही बैठक गणपूर्ति के अभाव मे कुछ घटो के लिए स्थगित कर दी गई। पुन बैठक होने पर यह निर्णय हो गया कि अनारकली समाज को ही प्रतिनिधि भेजने का एक मात्र अधिकार है।

इसके पश्चात् 24 मई को होने वाली डी ए वी समिति की बैठक मे मुशीराम ने कॉलेज पर अधिकार करने के विचार से भाग लेना चाहा, किन्तु उनके पहुँचने से पूर्व ही कॉलेज का मुख्य द्वार बन्द कर दिया गया। द्वार बन्द करने से वर्तमान सकट तो टल गया, किन्तु कब्जे के भय की तलवार ज्यो की त्यो लटकती रही, क्योकि डी ए वी कॉलेज कमेटी को लाहौर से बाहर के प्रतिनिधियो पर मुशीराम का प्रभाव अधिक था। भय की तलवार से सदा मुक्ति पाने के लिए कॉलेज दल ने स्वतन्त्र प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, पजाब का गठन कर लिया। इस प्रकार आर्यसमाज के क्षेत्र मे कॉलेज पार्टी (कल्चरल पार्टी) और महात्मा पार्टी (मुशीराम पार्टी) दो दल बन गए। इन्हीं दोनो को आर्यसमाज के इतिहास मे आगे चलकर कॉलेज पार्टी और गुरुकुल पार्टी का नाम मिला।

एकता का प्रयास

मुशीराम ने मई 1895 ई 0 मे पुन एकता का प्रयास किया और 'सद्धर्म प्रचारक' मे समझौते की छह शर्ते प्रकाशित की – इन शर्तो के अनुसार (1) मास भक्षण के पक्ष मे प्रचार को तुरन्त बन्द किया जाए। (2) डी ए वी कॉलेज मे सस्कृत शिक्षा को स्थान दिया जाए और ब्रह्मचर्याश्रम की उन्नति होनी चाहिए तथा कॉलेज प्रबन्धक समिति मे दोनो दलो का समान प्रतिनिधित्व होना चाहिए। (3) आर्य प्रतिनिधि सभा का रजिस्ट्रेशन होना चाहिए और प्रचार के लिए सब प्रकार के साधन जुटाने चाहिएँ। (4) अतीत के सभी विचारो को भुला कर प्रेम भाव प्रदर्शित करना चाहिए। (5) स्त्री शिक्षा के क्षेत्र मे दोनो समभागी बने। (6) शक्ति प्राप्ति की इच्छा का परित्याग करना चाहिए। परन्तु यह अन्तिम प्रयास भी जल के लेख के समान लहरो मे खो गया। अब मुशीराम का ध्यान अपनी सभा (आर्य प्रतिनिधि सभा) की ओर पूर्ण रूप से केन्द्रित हो गया और नियम उपनियम आदि बनाकर सभा को दिसम्बर, 1895 मे रजिस्टर्ड करवाया। और सभा मे 'वेद प्रचार निधि' की स्थापना की।

गुरुदत्त की मृत्यु के उपरान्त मुशीराम को लेखराम के रुप मे ऐसा अनथक साथी मिल गया था, जिसने आर्य समाज के लिए प्राणो का मोह छोडकर दिन–रात एक कर दिया था। 6 मार्च, 1897 ई. मे एक मुसलमान ने छुरा मार कर लाहौर मे उनकी हत्या कर दी। इस हत्या का लाहौर की हिन्दू जनता पर ऐसा प्रभाव हुआ कि परस्पर भेद–भाव को भुला कर उनकी अर्थी के साथ श्मशान भूमि तक गए। लेखराम के बलिदान से सभी आर्य समाजियो का हृदय सन्तप्त था। श्मशान

भूमि मे ही मुशीराम ने सभी आर्य समाजियों को पुन एक सूत्र मे बध जाने की मार्मिक अपील की। परिणामस्वरुप हत्या के अगले रविवार के दिन आर्य समाज बच्छोवाली मे महात्मा हसराज की अध्यक्षता मे एक सयुक्त अधिवेशन हुआ। लाला लाजपतराय के मकान पर समझौता वार्ता हुई। इस समझौते के अनुसार यह निश्चय हुआ कि मास भक्षण का प्रचार नहीं किया जाएगा। महात्मा हसराज जी पहले के समान बच्छोवाली आर्यसमाज के प्रधान होगे। दोनो पक्ष मिलकर लेखराम के हत्यारे का पता निकालेगे। एक पक्ष के आठ सदस्य जिस काम का लिखित विरोध करे और कॉलेज तथा प्रतिनिधि सभा के पाच सदस्य लिखित विरोध करे, उसको नहीं' किया जाएगा। वेद प्रचार निधि और कॉलेज फण्ड को बराबर का महत्व दिया जाए, दोनों के लिए अपीले एक साथ की जाया करे[32]।

श्मशान भूमि की अपील की एकता की प्रक्रिया हृदयो से नहीं, अपितु भावनाओ की भूमि पर रखी गई थी, अत इसकी चिरस्थापिता पर सन्देह था। बच्छोवाली आर्यसमाज का प्रधान पद प्राप्त करके भी कॉलेज वालो ने प्रादेशिक सभा को भंग नहीं किया। इसका स्पष्ट अर्थ था कि समझौता शून्य मे खो गया और विरोध की वाणी फिर फूट पडी। यह विरोध यहाँ तक बढ गया कि महात्मा दल द्वारा 'लेखराम शहीद फण्ड' के लिए चन्दा करने के कार्य में बाधाएँ उपस्थित की जाने लगीं। आर्य प्रतिनिधि सभा ने, परोपकारिणी से उर्दू मे सत्यार्थ प्रकाश प्रकाशित करवाने का एकाधिकार लिया था, उसे रद्द करवाया गया। मुशीराम के विरुद्ध आर्य गजट मे 'लेखराम शहीद फण्ड' के दुरुपयोग के लाछन भी लगाए गए।

आर्य समाज के दो दलीय विभाजन के सम्बन्ध मे मुशीराम का कितना हाथ था, इस मूल्याकन के अभाव मे यह सारा प्रकरण अधूरा ही समझा जाएगा। अत यहाँ सक्षेप मे इस पर विचार करना असगत न होगा। मुशीराम का आर्य समाज मे प्रवेश एक सिद्धान्तवादी व्यक्ति के रूप मे हुआ था। महर्षि के सिद्धान्तो मे मीन मेख निकालना इनकी तबियत के खिलाफ था। मास भक्षण का समर्थन उनके लिए अनार्यत्व की निशानी थी। अत वे इसका विरोध करना अपना दायित्व समझते थे। इसके साथ–साथ गुरुदत्त की वैदिक सिद्धान्तो की व्याख्याओ से वे इतने प्रभावित थे कि गुरुदत्त पर किए जाने वाले प्रत्येक आक्षेप को अपने ऊपर किए गए आक्षेप के समान मानते थे। इस स्थिति मे गुरुदत्त के विरोधी भी उनके विरोधी हो जाते थे। इसके अतिरिक्त मुशीराम मे एक ऐसी उत्साह शक्ति थी, जो बलात् लोगों को आकर्षित कर लेती थी। इस शक्ति के कारण कालेज दल वाले उन्हे अपने लिए खतरा समझते थे। जोर्डन्स के कथनानुसार आर्यसमाज के विभाजन मे मुशीराम का कोई प्रत्यक्ष हाथ नहीं था[33]। परन्तु आर्य जगत् के इस विभाजन के महायुद्ध मे उन्हे महारथी ही नहीं, अपितु इसका कर्णधार माना जाता है। लाला लाजपतराय ने उन्हे पजाब आर्यसमाज के सभी विवादो की जड बताया। इन्द्र ने लाला लाजपतराय और महात्मा मुशीराम को आर्यसमाजी जगल के दो शेर मानते हुए लिखा है–

"जब मैं पिता जी और लाला लाजपतराय जी के परस्पर सम्बन्धो के विषय मे अपनी स्मृतियो को इकट्ठा करके देखता हूँ, तो मुझे जगल के दो शेरो की लोकोक्ति याद आती है। कहते हैं एक जगल मे दो शेर नहीं रह सकते, परन्तु इसका यह अभिप्राय नही कि वे एक दूसरे की बहादुरी को भी नहीं पहिचानते। यह स्पष्ट है कि वे दूसरे की शक्ति को पहिचानते हैं। उसका आदर करते हैं और इसलिए साथ–साथ रहना पसन्द नहीं करते। यदि उनसे एक दूसरे के विषय मे पूछा जाए, तो वे यही कहेगे कि वह शेर है, मैं भी शेर हूँ, हम दोनों एक जगल मे कैसे रह सकते हैं[34]। इस प्रकार इन्द्र ने भी यह स्वीकार किया है कि मुशीराम दूसरी पार्टी के कर्णधार थे।

इन्द्र के उपर्युक्त कथन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आर्यसमाज के घरेलू युद्ध मे लाला लाजपतराय को मुशीराम के रूप में एक प्रतिद्वन्दी उभरता दिखाई पड रहा था। आर्यसमाज

के क्षेत्र मे दोनो लोकप्रिय थे। मुशीराम राजनीति से उदासीन रहने वाले व्यक्ति थे, जब कि लाला लाजपतराय राजनीति मे खुल कर खेलने वाले थे। मुशीराम की लाहौर काग्रेस अधिवेशन मे भगीदारी को देख कर लाला जी को यह सन्देह होने लगा कि आर्यसमाज के नाम पर राजनीति मे उनका प्रतिद्वन्दी जन्म ले रहा है।

इस विभाजन से आर्यसमाज को लाभ हुआ या हानि, इस विषय मे दो भिन्न–भिन्न विचार प्रकट किए गए है। लाला लाजपतराय के विचार से यह विभाजन आर्यसमाज के लिए लाभकारी रहा। उन्होने माना है कि आर्यसमाज के दोनो दलो ने समाज की सेवा मे जो त्याग किये हैं, वे पूजने योग्य हैं। कॉलेज की सहायता के लिए पहले ही सब लोग अपनी एक महीने की आमदनी दे चुके थे। बहुत से मासिक चन्दा भी देते हैं। किन्तु अब नए सिरे से चन्दे लिए गए तो सब ने खुशी–खुशी से दिए। दोनो दलो ने उपदेशको की सख्या भी बढाई, इससे सदस्य सख्या बढी। महात्मा दल ने वेद प्रचार कोष, कन्या महाविद्यालय और स्थानीय स्कूलो के लिए उसी उत्साह से चन्दे किए। लाला लाजपतराय ने आर्थिक लाभ की ओर ध्यान दिया। इसके विपरीत मुशीराम का चिन्तन दूसरी प्रकार का था। उन्होने इस विभाजन को हानिकारक बताते हुए 'सद्धर्म प्रचारक' (सवत् 1966) मे लाला लाजपतराय के विचारो को पूर्वपक्ष मे रखते हुए लिखा "यदि रुपये ही से सब उद्देश्य पूरे हो सकते थे, तो क्या दोनो दलो की सारी सस्थाओ की जायदाद लाहौर के एक राय रामशरणदास का मुकाबला कर सकती है। यदि उपदेशको की सख्या पर ही वैदिक धर्म की उन्नति निर्भर है तो क्या छोटे से छोटे पौराणिक साधुओं के अखाडे के चेलो का भारत के सब आर्योपदेशक मुकाबिला कर सकते हैं"। मुशीराम के विचार से इस विभाजन से आर्यो मे नैतिकता का ह्रास हुआ।

इसके विपरीत इन्द्र ने इस विभाजन का परिणाम निकालते हुए लिखा है – "यदि पजाब की आर्यसमाजो मे फूट न पडती या फूट पडने पर दोनो (लाला जी और महात्मा जी) महानुभाव एक ही पक्ष मे चले जाते तो आर्य समाज का और साथ ही पजाब का सार्वजनिक जीवन दूसरी ही तरह का होता, परन्तु दो शेर एक जगल मे नहीं रह सके[35]।"

आर्यसमाज में उग्रपरिवर्तनवादी विचारधारा का सूत्रपात

दोनो दलो के सिद्धान्तहीन भावनात्मक मेल को कुछ आर्यसमाजियो ने नकार दिया था और वे आर्यसमाज मे उग्र परिवर्तन के पक्षपाती थे। वे चाहते थे कि तुरन्त ही आर्यसमाज में स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तो का प्रचलन होना चाहिए। वे यह भी चाहते थे कि पर्दा प्रथा तुरन्त समाप्त हो और आर्यो के विवाह जाति अर्गलाओ को तोड कर गुण–कर्म स्वभाव के अनुसार होने चाहिए। इन विचार धाराओ के अगुआ डाक्टर चिरजीव भारद्धाज थे। इन्होने समान विचार धारा के लोगो को इकट्ठा करके 'आर्य शिरोमणि सभा' का गठन किया। सद्य उग्र परिर्वतनवादियो की यह सभा देर तक नही रह सकी, क्योकि इसके अग्रणी डा0 चिरजीव भारद्वाज इग्लैण्ड चले गए। लोग परिवर्तन लाने के लिए इतने उतावले थे कि इसके उपरान्त 'आर्य भ्रातृ सभा' नामक सस्था का निर्माण किया गया। इसके उद्देश्य भी 'आर्य शिरोमणि' सभा के समान ही थे। सन् 1897 ई के अन्त मे इसी प्रकार का एक सगठन बना। जिसको 'आर्य धर्म सभा' नाम दिया गया। यह सगठन पूर्ववर्ती सगठनो की तुलना मे परिवर्तन का अति सीमित पक्षधर था और इनका विचार यहॉ तक था कि आर्य होने के लिए किसी शुद्धि सस्कार की आवश्यकता नहीं है। ये तीनो सगठन समाज मे अपना प्रभाव स्थापित नहीं कर सके। परन्तु मुशीराम के लिए परिवर्तनवादी होने के विषय मे सन्देह उत्पन्न कर गए। क्योकि मुंशीराम को आर्य समाज के क्षेत्र मे उग्र परिर्वतनवादी का खिताब साईदास ने दे रखा था। मुशीराम उपर्युक्त सगठनकर्त्ताओ के विचारों से सहमत होते हुए भी इन सगठनों मे इसलिए सम्मिलित नहीं हुए कि उनके सामने विशाल जनहित का उद्देश्य था और उसकी पूर्ति ये शनैःशनैः करना चाहते

थे। मुशीराम ने जब अपनी बडी पुत्री वेद कुमारी का विवाह सन् 1900 मे कुल की प्राचीन परम्पराओ के अनुसार खत्रियो मे ही किया, तो 'भ्रातृ सभा' वालो ने उनकी कटु आलोचना की। जब मुशीराम ने ईसाई धर्म त्याग आई सुमित्रा को अपनी पोषित कन्या बना कर उसका विवाह जाति तोड कर गुरुदत्त के साथ किया तो भी 'भ्रातृ सभा' और 'आर्य धर्म सभा' दोनो ने तानाकशी की और प्रचार किया कि यदि मुशीराम वास्तव मे परिवर्तनवादी है, तो इन्होने अपनी पुत्री का विवाह जाति तोड कर क्यो नहीं किया। ? मुशीराम ने शीघ्र ही इन आरोपो का उत्तर एक वर्ष बाद अपनी दूसरी पुत्री हेमन्त कुमारी का विवाह जाति बन्धनो को तोड कर डा0 सुखदेव नामक एक अरोडा युवक से कर दिया। पजाब मे खत्रियो की तुलना मे अरोडा नीचे माने जाते हैं।

रहतियों की शुद्धि

आर्य समाज मे विभिन्न सगठनो के निर्माण की अवधि मे ही शुद्धि का प्रश्न आया। सनातन धर्मी हिन्दू होते हुए भी शुद्धि के पक्षपाती नहीं थे। वे धर्म के सामान्यीकरण के पक्ष मे नहीं थे, अतः गुण, कर्म और स्वभाव से जाति नहीं मानते थे, अपितु जन्म से ही जाति स्वीकारते थे। उन्हे असवर्ण हिन्दुओ के ईसाई और मुसलमान होने से कोई सरोकार नहीं था। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम मासो मे भारत मे अकाल ने तबाही मचा दी थी। अकाल के कारण बहुत से निर्धन हिन्दू अपने धर्म को त्याग कर ईसाइयत की शरण मे चले गए थे। इस स्थिति मे आर्यसमाज ने हिन्दुओ को अन्य धर्म ग्रहण न करने की रोक के विषय मे सोचा और जो लोग अपना धर्म छोड गए थे उन्हे पुन· हिन्दू धर्म मे दीक्षित करने का विचार किया। इसके साथ–साथ उन्होने असवर्ण हिन्दुओ को भी शुद्धि द्वारा सवर्ण जातियो मे स्थान दिलवाने का सकल्प किया। इस सकल्प की परीक्षा की घडी भी शीघ्र ही आ गई। पजाब मे 'रहतिया सिखो' को अन्य सिख 'जाति बहिष्कृत' मानते थे। ये रहतिये 1896 ई से अपने सामाजिक स्तर को उठाने का प्रयास कर रहे थे। परन्तु सिख सभाओ ने बार–बार इनकी प्रार्थनाओ को ठुकरा दिया था। जून, 1899 ई मे ये लोग मुशीराम के पास आ गए। आर्यसमाज जालन्धर ने इनको शुद्धि द्वारा आर्यसमाजी बनाने का प्रस्ताव पारित कर दिया। परन्तु किन्हीं कारणो से इस प्रस्ताव का क्रियान्वयन नहीं हो सका। मुशीराम ने इन रहतियो को लाहौर आर्यसमाज मे शुद्धि के लिए भेज दिया और वहाँ 3 जून, 1900 ई0 मे इनको शुद्ध कर लिया गया।

रहतियो की शुद्धि से सिखो मे तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न होनी स्वाभाविक ही थी, क्योकि उन्होने इसे सिख धर्म के क्षेत्र मे आर्यसमाज की अनधिकार चेष्टा माना और वे मुशीराम के कट्टर शत्रु बन गए। और इसके साथ ही सनातनी हिन्दुओं ने भी इसका विरोध किया। इस शुद्धि से पजाब का वातावरण अफवाहो से गूज गया। समाचार पत्र वालो के कान भी खडे हुए और समाचार दिए जाने लगे कि सिखो ने जालन्धर के आर्यों की हत्याएँ करवा दी हैं और मुशीराम जख्मी होकर जालन्धर हस्पताल मे पडे है। समाचार पत्रो की एक अन्यतम विशेषता होती है कि वे सामयिक समस्याओ मे बहुचर्चित व्यक्तित्व पर व्यग्य चित्र अथवा होली और 'फर्स्ट अप्रैल फूल' के दिवस पर मजाक करके उसके महत्व को प्रदर्शित करते रहते हैं। रहतियों की शुद्धि के सम्बन्ध मे सिख और हिन्दू दोनो के केन्द्र बिन्दु मुशीराम ही थे। लाहौर के दैनिक ट्रिब्यून ने अप्रैल के अक मे एक समाचार देते हुए लिखा कि "जालन्धर से समाचार मिला है कि वहाँ की हिन्दू जनता रहतियो की शुद्धि से विक्षुब्ध होकर आर्यसमाज के प्रधान लाला मुशीराम के मकान पर चढ गई। उनको पकड लिया और समाज मन्दिर मे घसीट ले गई। वहाँ जाकर लोगो ने उन्हे रस्सियो से बाँध दिया और समाज मन्दिर मे जो पीपल का पेड है, उससे लटका दिया गया।" इस समाचार को पढकर आर्यसमाजियो मे चिन्ता व्याप्त हो गई। समाचार की सत्यता जानने के लिए अनेक तार आने लगे। परन्तु किसी भी पाठक ने इस समाचार के साथ लिखी इस बात को नहीं पढा कि 'लोग इतने भले हैं कि अप्रैल की पहली

तारीख को उपयुक्त समाचार प्रकाशित किया जाए, तो उसे भी सत्य मान लेगे[36]।" इस प्रकार कहा जा सकता है कि मुशीराम इस समय तक लोगो की दृष्टि मे बडे महत्वपूर्ण व्यक्ति बन गए थे।

अपनी लडकी का विवाह जाति बन्धन तोडकर वे एक उग्र परिवर्तनवादी पग उठा चुके थे। अब गृहस्थ के कर्त्तव्यो के प्रति वे निश्चिन्त थे। लडकिया विवाहित हो चुकी थी। पुत्रो की आयु छोटी थी, उनकी शिक्षा के सम्बन्ध में मन मे यह भावना बना ली थी, कि उन्हे स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तो के अनुकूल ही शिक्षा दी जाएगी।

गुरुकुल की स्थापना का विचार

स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा सचालित एव सम्पादित 'लिबरेटर' नामक अग्रेजी साप्ताहिक के लेखो से पता चलता है कि स्वामी श्रद्धानन्द (मुशीराम) ने दसवीं बार सत्यार्थ प्रकाश पढने पर आर्यसमाज के सस्थापक के निम्न कथन के वास्तविक अभिप्राय को सही रूप मे समझा –

"दुर्दिन जब आता है तब देशवासियो को अनेक प्रकार से दुख भोगना पडता है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मत–मतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता–पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियो का राज्य भी सुखदायक नहीं है। परन्तु भिन्न–भिन्न भाषा, पृथक्–पृथक् शिक्षा, अलग व्यवहार का छूटना अति दुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इसलिए जो कुछ वेदादि शास्त्रो में व्यवस्था का इतिहास लिखे हैं, उसी का मान्य करना भद्र पुरुषो का काम है।"

उपर्युक्त वक्तव्य के सही अर्थ को पहचान कर मुशीराम ने अपने आध्यात्मिक गुरु के सिद्धान्तो का अनुसरण करते हुए सभी धर्मों के आदिमूल सार्वभौम वैदिक धर्म के प्रचार करने मे अपनी शक्ति को केन्द्रित किया और प्राचीन ब्रह्मचर्य आश्रम की व्यवस्था के अनुसार एक शिक्षण पद्धति स्थापित करने का प्रयास आरम्भ किया[37]। सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास ने यह बात भी मन मे बैठा दी कि ऐसी सस्था जनाकुल परिवेश से दूर एकान्त स्थान मे होनी चाहिए। गुरुकुल नामक प्राचीन शिक्षण पद्धति आरम्भ करने से पूर्व मुशीराम दयानन्द–एग्लो–वैदिक कॉलेज को ही लडको की शिक्षा के लिए गुरुकुल तुल्य समझते रहे। इसीलिए कॉलेज भवन का स्थायी स्थान का चुनाव करने के सन्दर्भ मे 'सद्धर्मप्रचारक' मे लिखा था कि "सरकारी कॉलेज पर तो हमारा कोई अधिकार नहीं, किन्तु अपने कॉलेज पर इतना अधिकार हो सकता है कि उसके लिए शहर से दूर जगह ली जाए। शिक्षा की नीति एव पाठ्यक्रमो के सम्बन्ध मे मतभेद के कारण मुशीराम को कालेज से नाता तोडना पडा। नाता तोडने की कहानी का कच्चा चिट्ठा पिछले पृष्ठो मे पाठक पढ चुके हैं। कॉलेज विभाग से कट जाने का यह अभिप्राय नहीं था कि मुशीराम के मन से आदर्श शिक्षा पद्धति की ब्रह्मचर्य आश्रम वाली योजना भी धूल मे मिल गई हो, वह योजना उनके मन मे घर कर चुकी थी। इसका प्रमाण यह है कि उन्होने 8 आषाढ, सम्वत् 1953 (1896 ई.) मे 'सद्धर्मप्रचारक' मे 'सन्तान को आर्य क्यो कर बना सकते हो' नामक एक लेखमाला प्रकाशित की थी। इस लेखमाला मे आपने शहरी वातावरण से उत्पन्न होने वाली बुराईयो का उल्लेख करते हुए 'गुरुकुल' की स्थापना के विचार स्पष्ट रूप मे रखे थे और लिखा था कि अमृतसर के पास नदी के किनारे ऐसा प्राकृतिक सौन्दर्य, जहा परीक्षण के लिये गुरुकुल खोला जाए। तत्कालीन 'आर्य पत्रिका' ने इस का समर्थन किया और लिखा कि आर्य सार्वभौम प्रतिनिधि सभा का गठन करके उसके अधीन गुरुकुल खोला जाए। सभी आर्यसमाजी पत्रो मे गुरुकुल खोलने के प्रस्ताव पर चर्चा–परिचर्चा हुई।

कॉलेज दल के लोग उपर्युक्त प्रस्ताव का उपहास करते दिखाई देते थे। उनके उपहास के पीछे विरोध की भावना कार्य करती थी। इसके साथ ही उनको आशका थी कि आर्यसमाज की समानान्तर एव ऋषि दयानन्द की शिक्षण विधि के अनुकूल शिक्षण सस्था के खुल जाने से उनके आर्थिक स्रोतो पर बुरा प्रभाव पडेगा। महात्मा दल (गुरुकुल दल) मे भी ऐसे बहुत से व्यक्ति थे कि जिनको भय था कि यदि आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्वाधान मे गुरुकुल स्थापित किया जायेगा, तो वेद प्रचार के मुख्य कार्य मे बाधा पहुचेगी। कुछ लोगो का यह विचार भी था कि निर्जन एकान्त स्थान मे केवल सस्कृत पढने वाले छात्र नहीं मिलेगे और वहा सस्कृत शिक्षा के साथ वर्तमान विषयो की शिक्षा देना सम्भव नहीं हो सकेगा। महात्मा दल के कुछ निराशावादी लोग तो यहाँ तक भी कह रहे थे कि निर्जन जगल मे अनाथो की तरह भूखे–नगे और रोगी हो जाने पर चिकित्सा के अभाव मे मरने के लिए कौन निर्मोही माता–पिता अपने बच्चो को वहाँ भेजेगे। वहाँ तो केवल वही बालक जायेंगे जिनकी माताएँ नहीं हैं अथवा विमाताएँ हैं। कुछ लोग जालन्धर मे वैदिक आश्रम और दुआबा–हाईस्कूल द्वारा ही सस्कृत शिक्षा को ही पूरी कर देने की बाते भी कहते थे। कहने का अभिप्राय यह है कि मुशीराम समर्थित 'गुरुकुल नामक सस्था के गर्भाधान के समय से ही विरोधी विचार भी गर्माये हुए थे। इन आशकाओ के उठने पर बहुसख्यक आर्यसमाजी 'गुरुकुल' खोलने के पक्ष मे था। आश्विन सम्वत् 1954 (1897 ई) मे सद्धर्म प्रचारक मे 'आश्रम व्यवस्था और उसकी बुनियाद' नामक लेख मे मुशीराम ने गुरुकुल की स्थापना के सम्बन्ध मे अपने विचार देते हुए लिखा कि 'यह पवित्र आन्दोलन (गुरुकुल) पडित गुरुदत्त की जीवनी से ही आरम्भ हो गया था। कार्याधिक्य के कारण उस समय इस पर अमल न हो सका, पर सुलगी हुई आग बुझी नहीं। इस सुलगी हुई आग पर से राख हट कर नूरमहल निवासी लाला जगन्नाथ ने अपने कारखाने मे कुछ हिस्सा गुरुकुल का नियत किया और 25 रुपये अगाऊ प्रेषित कर दिए। इसके बाद पडित लेखराम के बलिदान होते ही अन्य कार्यों ने आ दबाया। फिर भी हम इस प्रश्न पर निरन्तर विचार करते रहे। इसमे शक नहीं हम भी सुस्त हो चले थे, लेकिन निराशा को पाप समझते हुए हमने आशा नहीं छोडी थी और कुछ समय तक इस सम्बन्ध मे अधिक विचार करने का निश्चय किया था। इसी बीच मे श्री गोविन्दपुर के आर्य भाईयो ने गुरुदासपुर मे गुरुकुल खोलने पर उसके लिए भूमि एक हजार रुपया के साथ देने का वचन दिया था। अजीब धार्मिक जोश दिखाया। उसके बाद बरार प्रान्त के अकोला जिले के पातूर निवासी शिवरत्न वर्मा ने अपने चचेरे भाई गोविन्द सिह वर्मा मन्सफदार की ओर से सूचित किया कि गुरुकुल खोला जाए तो वे दस हजार रुपया देने को तैयार हैं। यदि ये दोनो निश्चय पूरे हो जाएँ तो गुरुकुल का खुलना कुछ भी मुश्किल नहीं है। अलबत्ता, श्री गोविन्दपुरीय भाईयो की शर्त ठीक नही है और गुरुकुल के स्थान आदि का निश्चय आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब पर छोड देगे। इस समय जब कि आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब की अन्तरग सभा ने आर्य विद्यार्थी आश्रम, लाहौर को गैर–जरुरी ठहरा दिया है, तब पूरी आशा बध जाती है कि सभा गुरुकुल को अपनी अधीनता मे खोलने को तैयार हो जायेगी। हमने इरादा कर लिया है कि श्री गोविंदपुर आर्यसमाज के जलसे मे, जो कि 3 और 4 अक्टूबर, 1897 ई को होगा, शामिल होगे और उस समय अपने भाईयो को प्रेरित करेगे कि वे अपना दान नकद देवे, जिससे उन लोगो को ढाढस मिले, जो कि गुरुकुल के लिए मुद्दत से व्याकुल हो रहे हैं। जिन सज्जनो के पुत्र 12 वर्ष से कम आयु के हैं, वे अपने पुत्रो को धर्म के अर्पण करने की प्रतिज्ञा करे, ताकि उनके हौसले से उत्साहित होकर श्री गोविन्दपुर से ही आर्य प्रतिनिधि सभा की सेवा मे एक निश्चित निवेदन पत्र भेजा जा सके। पढाई के काम के लिए हमने दो धार्मिक पुरुषो को तैयार किया है। पाठ विधि महर्षि दयानन्द स्वय तैयार कर गए है। हमे सिर्फ उन विषयो का सिलसिला बाँधना होगा और अन्य विषयो, विशेषत व्यावहारिक विधाओ का, उसमे समावेश करना होगा, जो आर्य समाज के विद्वान धार्मिक सभासदो की सहायता से प्रतिनिधि सभा तैयार कर सकेगी।"

श्री गोविन्दपुर आर्यसमाज के उत्सव पर गुरुकुल के विषय को लेकर चर्चा हुई। इस चर्चा मे सर्वश्री मुशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द), रामभजदत्त चौधरी, सीताराम (लाहौर), केसरीमल (दीनानगर) मुशी मुकुन्दराम (श्री गोविन्दपुर) आदि ने भाग लिया और सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पारित कियागया कि "आर्य पुरुषो का यह सम्मेलन आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब की सेवा मे यह निवेदन करना अत्यन्त आवश्यक समझता है कि गुरुकुल शीघ्र ही खोला जाए"। इस प्रस्ताव को सभा के पास भेजने का कार्य मुशीराम को सौंपा गया। इस सर्वसम्मत प्रस्ताव के पश्चात् पजाब के आर्यसमाजो मे इस सम्बन्ध मे उत्साहवर्धक चर्चाएँ होने लगीं। आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्कालीन मत्री जयचन्द्र ने इस सम्बन्ध मे सुझाव प्रस्तुत करते हुए लिखा कि गुरुकुल खोलने के विचार को लोकप्रिय बनाने के लिए कुछ व्यक्तियो की समिति गठित की जाय, जो लेख लिखने और धनसग्रह करने का कार्य करे। सभा–मन्त्री के लेख के बाद प्रस्ताव को बल मिला। 26 नवम्बर, 1898 ई को आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब की अन्तरग सभा ने गुरुकुल खोलने के प्रस्ताव को स्वीकृति दे दी और इस कार्य के लिए आठ हजार रुपया एकत्र होने पर कार्य आरम्भ करने की व्यवस्था भी रख दी। इसी प्रस्ताव मे गुरुकुल की योजना बनाने का कार्य मुशीराम को सौंप दिया। उन्होने शीघ्र ही सम्पूर्ण योजना को सुरुचिपूर्ण ढग से सभा के सम्मुख रख दिया। सभा की ओर से इस योजना को प्रचारार्थ छपवा दिया गया। यह सब होने पर मुशीराम से नहीं रुका गया और उन्होने आषाढ, सम्वत् 1956 (अगस्त 1898 ई) मे सद्धर्म प्रचारक मे यह प्रतिज्ञा प्रकाशित करवा दी कि "जब तक गुरुकुल के लिए 30 हजार रुपया इकट्ठा नहीं कर लेगे, घर मे पैर नही रखेगे"। मुशीराम की इस प्रतिज्ञा की कहानी को इन्द्र ने इस प्रकार लिखा है–

"पिता जी प्रायः लाहौर जाते रहते थे। अधिकतर आर्यसमाज के काम से और कभी–कभी मुकदमो के प्रसग मे लाहौर जाते थे तो दूसरे या तीसरे दिन वापिस आ जाते थे। वापिस आने की गाडी की सूचना जाते हुए दे जाते थे। ठीक समय पर घोडा–गाडी स्टेशन पर पहुँच जाती थी। पिता जी के घर आने की सूचना हम लोगो को अनायास ही मिल जाती थी, क्योकि गाडी पर से उतार कर बिस्तर और यात्रा का अन्य सामान अन्दर लाया जाता था।

एक दिन हम लोग बहुत आश्चर्यचकित हो गए, क्योकि पिता जी का सामान गाडी से उतार कर घर नहीं लाया गया। कोचवान ने अन्दर आकर कहा कि "बाबू जी ने अपना सामान समाज–मन्दिर मे ही उतरवा लिया और कहा है कि घर पर जाकर खबर कर दो।" बाबू जी घर पर नहीं आये और समाज–मन्दिर मे उतर गये हैं, इस समाचार ने घर भर मे तहलका सा मचा दिया। तायी जी पहले तो स्तब्ध सी रह गई, फिर पिता जी के इस कार्य के अनौचित्य पर काफी जोरदार टिप्पणी करने लगीं। हम चारो बच्चे घबरा कर तायी जी के चारो ओर इकट्ठे हो गए, नौकर जिसका नाम रणुआ था, एक ओर खडा आँखो से आँसू बहा रहा था। हमारे ताया जी, जो परिवार के मौनधारी सदस्य थे, कुछ समय पीछे हाथ मे हुक्का लिए हुए ड्योढी से घर के अन्दर आए और तायी जी को दिलासा देने लगे। जहाँ तक मुझे याद है उनके दिये हुए दिलासे का यह साराश था कि 'मुशीराम हमेशा से ही ऐसा कर रहा है, जो दिल मे आता है वही करता है। तुम चिन्ता न करो अपने आप घर आ जायेगा।' परन्तु तायी जी घर के मामले मे ऐसे वैराग्य से सन्तुष्ट होने वाली नहीं थीं। उन्हे यह सन्देह हुआ कि पिता जी किसी बात पर नाराज होकर घर मे नहीं आ रहे हैं। कुछ समय के पश्चात् उन्होने निश्चय किया कि समाज मन्दिर मे जाकर नाराजगी का कारण पूछा जाए। तायी जी का निश्चय हो जाने पर ताया जी के लिये कोई समस्या शेष न थी। उन्होंने अपना हुक्का ताजा करवाया और चारपाई पर बैठ कर उस आनन्द का अनुभव करने लगे जिसे केवल अफीमची या हुक्के का भक्त ही कर सकता है।

तायी ने नौकर को आर्यसमाज–मन्दिर मे यह पूछने के लिए भेजा कि हम लोग मिलने के लिए आना चाहते है, कोई रुकावट तो नहीं है। मैं पहले बतला चुका हूँ कि हमारी कोठी और समाज मन्दिर के बीच मे केवल पक्की सडक थी। रणुआ पाँच–सात मिनट मे ही लौट आया। वह उत्तर लाया कि मिलने मे कोई रुकावट नहीं । हम लोग तब तक तैयार हो चुके थे। तायी जी भी उस समय के रिवाज के अनुसार रेशमी घाघरा पहिन और ओढनी ओढ कर आगे–आगे चलीं। हम चारो भाई–बहिन पीछे–पीछे कुछ घबराते हुए से चले और अन्त मे हमारा नौकर रणुआ चला।

पिता जी समाज मन्दिर के द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे थे। वह गम्भीर मुद्रा मे थे। तायी जी की घबराहट देखकर शान्त करते हुए आरम्भ मे उन्होने ही कहा–

'भाभी, मैने लाहौर मे प्रतिज्ञा कर ली है कि जब तक गुरुकुल बनाने के लिए 30 हजार रुपया इकट्ठा न कर लूँगा, तब तक घर में पैर नहीं रखूँगा। इसी कारण समाज मे ठहरा हूँ, घबराने की कोई बात नहीं। भाय्या जी (ताया जी को पिता जी भाय्या जी कहा करते थे) घर मे हैं ही । कोई चिन्ता मत करो।'

इस आश्वासन से तायी जो का मन थोडा बहुत शान्त हो गया और उन्हे शान्त देखकर हम लोग भी शान्त हो गए। यह 'सर्वमेध यज्ञ' का प्रथम चरण था।[36]

जादू वह जो सिर पर चढकर बोले। मुशीराम के मन मे गुरुकुल खोलने का भूत सवार था। जहाँ चाह, वहाँ राह। बस फिर क्या था। गुरुकुल के गर्भाधान की कहानी सुखद और दुखद दोनो ही अनुभवो की मिली–जुली प्रतिक्रिया को लिए हुए है। आर्य पुरुषो का उत्साह तो पूरा था, परन्तु दुर्भिक्ष जैसी स्थिति के कारण देश की आर्थिक स्थिति ढीली थी। ऐसी स्थिति मे राजा रघु जैसा दानी मिलना दुर्लभ था जो कि वरतन्तु के शिष्य कौत्स की इच्छा पूर्ति के समान ऋषि दयानन्द के अनुयायी मुशीराम की झोली भर देता। 30 हजार रजत मुद्राओ का जुगाड तो एक से नहीं, अनेको के दान से पूरा हो सकता था। अत मुशीराम ने सर्वमेध यज्ञ के प्रथम चरण का आरम्भ 26 अगस्त 1898 ई को उठाया और जालन्धर से चलकर साय 6 बजे गुजरानवाला पहुँच गए। इनके साथ रामभजदत्त चौधरी, मास्टर आत्माराम अमृतसरी, नबीबख्श बैरागी और प. शिवनाथ थे। यहाँ गुरुकुल के लिए 592 रुपये दान मे मिले। प्रथम भिक्षा उत्साहवर्धक रही। विभिन्न नगरो मे गुरुकुल का प्रचार करते यह मण्डली 22 सितम्बर, 1898 को जालन्धर आ गई। यात्रा के इस प्रथम चरण मे कुल छः हजार आठ सौ अट्ठावन रुपये आठ आने (6858 50 पैसे)। इकट्ठे हुए। अगली यात्राओ मे पहली मण्डली के कुछ साथी छुटे, कुछ साथियो ने ढीलापन दिखाया। इससे मुशीराम निराश होने वाले नहीं थे, अन्य शुभ चिन्तको को टटोला और मण्डली तैयार हो गई।

यात्रा का दूसरा चरण 24 सितम्बर को हरिद्वार के लिए प्रस्थान करने पर आरम्भ हुआ। इस दान यात्रा मे स्वामी जी ने हरिद्वार के आस–पास की भूमिओ का निरीक्षण किया और यहाँ तक कि वे ऋषिकेश भी गए। इसका मुख्य उद्देश्य गुरुकुल की स्थापना के लिए उपयुक्त स्थान की खोज था। चण्डी पहाड के नीचे की भूमि अधिक उपयुक्त जान पडी। यहाँ से मुशीराम 26 सितम्बर को दिल्ली के लिए प्रस्थान कर गये। दिल्ली मे रामभजदत्त (लाहौर) प पूर्णानन्द,, प गगादत्त और प. सूरजप्रसाद (सभी ग्वालियर) से आ गए। दिल्ली निवासियो ने गुरुकुल की योजना मे आशा के अनुरूप सहयोग नहीं दिया। स्वामी जी दिल्ली से बहुत बडी आशा रखते थे। यहाँ 5 अक्टूबर तक कार्य किया और इस अवधि मे गुरुकुल के लिए आठ हजार रुपए प्राप्त हुए। इसके बाद की यात्रा 16 अक्टूबर से लाहौर से आरम्भ हुई और पजाब के प्रमुख नगरो मे गुरुकुल की योजना के विचार जनता के सामने रखे गए। इस यात्रा मे अनुभव हुआ कि गुरुकुल की योजना के सम्बन्ध मे किस–किस प्रकार के विरोधी स्वर उठ रहे हैं। मुलतान मे कालेज दल वालो ने पर्याप्त विघ्न डाले। लोग यह

कहते हुए भी सुने गए कि गुरुकुल के लिए लडके कहाँ से आएगे। 25 वर्ष की आयु तक लडको को ब्रह्मचारी नही रखा जा सकता। माना कि गुरुकुल की शिक्षा द्वारा लडके शारीरिक, मानसिक ओर शैक्षणिक दृष्टि से समाज के श्रेष्ठ नागरिक बन जाएँगे, लेकिन अपनी सरकार के अभाव मे इन्हे नौकरियॉं कौन देगा ? जब दयानन्द–एग्लो–वैदिक कॉलेज ने लोगो से चन्दा लेकर आर्यसमाज के शैक्षणिक विषयो को दुत्कार किया, तो गुरुकुल वाले भी उनसे ही अलग हुए व्यक्ति है, इस पर भरोसा कैसे हो सकता है ? इन आशकाओ की गर्म हवाओ से मुशीराम निरुत्साहित नही हुए और 2 1/2 मास मे नगद और वायदो के रूप मे कुल मिला कर 20 हजार से ऊपर रुपया एकत्रित हो गया।

गोपीनाथ का मुकदमा

मुशीराम को मात्र गुरुकुल का काम ही नही करना पड रहा था, अपितु अपने प्रान्त पजाब मे अन्य मतावलम्बियो द्वारा आर्य समाज पर की जाने वाली टीका टिप्पणियो का उत्तर भी देना पडता था। कॉलेज दल ने तो यह नीति अपना रखी थी कि अन्य सम्प्रदायो से यथाशक्ति सौहार्द स्थापित किया जाए। इस नीति के अनुसरण मे एक बार उनकी तरफ से यह प्रस्ताव भी आया था कि सत्यार्थ प्रकाश मे से सिखो को अखरने वाले प्रकरण को निकाल देना चाहिए।

पजाब मे प गोपीनाथ सनातनी लोगो का नेता माना जाता था। वह पजाब सनातन धर्म, सभा का मत्री, 'सनातन धर्म गजट' का सम्पादक और 'अखबारे आम' का सचालक था। वह अपने समाचार पत्रो मे आर्य समाज के सम्बन्ध मे अश्लील भाषा का प्रयोग करके कीचड उछाला करता था। एक समय ऐसा आया कि उसने मुशीराम को शास्त्रार्थ करने के लिए ललकारा। मुशीराम बहुत दिनो से गोपीनाथ के साथ मुखामुखी (शास्त्रार्थ) करने की प्रतीक्षा मे बैठे थे। कुछ पत्र व्यवहार के पश्चात् लाहौर मे शास्त्रार्थ होना निश्चित हुआ। 26 नवम्बर, 1898 ई मे 'बच्छोवाली आर्यसमाज मन्दिर मे 'वेद किन ग्रन्थो का नाम है' विषय पर शास्त्रार्थ हुआ और गोपीनाथ ने मुँह की खाई। अपनी झेप मिटाने के लिए उसने सन् 1894 की होली के अवसर पर अपने समाचार मे आर्य समाज पर छींटाकशी करते हुए आपत्तिजनक चुटकुले प्रकाशित किए। सरकार ने इन चुटकलो को सनातनियो और आर्यसमाजियो मे वैमनस्य उत्पन्न करने वाले और भडकाऊ भाषा मे उत्तेजना फैलाने वाले मानकर गोपीनाथ पर मुकदमा दायर कर दिया। इस मुकदमे मे गोपीनाथ को सजा हो गई। अपील करने पर सजा जुर्माने मे तब्दील हो गई।

इस परेशानी से अभी गोपीनाथ उभरा भी नहीं था कि रोपड की घटना ने उसे क्षमा याचना करने पर बाध्य होना पडा। रोपड मे सनातन धर्मियो ने आर्यसमाजियो का बहिष्कार किया और उसके सम्बन्ध मे रोपड सनातन धर्मसभा के मन्त्री और उपमन्त्री के लेख गोपीनाथ के सम्पादकत्व मे 'सनातन धर्म गजट' मे निकले। रोपड के आर्य समाजियो ने इन लेखो के विरुद्ध लेखको और सम्पादक पर मानहानि का मुकदमा दायर कर दिया। गोपीनाथ ने इस मुकदमे मे क्षमा याचना की और साथ मे 100 रुपये हरजाना भी दिया। लोगो ने यह फैलाया कि इस मुकदमे मे असली हाथ मुशीराम का है। यह सुनते ही गोपीनाथ आग–बबूला हो गया और मुशीराम से बदला लेने की ताक मे समय की प्रतीक्षा करने लगा।

मुशीराम का रोपड वाली घटना से कोई सम्बन्ध नहीं था। वे तो लाहौर शास्त्रार्थ के बाद गुरुकुल के लिए धन सग्रह करने की योजना मे दत्तचित्त थे। शास्त्रार्थ के बाद ये पजाब मे ही चन्दे के लिए घूमते रहे। इसके बाद ये दक्षिण हैदाराबाद की यात्रा पर चल दिए, किन्तु वहाँ बीमार हो जाने के कारण अधिक काम नहीं हो सका।

लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित होना

स्वास्थ्य लाभ होने पर यह विचार बनाया कि भारतवर्ष के सभी प्रान्तो मे गुरुकुल योजना का प्रचार होना चाहिए। सुयोग से दिसम्बर, 1899 ई. मे लखनऊ अधिवेशन होने जा रहा था। इस अवसर का लाभ उठाने की इच्छा से मुशीराम ने लखनऊ जाने का विचार बनाया। उस समय ये *आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब के प्रधान भी थे*[39]*। अत लखनऊ काग्रेस अधिवेशन मे इनके साथ* लाहौर के बैरिस्टर रोशन लाल भी थे। ये इस अधिवेशन मे काग्रेस के प्रतिनिधि के रूप मे भाग लेने जा रहे थे। लखनऊ मे मुशीराम दस रुपये शुल्क लेकर काग्रेस शिविर मे ही ठहरे। लाहौर काग्रेस के मन्त्री ने उनसे प्रतिनिधि बनने के लिए निवेदन किया। मुशीराम का स्पष्ट उत्तर था कि वे पाखण्ड के भागी नहीं बनना चाहते। फिर भी बिना फार्म भरे मन्त्री जी ने उनको प्रतिनिधि प्रमाण पत्र लाकर दे दिया। इसी अवधि मे स्वर्गीय बाबू गगा प्रसाद ने मुशीराम को देख लिया और दर्शक का प्रवेश पत्र लाकर थमा दिया। अब मुशीराम के हाथो मे दो तलवारे थी। इस सब का परिणाम यह हुआ कि मुशीराम का चेहरा दर्शको की अपेक्षा मच पर था।

मुशीराम ने इस अधिवेशन का वर्णन करते हुए लिखा है–

"मच पर बैठे हुए पहली चीज जो मैंने अनुभव की, वह यह थी कि 1893 ई के लाहौर अधिवेशन के अनुपात मे यहाँ मुसलमान प्रतिनिधियो की सख्या चौगुनी थी। अधिकाश मुस्लिम प्रतिनिधि अपने साधारण वस्त्रो पर सोने, चाँदी तथा रेशम के धागो से जडे चोगे पहने हुए थे। यह अफवाह थी कि काग्रेस के इस तमाशे के लिए किसी धनवान् हिन्दू ने ये चोगे लाकर दिये है। 433 मुसलमान प्रतिनिधियो मे से केवल 30 ही बाहर से आये थे, और शेष सभी लखनऊ नगर के थे। इनमे से अधिकाश को मुफ्त मे भोजन और निवास की सुविधा के साथ–साथ प्रतिनिधियो का स्थान दे दिया था। सर सैयद अहमद की काग्रेस विरोधी मुस्लिम लीग ने एक सार्वजनिक सभा करके मुसलमानो को *काग्रेस के विरोध मे समझाया था।* इसकी प्रतिक्रिया मे *काग्रेस–शिविर* को रोशनियो से सजाया गया और अधिवेशन के आरम्भ होने से पूर्व यह विज्ञापित किया गया कि अधिवेशन मे नि शुल्क प्रवेश दिया जाएगा। परिणाम यह निकला कि लखनऊ के सभी चण्डूखाने खाली हो गए और लगभग आधा दर्जन सभा मचो से करीब तीस हजार हिन्दू मुसलमानो को सम्बोधित किया गया। वहीं पर मुसलमान प्रतिनिधि बनाए गए। ये सब बाते लखनऊ काग्रेस के सयोजको ने एकान्त मे मेरे सामने *स्वीकार की*[40]।"

पाठक यह न समझे कि गुरुकुल की योजना मे काग्रेस की फच्चर क्यो ठोक दी। इस फच्चर की अपनी उपयोगिता है। इससे स्वामी श्रद्धानन्द के काग्रेस के साथ सम्बन्धो की खटास का अनुमान लगाया जा सकता है, जो आगे चलकर अल विदाई का कारण बनी।

काग्रेस के इस अधिवेशन मे गुरुकुल की योजना के प्रचार मे मुशीराम को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई और गुरुकुल योजना की 1500 प्रतियाँ वितरित की गई। एक रात्रि को सामाजिक सम्मेलन के समय काग्रेस का पण्डाल मुशीराम को सौंप दिया गया। इसकी अध्यक्षता काश्मीरी पडित श्याम लाल ने की। इस सम्मेलन मे मुशीराम के प्राचीन आर्यजीवन की ब्रह्मचर्य–प्रणाली को पुनर्जीवित करने के विचारो ने राजनीतिज्ञो को निश्चित रूप मे प्रभावित किया[41]।

8 अप्रैल, 1990 ई को मुशीराम की भीष्म प्रतिज्ञा पूरी हो गई और तीस हजार से अधिक लगभग 40 हजार रुपया नकद जमा हो गया। लाहौर आर्य समाज की तरफ से इस सकल्प की पूर्ति के उपलक्ष मे लाहौर मे मुशीराम का जलूस निकाला गया और अभिनन्दन किया गया। इस प्रकार घर के सब काम–काज का त्याग कर, फलती–फूलती वकालत को धता बताकर, गुरुकुल

की स्थापना के लिए नगर–नगर, और डगर–डगर घूम कर चन्दा करने वाले मुशीराम को आर्यसमाजियो ने 'महात्मा' पद से विभूषित किया। परन्तु मुशीराम अपने आपको महात्मा की अपेक्षा 'जिज्ञासु' ही समझते रहे। गुरुकुल की योजना से लेकर और सन्यास ग्रहण करने से पूर्व तक ये अपने नाम के साथ 'जिज्ञासु' लगाना ही प्रिय समझते थे। इसका प्रमाण यह है कि इन्होने 'उर्दू ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका' की भूमिका (1898 ई) लिखते हुए अपने नाम के पश्चात् 'जिज्ञासु' लिखा है। इसी प्रकार 'उर्दू उपदेश मजरी' (1898), 'स्वामी दयानन्द का पत्र–व्यवहार' (1910, 'द आर्य समाज एण्ड इट्स डिट्रैक्टर्स (1910), ईसाई पक्षपात और आर्य समाज (1916), और विस्तारपूर्वक सन्ध्या विधि (1916) आदि पुस्तको की भूमिका लिखते हुए अपने नाम के पीछे 'जिज्ञासु' शब्द का ही प्रयोग किया है। लेकिन लेखन क्षेत्र मे 'जिज्ञासु' लिखने वाले मुशीराम को सन्यास पूर्व तक सम्पूर्ण भारत मे महात्मा मुशीराम के नाम से ही जाना जाता था।

गुरुकुल के लिये स्थान का चयन

40 हजार के लगभग रुपया एकत्रित करने के उपरान्त महात्मा मुशीराम को यह चिन्ता सता रही थी कि आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब शीघ्रातिशीघ्र गुरुकुल सम्बन्धी नियमावली को स्वीकृति प्रदान कर दे। प्रयास करके 26 दिसम्बर, 1900 ई को गुरुकुल के नियम भी स्वीकार करा लिए। अब सबसे बडी समस्या यह थी कि गुरुकुल की स्थापना किस स्थान पर की जाए। 1900 ई मे ही लाहौर मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ। महात्मा मुशीराम इस अधिवेशन की समाप्ति पर होने वाले सामाजिक सम्मेलन मे भाग लेने की इच्छा से लाहौर पहुँचे। इससे पूर्व के काग्रेस अधिवेशन की समाप्ति पर होने वाले सामाजिक सम्मेलनो के नाम के साथ राष्ट्रीय शब्द जुडा रहता था। परन्तु लाहौर के इस अधिवेशन मे इस सम्मेलन के साथ लगे राष्ट्रीय शब्द को हटा दिया गया था। अब इसके द्वारा केवल हिन्दू समाज के सुधारो से सम्बन्धित प्रस्तावो पर विचार होना था। इस सम्मेलन की अध्यक्षता रानाडे ने करनी थी, परन्तु अस्वस्थता के कारण यह कार्य भार गोखले पर आन पडा। और उनकी सहायता के लिए महात्मा मुशीराम को नियुक्त कर दिया। इस सम्मेलन मे गुरुकुल की योजना का प्रचार किया गया।

गुरुकुल की स्थापना के लिए पजाब मे मुफ्त मिलने वाली भूमियो के स्थान महात्मा मुशीराम को नहीं जँचे। उनके मन मे तो हरिद्वार के पार चण्डी पर्वत माला की उपत्यका पहले ही घर कर चुकी थीं। उन्हे एक आदर्श सस्थान के लिए आदर्श स्थान की आवश्यकता थी। 29 जौलाई, 1990 ई. मे आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब की अन्तरग सभा ने सर्वसम्मति से निश्चय किया कि हरिद्वार के पास गुरुकुल के लिए भूमि खरीद कर मकान इत्यादि बनवाए जाएँ। इस कार्य के लिए अन्तरग सभा ने महात्मा मुशीराम को भूमि क्रय, निर्माण और नियुक्तियो का सर्वाधिकार देकर प्रथम अधिष्ठाता नियुक्त कर दिया। गुरुकुल के लिए हरिद्वार के समीप भूमि खोजने का कार्य सहज नहीं था। जो भूमि पसन्द की जाती थी, उसका मूल्य इतना बढा चढाकर मागा जाता था कि सौदा पटना कठिन हो जाता था। ईश्वर जिसको देता है, छप्पर फाड कर भी देता है कि कहावत के अनुसार नजीबाबाद निवासी मुशी अमन सिह ने अपने मन मे कागडी गाँव मे स्थित अपनी 1200 बीघा भूमि गुरुकुल को दान देने का सकल्प कर लिया और इसकी सूचना आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब को पहुँचा दी। स्वामी श्रद्धानन्द ने इस सकल्प की सूचना पाते ही कागडी ग्राम का निरीक्षण किया और उन्हे यह स्थान नितान्त पसन्द आया। क्योकि यह स्थान यजुर्वेद के मन्त्र "उपह्वरे गिरीणा सगमे च नदीनाम्" (पर्वतो की घाटियो मे और नदियो के सगम स्थलो पर प्राप्त विद्या से बुद्धिबल की वृद्धि होती है) के अनुसार यहाँ पर्वत की घाटियाँ भी थीं और गगा की दो धाराएँ बहती थीं। इसके साथ ही यह स्थान हरिद्वार और कनखल के शहरी वातावरण से चार कोस की दूरी पर था। इसी प्रकार

के स्थान को महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुल्लास मे शिक्षणालयो के लिए उपयुक्त स्थान माना है।

सन् 1901 मे पुन महात्मा मुशीराम आर्यप्रतिनिधि सभा के प्रधान निर्वाचित हो गए। प्रधान निर्वाचित होने पर भी गुरुकुल का काम सरल नहीं हुआ, अपितु विरोध बना ही रहा। इसकी पुष्टि महात्मा जी द्वारा गुरुदत्त को लिखे पत्र से ही इस प्रकार होती है–

जालन्धर शहर

30 अक्टूबर, 1901

प्रिय पुत्र गुरुदत्त जी, नमस्ते।

आपका पत्र पहुँच गया, वजह जवाब न लिखने की यह हुई कि मैं फिर सभा की प्रधान पदवी पर फस गया हूँ। काम सख्त है, 5 नवम्बर को तुम तो चल ही दोगे, यहाँ कुल बातचीत हो जावेगी। लेकिन मुख्तसिर यह है कि मैं प्रधान मुकर्रर हो गया हूँ। गुरुकुल का मुआमला गले पड गया है। मुखालफत का जोर है। पर अब सब दुनियाबी झगडो से अलग होकर काम करने की जरुरत है। पर बाद 30 नवम्बर से सब लडकियो को अपनी–अपनी जगह भेज दूगा और गुरुकुल के पीछे लगूगा। परमेश्वर पर भरोसा करके काम करना है। पर इस हालत मे सुमित्रा को भी अन्यत्र जाना पडेगा, अगर माता जी को रखना हो तो अपने साथ न लाना, वहीं छोड आना, ताकि दोबारा खर्च आमदोरफ्त न करना पडे।

सुमित्रा अच्छी है लेकिन बदपरहेजी से कभी–कभी तबियत खराब कर लेती है। मैं भी अच्छा हूँ। जरुर सात तक पहुँच जाना। बाकी सब खैरियत है।

मुशीराम

सद्धर्म प्रचारक पर मान-हानि का मुकदमा

गोपी नाथ के मुकदमे का वर्णन पिछले पृष्ठो मे पाठक पढ चुके हैं। गोपीनाथ इस ताक मे था कि मुशीराम की गर्दन किस प्रकार पकडी जाए। 'सद्धर्म प्रचारक' के दिनाक 1, 8 और 15 फरवरी, 1901 ई के अको मे गोपीनाथ के सम्बन्ध मे अपमानजनक टिप्पणियाँ प्रकाशित हुई थी। इन टिप्पणियो के प्रकाशन की अवधि मे मुशीराम जालन्धर मे नहीं थे। सहायक सम्पादक लाला वजीर चन्द ने ये टिप्पणियाँ लिखी थीं। इन टिप्पणियो के आधार पर लाहौर के प्रथम श्रेणी के न्यायाधीश क्लेवर्ट की अदालत मे गोपीनाथ ने मुशीराम, वजीर चन्द और मैनेजर के नाते बस्तीराम पर मानहानि का दावा दायर कर दिया। इस मुकदमे मे गोपीनाथ की तरफ से एक अग्रेज को वकील बनाया गया और मुशीराम के पक्ष की ओर से रायजादा भक्तराम (मुशीराम का साला) वकील बने। यह मुकदमा दो पार्टियो का न रह कर सनातन धर्म और आर्यसमाज का बन गया। 26 अप्रैल, 1901 ई को मुकदमे की पहली पेशी हुई। इस पेशी मे गोपीनाथ की गवाही होनी थी। भक्तराम वकील ने मुशीराम से पूछा कि कोई मसाला भी है या नहीं ? जिरह मे क्या पूछा जाएगा ? मुशीराम का उत्तर था – मसाला तो कुछ नहीं, एक ईश्वर का भरोसा है। दोनो खाली हाथ अदालत मे पहुँच गए। गोपीनाथ जब अदालत मे अपना बयान दे रहा था, तो अदालत मे खडे मुशीराम के हाथो में किसी ने कागजो का एक पुलिन्दा पकडा दिया। लच के समय जब उन कागजो की पडताल की गई तो देखा कि गोपीनाथ की बदचलनियो का ढेर सामने पडा था।[42] 'पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेन्ट' के मुशी करीमबख्श को उन चिट्ठियो के आधार पर सफाई की ओर से गवाह पेश किया गया।

गवाह से बयान का साराश था कि वह गोपीनाथ का लगोटियाँ दोस्त है। गोपीनाथ बहुत सी वेश्याएँ रखता है, जिनमे से कुछ के नाम हैं बरकत जान, मुन्नी जान, नाज और मोती जान, अनारकली की एक यहुदिन के साथ भी उसका अनैतिक सम्बन्ध था। अदालत मे प्रस्तुत किए गए ये पत्र उसी की मार्फत आते थे। गोपीनाथ ने उसको बताया था कि काश्मीर से पन्द्रह हजार रुपया मिला था। उसने उसके साथ गाय का मास कई बार खाया है। वह शराब भी पीता है।[43]

छ मास मुकदमा चलने के बाद 2 सितम्बर 1901 ई मे न्यायाधीश ने मुशीराम आदि को निर्दोष माना। न्यायाधीश ने फैसले मे लिखा कि गोपीनाथ गुर्टु ब्राह्मण तो क्या, काश्मीरी भी है कि नहीं, इसमे सन्देह है। 'अखबारे आम' मे गोहत्या पर लिखे लेख इसी के है, और इसके दिमाग की उपज है जो कि मुसलमानो को प्रसन्न करने के लिए लिखे गए है[44]। गोपीनाथ के चारित्रिक पतन की कहानी को सुनकर जहाँ सनातनियो के सिर शर्म के मारे झुक गए वहाँ आर्यसमाजियो को अपनी जीत पर दु खमयी प्रसन्नता हुई, क्योकि सनातन धर्म भी हिन्दुओ की धार्मिक मान्यताओ का एक भाग है। अन्य धर्मावलम्बियो (ईसाई, मुसलमान) की दृष्टि मे तो हिन्दू-हिन्दू है, चाहे वह सनातनी हो और चाहे आर्यसमाजी। गोपीनाथ के चरित्र से सम्पूर्ण हिन्दू पौरोहित्य प्रणाली पर कलक का टीका लग गया।

सन्दर्भ (दूसरा अध्याय)

1 भवानी लाल भारतीय, स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली खण्ड एक पृ 98
2 " " 100-1
3 " " 101
4 " " 103
5 " " 104
6 " " 111-112
7 " " 112
8 " " 114
9 (क) " " 117
(ख) राम प्रकाश, पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी 51
10 भवानी लाल भारतीय खण्ड एक 121
11 " " 128
12 " " 133
13 " " 134
14 " " 147
15 " " 151
16 " " 159
17 " " 159
18 " " खण्ड पॉच 23
19 इन्द्र वही 3-5
20 भवानी लाल भारतीय खण्ड एक 173
21 " " " 197
22 राम प्रकाश वही 46
23 भवानी लाल भारतीय " खण्ड एक 211
24 " " " 212
25 " " " 212
26 " " " 213
27. " " " 213
28 " " " 214

29 इन्द्र वही 15-16

30 भवानी लाल भारतीय " खण्ड एक 215

31 सत्यदेव स्वामी श्रद्धानन्द 229

32 " " 249-50

33 जी टी एफ जोर्डेन्स, स्वामी श्रद्धानन्द हिज लाइफ एण्ड कॉजेज 36

34 इन्द्र वही 245-46

35 " " 247

36 " " 49

37 भवानी लाल भारतीय " खण्ड पाच 30

38 इन्द्र वही 57-59

39 सार्वदेशिक सभा दिल्ली, आर्य निर्देशिका 6

40 भवानी लाल भारतीय " वही खण्ड पाच 31

41 " " 33

42 इन्द्र वही 44-45

43 सत्यदेव वही 268-69

44 विस्तृत जानकारी के लिए स्वामी श्रद्धानन्द लिखित 'सद्धर्म प्रचारक पर पहला लाइबल केस' पढिए)

तीसरा अध्याय

श्रद्धा का प्रकाश स्तम्भ गुरुकुल (1902-1917)

कांगडी मे गुरुकुल की स्थापना

22 अक्टूबर, 1901 ई0 को सभा ने भूमिदान के लिए मुशी अमन सिह का धन्यवाद किया और साथ मे यह निश्चय भी किया कि वहॉ मकान आदि बनवाकर 21, 22, 23 और 24 मार्च, 1902 को गुरुकुल का जन्मोत्सव मनाया जाए। परन्तु दिसम्बर, 1901 ई0 तक कागडी की भूमि के सम्बन्ध मे सभा की ओर से कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया। गुरुदत्त को लिखे अपने पत्र मे महात्मा जी यह सकेत दे चुके थे कि वे लडकियो को अपने-अपने स्थानो पर भेज कर और परिवार की चिन्ता से मुक्त होकर गुरुकुल के पीछे लगेगे। इस प्रकार नगरवासी मुशी राम ने स्वेच्छा से वनवासी महात्मा मुशीराम बनने के लिए सर्वमेध यज्ञ का दूसरा चरण आगे बढाने का निर्णय लिया और वे 6 जनवरी, 1902 ई को कनखल पहुॅच गए। वहॉ उन्होने नजीबाबाद वालो की कोठी मे अपना डेरा जमाया। उत्सव की तिथियो (होली पर्व) तक गुरुकुल खोलना बडे परिश्रम का काम था। महात्मा मुशी राम ने अपनी बेटी सुमित्रा को पत्र लिखते हुए इस सम्बन्ध मे अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये थे–

कनखल

9--1–1902

मेरी प्यारी पुत्री सुमित्रा, नमस्ते।

मै 6 जनवरी को दोपहर को यहॉ पहुॅच गया था, तब से बराबर गुरुकुल के स्थान का काम कर रहा हूँ आज तक किसी ने यहॉ कुछ भी न किया था, अतएव होलियो तक यहॉ गुरुकुल खोलने के लिए बहुत ही परिश्रम करना पडेगा। तुम्हे ज्ञात होगा कि गुरुकुल के लिये एक ग्राम मिला है, जहॉ गुरुकुल मन्दिर बनाना है। आज मै अपना सब सामान लेकर वहॉ चला जाऊँगा। छप्परो मे रहना होगा, तथा जगल का सहवास होगा। यहॉ से यह स्थान 2½ मील दूर है। ईश्वर पर भरोसा करके चला हूँ, वही जगदीश्वर इस कार्य को भी पूरा करेगे। तुम अब अपने स्वास्थ्य का समाचार लिखो तथा अपनी सम्बन्धिनी का हाल लिखो जिसे तुम अपने साथ ले गई थी। अब उस समय तक, जब तक गुरुकुल यहॉ न खुल जावे, मै तुम्हे नियमपूर्वक नही लिख सकूँगा, क्योकि इस समय दौड–धूप का बडा काम है। किन्तु तुम अवश्य अपने तथा परिवारो के समाचार लिखती रहना। गुरुदत्त जी को नमस्ते कह देना, फिर जब अवकाश मिलेगा तो उनको भी जुदा पत्र लिखूँगा।

तुम्हारा शुभचिन्तक पिता

मुशीराम

जगल को अपना सहवासी बनाकर इस दुर्गम स्थान को जन निवास के योग्य बनाने मे महात्मा जी ने क्या-क्या पापड नहीं बेले। कहॉ-कहॉ नहीं फिरे? कठिन परिश्रम और दृढ सकल्प के भरोसे निवास योग्य कुछ छप्पर आदि की व्यवस्था हो गई और कटीली झाडियो से सकुल वनपथ भी जनपथ के रूप मे परिवर्तित होता दिखाई पडा। इस वन्य प्रदेश में महात्मा जी प्रात से रात्रि तक अपने आपको सदा व्यस्त रखते थे। निर्जन वन का एकान्त निवास उन्हे कभी अखरा नहीं। हॉ, उन्होने इतना अवश्य किया कि गुरुकुल का सम्पूर्ण दायित्व आने पर आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब के प्रधान पद से त्याग-पत्र दे दिया और सर्वभावेन गुरुकुल के लिए समर्पित हो गए। उन्होने गुरुकुल भूमि, कागडी से सबसे पहला

पत्र सुमित्रा को लिखा। इस पत्र मे अपने भावी जीवन के सकेत देते हुए दिनचर्या का वर्णन किया गया है। पत्र का कलेवर इस प्रकार है–

गुरुकुल भूमि, कागडी, वाया हरिद्वार
2 फरवरी, 1902

प्यारी पुत्री सुमित्रा, नमस्ते।

तुम्हारा 16 जनवरी का पत्र फिरता–फिराता आज मुझे यहाँ ही आ मिला। इस अन्तर मे कितना कष्ट मुझे हुआ और कहॉ मैं फिरा इसके लिखने की आवश्यकता नहीं रही, अब यहॉ आ गया हूँ और यहॉ ही रहूँगा। सभा का प्रधान पद मैंने छोड दिया है। केवल गुरुकुल की सेवा मे अब जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ। यदि आर्य पुरुषो को स्वीकार हुआ तो ठीक है। नहीं तो अपने परिवार की उन्नति मे लगूँगा।

1 अब मेरा स्वास्थ्य अच्छा है। झोपडी का रहना मेरे अनुकूल पडेगा।

2 तुम अपना समाचार अब विस्तारपूर्वक लिखो, तुम्हारे शरीर की अवस्था तो गुरुदत्त के लेख से अच्छी प्रतीत होती है।

3 मेरा समय विभाग यह है कि 4 बजे प्रात उठकर 2½ घण्टा लेख का काम करता हूँ, फिर स्नान सन्ध्या के पश्चात् व्यायाम करके 1½ मील परे गुरुकुल मन्दिर का काम देखने जाता हूँ। 11 बजे लौटकर भोजन, 3 बजे तक फिर लेख का काम, साढे पॉच बजे तक फिर मन्दिर का काम, सन्ध्या भोजन के पश्चात 10 बजे फिर लेख का काम। अवकाश नही मिलता, तुम अवश्य पत्र लिखा करो।

मुशीराम

महात्मा मुशीराम ने हिम्मत करके मनुष्यो के लिए दुर्गम, हिसक पशुओ से परिपूर्ण और कटीली झाडियो से सकुल कागडी ग्राम के जगल मे कुछ छप्पर डलवा दिए, जिससे गुरुकुल जन्मोत्सव के समय ब्रह्मचारियो और अतिथियो के ठहरने की व्यवस्था हो सके। लेकिन हरिद्वार मे प्लेग नामक बीमारी के फैल जाने के कारण आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब को अपने पूर्व निर्णय मे कुछ परिवर्तन करना पडा। सभा की दिनाक 19 जनवरी, 1902 की बैठक मे यह निर्णय लिया कि गुरुकुल का जन्मोत्सव प्लेग के कारण सार्वजनिक रूप मे नहीं मनाया जाएगा। इसके लिए किसी को निमन्त्रण पत्र भी नहीं भेजा जायेगा और न सभा की ओर से आने वालो के ठहरने की कोई व्यवस्था की जायेगी। इस निर्णय की सूचना समाचार पत्रो मे भी प्रकाशित करवा दी गई।

गुरुकुल मे ब्रह्मचारियो के निवास, अध्ययन और भोजन आदि के लिए काम चलाऊ प्रबन्ध हो गया। लेकिन इन छप्परो मे पढने वाले ब्रह्मचारी कहा से आऍगे? इस समस्या का निदान महात्मा मुशीराम पहले ही कर चुके थे। जालन्धर आर्य समाज भवन मे वैदिक पाठशाला नामक एक सस्था विद्यार्थियो को पढाने के लिए खोली गई थी। यह पाठशाला एक प्रकार से गुरुकुल के वटवृक्ष का बीज थी। और आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्वावधान मे चलती थी। गुरुकुल की योजना पक्की हो जाने पर आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब के आदेश से यह पाठशाला गुजरानवाला स्थानान्तरित कर दी गई और इसे अस्थायी गुरुकुल की पूर्वपीठिका के रूप मे मान्यता प्राप्त हुई। यहा से यह पाठशाला कागडी ग्राम के गुरुकुल मे स्थानान्तरित होनी है, यह सभी विद्यार्थियो, उनके अभिभावको और अध्यापको को पता था। महात्मा मुशीराम ने गुरुकुल कागडी मे अपने दोनो पुत्रो को भेजने का मन बहुत पहले ही बना रखा था। सवमेध यज्ञ की पूर्ति के लिए महात्मा जी ने दोआबा स्कूल की छठी ओर सातवीं कक्षाओ मे पढने वाले अपने दोनो पुत्रो हरिश्चन्द्र और इन्द्र को स्कूल से उठा कर गुजरानवाला की वैदिक

पाठशाला मे भेज दिया। महात्मा जी के इस कृत्य से लोगो के मनो मे श्रद्धा उत्पन्न हुई। इस पाठशाला मे वे सब से छोटे बच्चे थे। 22 फरवरी 1902, ई0 को महात्मा जी गुजरानवाला की पाठशाला के विद्यार्थियो को लेकर चल पडे और 4 मार्च को गुरुकुल कागडी मे पहुँच गये। इसकी सूचना एक पत्र से इस प्रकार मिलती है–

प्रिय पुत्र गुरुदत्त जी, नमस्ते।

अफसोस कि मै तुम्हे खत न लिख सका। 22 फरवरी को यहाँ ये चल कर 32 ब्रह्मचारियो को 4 मार्च तक यहाँ ले आया हूँ। अब यहाँ जगल मे , आनन्द पूर्वक ब्रह्मचारी पढते है। एक पल की मुझे फुरसत नही है, यह वजह है कि न तुम्हे पत्र लिख सका, न सुमित्रा को जवाब दे सका। जालन्धर से आकर अमृतकला को भी कोई पत्र नहीं लिख सका।

पुत्री का नाम सुमित्रा ने पूछा था, मैने चन्द्रकला नाम रख दिया है, यही नाम रख देना, यदि अभी तक नामकरण न हुआ हो। मै दिन–रात काम मे रहता हूँ। एक पल का अवकाश नही, एक तरफ इमारत बन रही है, दूसरी तरफ ब्रह्मचारियो के भोजन आदि की फिक है, तीसरी तरफ उनको तालीम और वह भी सारे जग से निराली। ईश्वर की दया से आशा है कि काम चल निकलेगा। इस वक्त मुझे अपने लिए रुपये की जरुरत है, अगर स्पेयर कर सको, तो भेज देना, सुमित्रा को पन्द्रह दिनो तक और नहीं भेज सकूँगा, फिर लिखूँगा मुफस्सल।

मुशीराम

उपर्युक्त पत्र से यह तो पुष्ट हो गया कि महात्मा जी 4 मार्च को गुरुकुल कागडी पहुँच गए। परन्तु हरिद्वार से गुरुकुल कागडी पहुँचने का विवरण इस पत्र मे नहीं दिया गया है। इसकी पूर्ति इन्द्र ने की है। इन्द्र उन ब्रह्मचारियों मे से एक थे जो स्वामीजी के साथ गुरुकुल कागडी की नवीन शिक्षण स्थली मे हरिद्वार से कागडी तक पैदल चलकर पहुँचे थे। इस पैदल यात्रा का वर्णन करते हुए उन्होने लिखा है कि––

"शीत ऋतु के अन्तिम दिन थे। सायकाल के चार बजे के लगभग हम कोई एक दर्जन बच्चे पजाब से आने वाली गाडी से हरिद्वार के स्टेशन पर उतरे। हम गुजरानवाला से पिता जी के साथ आए थे। जालन्धर से हमारी मण्डली मे भडारी शालिग्राम जी दो–तीन बच्चो को साथ लेकर सम्मिलित हो गए थे। स्टेशन पर आचार्य गगादत्त जी कई सज्जनो के साथ स्वागत के लिए आए हुए थे।

जब हम लोग स्टेशन पर उतर कर सामान के पास बैठे तो कुछ ईसाई पादरी ओर पादरिने हमारे वेश से आकृष्ट होकर वहाँ आ गई। सब बालको ने धोती का एक छोर बाँधा हुआ था ओर दूसरा छोर गले मे डाला हुआ था। शरीर पर कुर्ता था और हाथ मे एक–एक लाठी थी। वे हमे कुछ देर तक ध्यान से देखने और आपस मे चर्चा करने के बाद पिता जी के पास आकर पूछताछ करने लगे। हमे उन्होने मिश्नरी सस्था के बालक समझा और हम लोगो के स्वास्थ्य की प्रशसा की।

स्टेशन से निकल कर एक जलूस बनाया गया। सबसे आगे पिता जी और प0 गगादत्त जी थे, उनके पीछे महर्षि दयानन्द का बडा चित्र लिए एक सज्जन थे, जिनका नाम तोता राम था। उनके पीछे दो–दो की पक्ति मे हम लोग थे। स्टेशन से निकलते ही हम लोगो ने प्रार्थना के आठ मन्त्रो का उच्च स्वर से पाठ आरम्भ कर दिया और निरन्तर करते–रहे, जब तक जलूस कनखल से पार न हो गया। हम लोग स्टेशन से चलकर मायापुर के पुल से उतर कर कनखल के बाजार मे पहुँचे और सारे बाजार का चक्कर काटते हुए दक्ष के मन्दिर पर जा पहुँचे। इस सारे–रास्ते मे सब लोग निरन्तर वेद–मन्त्रो का उच्च स्वर से पाठ करते रहे। हरिद्वार और कनखल तब मुख्य रूप से यात्रियो और

पण्डो के शहर थे, वे सनातन धर्म के गढ समझे जाते थे। अब तो धीरे–धीरे उनमे कुछ नवीनता का सचार हो गया है, पर उस समय तो वे सनातनता के स्तम्भ थे। ओ के झण्डे और वेद–मन्त्रो के खुले पाठ को वे बहुत ही आश्चर्य भरी दृष्टि से देख रहे थे। वे हम लोगो को किसी दूसरी दुनिया के प्राणी समझ कर विनोद अनुभव कर रहे थे। दक्ष का मन्दिर पार करके हमने वेद–पाठियो का रूप छोड कर यात्रियो का रूप धारण कर लिया। हम गुजरानवाला मे ही सुन चुके थे कि हरिद्वार के समीप गगा के उस पार कागडी नामक ग्राम गुरुकुल के लिए दान मे मिला है। हम लोग वहीं से ले जाए जा रहे थे। बच्चो के लिए सब कुछ नया था। दक्ष के के मन्दिर से आगे चलते ही रास्ता गगा की रेती मे उतर गया जहा गोल पत्थरो ओर बालू के दो मील चौडे नदी के स्तर पर दो–तीन पुल बने हुये थे।

सूर्य अस्ताचल को पहुँच चुका था और अन्धकार के साथ सर्दी आकाश से उतर रहीं थी। हम बालक नई दुनिया को देखने की उत्सुकता से प्रेरित होकर नगे पॉव उस पत्थर और बालू के मार्ग पर तेज गति से चले जा रहे थे। जगल के कटीले रास्तो मे हम बढते जा रहे थे कि इतने मे पीछे से आवाज आई—

प्रधान जी हम तो रास्ता भूल गए। यह पगडडी गुरुकुल को नहीं कागडी ग्राम को जा रही है। यह सुनकर पिता जी ने कहा–तब तो हमे कागडी के नाले से होकर जाना पडेगा। मग्घरसिह से कहो कि लालटेन लेकर आगे–आगे चले। मग्घर सिह लालटेन हाथ मे लटकाये आगे–आगे हुआ और तीर्थयात्रियो की लम्बी पक्ति उसके पीछे खैरो के काटो को रौदती हुई चली।

जिस समय यह निशा–यात्रा समाप्त हुई, आकाश मे चॉदनी के धवल प्रकाश मे जो सुन्दर दृश्य दिखाई दिया, वह अब तक भूला नहीं है। घने जगल के बीचो–बीच कोई दो बीघे का मैदान साफ किया गया था। उसमे एक ओर फूस के छप्परो की एक लम्बी पक्ति थी, जो छात्रो के रहने का आश्रम स्थान था। उसके साथ समकोण बनाती हुई दूसरी छप्परो की पक्ति मे भोजन–भण्डार था। उसके बीच के कोने मे एक स्विस काटेज लगा हुआ था, जो प्रधान जी का दफ्तर भी था और रहने का स्थान भी। इन छप्परो से कुछ दूर दो छप्पर डाल कर गौशाला बनाई गई थी। यह फूस के छप्परो का डेरा उस खिली हुई चॉदनी मे अद्भुत शोभा दिखा रहा था। हमे उस समय ऐसा अनुभव हुआ कि हम सचमुच स्वर्ग के किसी टुकडे मे पहुँच गए है।

उपर्युक्त विस्तृत उद्धरण देने का अभिप्राय यह है कि पाठको को यह पता चल जाए कि गुरुकुल जन्मोत्सव की तैयारी के लिए अल्पावधि मे ही महात्मा मुशी राम ने कितना कार्य कर दिया था।

नवीन ब्रह्मचारियों का वेदारम्भ संस्कार

गुरुकुल का जन्मोत्सव निश्चित तिथियो मे होली के अवसर पर हुआ। बिना निमन्त्रण पत्र के भी 500 के लगभग आर्य जन वहॉ पहुँच गए। उत्सव के प्रथम तीन दिन हवन, उपदेश और सत्सग आदि के कार्य होते रहे। चौथे दिन 24 मार्च को 45 नवीन ब्रह्मचारियो का वेदारम्भ सस्कार हुआ और चैत्र वदी प्रतिपदा को विधिवत् पढाई आरम्भ हो गई[2]। सुकुमार वय के ब्रह्मचारी वन्य पक्षियो–पशुओ के मध्य पलते हुए वन्य भूमि को सुरनदी की ध्वनि के साथ वेद ध्वनि करते हुए गुजायमान कर रहे थे। अब यह भूमि ऋषि आश्रम तुल्य थी, जहॉ यज्ञ का धुऑ और गौए विचरती दिखाई पडती थीं।

गुरुकुल के प्रथम वेदारम्भ सस्कार की गरिमा का वर्णन करते हुए एक प्रत्यक्षदर्शी प्रमुख ईसाई प्रचारक ने लिखा है कि तत्पश्चात् बालको के अभिभावको मे से एक उन सबका प्रतिनिधि बन कर खडा हुआ और उसने ब्रह्मचारियो से तीन प्रतिज्ञाये करवाई कि जब तक तुम पच्चीस वर्ष के नहीं हो जाते,

उस समय तक सत्रह वर्ष (आठ वर्ष पूरे करने पर प्रवेश होता था) गुरुकुल मे रह कर आज्ञापालन, पवित्रता और अपरिग्रह का जीवन व्यतीत करोगे। प्रत्येक प्रतिज्ञा का भाव उन्हे भली-भाँति समझाया गया, तत्पश्चात् वे प्रतिज्ञाए उनसे कराई गई। यह हो जाने पर उन्हे लकडी की खडॉउ दी गई, जो दूसरो की सहायता तथा अन्यो के प्रति कल्याण का प्रतीक है। तदुपरान्त उनका जल से अभिषेक किया गया। प्रत्येक ब्रह्मचारी के लिए यह क्रिया पृथक रूप से की गई। हाथ, पैर, मुख, नेत्र, कान आदि पर जल सिचन किया गया।

अपने होठो पर अगुली रखकर उन्होने प्रतिज्ञा की कि वे अब से वे परमात्मा के प्रति समर्पित हैं। उन्हे स्मरण कराया गया कि अब उनका मुख पवित्र हो गया हैं, अत उसका प्रयोग सत्य, पवित्र और उदार वाणी मे ही होगा। इसी प्रकार उनके कान, जो हाथो से स्पर्श किये गये हैं तथा पवित्र हुए हैं आगे से अदूषित और मधुर वाणी ही सुनेगे। इसके उपरान्त वे अपने आचार्य तथा गुरु को सौंप दिए गए, जो अगले सत्रह वर्षो तक उनके लिए पिता-तुल्य पूज्य होगा। आचार्य ने इन छात्रो के लिए एक अत्यन्त प्रभावशाली तथा प्रिय उपदेश दिया। उसने उन्हे अपना बच्चा ही समझ कर अत्यन्त सादगी, प्रेम और सच्चाई के साथ, सम्बोधित किया।

इस अनुशासनात्मक सम्बोधन के पश्चात् उन्हे दीक्षा सूचक दण्ड दिया गया तथा उनको कहा गया कि वे इसका प्रयोग आत्म रक्षा, असहायो की रक्षा तथा किसी अन्य धर्म पूर्ण कार्य मे ही करेगे। इसके पश्चात् उन्हे उपस्थित लोगो से भिक्षा मॉगने के लिए भेजा गया जो आकिचनता, मानवता तथा पवित्र याचना युक्त जीवन जीने का प्रतीक था। "इस प्रकार यह प्रभावशाली सस्कार समाप्त हुआ।"

ब्रह्मचारियों की दिनचर्या

नागरिक सुविधाओ से शून्य निर्जन कान्तार मे कमनीय किशोरो की दिनचर्या तथा इनके सरक्षण का सम्पूर्ण दायित्व महात्मा मुशीराम का ही था। वस्तुत वे ही ब्रह्मचारियो के लिए सर्वेसर्वा थे। गुरुकुल के एक स्नातक ने कालिदास के रघुवंश के प्रथम सर्ग के एक श्लोक को परिवर्तित रूप मे प्रस्तुत करते हुए गुरुकुल के उत्सव पर कहा था—

छात्राणां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरो ऽस्माक केवलं जन्म हेतवः ।।[1]

अर्थात् महात्मा मुशीराम ब्रह्मचारियो मे विनय भाव उत्पन्न कराने, उनकी रक्षा करने और सबका भरण-पोषण करने के कारण उनके वास्तविक पिता है। माता-पिता तो केवल जन्म देने वाले ही हैं।

हम महात्मा मुशीराम के सरक्षण दायित्व पर लेखनी चलाने से पूर्व ब्रह्मचारियो की दिनचर्या, वेशभूषा और अभिभावको से मिलने सम्बन्धी नियमो के विषय मे लिखना उचित समझते है, जिससे हमे महात्मा मुशी राम द्वारा स्थापित गुरुकुल के आदर्शो का अनुमान हो सके।

गुरुकुल मे प्रत्येक ब्रह्मचारी को चार बजे उठना पडता था। यदि किसी कारण घण्टी की आवाज न सुनकर कोई ब्रह्मचारी नहीं उठता था तो अधिष्ठाताओ (वार्डन, सरक्षक) द्वारा उठाया जाता था। उठकर फौजी अनुशासन के समान अपना बिस्तर लपेटता और यथास्थान रखना पडता था। एतत्पश्चात मुँह-हाथ धोकर प्रार्थना के लिए एकत्र होना अनिवार्य था। प्रार्थना के बाद अधिष्ठाता के साथ दॉए हाथ मे दण्ड, बॉए हाथ मे जलभरा लोटा, और बगल मे जॉंघिया ओर धोती लेकर शौच से निवृत्त होने जगल मे चले जाते थे। शौच के उपरान्त दण्ड की सहायता से दातून तोडते ओर कुल्ला आदि करके रेत मे कबड्डी खेलते और दण्ड-बैठक लगाते। दो-दो सौ दण्ड और बैठक लगाना सुकुमार बालको के बॉए हाथ का खेल था। इसके पश्चात् कुछ देर विश्राम करके स्नान करते थे। अत्यन्त सर्दी के दिनो को छोडकर शेष दिनो मे गगा की नीलधारा मे गोते लगाकर ही स्नान किया जाता था।

उसके पश्चात् यज्ञशाला मे आकर सन्ध्या–हवन की विधि पूरी की जाती थी। हवन के पश्चात् महात्मा जी का उपदेश होता था। उपदेश के बाद दूध की घण्टी बजती थी और प्रत्येक ब्रह्मचारी को आधा सेर शुद्ध दूध मिलता था।

इसके उपरान्त पढाई का कार्य आरम्भ होता था और मध्यान्ह भोजन का समय होता था। गुरुकुल की अपनी ही पाठ विधि थी। भारत के शिक्षा क्षेत्र मे सरकारी तत्र से हट कर आर्ष पाठ विधि की शिक्षा का यह प्रथम प्रयास था। गुरुकुल की शिक्षा प्रणाली मे रेमजे मैकडानल्ड ने एक लेख मे लिखा था कि "सन् 1935 ई0 मे मैकाले ने सहकारी पत्रक मे अपने विचार प्रस्तुत किए थे। तब से भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध मे किये गये प्रयासो मे से यह सबसे अधिक महत्व पूर्ण है। उन विचारो से भारत मे प्रत्येक असन्तुष्ट है। परन्तु जहॉ तक मैं समझता हूँ, गुरुकुल के प्रवर्तको के अतिरिक्त किसी ने भी अपने असन्तोष को नवीन प्रयोग के रूप मे परिणित नहीं किया[4] है।

पाठ विधि

इसी नवीन प्रयोग के शिक्षा के उद्देश्यो के सम्बन्ध मे स्वामी श्रद्धानन्द ने 1925 मे लिखा था "आजकल गुरुकुलो के कुछ सचालको मे शिक्षाक्रम पर मतभेद हो रहा है। ऋषि दयानन्द ने वैदिक शिक्षा के सर्वविषय गिना दिए है। उनका परिज्ञान प्राप्त करने के लिए शिष्यो की बुद्धि भेद से समय भेद होता ही रहेगा। ससार की अवस्था के परिवर्तन के कारण उसके क्रम मे भी कोई भेद आता रहेगा। यह सब गौण बाते हैं। मुख्य बात यह है कि शुद्ध आर्ष ग्रन्थो की शिक्षा और विषमय अनार्ष ग्रन्थो का त्याग। ग्रन्थ गौण है। ग्रन्थो मे लिखे शब्द और इनका सम्बन्ध गौण है। मुख्य तो शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, और आत्मा की समान शिक्षा है। शिक्षा सार्वदेशिक होनी चाहिए न कि एक देशी[5]।

स्वामी जी की 1925 की मान्यता का पालन सन्यासी बनने पूर्व महात्मा मुशीराम नाम से गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता एव सस्थापक कहलाने वाले ने कहॉ तक किया, इसका विश्लेषण गुरुकुल की पाठ विधि को देख कर ही किया जा सकता हैं। शुरु–शुरु मे गुरुकुल कागडी के विद्यालय–विभाग मे सस्कृत साहित्य, सस्कृत व्याकरण, इतिहास और धातु पाठ ही पढाये जाते थे। सस्कृत साहित्य और सस्कृत व्याकरण की शिक्षा ऋषि दयानन्द के सत्यार्थ–प्रकाश मे दी गई आर्ष पाठ विधि के अनुसार ही दी जाती थी। जबकि महात्मा मुशीराम ने स्वय सस्कृत की शिक्षा अनार्ष पाठ विधि 'लघु कौमुदी' द्वारा प्राप्त की। आर्ष पाठ विधि के प्रति अगाध श्रद्धा होते हुए भी महात्मा मुशीराम अपने जीवन मे तुलसी कृत "रामरचित मानस" के प्रभाव को कभी दूर नहीं कर सके। गुरुकुलीय जीवन मे बात–बात पर वे "रामचरित मानस' को उद्धृत करते रहते थे।

'कल्याण मार्ग के पथिक' की प्रस्तावना मे स्वामी श्रद्धानन्द ने लिखा हैं" अपनी निर्माण की पाठ विधि मे आचार्य ने 'सर्वभाषा ग्रन्थ' त्याज्य लिखे है। इस पर सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुल्लास मे इस प्रकार प्रश्नोत्तर किया है–

प्रश्न– क्या इन ग्रन्थो मे कुछ भी सत्य नहीं?

उत्तर– थोडा सत्य तो हैं, परन्तु उसके साथ बहुत सा असत्य भी है। इससे जैसे अत्युत्तम अन्न विष से युक्त होने से छोडने योग्य होता हैं वैसे ये ग्रन्थ है।

आचार्य का यह लेख महत्वपूर्ण है। आजकल कुछ ऐसे आर्यसमाजी भी हैं जो यह समझते हैं कि किसी भाषा ग्रन्थ को न पढना चाहिए। यह उनकी भूल है। ऋषि ने उनमे यत्किचित् सत्य भी माना है। किन्तु बाल्यावस्था मे शिक्षा ग्रहण करने के लिए सकेत दिया हैं कि वेद शास्त्रानुकूल नये भाषा–ग्रन्थो का निर्माण करना चाहिए। परन्तु जिस प्रकार गृहस्थो के लिए आचार्य ने आज्ञा दी

है कि सत्य का मण्डन और असत्य मत का खण्डन सीखकर सदाचार पूर्वक विदेश मे जाने से हानि नहीं उसी प्रकार गुरुकुलो तथा राष्ट्रीय विद्यालयो मे भी शिक्षा समाप्त करने के पीछे पुराने भाषा–कवियो के ग्रन्थ पढने से लाभ ही होगा। मैने इस कहानी मे दिखलाया है कि आर्य सस्कृति के गिरे से गिरे समय मे भी तुलसीदस आदि की कविताओ ने आर्य सस्कृति को लुप्त होने से बचाया है[6]।

ऋषि दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के तृतीय समुल्लास मे बडे विस्तार के साथ 'पठनपाठन विधि' लिखी हैं। इस विधि के अनुसार प्रथम पाणिनिमुनि कृत शिक्षा तदनन्तर अष्टाध्यायी, धातुपाठ, उणादि गण, महाभाष्य पढावे। महाभाष्य के उपरान्त यास्क मुनि कृत निघण्टु और निरुक्त, तदनन्तर पूर्वमीमासा, वैशेषिक, न्याय, योग, साख्य, और वेदान्त पढावे[7]। गुरुकुल कागडी मे दसवीं श्रेणी तक मीमासा दर्शन को छोडकर शेष पॉचो दर्शन तथा उन दर्शनो की प्रसिद्ध टीकाएँ, सम्पूर्ण अष्टाध्यायी, धातुपाठ, महाभाष्य और निरुक्त पढा दिये जाते थे।

ऋषि दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के तृतीय समुल्लास मे भाषा ग्रन्थो के समान सस्कृत के कुछ ग्रन्थो को अनार्ष कह कर अपठनीय माना है। इस प्रकार के ग्रन्थो मे कालिदास का 'रघुवश' भी परिगणित किया है, परन्तु गुरुकुल मे रघुवश के प्रथम दो सर्ग साहित्य के पाठ्य क्रम मे पढाए जाते थे। इस प्रकार गुरुकुल मे अनार्ष कहे जाने वाले ग्रन्थो से उन अमृतमय अशो को भी पढाया जाता था जो कि भारतीय सस्कृति के गौरव को बढाने वाले थे। रघुवश के प्रथम दो सर्गों मे राजा से ऋषि महत्वपूर्ण है। और ससार की सकल चल सम्पत्तियो मे गाय सर्वश्रेष्ठ है, यह अप्रत्यक्ष रूप से दर्शाया गया है।

गुरुकुल शिक्षा के क्षेत्र मे एक स्वायत्त और सर्वप्रभुत्ता सम्पन्न सस्था थी। इसका सरकारी शिक्षा तन्त्र से कुछ लेना–देना नहीं था। कार्यकर्ताओ ओर अध्यापको मे कोई अग्रेज नहीं, अग्रेजी शिक्षा का माध्यम नहीं। पजाब विश्व विद्यालय द्वारा भारतीयो की उच्च शिक्षा के मूल स्तम्भ के तौर पर निर्दिष्ट अग्रेजी साहित्य की पाठ्य पुस्तके यहाँ प्रयुक्त नहीं होती थी। महाविद्यालय अपनी ही पदविया देता था[8]। गुरुकुल की दसवीं श्रेणी की पदवी 'विद्याधिकारी' थी और अब भी है। शिक्षा स्तर की दृष्टि से यह सबसे कठिन परीक्षा मानी जाती है। इस की पढाई करने वाले ब्रह्मचारी सस्कृत व्याकरण, सस्कृत साहित्य एव वैदिक दर्शन मे एम.ए. स्तर की योग्यता रखते थे। अत 'विद्याधिकारी' परीक्षा उत्तीर्ण करना शिक्षा क्षेत्र के महार्णव को पार करना समझा जाता था।

गुरुकुल मे ब्रह्मचारियो को पाठान्तर क्रियाओ मे सलग्न करके उनकी अन्तर्निहित प्रतिभाओ को भी विकसित किया जाता था। उस काल मे अष्टम श्रेणी तक के विद्यार्थियो के लिए वाग्वर्धिनी सभा, नवम और दशम श्रेणियो के छात्रो के लिए वाग् विकास सभा आदि चला करती थी। इन सभाओ द्वारा समय–समय पर हस्तलिखित पत्रिकाए भी प्रकाशित की जाती थीं। इसी प्रकार गुरुकुल मे विभिन्न पर्वो को भी बडे उत्साह से मनाया जाता था। इन पर्वो मे विजयदशमी, दीपमालिका, गुरुकुल जन्ममहोत्सव और लोहडी आदि विशेष रुचि से मनाए जाते थे। लोहडी पर्व पजाब की सस्कृति का पर्व है। विजय दशमी पर स्त्री पात्रो को छोडकर रामलीला नाटक के रुप मे प्रस्तुत की जाती थी। इसके अतिरिक्त कुश्ती,तैराकी, ओर दौड प्रतियोगिताए भी आयोजित होती थीं। समय निकालकर अवकाश के दिनो मे छात्रो को लम्बी यात्राओ के लिए भी भेजा जाता था। इस प्रकार सन् 1925 के लेख मे दिए गए विचारो अर्थात् इन्द्रिय, मन, बुद्धि और आत्मा की समान शिक्षा देकर तत्कालीन महात्मा मुशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने अपना कर्तव्य निभाया।

वेशभूषा:-जहॉ तक तत्कालीनगुरुकुलीय वेशभूषा का सम्बन्ध हैं, वहॉ उन दिनो प्रत्येक ब्रह्मचारी को अमीर–गरीब का अन्तर किये बिना एक जैसे वस्त्र दिए जाते थे, जो खद्दर के होते थे। सभी छात्रो को पीली धोती गातीदार ढग से बॉधनी पडती थी। उत्सव से दो–तीन दिन पूर्व नई रगी हुई धोतियाँ ब्रह्मचारियो को बॉट दी जाती थीं।. प्राय. ब्रह्मचारियो की कमीजे बिना कालर की होती

थीं। पैरो मे खडाऊँ वह भी खूटीदार शोभा पाती थी। गले मे यज्ञोपवीत हर समय वैदिक सिद्धान्तो के प्रहरी के रूप मे वलयित भुजगाकार अथवा धुनषाकार रूप मे रहता था। सिर पर मोटी चोटी रहती थी।

उत्सव पर विशेष सावधानीः- स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास मे ब्रह्मचारियो के लिए स्त्री दर्शन, तथा अध्ययन की सम्पूर्ण अवधि मे माता–पिता से मिलना अथवा पत्र व्यवहार करना निषिद्ध लिखा है[9]। गुरुकुल कागडी के आरम्भ काल मे इस नियम का पालन यथासाध्य विधि से किया जाता था। उत्सव के दिनो मे कोई भी ब्रह्मचारी अधिष्ठाता की उपस्थिति के बिना न अपने अभिभावको से मिल सकता था, न उत्सव की ओर बिना कार्यक्रम के जा सकता था। अभिभावको से मिलने के लिए भी आश्रम के पीछे तम्बू लगाये जाते थे। दोपहर के समय केवल पुरुषो को आश्रम (ब्रह्मचारियो के रहने का स्थान) देखने की आज्ञा मिलती थी। उस समय प्रत्येक ब्रह्मचारी को कोई न कोई पुस्तक लेकर अत्यन्त सावधान की स्थिति मे अपने तख्त पर बैठना पडता था। एक दिन दोपहर बाद महिलाओ के लिए गुरुकुल देखने का समय रखा जाता था। उस दिन ब्रह्मचारियो को गुरुकुल से विदा होना पडता था। ब्रह्मचारी भोजन से पूर्व ही जगल मे जाकर वृक्षो के नीचे डेरा डाल देते थे। वहीं पर उनके लिए भोजन पहुँचा दिया जाता था। महिलाओ के गुरुकुल देखने के पश्चात ही ब्रह्मचारियो की वापसी होती थी। उत्सव के शामियाने मे ब्रह्मचारियो को इस प्रकार बिठाया जाता था कि उनकी पीठ स्त्रियो की ओर रहे। यह थी निराली शिक्षा की निराली पद्धति। यह युगबोध को नकार कर अतीत को पकडने का प्रयास था।

ब्रह्मचारियों के प्रति दायित्व का निर्वाहः- हमने पिछले पृष्ठो मे सकेत दिया था कि गुरुकुल मे प्रविष्ट होने वाला ब्रह्मचारी सर्वभावेन प्रपन्न होकर महात्मा मुशीराम का शरणागतिक था। शरणागतिक बालको के प्रति अपने दायित्व को महात्मा जी ने वहाँ तक निभाया, उस दायित्व से तत्कालीन ब्रह्मचारी कहाँ तक सन्तुष्ट थे, इन बातो की सूचना उन स्नातको के सस्मरणो मे सुरक्षित है, जो महात्मा जी के समय मे गुरुकुल कागडी मे प्रविष्ट हुए थे। इन सस्मरणो मे कुछ घटनाए उद्वृत करके हम यह सिद्ध करने का प्रयास करेगे कि महात्मा जी सोलह आने अपने दाायित्व को निभाने मे समर्थ रहे। सन् 1906 ई0 मे गुरुकुल मे प्रवेश लेने वाले दीनानाथ सिद्धान्तालकार ने लिखा है– यहॉ यह उल्लेखनीय है, कि महात्मा जी का न केवल मुझ से वरन् अन्य सभी छात्रो से भी पुत्रवत् अगाध स्नेह था और यदि किसी के माता या पिता की मृत्यु हो जाती थी, तो वे पुत्रवत स्नेह सान्त्वना प्रदान किया करते थे। उन्होने मेरे पिताजी की मृत्यु के उपरान्त मेरी छात्रवृत्ति की व्यवस्था करके पढाई मे व्यवधान नहीं आने दिया, वैसे ही अन्य अनेक छात्र थे, जिनके अभिभावक या पिता की मृत्यु हो जाने पर महात्मा जी ने ही उनकी पढाई को निर्विघ्न जारी रखने की समुचित व्यवस्था की थी। पर यह सब वे गुप्त रूप रखते थे। आर्य समाज के सुप्रसिद्ध विद्वान मेरे सहपाठी सत्यव्रत सिद्धान्तालकार (भूतपूर्व विजिटर एव कुलपति गुरुकुल कागडी) ने दिल्ली के एक आर्य पत्र मे यह लिखा था कि पॉचवी या छठी श्रेणी मे उनके पिता की मृत्यु हो जाने के बाद जब उन्हे इस सस्था को छोडने की आशका हुई, तब आचार्य ने इस के विषय मे निश्चित कर दिया था[10] कुलपति के दायित्व को निभाने के ऐसे उदाहरण शिक्षा के क्षेत्र मे कम ही मिलते हैं।

पितृवत् व्यवहार के साथ महात्मा जी के स्वभाव मे मातृवत् शिष्यवत्सलता एव पर सेवा की भावना कूट–कूट कर भरी हुई थी। गुरुकुल के छोटे ब्रह्मचारियो को जाडे की ठिठुरती रातो मे वे नगे होने पर रजाइयॉ ओढाते समय मातृस्नेह से विह्वल हो जाते थे। ब्रह्मचारियो के बीमार हो जाने पर माता के समान सेवा करने मे वे कभी नहीं चूकते थे। गुरुकुल के स्नातक सोमदत्त ने ऐसी आप बीती बाते लिखी हैं कि जिनसे महात्मा जी की मातृवत् शिष्य वत्सलता का मुह बोलता चित्र ऑखो के सामने उपस्थित होकर उन्हे दिव्य गुणो का पुज मानने के लिए विवश करता है। वे अपने सस्मरणो मे लिखते है–

"मै उन दिनो गुरुकुल मे पॉचवी कक्षा मे पढता था। रविवार के दिन, गर्मी के मौसम मे गगा के शीतल जल मे नहाने–तैरने से मुझे ठडक लग कर बुखार हो गया। गर्मी के कारण खुले आगन मे लकडी के तख्त बिछा हम सो रहे थे। बुखार की तेज हरारत के कारण मुझे प्यास लगी, पर पानी मेरे लोटे मे नही था। चादर से मुह ढाप कर मै सो रहा था। अचानक किसी व्यक्ति ने मेरे पास आकर पूछा क्यो क्या बात है, रो क्यो रहे हो? मैने कहा मुझे बहुत जोर से बुखार चढ गया है। सख्त प्यास लगी है। रात के समय चौकीदार चक्कर लगाया करता था, मैने उन्हे चौकीदार समझा। रोओ मत, मै अभी पानी लाता हूँ, कहकर वह मेरा लोटा लेकर चले, तो मैंने कहा जल्दी जा, देर न लगाना।

कुऑ वहॉ से लगभग एक फर्लाग दूर था। वहॉ से ताजा पानी लाकर नीचे रखे कटोरे मे डाल, उसने मेरी पीठ को सहारा देकर मुझे बैठाया और जल का कटोरा मेरे हाथ मे पकडा दिया। मैने ऑखे खोली तो मुझे मालूम पडा कि जिसे मै चौकीदार समझ रहा था, वह गुरुकुल के आचार्य महात्मा मुशीराम थे। अपनी लगती पर मुझे रोना आ गया तो वे बोले–क्यो क्या बात है? मैने कहा कि 'मैने आपको चौकीदार समझकर इस तरह कह कर पानी लाने का कहा, इसलिए रो रहा हूँ। वे मेरे तख्त पर बैठ गये और अपने रुमाल (दुपट्टे) से मेरी ऑखे पोछते हुए बोले–'अरे हम तुम्हारे चौकीदार ही तो है, तुम्हारे माता–पिता तुम्हे मेरी चौकीदारी मे छोड गये है।" मुझे पानी पिला कर वे असली चौकीदार को बुलाकर लाये और फिर उसकी सहायता से तख्त पर मुझे लिटाये हुए वहॉ से अस्पताल मे ले गए।"

सोमदत्त की आप बीती की अगली घटना वत्सलता एव सेवा भाव की पराकाष्ठा का उदाहरण है। इस समूची घटना से हमे गुरुकुल के 'हम सब एक कुल के वासी है" की भावना का भी बोध होता है। घटना का विवरण देते लेखक लिखता है–

"शायद सन् 1916 ई0 की बात है। मै उस समय गुरुकुल की नवम श्रेणी मे पढता था। भोजन भण्डार से सायकाल का भोजन करके अपना लोटा और कौल (कटोरा) गगा से माज कर मै अपने आश्रम मे घुसा ही था कि मेरे एक सहपाठी ने कहा–दत्त ! तुम्हे मालूम हो गया न कि तेरी डयूटी 11 से 1 बजे तक है, मैने कहा क्या बात है, कैसी डयूटी? मुझे तो अभी तक किसी ने कुछ नही बताया ! अरे ! पचम श्रेणी के ब्रह्मचारी देवदत्त को 'टाइफाइड' हो गया है। उसकी हालत ठीक नही है। डॉ0 सुखदेव जी ने उसकी सेवा के लिये आज हमारी श्रेणी की ड्यूटी लगाई है। रात के लगभग साढे बारह बजे का समय होगा। मै रोगी ब्रह्मचारी के सिरहाने के पास एक कुर्सी पर बैठा हुआ पुस्तक पढ रहा था। सहसा रोगी–ब्रह्मचारी के जागने से तथा कराहने की आवाज से मेरा ध्यान किताब से हट गया। मैने जल्दी से पुस्तक एक ओर रख दी और रोगी के माथे पर जल्दी हाथ रखकर पूछा–क्यो देव ! क्या बात है ? उल्टी सी आती मालूम होती है। रोगी ने कहा और फिर घबराहट के कारण रोने लगा। मै नीचे पडी हुई चिलमची को उठाने के लिए झुका। वह पानी तथा थूक आदि से भरी हुई थी, इसलिये मै झटपट भगी को जो चिकित्सालय के सामने वाले बरामदे मे पडा सो रहा था, बुलाने के लिये चला और थोडी देर बाद उसे अपने साथ लेकर रोगी के पास आ गया। वहॉ मैने बडे आश्चर्य से देखा–कुलपिता महात्मा मुशीराम जी रोगी ब्रह्मचारी के पास झुके खडे थे, वह कै कर रहा था और वे अपने हाथ की अजलि मे उसे कै करा रहे थे। रोगी बालक के कै करने पर उन्होने बाहर जाकर अपने हाथ स्वच्छ किये और फिर बीमार के सिरहाने बैठ कर उसका सिर सहलाने लगे। मै जमीन की तरफ ऑखे गडाये खडा था। वे मेरी तरफ देखकर बोले–तुम कहॉ चले गये थे। मैने उत्तर दिया कि यह कहता था मुझे कै आ रही है। चिलमची भरी पडी थी, इसलिए मै उसे साफ कराने के लिए भगी को बुलाने के लिये गया था। उन्होने कहा–तो जाकर आराम करो। इसकी सेवा के लिये अन्य को भेज दो। तुमसे सेवा हो चुकी। मै शर्म के मारे जमीन मे गडा जा रहा था। मेरा क्या कर्तव्य था, यह तो मेरे गुरु ने स्वय सेवा करके बता दिया था[11]।"

महात्मा मुशीराम के ब्रह्मचारियो मे प्रति निस्वार्थ प्रेम को देख कर एण्ड्रूज भी भावविभोर हो गए थे और उन्होने मुशीराम के एक पत्र के उत्तर मे लिखा "मेरा विश्वास है कि हृदय मे प्रभु

की ज्योति का जागरण उन नन्हे बालको के प्रेम से ही हुआ हैं, जिन्हे आप पिता बनकर पाल रहे हैं। मैंने देखा है कि अपने आश्रम के नन्हे बच्चो के साथ आपका कितना प्रगाढ प्रेम है। मुझे भी अपने हृदय मे कई बार बडे रुखेपन का आभास होता हैं किन्तु आपके निकट आते ही मुझे हृदय मे नई ताजगी और नये प्राण सचार की अनुभूति होती है। जीवन मे आनन्द का परम क्षण वही हैं, जब साक्षात् प्रेम मूर्ति प्रभु का सकेत पाकर आप मुझे मुग्ध हृदय से अपनी स्नेह भुजाओ मे आबद्ध करते हैं। उस समय आपकी समीपता से प्रभु दर्शन का आनन्द मिलता है।

असीम सेवा-भावनाः- यह बात नहीं कि महात्मा जी का मातृवत् स्नेह और सेवाभाव मात्र ब्रह्मचारियो के लिये ही आरक्षित हो। स्नेह और सेवा की सरिता का यह प्रवाह उनके सम्पर्क मे आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को शीतलता प्रदान करता था।

कुल की कडी से बन्धे हुए मुशीराम बिना किसी भेद–भाव के सभी के लिए समर्पित थे। उनका प्रेम और सेवा भाव ससीम न होकर असीम था। वह एकदेशी न होकर सर्वदेशी था। गुरुकुल मे रहते हुए जब एण्ड्रूज एक बार बुखार के चुगल मे आ गए, तो महात्मा जी ने उनकी सेवा सुश्रूषा मे दिन–रात एक कर दिया था। इसी सेवा–भाव को अपनी मधुर स्मृतियो मे सजोकर शान्ति निकेतन से एण्ड्रूज ने लिखा ."उस रात जब मुझे बुखार था, आपकी सेवा सुश्रूषा से मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो मेरे कष्ट निवारण और सान्त्वना देने के लिए मेरी माँ मेरे बिस्तर के पास खडी हुई हो।"

महात्मा मुशीराम जी की सेवाभावना के सम्बन्ध मे गुरुकुल के अध्यापक चन्द्रमणि ने आप बीती के सस्मरण मे इस प्रकार लिखा है—

"महात्मा मुशीराम जी अब स्वामी श्रद्धानन्द हैं। मैं भी अब विद्यार्थी नहीं, अध्यापक हूँ। विश्वव्यापी प्रथम युद्ध के बाद पहली दिवाली का दिन है। रात्रि को जगमगाती दीप–ज्योतियो के बीच मे दयानन्द निर्वाण पर्व की सभा जुटी है। सभापति हमारे कुलपिता है। उन्होने सभा मे उपस्थित सब उपाध्यायो को देखा, परन्तु मै वहॉ नहीं दीख पडा। पूछा–क्या बात है, चन्द्रमणि क्यो नही आया? किसी उपाध्याय ने बताया कि उसकी साली भीषण युद्ध–ज्वर से पीडित हो गई है। अभी–अभी इसकी बडी बहन मौत के मुँह से निकली थी ओर अभी दो दिन पूर्व ही निरसनवास (सेग्रीगेशन कैम्प) से घर आये थे कि फिर पकडे गए।

सभा के समाप्त होते ही लगभग साढे नौ बजे रात को कुलपिता मेरे पास घर पहुँचे। सब हालात देखे। लडकी को युद्ध–ज्वर ने कस कर दबोच रखा था। पूछा–रात की क्या व्यवस्था हैं, क्या उपाध्यायो ने कोई डयूटी लगाई है? मैने कहा–अभी तो शायद कुछ नहीं हुआ, मैं ही सारी रात जागूँगा। कुलपिता ने कहा–नहीं, तुम आराम से सोवो, तुम थके हुए हो, कुलवती को तो पूरा आराम मिलना ही चाहिए। सब बोझ तुम्हारे ऊपर है। रात भर आराम कर लो। मैं बीमार की चौकसी करूँगा। मैंने बहुत अनुनय–विनय की, पर कुलपिता नहीं माने। मुझे जबरदस्ती लेटा दिया और आदेश दिया कि बस सो जाओ।

स्वामी जी जागते रहे और मैं सोता रहूँ, यह कहाँ होता था। मैं लेट तो गया, पर नींद एक मिनट के लिये भी नहीं आई। बस, रात भर ऐसे लेटा रहा कि कुलपिता ने सोचा, मैं सो रहा हूँ। रात भर मैंने देखा कि लडकी ने दस–दस मिनट बाद कुलपिता को खूब नचाया, उन्हे बैठने नहीं दिया। कभी पानी पीना हैं, कभी दर्द होता हैं, कभी कुछ और कभी कुछ। वे लगभग सारी रात खडी टाग ही रहे।

ये घटनाए तो गुरुकुल के उन ब्रह्मचारियो और उपाध्यायो की हैं, जो उस समय– कुल परिवार के अग थे। परन्तु महात्मा जी की सेवा भावना का विस्तार उन अध्यापको तक भी रहा, जो उनके सम्पर्क में रह चुके थे। आचार्य प गगादत्त गुजरान वाला की वैदिक पाठशाला मे पढाते थे और वहॉ से वे महात्मा

मुशीराम के साथ ही गुरुकुल मे आए और प्रथम आचार्य का पद प्राप्त किया। उन्हे शिक्षा नीति मे परिवर्तनो के कारण गुरुकुल कागडी छोडना पडा और महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) के गुरुकुल मे चले गए। वहाँ जाने के कुछ काल पश्चात वे बीमार हो गए। उनकी बीमारी की सूचना मिलते ही महात्मा जी ज्वालापुर के गुरुकुल मे गए और प. गगादत्त को अपने पास ले आए और बडी आत्मीयता से उनकी सेवा की। स्वास्थ्य लाभ होने पर उन्हे जाने दिया[13]।

इस प्रकार गुरुकुल वास्तव मे एक आदर्श कुल था। इस आदर्श कुल के आदर्श पिता महात्मा मुशीराम थे। यदि यह कहा जाए कि गुरुकुल एक शरीर के समान था, तो इस बात के मानने मे कोई सन्देह नहीं कि इस शरीर की आत्मा महात्मा मुशीराम थे। किसी भी ब्रह्मचारी के पॉव मे काटा लगता था, तो चुभन महात्मा जी को होती थी। यदि किसी ब्रह्मचारी को बुखार चढता था, तो उसकी कम्पन महात्मा मे देखी जा सकती थी। प्याल (जगली फल जो चण्डी पर्वत माला मे अत्यधिक होता था) खाने के लिए गए ब्रह्मचारियो द्वारा देरी करने पर, महात्मा जी के माथे पर पसीने की बूदे सरलता से निहारी जा सकती थीं। गगा की धारा को आर–पार करने मे ब्रह्मचारियो द्वारा देरी करने पर उनकी सासे फूलने लगती थीं। फनियर सर्पो द्वारा ब्रह्मचारियो को आक्रान्त देखकर, वे बचाव के लिए तुरन्त तत्पर दिखाई पडते थे। इस प्रकार कुलभूमि मे कहीं तडपन होती थी, तो उसका सबसे अधिक प्रभाव महात्मा जी पर होता था। यह अनुभूति एक पक्षीय न होकर द्विपक्षीय थी। ब्रह्मचारी भी महात्मा जी को पिता–माता तुल्य समझते थे। गुरुकुल के उत्सव पर प्राय सभी ब्रहचारियो के अभिभावक उनसे मिलने के लिए आते थे। एक उत्सव पर सातवीं श्रेणी का ब्रह्मचारी ब्रह्मदत्त अपने किसी भी सरक्षक के न आने से बडा उदास हो गया था। स्वामी जी को जब इस बात का पता चला तो उन्होने ब्रह्मदत्त को अपने पास बलाया। वहॉ से ब्रह्मचारी हसता हुआ आया और अपने साथियो से बोला–हम भी अपने पिता जी से मिलकर आ रहे है। सभी ब्रह्मचारियो ने गृह के माता–पिता को भुला कर वनवास मे एक ही व्यक्ति मे माता–पिता और गुरु का रूप पा लिया था। इसीलिए तो वे पुकार–पुकार कहते थे।

''बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं। पाये मातु पिता वन माहीं।।''

दण्ड-व्यवस्थाः- क्या महात्मा मुशीराम के समय मे गुरुकुल मे सभी कुछ आदर्श का प्रतिरूप था? इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक रूप में दिया जा सकता है। गुरुकुल मे एक बात ऐसी थी, जो नकारात्मक कही जा सकती थी। वह थी दण्ड व्यवस्था। यद्यपि महात्मा जी की दण्ड व्यवस्था एक महात्मा के विशाल हृदय के अनुकूल मनोवैज्ञानिक थी, परन्तु कुछ अन्य अध्यापको की दण्ड व्यवस्था कठोर थी।

उनका विचार था कि ब्रह्मचारियो के अविनय भाव को दूर करने के लिए भय उत्पन्न करने की अपेक्षा अभय देने की आवश्यकता होतीहै। अविनीत छात्रो को क्रोध से नहीं अपितु प्रेम से वशीभूत किया जाता है। छात्रो मे आतक बैठाना स्वय मे एक हीन भावना है। इस प्रकार के व्यवहार से सौहार्द न बढ कर कटुता बढती है।

प्राचीन एव नवीन में संघर्षः- अब तक हमने गुरुकुल के उन आरम्भिक वर्षो का मनोहारी चित्र ही पाठको के सम्मुख रखा हैं जो प्राचीन सस्कृति के परिष्कृत रूपों की छवि को उभारता है। अब हम गुरुकुल के रूप की परख भी करना चाहते है। कि जिसकी घोषणा गुरुकुल के प्रथम विवरण–पत्र (प्रोस्पैक्टस) मे की गई थी। इस विवरण पत्र के अनुसार ज्ञान के क्षेत्र मे पूर्व और पश्चिम के मिलन की बात कही गई थी। ज्ञान के क्षेत्र मे मिलन की बात तो गुरुकुल मे बाद मे आई, उससे पहले दीपक बनाम लालटेन' और कुनीन बनाम कुचला का विवाद खडा हुआ इन विवादो मे लालटेन और कुनीन प्रभावी होकर नवीनता लाने (पश्चिमी प्रभाव) मे पश्चिम की पहली खिडकी बनी। गुरुकुल मे प्रथम वर्ष मे ही तीस–तीस ब्रह्मचारियो के रहने के लिए कच्ची दीवारो वाले टिन शैड खडे कर दिए गए थे। इन बडे कमरो

को रात्रि मे प्रकाशित करने के लिए बडी लालटेनो की आवश्यकता अनुभव की गई। बस फिर क्या था। प्राचीन आदर्शो के प्रवक्ता और पालक आचार्य गगादत्त जी ने लालटेन के प्रस्ताव के विरुद्ध वातावरण बना दिया। इनके सहयोगियो मे शालिग्राम भण्डारी भी थे। दूसरी और लालटेन के पक्षधरो मे भगत राम (गुजरान वाला के आने वाले दल के सदस्य) डिगा निवासी थे । लालटेन की विरोधी धारा मे आचार्य गगादत्त के कारण सभी ब्रह्मचारी भी सम्मिलित थे। परन्तु लालटेन के प्रयोग के पीछे महात्मा जी का आशीर्वाद था, अत अपरिवर्तनवादियो का यह आन्दोलन दो मास के लगभग चलकर स्वत समाप्त हो गया। सरसो के तेल से जलने वाले दीपक की स्वास्थमयी गन्ध के स्थान पर मिट्टी के तेल की बदबूदार अस्वास्थ्यकर गन्ध ने सबको मोहित कर लिया। नवीनता की पहली विजय दर्ज हुई।

'दीपक से लालटेन' का परिवर्तन निर्जीव वस्तु से सम्बन्धित था, परन्तु दूसरा परिवर्तन सजीव वस्तु से था। वह सजीव वस्तु कोई साधारण वस्तु न होकर स्वय महात्मा मुशीराम का पुत्र इन्द्र था। गुरुकुल मे मलेरिया का प्रकोप होने पर महात्मा जी ब्रह्मचारियो को कुनीन की गोलिया प्राय दे दिया करते थे। अन्दर खाने कुनीन के प्रयोग पर आपत्तिया होने लगी। कुनीन के विरोध मे यह प्रचारित किया जाने लगा कि यह ब्रह्मचर्य के लिए हानिकारक है। इसके अगुआ भी आचार्य गगादत्त ही थे। ब्रह्मचारियो ने कुनीन प्रयोग के विरुद्ध सर्वसम्मति कर ली। कुछ समय पश्चात गुरुकुल से कुनीन का प्रयोग उठ गया। कुनीन का प्रयोग उठने पर मलेरिया बुखार के उपचार के लिए 'कुचला' की गोलिया (आयुर्वैदिक औषधि) का प्रयोग होने लगा। 'कुनीन ओर कुचले' के द्वन्द्व मे फसे इन्द्र की अवस्था क्या हुई, इसका वर्णन इन्द्र के शब्दो मे इस प्रकार है। " " उन दिनो डाक्टर सुखदेव जी गुरुकुल मे आ चुके थे, परन्तु जहॉ तक मुझे याद हैं अभी गुरुकुल के चिकित्सक नहीं बने थे। उन्हे मेरी दशा पर तरस आया तो उन्होने प्रधान जी से कहा कि इन्द्र को मलेरिया बुखार आ रहा है, इसे जब तक कुनीन नही दी जाएगी, बुखार का टूटना असम्भव है। प्रधान जी (महात्मा मुशीराम गुरुकुल मे प्रधान जी के नाम से पुकारे जाते थे) ने इस बात से सहमत होकर आचार्य जी से सलाह की। आचार्य गगादत्त जी को मुझ से बहुत प्रेम था। उन्होने पिता जी को जो उत्तर दिया वह मुझे अब तक याद है। उन्होने कहा–'लडके को कुनीन देने से तो अच्छा है कि उसे जहर दे दिया जाए। इस पर पिता जी चुप हो गए, परन्तु डाक्टर सुखदेव जी चुप नहीं हुए और उन्होने कुनीन देने का आग्रह जारी रखा। .. सो डाक्टर जी अड गए और यह नोटिस दे दिया कि यदि इन्द्र को एक बारी पर और बुखार आएगा, तो मैं उसे कुनीन अवश्य दूँगा, चाहे उसका परिणाम कुछ ही हो। पिता जी ने डाक्टर का यह दृढ निश्चय आचार्य जी को भी बतला दिया और साथ ही अपनी सम्मति भी प्रकट कर दी। चैलेन्ज मिलने पर आचार्य जी ने अपनी दवा की मात्रा बढा दी, जिसका परिणाम यह हुआ कि बुखार भी अभूतपूर्व प्रकम्पन और गर्जन के साथ चढा। टेम्प्रेचर 105 से ऊपर पहुँचा। उस बुखार ने डाक्टर जी को आचार्य जी पर पहली विजय प्राप्त करने का अवसर दिया। ...... बुखार की बारी के दिन ब्रह्म मुहूर्त से ही मुझे कुनीन मिक्स्चर के डोज मिलने शुरु हो गए। पूरी तरह याद नहीं कि कितनी कुनीन मिली। शायद डाक्टर को याद हो। इतना ही याद है कि कानो ने काम देना बिलकुल बन्द कर दिया था और सारे शरीर मे कुनीन की गर्मी बुखार की तरह फैली हुई प्रतीत होती थी। . बुखार चढ गया? परन्तु तापमान 100 से अधिक नहीं बढा। रात होने तक कुनीन विरोधी दल ने प्रतीक्षा की। जब देखा बुखार अधिक नहीं चढा तो यह कह कर सन्तोष कर लिया कि यह तो आकस्मिक बात हैं कि बुखार कम आया।

बारी के अगले दिन कुनीन का उसी जोर से प्रयोग किया गया और उस दिन बुखार नहीं आया[14]। इस सफलता के बाद कुनीन के साथ एलोपैथिक चिकित्सा घुसपैठिया बन कर गुरुकुल मे बैठ गई। इस प्रकार गुरुकुल मे नवीनता का सूत्रपात आरम्भ हो गया। इन दोनो परिवर्तनो मे महात्मा जी की स्वीकृति ने बडा भारी योगदान किया।

विरोध का सूत्रपातः-

सन् 1904 ई0 मे पजाब, आर्यप्रतिनिधि सभा के वार्षिक चुनाव मे राय बहादुर ठाकुर दत्त धवन के स्थान पर महात्मा मुशीराम को सभा का प्रधान निर्वाचित कर लिया गया। इस निर्वाचन से ठाकुर दत्त धवन असन्तुष्ट हो गए, क्योकि वे अगली अवधि के लिए भी प्रधान बने रहने के इच्छुक थे। अब तक वे गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता होने के साथ–साथ पजाब की आर्य समाजो की सस्था 'प्रतिनिधि सभा' के भी प्रधान थे। इस प्रकार वर्चस्व की दृष्टि से उस समय पजाब मे उनका ही बोलबाला था। स्वामी जी का वर्चस्व भोग के कारण न होकर त्याग के कारण था। त्याग के वर्चस्व को छूछा बनाने के लिए प्रतिनिधि सभा के कुछ सदस्यो ने स्वामी जी की प्रतिष्ठा को धूल मे मिलाने का प्रयास किया। महात्मा मुशीराम द्वारा स्थापित गुरुकुल निर्विरोध परिणामो का फल नहीं था। इसके जन्म से पूर्व ही इसका विरोध भी आरम्भ हो गया था। कालेज दल वालो ने इसे अपने मुकाबले मे खडी की जाने वाली सस्था मानकर विरोध करना ही था। उनके विरोध को अव्यवहारिक और अनैतिक नहीं कहा जा सकता था, क्योकि वे आस्तीन का सॉप न बन कर खुले आम अपनी सम्मति प्रकट करते थे। लेकिन महात्मा दल के उन आर्य समाजी बन्धुओ के विरोध को क्या सज्ञा दी जाए जो अपने निजी स्वार्थो के कारण महात्मा जी एव गुरुकुल का विरोध करने पर तुले हुए थे। गुरुकुल की स्थापना होने के बाद पहिले ही वर्ष मे पजाब मे कुछ इस प्रकार की निराधार बाते फैलाई गई थीं कि गुरुकुल मे भोजन का प्रबन्ध ठीक नहीं हैं, मकानो मे नमी बहुत है, बीमारो की देख–रेख का कोई प्रबन्ध नहीं है। सब ब्रह्मचारियो के पेट फूल गए है, दस ब्रह्मचारियो की मृत्यु हो चुकी है और 75 सैकडा इस वर्ष मे काल के ग्रास हो जाएँगे[15]।

परन्तु गुरुकुल के निरन्तर विकास ने इन अफवाहो पर पानी फेर दिया। इसके साथ ही महात्मा जी 'सद्धर्मप्रचारक' द्वारा गुरुकुल की वास्तविक स्थिति को पाठको तक पहुँचा देते थे। अत गुरुकुल विरोधियो की कोई दाल नही गली। महात्मा जी के सभा प्रधान बनने पर यह विरोध शान्त हो गया। 1905 ई0 के आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब के चुनाव मे महात्मा मुशीराम के स्थान पर लाला रामकृष्ण प्रधान बने जो कि सन् 1918 ई0 तक निरन्तर प्रधान पद को सुशोभित करते रहे। 1905 ई0 से लेकर 1913 ई0 तक अवधि महात्मा जी के गुरुदलीय जीवन मे बडी सघर्षमयी रही। इस अवधि मे महात्मा जी को चौमुखी समस्याओ से जुझना पडा।

प्राचीन परिपाटियाँ बदलने लगीं:-

इन समस्याओ को हम आभ्यन्तर और बाह्य दो भागो मे देखना पसन्द करेगे। आभ्यन्तर समस्याओ का सूत्रपात 'दीपक बनाम लालटेन' और 'कुनीन बनाम कुचला' के माध्यम से पहले ही हो चुका था। इस अन्दरूनी सघर्ष की कहानी 1905 ई0 मे पुन आचार्य गगादत्त और डाक्टर सुखदेव की विचार भिन्नता की पृष्ठभूमि पर आरम्भ हुई। डाक्टर सुखदेव के मन मे यह बात समा गयी कि गुरुकुल के मेहतरो को अपनाया जाए। डाक्टर जी उनके घरो मे जाकर सफाई से रहने का उपदेश देने लगे और उनके बालको को बढाने का प्रबन्ध कर दिया। इस पर जो विरोध उठा वह पहले आन्दोलनो से भी बडा था। सम्पूर्ण कुलभूमि मे आचार्य से लेकर नौकरो तक डाक्टर सुखदेव के विरुद्ध वातावरण बन गया। महात्मा जी पर जोर डाला गया कि वे डाक्टर साहेब को इस कार्य से रोके। महात्माजी ने विरोधियो को स्पष्ट बता दिया कि डाक्टर साहेब का कार्य धर्मानुकूल है। अत इसे रोकने की कोई आवश्यकता नहीं। यह सघर्ष डेढ–दो वर्ष चला और अन्त मे स्वत ही शान्त हो गया।

सन् 1906 ई0 मे और उसके आस–पास महात्मा मुशीराम के सामने रामदेव, गोवर्धन दास और डा0 चिरजीव नामक व्यक्तियो के गुरूकुल मे आने से अनेक समस्याएँ खडी हो गई। इनमे डा0 चिरजीव भारद्वाज और रामदेव के गुरूकुल मे आने को 'जीवन दान' की सज्ञा देकर अनेक आर्य समाचार–पत्रो

ने प्रशस्तियो की पक्तियॉं लिखी थीं। प्रो0 रामदेव जो पहले मास्टर रामदेव कहलाते थे, उन्होने गुरूकुल मे आकर पहला परिवर्तन यह किया कि पढाई की व्यवस्था के लिए घण्टियॉं बजने लगीं। इस नवीन विधि का बहुत विरोध हुआ। क्योकि इससे पूर्व सभी कार्य अध्यापको की अध्यापन सुविधा और भण्डारी की भोजन–व्यवस्था की सुविधा के अनुसार ही होते थे। शनै शनै अध्यापक और भण्डारी इस व्यवस्था के अभ्यस्त होने ही लगे थे कि डाक्टर चिरजीव भारद्वाज ने ब्रह्मचारियो के लिए डेस्क होने चाहिए का नया नारा लगाया। इस परिवर्तन के सुझाव का यह कहकर विरोध किया गया कि ऐसा करने से गुरुकुल स्कूल सम बन जाएगा। प्राचीन विद्याओ के शिक्षण मे आसन शैली से एक प्रकार का विशिष्ट वातावरण बनता है। आसन विधि से पाठ पढने और पढाने के समय किसी भी प्रकार का व्यवधान न होने से गुरु–शिष्य का समन्वय प्रत्यक्ष रहता है। डेस्क पद्धति मे एक प्रकार का दुराव है, इत्यादि तर्कों द्वारा डेस्को का विरोध किया जाने लगा। घण्टी और डेस्क की बात से आगे जाकर प्रो0 रामदेव की देख–रेख मे अग्रेजी, इतिहास और अर्थशास्त्र की पढाई को सस्कृत व्याकरण और सस्कृत साहित्य के तुल्य रखा जाने लगा। गुरूकुल की स्कूल जैसी शक्ल बनने पर एक हैडमास्टर का होना भी आवश्यक था और मास्टर रामदेव गुरूकुल के प्रथम हैडमास्टर नियुक्त हुए। 1907 ई0 मे गुरूकुल को महाविद्यालय का रूप दिया गया और रामदेव प्रिंसिपल हो गए और उनके स्थान पर गोवर्धन दास को हैडमास्टर बना दिया गया। डा0 चिरजीव भारद्वाज और आचार्य रामदेव के व्यक्तित्वो के सामने महात्मा मुशीराम बौने तो नहीं थे, किन्तु युगधर्म को पहचानने के कारण वे इन परिवर्तनो के मूक साक्षी बने रहे।

आचार्य गगादत्त उपर्युक्त परिवर्तनो के पक्षधर नहीं थे। वे तो उसी ताडपत्रीय शिक्षण पद्धति के जागरुक प्रहरी थे, जहॉं गुरु को अध्यापन के विषय मे पूर्ण स्वायत्ता थी। अत इन परिवर्तनो का विरोध करना उनका नैतिक दायित्व बनता था। आचार्य गगादत्त का यह विरोध निरन्तर तीन वर्ष तक चलता रहा। अन्त मे हारे हुए सरदार की भॉंति अपने सहयोगियो नरदेव शास्त्री, पद्म सिह शर्मा और काशीनाथ के साथ गुरूकुल छोडकर गगा के दूसरे पार गुरूकुल महाविद्यालय ज्वालापुर मे चले गए। इस सम्पूर्ण परिवर्तन की समीक्षा करते हुए इन्द्र ने लिखा है –

पाठशाला की पुरानी पद्धति बदली, क्योकि पुरानी शैली बदलती हुई नई परिस्थितियो के अनुकूल नहीं थी। उसे जारी करने का अभिप्राय यह होता है कि गुरूकुल 'तात का कूप' ही बना रहता और ब्रह्मचारी कूप मडूक होते। दूसरी कोई पद्धति आविर्भूत नही हुई थी। जो महानुभाव गरुकुल को विश्वविद्यालय का रूप देना चाहते थे, उनमे से किसी को यह अवसर नही मिला कि वह पाठशाला और स्कूल के मध्य का कोई मार्ग निकाल सके। परिणाम यह हुआ कि अग्रेजी मुहावरे के अनुसार नई बोतलो मे पुरानी दवा भरने का पल आरम्भ हो गया। मै इस सस्मरण को समाप्त करते हुए इतना बतला देना आवश्यक समझता हूँ कि इस परिवर्तन युग की समाप्ति पर हम गुरुकुल भूमि मे फूस के घरो के स्थान पर महाविद्यालय की पक्की इमारते खडी पाते है। कलेवर बदल चुका था, बहुत कुछ मन भी बदल चुका था, केवल आत्मा के प्रतिनिधि मुख्याधिष्ठाता महात्मा मुशीराम जी गुरूकुल की निरन्तरता को कायम रखे रहे थे[16]।

मुंशीराम के व्यक्तित्व पर आरोप-

'नई बोतलो मे पुरानी दवा' भरने के सम्बन्ध मे आर्य जगत् की क्या प्रतिकिया रही, यह जानना भी जरूरी है। इस परिवर्तन से महात्मा मुशीराम के अनेक हितैषी उनके विरोधी बन गए। आर्य समाजियो ने इसे उद्देश्यो से भटकाव की सज्ञा दी। सन् 1905 से महात्मा दल मे मुशीराम विरोधी दल बडा सक्रिय हो गया। विरोधियो का नेतृत्व राय बहादुर ठाकुरदत्त धवन और लाला रलाराम कर रहे थे। उन्होंने मुशीराम के पर काटने के लिए दुरभिसन्धियो की योजनाऍं बनाई। इन दुरभिसन्धियो के कारण महात्मा मुशीराम के समर्थक और सभा के समाचार पत्र 'आर्य पत्रिका' के सम्पादक महाशय कृष्ण को त्याग–पत्र देना पडा।

उन्होने 'प्रकाश' नामक उर्दू साप्ताहिक निकालना आरम्भ कर दिया और महात्मा मुशीराम के बचाव मे लेख लिखने लगे। जैमिनी मेहता ने भी महात्मा जी के बचाव के लिए 'सधारक' समाचार पत्र निकाला। महात्मा जी के विरोधियो ने 'हितकारी' नामक पत्र निकालकर महात्मा जी की बखिया उधेडनी आरम्भ कर दी। इस विवाद मे से एक अच्छाई यह निकली कि आर्य समाज के व्यक्तियो ने उर्दू पत्रकारिता के साहित्य मे श्रीवृद्धि की।

महात्मा जी के विरोधियो की हिम्मत यहाँ तक बढी कि उन्होने आर्य प्रतिनिधि सभा, की अन्तरग सभा मे दिनाक 26 मई, 1905 ई0 को सात सदस्यो ने निम्न प्रस्ताव विचारार्थ प्रस्तुत किया–

1 कि आर्य समाज से सम्बन्धित सार्वजनिक कार्यो के लिए दान से प्राप्त होने वाले धन के सम्बन्ध मे लाला मुशीराम का विश्वास नहीं किया जा सकता, क्योकि उन्होने आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब के 14000 रूपये गबन कर लिए है।

2 कि लाला मुशीराम इस योग्य नहीं रहे कि उन्हे धार्मिक सस्थाओ मे कोई उत्तरदायित्व और विश्वास का पद दिया जाए, क्योकि वे अपने विरोधियो पर मिथ्या दोषारोपण और छल रचना मे इतने अभ्यस्त हो चुके है कि उनका यह प्रयास होता है कि विरोधियो का यश जनमानस से मिट जाए।

यद्यपि उपर्युक्त प्रस्ताव 17 के मुकाबले मे 44 मतो से गिर गया तो भी इस गिरे हुए प्रस्ताव से यह स्पष्ट पता चलता है कि 39 प्रतिशत के लगभग आर्य समाजी महात्मा जी के कार्यो को सन्देह की दृष्टि से देखने लगे थे। यह प्रतिशत किसी सम्भावित अनिष्ट की ओर सकेत कर रहा था।

गुरुकुल की शिक्षा के प्रति छात्रों का असन्तोष

महात्मा जी पर ये अविश्वास के बादल विरोधियो द्वारा बनाये गये थे। अत इनमे अतिशयोक्ति की छाया हो सकती है, परन्तु गुरुकुल की पढाई के विषय मे स्वय उनके पुत्रो के मन मे उठे अविश्वास को तो विरोधियो की चाल नही कहा जा सकता। घटना इस प्रकार हुई कि गुरुकुल मे काशी के प्रसिद्ध विद्वान् प काशीनाथ अध्यापक के रूप मे नियुक्त हुए। वे बिना पुस्तक के ही व्याकरण, दर्शन, अलकार शास्त्र और निरुक्त आदि विषयो को पढाने मे सक्षम थे। शास्त्र की ऐसी कोई गॉठ नहीं थी, जिसे उनकी प्रतिभा खोल नहीं सकती थी। ऐसे प्रकाण्ड विद्वान् से सस्कृत पढने पर महात्मा जी के दोनो पुत्रो हरीशचन्द्र और इन्द्र के मन मे क्या सकल्प और विकल्प उठे, उन्हे इन्द्र के शब्दो मे ही लिखना उचित है–

"ऐसे प्रकाण्ड विद्वान् के सादा जीवन का हम लोगो पर गहरा प्रभाव हुआ। मस्तक पर मध्यकालीन सस्कृत का अधिकार बढने लगा। 'शेखर' और 'मुक्तावली' ने 'काशिका' और 'प्रशस्तपाद' को मैदान से भगा दिया। यह हमारी ओछी बुद्धि और अल्प विद्या का ही परिणाम था। गुरु जी के आने के दो–तीन वर्ष बाद हम लोगो मे यह भाव पैदा हो गया कि आर्य समाज के पास और कुछ भी हो पण्डित्य का सर्वथा अभाव है। हम लोग ज्ञानलव–दुर्विदग्धता के अच्छे खासे नमूने बन गए।"

एक रात्रि के भोजन के पश्चात् हम दोनो भाइयो ने प्रधान जी (पिता जी) से प्रार्थना की कि हम अकेले मे उनसे कुछ बात करना चाहते हैं। गुरुकुलीय जीवन मे शायद यह पहला अवसर था, जब हमने पिता जी से अलग बातचीत करने का अवसर मॉगा हो। अन्यथा वे हम दोनो को सदा अन्य ब्रह्मचारियो के समान भाव से ही देखते रहे। हमारी प्रार्थना से पिता जी को आश्चर्य हुआ, तो भी उन्होने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली, और हम दोनो को साथ लेकर उसी समय गुरुकुल वाटिका मे चले गए। वहॉं टहलते–टहलते भाई जी ने पिता जी से अपने मन का भाव कहा भाव यह था कि हम दोनो गुरुकुल की शिक्षा से असन्तुष्ट नहीं हैं। इस शिक्षा से हम पडित नहीं बन सकेंगे। पडित बनने के लिए काशी मे शिक्षा पाना आवश्यक

है। हमे प. शिवकुमार शास्त्री और श्री भगवदाचार्य जैसे पडितो से शिक्षा पाने का अवसर मिलेगा। आप हमे गुरुकुल से उठा कर बनारस भेज दीजिए[17]।

अविश्वास की इस भावना मे परिवर्तनवादियो के द्वारा उत्पन्न वातावरण भी एक कारण था। परिवर्तन के कारण आस्थावान् आर्य समाजी पडितो का गुरुकुल से पलायन आरम्भ हो गया। परिवर्तनवादियो के कारण महात्मा मुशी राम को व्यक्तिगत एव सामाजिक दोनो ही हानियॉं उठानी पडी।

आक्षेपों का उत्तर

आर्य प्रतिनिधि सभा, की अन्तरग मे प्रस्तुत प्रस्तावो का भी महात्मा जी के शरीर और मन पर विपरीत प्रभाव पडा। जब वे लाहौर से अन्तरग सभा की बैठक के लगभग एक सप्ताह बाद गुरुकुल आए तो इन्द्र ने देखा कि उनके चेहरे मे कोई बडा परिवर्तन आ गया है। जब उन्होने ध्यान से देखा तो समझ मे आया कि सप्ताह भर मे ही उनके सिर और दाढी–मूछ के आधे बाल सफेद हो गए हैं[18]। अन्त मे ऐसा समय आया कि वे अपने ऊपर लगाये गये आक्षेपो की उपेक्षा नहीं कर सके। इन आक्षेपो मे मुख्य आक्षेप सभा तथा गुरुकुल के रुपयो का गबन, महात्मा जी ने त्याग ही क्या किया है, गुरुकुल मे शासकीय ठाठ से रहना, अन्य कर्मठ और योग्य आर्य समाजियो के सामाजिक चरित्र का हनन और एकाधिकार की भावना आदि थे। शेष आक्षेप मुख्य आक्षेपो के चौखटे पर चिपकाए उन अप्रकीय पन्नो के समान थे, जिन्हे लगाने वाले यह सोचकर प्रसन्न थे कि इनसे महात्मा जी की मिट्टी पलीद हो जाएगी। परन्तु ये आक्षेप इतने हास्यास्पद थे कि लगाने वालो की बुद्धि पर तरस ही आता था। महात्मा जी ने "दुखी दिल की पुरदर्द दास्ताँ (1906) लिख कर प्रत्येक छोटे–बडे आक्षेपो का विस्तार पूर्वक उत्तर दिया। उन उत्तरो मे उन्होने यह भी बताया कि कौन–कौन व्यक्ति किस–किस कारण से उनसे नाराज है। लोगो को इस पुस्तक से सत्यता का पता चला और महात्मा जी का मन इसके लिखने से हलका हुआ।

इधर पजाब प्रतिनिधि सभा की अन्दरूनी लडाई चल रही थी, तो उधर पजाब की राजनीति मे आर्य नेता लाला लाजपत राय को 1907 ई0 मे देश से निर्वासित कर दिया गया था। लाला जी को पजाब के शिक्षित तथा विद्यार्थी वर्ग का नेता समझा जाता था। गुप्तचर विभाग ने सरकार को ऐसी सूचना दी थी। परन्तु महात्मा मुशीराम की मान्यता के अनुसार तथ्य इसके विपरीत थे। जब लाला जी को देश से निकाला गया, इस समय वे छात्र वर्ग मे इतने अधिक अलोक प्रिय थे कि लाहौर की सार्वजनिक सभाओ मे उनके लिए उपस्थित होना भी कठिन हो रहा था। अजीत तथा उसके साथी उनके प्रभाव से निकल चुके थे तथा लाला जी को अपना प्रभा मण्डल बनाने मे कठिनाई हो रही थी, क्योकि देश निकाला मिलने से कुछ पहले तक वे गुरुकुल तथा उसके सस्थापको की घोर निन्दा करते रहे थे[19]। लाला जी गिरफ्तारी पर इस डी.ए.वी. कालेज कमेटी ने जिसके कि वे प्राणाधार थे इस आशय का प्रस्ताव पारित किया कि लाला जी की राजनैतिक हलचलो का आर्य समाज और डी ए वी. कालेज से कोई सम्बन्ध नहीं है[20]। लेकिन लाला जी के कटु आलोचक और गुरुकुल दल के महात्मा मुशीराम ने लाला जी का प्रत्येक प्रकार से समर्थन किया और "सिविल एण्ड मिलिट्री गजट मे आर्य समाज सम्बन्धी लेख माला लिखकर लाला जी की निष्कपट सफाई पेश की। महात्मा जी के इस कृत्य को देखकर उनके आलोचक भी ऑखे मलने लगे। गुरुकुल की स्थापना होने पर मुख्याधिष्ठाता का पद सम्भालते हुए भी महात्मा जी समय निकाल कर काग्रेस के सूरत अधिवेशन (1907 ई.) मे उपस्थित हुए। इस अधिवेशन के अवसर पर वहाँ के आर्य समाजियो ने आर्य समाज के प्रचारार्थ महात्मा जी को निमन्त्रित किया था। वहाँ से आने के बाद इन्होने देखा कि कुछ लोगो के मन मे गुरुकुल के प्रति अभी तक असद्भाव बना हुआ है। इस असद् भाव को फैलाने मे गुरुकुल के उन कर्मचारियो का भी कम हाथ नहीं था जो गुरुकुल की सेवा से किसी कारण पृथक् कर दिए गए थे। महीनो महात्मा जी की शरण मे रहकर अब्दुल गफूर से धर्मपाल बनने वाले व्यक्ति ने

भी महात्मा जी का विरोध करने और गुरुकुल के सम्बन्ध मे भ्रम फैलाने मे कोई कोर कसर नहीं छोडी थी। सन् 1908 ई के आस–पास इन लोगो ने आक्षेप करते हुए कहा कि गुरुकुल के ब्रह्मचारी मूछ–दाढी मुडवाते है और बाल सवारते है, उनको घोडो की सवारी सिखाई जाती है, वे साबुन लगाते हैं, उनको अग्रेजी पढाई जाती है, वे अग्रेजी ढग से खेल खेलते है, उनको इतिहास तथा भूगोल पढाया जाता है, साइन्स की पढाई पर अधिक खर्च किया जाता है, अध्यापक ही परीक्षा लेते हैं और शिक्षा मुफ्त नहीं दी जाती[21]। महात्मा जी को इन आक्षेपो का उत्तर भी देना पडता था। सन् 1906 ई. की अन्तिम त्रैमासिकी मे यह प्रचार भी चल पडा था कि गुरुकुल के सस्थापक एव हिन्दी भाषा द्वारा शिक्षा देने के पक्षपाती महात्मा मुशीराम अपना निजी समाचार पत्र 'सद्धर्म प्रचारक' उर्दू भाषा मे ही चला रहे है। महात्मा जी का यह दोहरा चेहरा क्यो? इस आपत्ति को सही मानते हुए उन्होने 1 मार्च, 1907 ई मे 'सद्धर्म प्रचारक' हिन्दी मे निकालना आरम्भ कर दिया।

सार्वदेशिक सभा के जन्मदाता

आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब की दलबन्दी ने महात्मा मुशीराम के नेतृत्व को डावाडोल कर दिया। युगधर्म को पहचानते हुए महात्मा जी ने पजाब सभा के प्रबन्ध इत्यादि के विषयो से दूर ही रहना उचित समझा। लेकिन उनके मस्तिष्क मे एक ऐसी योजना अवश्य कार्य करने लगी कि प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाओ के ऊपर आर्यों का एक ऐसा सगठन भी होना चाहिए जो सभी प्रान्तीय सभाओ मे ताल–मेल स्थापित करके सही दिशा निर्देश देने मे समर्थ हो। इस प्रकार के सगठन की कल्पना से प्रेरित होकर ही उन्होने दिनाक 24 जनवरी, 1897 ई मे पजाब आर्य प्रतिनिधि सभा से इस आशय का प्रस्ताव पारित करवाया था। इसके एक मास बाद सयुक्त प्रान्तीय प्रतिनिधि सभा और लगभग छ मास पश्चात् राजस्थान प्रतिनिधि सभा ने सार्वदेशिक सभा की स्थापना सम्बन्धी प्रस्ताव पारित कर दिया। महात्मा मुशीराम ने गुरुकुल के लिए चन्दा करते – समय भी विभिन्न नगरो के आर्य समाजो मे सार्वदेशिक सभा की उपयोगिता के सम्बन्ध मे लोगो को अवगत कराया था। सन् 1900 ई मे उत्तर भारत के आर्य समाजियो की एक बैठक दिल्ली मे हुई। इस बैठक मे इस विषय पर सहमति हो गई कि आर्य समाज का सार्वदेशिक स्तर पर एक सगठन होना चाहिए। इस सगठन के नियम–उपनियम बनाने के लिए एक उपसमिति गठित की गई और इसका सयोजक मुशीराम को बनाया गया। मुशीराम ने परिश्रम करके नियम–उपनियम बनाकर तीनो प्रतिनिधि सभाओ (पजाब, उत्तर प्रदेश और राजस्थान) को भेज दिए। परन्तु तीनो सभाए इस सम्बन्ध मे कुम्भकर्णी नींद मे सोई पडी रहीं और आठ वर्ष के लगभग निष्क्रियता मे व्यतीत हो गए। सन् 1908 ई गुरुकुल कागडी के उत्सव पर पुन तीनो सभाओ के प्रतिनिधि एकत्र हुए। इस अवसर पर भी सार्वदेशिक सभा की स्थापना न हो सकी। और जौलाई मास मे आगरा मे इस विषय पर विचार के लिए इकट्ठा होने का निर्णय लिया। 27 सितम्बर, 1908 ई के दिन आर्य समाज मन्दिर मे हुई प्रान्तीय सभाओ के पदाधिकारियो की बैठक हुई। इस बैठक मे किसी भी सभा के पदाधिकारी न होते हुए भी मुशीराम को उपस्थित होने के लिए निवेदन किया गया था, क्योकि वे इस विचार के जन्मदाता थे और साथ मे सभा के नियम–उपनियमो का निर्माण भी उन्होने ही किया था। आगरा की बैठक निर्णायक सिद्ध हुई और उसमे सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित करके सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का गठन कर दिया गया। इस सगठन के प्रथम प्रधान बशीधर शर्मा बनाए गए। इसके पश्चात् अगले ही वर्ष मुशीराम को सार्वदेशिक का प्रधान निर्वाचित कर लिया गया। इस पद पर वे निरन्तर सात वर्ष तक बने रहे।

सार्वदेशिक सभा के सगठन मे प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, पजाब नहीं आई। इस प्रकार आर्य सगठन का समूचा स्वप्न चाहे पूरा न हुआ हो, परन्तु इससे मुशीराम की इच्छा की अधिकतर पूर्ति हो गई। इस विषय मे अन्य बाधा 'परोपकारिणी' सभा थी। यह सभा स्वामी दयानन्द की वसीयत द्वारा निर्मित हुई थी। परन्तु आर्य समाज के क्षेत्र मे प्रकाशन कार्य के अतिरिक्त इसके किसी भी ऐसे कार्य की चर्चा नही थी जो आर्यजनो के प्रेरित करने की क्षमता रखता हो। सन् 1907 ई मे यह सुझाव प्रस्तुत

हुआ था कि 'परोपकारिणी' सभा को ही सार्वदेशिक सभा का चोगा पहनाकर सब प्रतिनिधि सभाओ को इसको सम्बन्धित कर दिया जावे। इस प्रस्ताव का विरोध मुशीराम ने इन शब्दो मे किया था कि "कई महाशयो का विचार है कि परोपकारिणी सभा को ही सार्वदेशिक सभा मे परिणत करने का प्रपत्र किया जावे। मेरा भी पार साल (1907) तक ऐसा ही विचार था। किन्तु एक वर्ष के अनुभव ने मुझको निश्चय दिला दिया कि यदि परोपकारिणी से सार्वदेशिक का काम लेना हो तो 25–30 वर्षों से पहिले सफलता नहीं मिल सकती। जब तक परोपकारिणी मे कुछ सभासद् आर्य समाज के विरूद्ध मत रखने वाले बने रहेगे, तब तक उसका नाम आर्य सार्वदेशिक सभा रखना व्यर्थ होगा। सम्भवत. ऐसे सभासद 30 वर्षों से भी अधिक समय तक भी जीते रहे।"

मुशीराम सार्वदेशिक के प्रधान बनने पर पजाब सभा की सीमित परिधि मे से निकल कर अखिल भारतीय स्तर के नेता बन गए। जोर्डेन्स के कथनानुसार सार्वदेशिक के प्रधान बनने पर उनके चिन्तन मे यथेष्ठ परिवर्तन आया। वे पारिवारिक जीवन मे तो प्रचण्ड परिवर्तनशील बने रहे परन्तु आर्य समाज के क्षेत्र मे एकता के लिए उन्हे अपनी कुछ मान्यताओ मे ढील देनी पडी। इस ढील के लिए जोर्डन्स ने 'सद्धर्म प्रचारक' मे मुशीराम द्वारा लिखे गए एक लेख के अशो को उद्धृत करते हुए लिखा है कि "मैं निश्चित रूप से इस विचार का था कि आर्य समाज मे प्रवेश करते समय प्रत्येक सदस्य को 51 सिद्धान्तो को मानने की प्रतिज्ञा पर अवश्य हस्ताक्षर करने चाहिए। अब पूर्ण पर्यालोचन के बाद तथा आर्य समाज के दस नियमो मे इनका समर्थन न मिलने से, मैने अपना विचार इस विषय मे बदल लिया है[22]।

अंग्रेजी राज के प्रशंसक

गुरुकुल कागडी पर सरकारी प्रकोप की घटनाओ को उठाने से पहले हम महात्मा मुशीराम के अग्रेज शासको के प्रति क्या विचार रहे, इस प्रश्न का उत्तर खोजना चाहते है। सम्भवत अधिकाश पाठको को इस तथ्य पर विश्वास नहीं होगा कि महात्मा मुशी राम भी कभी राजभक्त थे। सन् 1857 की कान्ति के बाद इगलैंड की रानी विक्टोरिया की इस घोषणा कि "अग्रेजी सरकार भारत मे धर्म के मामले मे किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगी और धर्म के मानने वाले प्रत्येक समुदायो को धर्म प्रचार मे पूर्ण स्वतन्त्रता होगी," का भारतीय धार्मिक क्षेत्र मे बडा स्वागत हुआ। आर्य समाज की इस सम्बन्ध मे क्या प्रतिकिया हुई, इसको जानने का इससे अधिक विश्वसनीय और प्रामाणिक सबूत हमारे पास स्वामी दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश का प्रथम सस्करण है। इस सस्करण मे स्वामी जी ने लिखा है "सो आजकल अग्रेज राज्य होने से उन राजाओ के राज्य से सुख भया है। क्योकि अग्रेज लोग मत मतान्तर की बात मे हाथ नहीं डालते।" इस प्रकार आर्य समाज के सस्थापक ने अग्रेजी राज्य के प्रति अपनी सद्भावना प्रकट की। इसके पश्चात् थियासोफिकल सोसायटी की सस्थापिका मैडम ब्लैवेट्स्की ने स्वामी जी के विचारो को जानने के बाद लिखा कि "भारत मे आये समस्त दोषो तथा वेदो के मिथ्या अर्थ करने के लिए वे ब्राह्मणो को दोष देते थे। वे उपस्थित समुदाय के समक्ष स्पष्ट घोषणा करते है कि एक समय जो देश महान् तथा स्वतन्त्र रहा, उसके अध पतन और पराधीनता के लिए उक्त वर्ग ही उत्तरदायी है। इसके उपरान्त भी ग्रेट ब्रिटेन के लिए वह मित्र के तुल्य ही हैं, शत्रुवत् नहीं। वे स्पष्ट रुप से कहते है कि यदि आप अग्रेजो को इस देश से निकाल बाहर करते हैं, तो मूर्तिपूजा का विरोध करने वालो के गले, चाहे वे स्वय हो या कोई अन्य भेड़–बकरियो के समान काट डाले जायेगे[23]।" इसी वक्तव्य की पुष्टि सन् 1894 ई मे लाहौर आर्य समाज के 32 वे वार्षिक उत्सव पर दिए गये मुशीराम के भाषण के एक अश से इस प्रकार होती है "स्वामी दयानन्द ने एक बार कहा था – यदि अग्रेज लोग इस देश को छोडकर आज चले जाये तो हमारे धर्मोपदेशको के सिर तुरन्त काट डाले जायेगे। क्या कोई आर्य समाजी एक क्षण के लिए यह सोच भी सकता है कि ब्रिटिश राज्य को यहाँ से चला जाना चाहिए और उसके स्थान पर सीमान्त प्रदेश की किसी जगली

जाति का राज्य स्थापित होना चाहिए[24]।"

उपर्युक्त अश से स्पष्ट है कि महात्मा मुंशीराम राजभक्त थे। इनकी राजभक्ति का और भी दृढ प्रमाण लाहौर के इसी उत्सव पर दिए भाषण के अशो से भी मिलता है। अपने भाषण मे महात्मा मुशीराम ने लोगो को सम्बोधित करते हुए कहा – "मेरे पिता, जिन्होने 1857 ई. को विद्रोह के बाद शान्ति–स्थापना के कार्य मे बहुत बडा भाग लिया था, कभी–कभी अपने अनुभव मुझे बताते थे। उन्होने मुझे जो कुछ कहा, उसके आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि देश मे शान्तिपूर्ण प्रगति तथा समन्वित विकास के लिए अभी एक शताब्दी तक ब्रिटिश राज्य का रहना आवश्यक है। हाल की घटनाओ ने हमारी राजनैतिक काया पर पडे कोढ के तुल्य दागो को उजागर कर दिया है, जिन्हे हम पहिले नहीं जान सके थे। अब मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि इससे पूर्व का मेरा आशावाद उचित नहीं था और मेरी भविष्यवाणी भी ठीक नहीं थी। अब मैं विश्वास करता हूँ कि आगे आने वाले तीन सौ सालो तक केवल ब्रिटिश प्रभुत्व ही इस देश मे शान्ति और सुव्यवस्था कायम रख सकता है और यदि शान्ति की इस शर्त को हटा दिया जाता है, तो विकास की पद्धति पर उन्नति की सारी सुविधाये और साधन गायब हो जायेगे। मै जानता हूँ कि आप मे से अनेक मेरे विचार से सहमत नहीं होगे। किन्तु मै बिना किसी प्रतिवाद के भय से, यह कहने मे सकोच नहीं करूँगा कि मेरी पूर्व धारणा त्रुटिपूर्ण तथ्यो पर आधारित थी[25]।"

अग्रेजी शासको के प्रति सद्भावना का सिलसिला उपर्युक्त वक्तव्य देने के बाद समाप्त हो गया हो, ऐसी बात नहीं थी। सम्वत् 1964 (1907 ई) मे सम्राट् एडवर्ड के जन्म दिवस पर आर्य समाज की ओर से सरकार को बधाई दी गई थी। इस बधाई की कुछ राष्ट्रीय समाचार पत्रो ने कटु आलोचना की थी। महात्मा मुशीराम ने आर्य समाज के इस कदम को उचित बताते हुए लिखा था – "आर्य समाज का प्रचार ब्रिटिश गवर्नमेन्ट के राज्य मे ही सम्भव हुआ है, अन्य राज्य मे कठिन होता। हिन्दुओ तथा मुसलमानो की रियासतो मे जो बर्ताव आर्य उपदेशको के साथ होता है, वह छिपा नहीं है। हम ब्रिटिश गवर्नमैन्ट की रक्षा का लाभ उठाते हैं, उसके लिए साल मे एक बार धन्यवाद अवश्य देना चाहिए। यदि ब्रिटिश प्रजा होने के कारण कुछ अधिकार हैं, तो कुछ कर्तव्य भी हैं।

भारतवर्ष–मात्र के आर्य समाजो को एकमत होकर गवर्नमेन्ट के धन्यवाद के लिए एक दिन नियत करना चाहिए[26]।" देहली दरबार के समय सम्राट् जार्ज को लक्ष्य करके 'सद्धर्म प्रचारक' मे 'सम्राट्! तुम यही रहो' शीर्षक से लिखा लेख भी राजभक्ति की माला में एक मोती के समाज दिखाई पडता है। महात्मा मुशीराम की राजभक्ति की पराकाष्ठा तो सम्वत् 1969 (1912 ई.) में लार्ड हार्डिंग के दिल्ली प्रवेश के समय सभी सीमाओ को लॉघ गई। आर्य सार्वदेशिक सभा के प्रधान के रुप में आपने सभा की ओर से स्वागत का अभूतपूर्व प्रबन्ध किया था। सभा के कार्यालय 'ज्योति पाठशाला' के ठीक सामने मैदान मे बडा शामियाना लगाया गया, जिसमे ढाई सौ तीन सौ आर्य समाजी बैठे थे। शामियाने के सामने दो चौकियाँ थी, जिन पर आर्य समाज के भूषण स्वामी अच्युतानन्द, महात्मा मुशीराम, पूर्णानन्द, राय रोशन लाल बैरिस्टर और बृजनाथ आदि बैठे थे। जैसे ही वायसराय का हाथी शामियाने के सामने आया, सबने खडे होकर शान्ति पाठ पढा और नमस्ते भगवन्! के ऊँचे नाद से आकाश मण्डल को गुँजा दिया[27]। शनैः शनैः एन्ड्रूज के सम्पर्क के कारण आपका व्यक्तिगत सम्पर्क उच्च अग्रेज अधिकारियों से हो गया। इस सम्पर्क के कारण ही आपको इतना विश्वस्त समझा गया कि सन् 1916 ई. में हुई लखनऊ काग्रेस में सयुक्त प्रान्त के तत्कालीन लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर जेम्स मेस्टन ने बुला कर यह कहा कि 'मारिस–कर्टियस' सरक्यूलर के सम्बन्ध मे आप मिस्टर कर्टियस को महात्मा गाधी से मिला दे।

उपर्युक्त सभी उद्धरणो को देने का यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि हम महात्मा मुशीराम की राष्ट्रीय छवि को धूमिल करना चाहते हैं। हमारा अभिप्राय तो यह दर्शाना है कि ऐसे सद्भावपूर्ण विचार

रखने वाले व्यक्ति को किन कारणो से अपना मनोभाव परिवर्तित करना पडा। क्या महात्मा जी का यह परिवर्तन निजहित की भावना पर था अथवा आर्य सामाजिक भावना के वशीभूत होकर था, इस निष्कर्ष पर पहुॅना ही हमारा लक्ष्य है। महात्मा मुशीराम ने राजभक्ति का दम भरने के लिए सरकार के सामने कभी भी अपना दावा पेश नहीं किया। उनकी राजभक्ति एक वकील की पृष्ठभूमि मे शासन के प्रति अधिकार और कर्तव्य की सवैधानिक कोटि की थी। उनमे अन्ध भक्ति और खुशामद नहीं थी। यदि अन्धभक्ति और खुशामद होती तो वे पजाब के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर इब्टसन के स्मारक के लिए चन्दा देने वाले रायबहादुरान लालचन्द, मोहनलाल, ईश्वर दास और नारायणदास आदि के सम्बन्ध मे यह नहीं लिखते कि 'यह सच है कि वर्तमान अवस्था मे रायबहादुरो को लाट साहबो की खुशामद करनी पडती है, किन्तु खुशामद की कहीं हद भी होनी चाहिए।" लाला लाजपत राय के निर्वासन के समय जिस चरित्र का परिचय आपकी लेखनी ने दिया था, वह अन्धभक्ति और खुशामद से कोसो दूर थी। कभी मद्रास काग्रेस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष होने वाले मिस्टर नार्टन जब बगाल के क्रान्तिकारियो के विरुद्ध सरकारी पक्ष की ओर से वकील बने थे, तो आपने उनकी घोर निन्दा की थी।

आर्य समाज को सरकारी प्रकोप से बचाने का प्रयास

महात्मा मुशीराम के अग्रेजो के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध रहते हुए भी आर्य समाज के कारण राष्ट्र भक्ति का उदय हुआ। अनेक स्पष्टीकरणो और ईमानदारी युक्त राज्य भक्ति के प्रदर्शनो के बावजूद ब्रिटिश अधिकारियो के मन मे आर्य समाज के सम्बन्ध मे अनेक सशय बने रहे। वे आर्य समाज को राजनीति से जोडते रहे और मुशीराम को और उसकी सस्था गुरुकुल कागडी को भी इसी योजना का अग मानते रहे।

इस अवधि में मुशीराम अकेले ही आर्य समाज की दलबन्दी से ऊपर उठकर और किसी राजनैतिक पार्टी से असम्बन्धित रहकर आर्य समाज को सरकारी कुदृष्टि से बचाने के प्रयास मे लगे रहे। उनके भाषणो एव लेखो से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि उनके सामने तीन लक्ष्य थे। प्रथम लक्ष्य यह सिद्ध करना था कि आर्य समाज का समूह रूप मे किसी भी राजनैतिक दल से कोई सरोकार नही, वह तो एक धार्मिक सस्था है। अपने इन्हीं विचारो को प्रकट करते हुए उन्होने कहा था कि–

"राजनैतिक आन्दोलन आर्य समाज के कार्य की परिधि मे नहीं आता। इसलिये नहीं कि आर्य समाज शिक्षित भारतीयो की उचित आकाक्षाओ का विरोधी है, किन्तु वह यह मानता है कि राजनैतिक अधिकारो की समुचित प्राप्ति के लिए उसकी रक्षा तभी सम्भव है, जबकि उन अधिकारो के लिए सघष करने वाले चरित्रवान् हो। जब तक भारतवासी यह नहीं समझ लेते कि धार्मिक प्रवृत्ति ही राष्ट्रो की उन्नति का कारण होती है और जब तक दलित जातियॉ ब्राह्मण तानाशाहो के पैरो तले कुचली जा रही है, जब तक उस देश के लोगो को आजादी प्रदान करना खतरनाक ही है, क्योकि इस देश के छह करोड नागरिक तो अछूत होने के कारण ही अन्य सामान्य अधिकारो से वचित हैं[28]।" महात्मा मुशीराम ने लोगो की इस भ्रान्त धारणा को भी मिटाना चाहा कि आर्य समाज ने अपने राजनैतिक सिद्धान्त स्वामी दयानन्द के ग्रन्थो से ग्रहण किये हैं। इस विषय पर उन्होने 1907 ई मे 'सिविल एण्ड मिलिट्री गजट' मे पत्र लिखकर प्रकाश डाला था।

इस अवधि मे उनका दूसरा लक्ष्य था किसी भी प्रकार के आतकवाद के विरुद्ध आवाज उठाना। उनकी दृष्टि मे वह आर्य समाजी मृत्युदण्ड के योग्य है जो कि आतकवाद के माध्यम से किसी को हत्या करने की प्रेरणा देता है। उनकी यह मान्यता थी कि आतकवाद का पाठ लोगो ने ब्रिटिशो से सीखा है, न कि आर्य समाज से।

उनका तीसरा लक्ष्य यह था कि आर्य समाजियो पर सरकारी अधिकारियो द्वारा राजद्रोह का बहाना बनाकर जो उत्पीडन हो रहा है, उसका निश्चय से ही प्रतिकार होना चाहिए। सरकारी अधिकारियो

के उत्पीडन की उन्होने कटु आलोचना की। वे मात्र कटु आलोचना से ही सन्तुष्ट नहीं हुए, अपितु समय आने पर उन्होने अपने कार्यो से यह प्रमाणित कर दिया कि उनकी कथनी और करनी एक है। इस सन्दर्भ मे हम पटियाला अभियोग (1909) को प्रस्तुत करना चाहेगे।

पटियाला का आर्य समाज एक शक्तिशाली आर्यसमाज था। अनेक प्रमुख सरकारी अधिकारी तक इसके सदस्य थे। परन्तु यह आर्यसमाज रियासत के उच्चाधिकारी मिस्टर वारबर्टन की ऑखो मे कॉटे की तरह चुभता था। मिस्टर वारबर्टन का सेवाकाल समाप्त होने को जा रहा था। अपने सेवाकाल मे वृद्धि करवाने के लिये उन्हे यह दिखाना था कि रियासत मे गडबडी चल रही है और ऐसी स्थिति मे एक अनुभवी अधिकारी को सेवा मुक्त करना उचित नहीं होगा। बस इसी गडबड को दिखाने के लिये इन्होने पटियाला के अनेक आर्यसमाजियो को राजद्रोह के आरोप मे गिरफ्तार कर लिया। आर्यसमाजियो की गिरफ्तारी से सारे पजाब मे हलचल मच गई। इस अभियोग मे महात्मा मुशीराम कैद किये आर्यसमाजियो की तरफ से वकील बनकर अदालत मे उपस्थित हुए और मुकदमे का फैसला आर्यसमाज के पक्ष मे हुआ।

'पटियाला अभियोग' की समाप्ति पर महात्मा जी ने इस विषय पर 'द आर्य समाज एण्ड इट्स डिट्रैक्टर्स ए विण्डीकेशन' नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक मे सरकारी स्तर पर आर्यसमाजियो को तग करने की अनेक घटनाऍ दी गई है। इसमे स्पष्ट रूप से सरकारी अधिकारियो पर दोषारोपण किया है। इस पुस्तक के विरुद्ध कार्यवाही करने की एक गुप्त रपट भी भेजी गई। इस रपट के अनुसार इस पुस्तक मे यह लिखा गया है कि महारानी विक्टोरिया की स्पष्ट नीति की घोषणा के बाद भी आर्यसमाज के प्रति सरकारी अधिकारियो का रवैया महारानी की घोषणा के विपरीत है। यह टिप्पणी ब्रिटिश प्रशासन के प्रति अविश्वास उत्पन्न करती है। ब्रिटिश अधिकारियो के आर्यसमाज के प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहारो के उदाहरण देकर इस पुस्तक ने लोगो के मनो मे इस भाव को बैठा दिया है। यदि इस पुस्तक के प्रति कोई कदम नहीं उठाया जाता है तो यह लोगो के मनो मे दुर्भावना को बैठा देगी। अत 'प्रेस एक्ट' की धारा 12 के अन्तर्गत कार्यवाही करने का औचित्य है। परन्तु यह बात सिरे नहीं चढ सकी।

महात्मा मुशीराम ने एक कदम और आगे बढाते हुए आर्यसमाजियो को सुझाव दिया कि उन्हे गवर्नर की अपेक्षा वायसराय लार्ड मिन्टो से मिलकर अपनी स्थिति स्पष्ट करनी चाहिए। परन्तु ऐसा करते समय उन्होने आर्यसमाजियो को सचेत किया कि वे भिखारी की भॉति लार्ड मिन्टो से नहीं मिले, अपितु सरकार उन्हे मिलने के लिए निमन्त्रित करे। इस सुझाव के पीछे यह भावना थी कि सरकार आर्यसमाज को एक सगठित शक्ति के रूप मे पहिचाने। इसके साथ ही महात्मा मुशीराम ने उन आर्यसमाजियो को भी लताडा जो थोडे से सरकारी भय के कारण आर्यसमाज के सदस्यता को छोडने के लिये तत्पर थे। उन्होने मूल राज के उस प्रस्ताव का भी विरोध किया जिसमे यह कहा गया था कि राजनीति से सम्बन्ध रखने वाले आर्यसमाजियो के नाम डी ए वी कालेज कमेटी से काट देने चाहिए।

गुरुकुल को राजद्रोहों में घसीटना

महात्मा मुशीराम के बढते हुए धार्मिक एव सामाजिक क्षेत्र के प्रभावी कद को काटने के लिए सरकारी तन्त्र ने उन द्वारा स्थापित गुरुकुल को ही अपना निशाना बनाना चाहा। सयुक्त प्रान्त की सरकार ने गुप्तचर विभाग को सतर्क किया। एक सरकारी गुप्त रिपोर्ट मे कहा गया कि "आर्यसमाज के सगठन मे अभी जो महत्त्वपूर्ण विकास हुआ है, वह वास्तव मे सरकार के लिए बहुत बडे सकट का स्रोत है। वह विकास है गुरुकुल शिक्षा–प्रणाली। इस प्रणाली मे चाहे कितने ही दोष क्यो न हो, किन्तु भक्तिभाव और बलिदान की उच्च भावना से प्रेरित साहसी धर्मपरायण व्यक्तियो का दल तैयार करने का यह सबसे सुगम और उपयुक्त साधन है, कि यहॉ आठ वर्ष की ही आयु मे बालको को माता–पिता के प्रभाव से भी

बिल्कुल दूर रखकर त्याग, तपस्या और भक्तिभाव के वायुमण्डल मे उनके जीवन को कुछ निश्चित सिद्धान्तो के अनुसार ढाला जाता है, जिससे उनकी रग–रग मे श्रद्धा और आत्मोत्सर्ग की भावना घर कर जाती है। यदि इस प्रकार की शिक्षा का क्रम आर्यसमाज के सुयोग्य और उत्साही नेताओ की सीधी देख–रेख मे बालको की उस सत्रह वर्ष की अवधि तक बराबर जारी रहेगा, जो कि मनुष्य के जीवन मे सब से अधिक प्रभावशाली समय है, तो इस पद्धति से जो युवक तैयार होगे, वे सरकार के लिए अत्यन्त भयानक होगे। उनमे वह शक्ति होगी, जो इस समय के आर्यसमाजी उपदेशको मे नहीं है। उनमे उत्पन्न हुआ व्यक्तिगत विश्वास और अपने सिद्धान्त के लिए कष्ट सहन करने की भावना, अपितु समय आने पर प्राणो तक को न्यौछावर कर देना, साधारण जनता पर बहुत प्रभाव डालेगा। इससे उनको अनायास ही ऐसे अनगिनत साथी मिल जायेगे जो उनके मार्ग का अवलम्बन करेगे और उनसे भी अधिक उत्साह से काम करेगे। यह याद रखना चाहिए उनका उद्देश्य सारे भारत मे एक ऐसी जाति–धर्म की स्थापना करना होगा, जिससे सारे हिन्दू एक भ्रातृभाव की श्रृखला मे बध जायेगे। वे सब दयानन्द के 'सत्यार्थ प्रकाश' के ग्यारहवे समुल्लास की इस आज्ञा का पालन करेगे कि श्रद्धा और प्रेम से अपने तन, मन, धन–सर्वस्व को देश हित के लिए अर्पण कर दो।"

इस रिपोर्ट की अगली पक्तियाँ गुरुकुल कागडी पर लिखी गई है। इन पक्तियो मे लिखा है कि "इस समय गुरुकुल मे शिक्षा पाने वाले उपदेशको (ब्रह्मचारियो) का शिक्षा प्राप्ति की समाप्ति पर सरकार के प्रति क्या रुख होगा? इस समय के उपदेशको की अपेक्षा वे किसी और ही ढाचे मे ढले हुए होगे। जिस धर्म का प्रचार वे करेगे, उसका आधार व्यक्तिगत श्रद्धा एव विश्वास होगा, जिसका जनता पर सहज ही प्रभाव पडेगा।"

गुरुकुल को सदेहो के घेरे मे बन्द करने के बाद इस रिपोर्ट मे महात्मा मुशीराम को भी सरकार विरोधी सिद्ध करने के लिए लिखा है कि "सन् 1894 ई मे जब लाला मुशीराम गुरुकुल के लिए धन सग्रह कर रहे थे, तब उन्होने सरकार की निन्दा करते हुए यह बात कही थी कि सिपाही भी कितने मूर्ख है, जो सत्रह–अठारह रुपयो पर भर्ती होकर सिर कटवाते है"। इसी प्रकार एक गुप्तचर ने अपनी रपट मे महात्मा मुशीराम के आचार्यत्व मे चल रहे गुरुकुल कागडी के सम्बन्ध मे लिखा कि "गुरुकुल की दीवारो पर ऐसे चित्र लगे हुए हैं जिनमे अग्रेजी राज के पहिले की भारत की अवस्था और अग्रेजो के कलकत्ता आने की स्थिति दिखाई गई। लखनऊ के सन् 1857 ई के राजविद्रोह के चित्र भी लगे हुए है। बिजनौर के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मिस्टर ऐफ फोर्ड ने 'जोन आफ आर्क' का भी वह बडा चित्र गुरुकुल मे देखा था, जिसमे वह अग्रेजो के विरुद्ध सेना का सचालन कर रही है[29]।"

गुरुकुल कागडी के ब्रह्मचारियो की शिक्षा–दीक्षा के सम्बन्ध मे विचित्र–विचित्र प्रकार के सन्देह सरकारी अधिकारियो के मनो मे उत्पन्न कर दिए गए थे। उन पर यह आरोप लगाये गये कि सरकार की सत्ता की चूल हिलाने के लिए वे निष्णात अश्वारोही हैं और बन्दूक चलाने मे कुशल हैं। वे अर्जुन की भॉति एक ही निशाने मे लक्ष्य–वेध कर सकते हैं। यह भी कहा गया कि वे तगडे कसरती पहलवान हैं, जिन्हे चन्द्रमा के प्रकाश मे लड सकने की आधुनिक युद्ध–प्रणाली का शिक्षण दिया गया है[30]। इसी प्रकार की एक घटना का वर्णन स्वामी श्रद्धानन्द ने लाहौर आर्यसमाज के 32 वे वार्षिकोत्सव पर सुनाया कि "कुछ महीने पहिले एक डिप्टी कलेक्टर गुरुकुल मे आए। उन्होने अपना परिचय एक वकील के रूप मे दिया था। मुझे इस बात की खबर पहले ही मिल चुकी थी कि एक डिप्टी कलेक्टर गुरुकुल मे आयेगे और अपने को एक वकील के रूप मे परिचित करायेगे। आधी रात के समय मैंने नकली वकील साहब को एक प्रेत की भॉति छात्रो के खेल के मैदान मे घूमते देखा, जहॉ हमारे विद्यार्थी गतका–फेरी खेलते थे। इसी खुली जगह के चारो ओर घास–फूस की चार दीवारी बना दी गई थी, ताकि स्त्रियॉ उधर न आएँ। परन्तु ऐसा लगता था, इस कानून पेशा व्यक्ति का दिमाग इतना कुण्ठित हो गया था कि वह रात

को भी दिन समझने का भ्रम पाले हुए था। वह उस स्थान पर निश्चेष्ट तथा भावहीन आकृति लेकर निरर्थक घूम ही रहा था कि मैने उसका हाथ पकड लिया और मुस्कुराते हुए नटखटपन के साथ कहा – 'क्यो दोस्त हमारे सारे गुप्त रहस्यो को तुमने जान लिया है।' वह भौचक्का सा रह गया और फौरन अपने चेहरे के भाव को बदल कर बोला – आपने मुझे ढूढ ही लिया। ठीक है, मैं वही हूँ जो मैंने आपको बताया था। गुरुकुल तो सत्य और धर्म का केन्द्र है। मैं इस पर अब दोषारोपण नहीं करूँगा[31]।"

क्या गुरुकुल के सम्बन्ध मे सरकार विरोधी भावना का स्वर निर्मूल था अथवा इस प्रकार के सन्देह मे सत्य का भी कुछ अश थी, यह जानना भी अत्यावश्यक है। इन्द्र के शब्दो मे गुरुकुल सरकार विरोधी भावना को हवा देने वाला किसी भी रूप मे नहीं था। लेकिन "नौकरशाही मे जो झुकना नहीं जानता या सलाम करना नहीं जाने, वह सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था। गुरुकुल के अधिकारियो और ब्रह्मचारियो मे सबसे बडा दोष यही था कि वे न सरकार से कुछ मागते थे और न अफसरो की दहलीज पर सिर झुकाना आवश्यक समझते थे[32]।"

परन्तु हमारे पास ऐसे भी साक्ष्य है जो यह सिद्ध करते है कि गुरुकुल मे जहॉ विद्रोही गतिविधियॉ चालू थी, वहॉ अग्रेजो के प्रति दुर्भावना और असदभावना भी थी। गुरुकुल विद्यालय विभाग के बाद गुरुकुल कागडी मे 1907 ई मे महाविद्यालय विभाग खुल गया था। इस विभाग मे विभिन्न रुचियो और विचारो के उपाध्यायो की नियुक्तियॉ भी होती रहीं। सन् 1908 के आस–पास गुरुकुल महाविद्यालय विभाग मे चार प्रकार की विचार धारा के उपाध्याय कार्यरत थे। एक प्रकार के उपाध्याय वे थे जो अपनी गर्मदलीय विचार धारा के कारण अग्रेजो के स्वागत के पक्ष धर नहीं थे। ऐसे उपाध्यायो मे घनश्यामसिह गुप्त थे। गुप्त जी गुरुकुल की सेवा मे 1908 से 1910 तक रहे। गुरुकुल के सम्बन्ध मे अपने सस्मरण लिखते हुए उन्होने कहा है "आप मेस्टन साहेब से न मिलना चाहे, तो कोई बात नहीं, इस प्रकार के शब्द कह कर उन्होने (महात्मा मुशी राम) ने मुझे छुटकारा दिया था। सर जेम्स मेस्टन सयुक्त प्रान्त के गवर्नर गुरुकुल देखने आ रहे थे। मै गणित और पदार्थ विज्ञान का अध्यापक था। बगभग आन्दोलन के पश्चात् गर्मदलीय विचार का था और युवक काल मे मुझ मे उद्दण्डता की मात्रा पर्याप्त थी, जिसे मैं अपना उत्साह मानता था। कहीं बातचीत मे मुझ से कुछ ठन जाए, इस आशका से मै गवर्नर साहेब से मिलना टालना चाहता था और इसकी अनुमति मुझे सहर्ष मिल गई[33]।"

उपाध्यायो मे दूसरी विचार धारा के वे अध्यापक थे जो न तो गर्मदल और न नरम दल के राजनीति की दलदल मे कभी फसे थे। ऐसे अध्यापक गुरुकुल मे रहते हुए भी प्राचीन सनातनी विचार धारा के थे जो विदेशी के छूने मात्र से अपने को अपवित्र समझ बैठते थे और प्रायश्चित के रुप मे गोबर आदि मल कर अपनी शुद्धि कर लेते थे। इस प्रकार के अध्यापको के प्रतिनिधि सस्कृत के अध्यापक सूर्यदेव थे। गुरुकुल कागडी मे वायसराय के आगमन पर ब्रह्मचारियो के सस्कृत भाषण का प्रदर्शन कराने के लिए 'सस्कृत क्लब' मे एक विशेष सभा का आयोजन किया गया था। वायस राय से अध्यापको का परिचय कराते समय प सूर्यदेव जी सबसे पीछे खडे थे और वायस राय को अपनी ओर आते देखकर कमरे से खिसकने के प्रयास मे ही थे कि वायस राय ने उनसे हाथ मिलाने का प्रयास किया। अब पडित के पास म्लेच्छ के स्पर्श से बचने का कोई उपाय नहीं था, बेबस होकर हाथ मिलाना पडा। वायस राय के कमरे से निकलते ही पडित जी शिव–शिव कहते हुए अपने निवास की ओर भागे। वहॉ जाकर कपडो सहित गगा मे कई डुबकियॉ लगाई और अपने प्रिय शिष्य को भेजकर गोशाला से गोबर मगाया और म्लेच्छ सम्पर्क से भ्रष्ट हुए हाथो को दसो बार गोबर से पवित्र किया[34]।

तीसरी विचार धारा के उपाध्याय प्रत्येक सम्भ्रान्त नागरिक अथवा उच्चकोटि के विद्वान् अथवा सम्मान्य राजनैतिक व्यक्ति अथवा उच्च शासनाधिकारी के गुरुकुल आगमन पर प्रसन्न होते थे। उनकी मान्यता मे ऐसे व्यक्तियो के आगमन से गुरुकुल का महत्त्व बढता है एव गुरुकुल को प्रसिद्धि मिलती है।

इस विचार के अध्यापको का बहुमत था। चौथी विचार धारा के उपाध्यायो को हम कान्तिकारी विचार धारा के अनुयायी कह सकते है। इस विचार के उपाध्यायो मे सबसे अग्रणी श्रीपाद दामोदर सातवलेकर थे। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने अपने सस्मरण मे गुरुकुल मे होने वाली कान्तिकारी गतिविधियो का वर्णन करते हुए लिखा है कि–

"अग्रेज अधिकारियो को इस बात का सन्देह था कि गुरुकुल मे राजद्रोही नौजवान तैयार किये जाते है। यह सन्देह राज्यपाल एव राजप्रतिनिधि के दिल मे भी था। इस बात की तहकीकात करने के लिए राजप्रतिनिधि ने एण्ड्रूज को गुरुकुल मे रहने के लिए भेजा। उन्होने वहॉ आने का बहाना बनाया कि मै गुरुकुल मे ब्रह्मचारियो को अग्रेजी सिखाने आया हूँ। वे ब्रह्मचारियो के बीच मे ही रहते थे। वे सिखाते तो अग्रेजी थे, पर आये थे जासूसी के लिए। गुरुकुल मे साल भर रहे, अन्त मे उन्होने रिपोर्ट दी कि गुरुकुल मे राजद्रोह की सीख नहीं दी जाती। इस कारण अग्रेजो का सन्देह थोडा मिट गया। तथापि गुरुकुल मे पुलिस के बार–बार आने–जाने के कष्ट होते रहे। पर महात्मा जी की चतुराई के कारण वे कष्ट भी नष्ट हो जाते थे।

इन्ही दिनो बगाल मे बम तैयार करने वाले नौजवानो का एक दल अपने रग पर था। उस दल के कार्यकर्ता चारो ओर से प्रान्तो मे फैल गये थे। हरिद्वार मे भी उनका एक अड्डा था। उस अड्डे से उन नौजवानो के सकेत और अन्य साहित्य गुरुकुल के ब्रह्मचारियो तक पहुँच गये थे। उनकी कोशिशे बेमिसाल होती थी। यद्यपि महाविद्यालय (गुरुकुल का कालेज विभाग) के सभी तरुण उस दल मे शामिल नहीं थे, फिर भी दस–पॉच विद्यार्थियो तक बम बनाने वाले सभी ग्रन्थ पहुँच चुके थे।

यह बात पुलिस के कानो से जा टकराई। गुरुकुल के विद्यार्थियो को यह सूचना मिल गई थी कि किसी भी दिन एकदम छापा मारकर निरीक्षण किया जा सकता है जिस प्रकार गुप्त पुलिस के जासूस हमारे बीच मे रहकर अपना काम करते थे, उसी प्रकार हमारे भी कुछ हित–चिन्तक गुप्त पुलिस के कार्यालयो मे थे। इसलिए अगले चार–पॉच दिनो मे जो होने वाला होता, उसकी खबर गुरुकुल तक उडती हुई चली आती और ब्रह्मचारी गण अपने कमरो को साफ–सूफ कर देते थे। इसी प्रकार जो सन्देहास्पद अध्यक्ष थे, उन्हे भी समय–समय पर सूचना मिल जाया करती थी। मै भी सन्देहास्पद अध्यापको मे से एक था। मुझे अच्छी तरह याद है कि एक रात हमने बम तैयार करने की पद्वति बताने वाले सब ग्रन्थ जमीन मे. गाड दिये थे और सब कमरे साफ कर दिये थे[35]।

उपर्युक्त साक्ष्यो से स्पष्ट हो जाता है कि गुरुकुल मे राजभक्ति का पाठ न पढाकर अध्यापक वर्ग छात्रो को राष्ट्रप्रेम का सन्देश भी अपने व्यवहार द्वारा निरन्तर देते रहते थे। ऐसी स्थिति मे उपर्युक्त चारो विचार धाराओ के उपाध्यायो का परस्पर ताल–मेल बैठाकर महात्मा मुशीराम अपनी कुशलता से गुरुकुल को प्रत्येक प्रकार के कटाक्षो और सन्देहो से बचाते हुए आगे बढाते रहे।

जालन्धर की कोठी का दान

गुरुकुल को और भी आगे बढाने के लिये अभी महात्मा मुशीराम को 'सर्वं वै पूर्णं स्वाहा' के रूप मे अन्तिम आहुति डालनी शेष थी। दोनो पुत्रो के स्नातक बनने से एक वर्ष पूर्व 1910 ई0 की प्रात कालीन बेला मे दोनो पुत्रो (हरिश्चन्द्र और इन्द्र) को महात्मा जी ने बुलाया और एक पूरे आकार के लिखे हुये कागज को उनके सामने रख कर हस्ताक्षर करने के लिए कहा। यह कागज देखने मे सामान्य था, परन्तु इस पर लिखा 'सर्वमेधयज्ञ' की घोषणा का सूचक था। इस 'सर्वमेध यज्ञ' की घोषणा का साराश इस प्रकार था–

"मैने अपनी शक्ति के अनुसार अपने जीवन में वैदिक धर्म की सेवा की है। स्वामी दयानन्द की मान्यताओ के अनुसार वैदिक धर्म के पुनरुद्वार और आर्य जाति के उत्थान के लिये गुरुकुल का सचालन

कर रहा हूँ। मैने गुरुकुल के लिये अपनी सब शक्ति लगा दी है, परन्तु अब मुझे अनुभव हो रहा है कि मेरा अब तक का प्रयत्न अधूरा था। मैंने अभी गुरुकुल के लिये सब कुछ नहीं दिया। जालन्धर मे मेरा जो मकान है, वह पैतृक नहीं है, मैने अपनी कमाई से बनाया है। उसमे अभी तक मेरी ममता विद्यमान है। मैं उसे भी मिटा देना चाहता हूँ। इस कारण मैं इस दान पत्र द्वारा वह मकान गुरुकुल कागडी के लिए आर्यप्रतिनिधि सभा, पजाब को समर्पित करता हूँ[36]।

इस 'दान पत्र' पर दोनो लडको के हस्ताक्षर होने इसलिए अनिवार्य थे कि इस मकान के सम्बन्ध मे इस 'दान पत्र' से पूर्व एक 'इच्छा पत्र' (वसीयतनामा) महात्मा जी लिख चुके थे। जिसमे उन्होने लिखा था कि मकान को बेचकर जो दाम मिले वह दोनो पुत्रो को आधे–आधे बाँट दिये जाए। 'इच्छा पत्र' मे हरिश्चन्द्र को दस हजार रुपये से प्रैस और समाचार पत्र चलाने का आदेश था और इन्द्र के लिये विलायत जाकर बैरिस्टरी पास करने का आदेश था। इस नये 'दान पत्र' से पूर्व इच्छा पत्र' स्वत अमान्य हो जाता था। परन्तु फिर भी प्रत्येक प्रकार की अनापत्ति से बचने के लिये महात्मा जी दोनो लडको की स्वीकृतिलेना उचित समझते थे। हरिश्चन्द और इन्द्र ने 'दान पत्र' को पढकर बडी प्रसन्नता से हस्ताक्षर कर दिए। गुरुकुल के उत्सव तक इस 'दान पत्र को गोपनीय ही रखा गया।

1910 ई0 मे गुरुकुल के वार्षिक उत्सव पर धन की अपील करते हुए अपना 'दानपत्र' जनता को पढकर सुनाया दान–पत्र को सुनकर अपनी–अपनी प्रकृति के अनुसार सभी श्रोता द्रवित हो गये।

प्रथम स्नातकः-

सन् 1911 ई0 का गुरुकुल का वार्षिकोत्सव महात्मा मुशीराम के लिए सबसे अधिक हर्ष को देने वाला माना जाना चाहिए। कुल के माली ने अपने सरक्षण मे रोपे बिरवे पर फल आते देखा और स्वय महात्मा जी के दोनो पुत्र गुरुकुल कागडी से सर्वप्रथम दल के रूप मे स्नातक बने ओर 'विद्यालकार' की उपाधि द्वारा उन्हे अलकृत किया गया। जो महत्त्व गुरुकुल के प्रथम 'वेदाराम्भ' सस्कार का था, वहीं महत्त्व प्रथम 'दीक्षान्त' सस्कार का भी था। पैरो मे खडाऊ के स्थान पर चप्पल शोभायमान थी। अजन–मजन की स्वीकृति मिल गई थी। प्रथम 'दीक्षान्त'समारोह के अवसर पर दिया गया महात्मा जी का भाषण चिर स्मरणीय है। महात्मा जी ने अनाघ्रात के समान पर गन्ध से अपरिचित और अनालुचित किसलय के समान पर स्पर्श से अकलुषित ब्रह्मचारियो को अपना सन्देश देते हुए कहा "यज्ञरूप परमात्मा धन्य है, जिसकी अपार कृपा से आर्यसमाज के रचे हुए इस ब्रह्मचर्य आश्रम रूपी महान् यज्ञ का पहिला चरण आज पूर्ण होता है। आर्यजाति का कौन ऐसा सदस्य हैं, जिसे सहस्रो वर्षो से लुप्त हुये इस दृश्य का आज पुन दर्शन कर प्रसन्नता न हो रही हो। गुरुकुल के स्नातको ! तुम गुरुकुल रूपी वृक्ष के पहले फल हो। सारे सभ्य ससार की ऑखे तुम पर लगी हुई हैं। परमात्मा का तुम पर आशीर्वाद हो कि तुम ससार मे धर्म और शान्ति फैलाने के साधन बन कर अपने कुल के यश को सारे ससार मे फैलाओ। तुम्हारा कर्तव्य इस कारण से भी अधिक है कि पीछे आने वाले स्नातक तुम्हारा अनुकरण करेगे। उनके लिये केवल तुम ही आदर्श होगें। मैं जानता हूँ कि तुमको बडी कठिनाइयॉं होंगी? जब कि तुम्हारे लिये इस समय कोई भी व्यक्ति आदर्श रूप मे मार्ग दर्शन के लिए उपस्थित नहीं है। तुम्हे अपना मार्ग स्वय बनाना है। मुझे पूर्ण आशा है कि तुम्हारे आचार्य और उनके दूसरे–सहकर्मियो ने जो प्रयत्न तुम्हारी शिक्षा को पूर्णतया फलदायक बनाने के लिए किए हैं, वे अवश्य अत्युत्तम फल लावेगे और तुम पीछे आने वाले स्नातको के लिए अत्युच्च आदर्श बनोगे। मैं आज आर्यसमाज को भाग्यशाली समझता हूँ कि जिसके लगातार प्रयत्नो से यह सफलता प्राप्त हुई हैं। इस यज्ञ मण्डप मे उपस्थित देवियो और सभ्य पुरुषो से मेरी प्रार्थना है कि वे सब एकत्रित होकर इन स्नातको को आशीर्वाद दे, जिससे वे अपने धर्म और अपने देश के यश को देश–देशान्तरो मे पहुँचाने मे कृतकार्य हो[37]।

इन्द्र को गुरुकुल के लिए जीवन दानी बनाने का विचारः-

स्नातक बनने के पश्चात् इन्द्र गुरुकुल मे पढाने लगे और हरिश्चन्द्र दिल्ली मे रहकर समाचार पत्र निकालने लगे। परन्तु कुछ समय पश्चात् ऐसा हुआ कि इन्द्र गुरुकुल छोडकर दिल्ली चले गए और हरिश्चन्द्र गुरुकुल मे आकर पढाने लगे। महात्मा जी अपने दोनो पुत्रो मे से हरिश्चन्द्र को योग्य मानते हुए भी इन्द्र को अपनी रुचियो के अधिक अनुकूल समझते थे। इन्द्र महात्मा जी के हृदय के भावो को बिना कहे ही समझ लेने की क्षमता रखते थे। इन्द्र की कार्यक्षमता और व्यवहार पटुता को देखकर महात्मा जी के मन मे अपने द्वारा आरम्भ किए 'सर्वमेध यज्ञ' का यजमान बनाने की भावना पनपने लगी। वे इन्द्र से कुरुवशी देवव्रत के समान आजन्म ब्रह्मचारी रहने की कठोर प्रतिज्ञा करवा कर गुरुकुल का भीष्म पितामह बनाना चाहते थे। इसी आशा से उन्होने इन्द्र को एक पत्र इस प्रकार लिखा–

ओम्

गुरुकुल

26 12 69 विक्रमी

मेरे प्यारे पुत्र,

कल के पत्र मे अपनी हार्दिक इच्छा का एक भाग प्रकाशित कर चुका हूँ। इस भाग पर हरिश्चन्द्र तथा डाक्टर सुखदेव से भी बातचीत हो चुकी है। किन्तु आज अपना सारा विचार तुम्हारे सामने रखना चाहता हू। इस विषय मे और किसी से न बात कर सकता हू और न करुँगा।

मैने देखा है कि गुरुकुल का काम जितना महान् है, उतना ही महान् बलिदान चाहता है। जिस मनुष्य का कोई भी सासारिक या पारमर्थिक अन्य कोई सम्बन्ध हो उसके लिये गुरुकुल की सर्व ओर रक्षा करना तथा उसे उन्नत करना कठिन है। यही कारण है कि न केवल विवाहित पुरुष ही यहॉ पूरा लाभ नहीं पहुँचा सकते, प्रत्युत वे परिवारहीन पुरुष भी जिनको कोई अन्य लगन है, यहॉ की सहायता मे पूर्णतया कृतकार्य नहीं हो सकते। गुरुकुल को चलाने के लियेअन्य योग्यताएँ भी चाहिए, किन्तु सबसे बडी योग्यता यह होनी चाहिए कि यहाँ के ब्रह्मचारियो के अतिरिक्त यहॉ के आचार्य और मुख्याधिष्ठाता की दृष्टि मे ओर कोई भी बडे से बडा आत्मिक उद्देश्य भी कुछ मूल्य न रखता हो।

अब प्रश्न यह है–क्या तुम्हारी रुचि विवाह की ओर है ? यदि है तो मै जानता हूँ कि जो दिल तुम्हे मिला है उसके अनुसार तुम्हारे प्रेम का बडा भाग उधर चला जायेगा। गुरुकुल का गृहपति बनने के लिये आवश्यक है कि गुरुकुल को माता–पिता, भ्राता, धर्मपत्नी, सबके स्थान पर समझा जाए। क्या इस कठिन आत्मसमर्पण का दृढ भाव तुम्हारे अन्दर है? यदि है तो गुरुकुल बडा भाग्यशाली होगा–यदि नही, तब भी गुरुकुल तुम्हारे सदाचार तथा उच्च भावो का अभिमान तो कर ही रहा है।

मेरे प्यारे पुत्र! अपने अन्दर के भाव तुम्हारे सामने रख दिये है। यदि तुम इस कठिन प्रश्न पर विचार करके किसी परिणाम पर शीघ्र नहीं पहुँच सकते हो तो मुझे लखनऊमे बाबू गगा प्रसाद वर्मा द्वारा तार दे देना कि अभी दिल्ली न आऊँ। तार 10 अप्रैल प्रात देना। यदि कोई तार न आया तो जैसा मैने लिखा है, 12 को या 13 अप्रैल को प्रात 5 बजे मै दिल्ली पहुँच जाऊँगा।

तुम्हारा सदैव सन्तुष्ट पिता

मुशीराम

महात्मा जी के पत्र को पाकर इन्द्र ने लम्बे विचार मन्थन के उपरान्त प्रायः यह निश्चय कर लिया था कि पिता और आचार्य की आज्ञा शिरोधार्य होनी ही चाहिए। आजन्म ब्रह्मचारी रहकर गुरुकुल के लिये जीवन दान करने की इन्द्र की भावना को जान कर महात्मा जी को अपार हर्ष और आनन्द हुआ। अपने आनन्द को उन्होने एक पत्र के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त किया–

ओम्

गुरुकुल

13 5 1970 (विक्रमी)

मेरे प्यारे पुत्र,

तुम्हारा पत्र अभी पहुँचा। तुम्हारा पत्र पढ रहा हूँ और बराबर आनन्द की अश्रुधारा बह रही है। परमात्मा ने इसी जन्म मे कृतकार्य कर दिया, यह मेरा रोम–रोम इस समय अनुभव कर रहा हैं। कि मेरे प्यारे पुत्र। जिस दिन के लिए मैं रातो जागकर परमेश्वर से प्रार्थना करता रहा, जिसके लिये ही मैं ससार के अपने से निर्बल आत्मा के लिए असह्य से असह्य दुखो को सहन करता रहा, वह दिन आज मैने देखा।

इससे अधिक आज लिखने की कुछ शक्ति नहीं। अभी तो इस आनन्द को ही बार–बार अनुभव करके आनन्दित होने दो, कार्य के साधनो का विस्तृत विचार फिर होगा।

जैसे कि लिख चुका हूँ कि 30 मई को यहाँ से चलूँगा। यदि तुम भी 31 मई को लाहौर पहुँचोगे, तो वहॉ सभा के अधिवेशन से निवृत्त होकर दो जून को दिन का बडा भाग विचार मे ही कटेगा।

तुम्हारा

मुशीराम

महात्मा मुशीराम का उपर्युक्त आनन्द चिर स्थायी नहीं रह सका। इन्द्र अपनी भीष्म प्रतिज्ञा से पीछे हट गए ओर 1916 ई0 मे गृहस्थ आश्रम मे प्रविष्ट होकर अपने ढग से जीवन व्यतीत करने लगे। एक शिष्य ने गुरु द्वारा दक्षिणा मागने पर उसकी झोली मे सर्वस्व डाला। इस सर्वस्व को पाकर गुरु लूठे–लूठे फिरे। किन्तु कुछ काल के उपरान्त अपने सर्वस्व को गुरु की झोली से निकाल कर उसे पुनः कगाल बना दिया। शिष्य का यह व्यवहार गुरू के मन को कितनी ठेस दे गया, कितना गहरा घाव कर गया और कितना निराश कर गया, इसको तो गुरु ही जानता था। यह गुरु और शिष्य दोनो का सौभाग्य ही कहिए, कि यह घटना लोगो तक न पहुॅच सकी।

महात्मा जी के दोनो पुत्र गुरुकुल की सेवा उस प्रकार करने मे अक्षम रहे जिस प्रकार महात्मा जी ने अपने मन मे सोच रखी थी। कर्ता के मन मे कुछ और तथा विधाता के मन मे कुछ और, इसी को कहते हैं। इस प्रकार महात्मा जी को आगे चल कर गुरुकुल की बागडोर उन व्यक्तियो के हाथ मे देनी पडी, जिन्होने अपने स्वार्थो की पूर्ति के लिये महात्मा जी को समय से पूर्व सन्यास लेने के लिए विवश कर दिया था।

एण्ड्रूज और मुंशीराम

एक बार की बात हैं कि महात्मा मुंशीराम स्वास्थ्य सुधार के लिये क्वेटा (पाकिस्तान) गये

हुये थे। गुरुकुल मे खबर पहुँची कि सरकार को गुरुकुल मे हथियारो का गुप्त भण्डार होने का सन्देह है। अत गुरुकुल की तलाशी लेने के लिए बिजनौर के कलेक्टर मिस्टर फोर्ड चण्डी पर्वत माला मे डेरा डाले हुये है। इस समाचार से गुरुकुल के प्रबन्धको मे चिन्ता फैल गई और उन्होने बवासीर से पीडित महात्मा जी को तार भेज कर तुरन्त गुरुकुल पहुचने का आग्रह किया। क्वेटा से आने पर महात्मा जी सीधे कलेक्टर से मिलने के लिये चल दिये। इस मुलाकात मे क्या कुछ बाते हुई, यह तो निश्चय से नही कहा जा सकता, परन्तु इसके परिणाम के विषय मे स्वय महात्मा जी ने लिखा है कि "बुद्धिमान जिलाधीश फोर्ड तथा सयुक्त प्रान्त के उदार तथा सन्तुलित मस्तिष्क वाले गवर्नर सर जान हीवेट ने इस नाजुक स्थिति को नही सम्भाला होता, तो इस बात की पक्की सम्भावना थी कि कुछ लोगो को देश निकाले की सजा मिलती, गुरुकुल को बल प्रयोग करके बन्द करा दिया जाता और पत्रो मे खूब शोर मचता, जनता मे इसकी मौन प्रतिकिया भी होती तथा ब्रिटिश शासन के इतिहास मे अकथनीय विक्षोभ फैल जाता। जो एक दुखान्त घटना होने वाली थी, वह सुखान्त प्रहसन के रूप मे परिणत हो गई[38]।

इस स्थिति को सुखान्त परिणाम तक पहुचाने मे एक ऐसे व्यक्ति का हाथ था जो कि जाति से अग्रेज और धर्म से ईसाई था। वह व्यक्ति था एण्ड्रूज। एण्ड्रूज और मुशीराम के बडे घनिष्ट सम्बन्ध थे। इन्हीं सम्बन्धो के कारण महात्मा मुशीराम और महात्मा गाधी 'पत्र भाई' बने। महात्मा मुशीराम लगभग 1908–9 ई0 के आस–पास एण्ड्रूज के सम्पर्क मे आए। दिल्ली के सैट स्टीफन्स कालेज के प्रिसिपल रुद्र ने अपने कालेज मे ब्रह्मचर्य का महत्त्व' पर भाषण देने के लिए महात्मा मुशीराम को निमन्त्रित किया। इस निमन्त्रण के कारण महात्मा मुशीराम को एक ऐसा अवसर मिला कि ईसाई वातावरण वाली सस्था मे भारतीय नैतिक मूल्यो को उजागर कर सके। महात्मा मुशीराम के भाषण से कालेज के प्रिसिपल एव इगलिश के अध्यापक ईसाई पादरी एण्ड्रूज बडे प्रभावित हुए और उन्होने गुरुकुल जैसी आदर्श सस्था को देखने का सकल्प किया। इन्द्र के कथनानुसार "1909–10 के लगभग दिल्ली के सैंट स्टीफन्स कालेज से गुरुकुल के सम्बन्ध ऐसे हो गए थे, जैसे दो बहिन सस्थाओ के होते है। मिस्टर ए0 एफ0 ए0 एण्ड्रूज और प्रिसिपल रुद्र का पिता जी से स्नेह हो गया था, उसे अकारण स्नेह का नाम ही देना चाहिये, क्योकि न तो उसमे किसी का कुछ स्वार्थ था और न ही धर्म अथवा सस्कृति की समानता थी। केवल प्रवृत्तियो की समानता के कारण ही वह स्नेह पैदा हुआ था[39]।

प्रवृत्तियो की समानता के कारण ही एण्ड्रूज ने रवीन्द्र नाथ को लिखे एक पत्र मे अपने उद्‌गार इस प्रकार व्यक्त किये थे, "मै कुछ सप्ताह से गुरुकुल मे रहा हू। महात्मा मुशीराम जी अब तक मेरे सम्पर्क मे आये भारतीयो मे सर्वोत्कृष्ट है, और उनका दृष्टिकोण आर्यसमाज के सामान्य आदर्श की अपेक्षा असाधारण रुप से कहीं अधिक व्यापक है। यही कारण है कि उनके साथ रहने की मेरी उत्कठा है जिसका मै ऊपर उल्लेख कर चुका हूँ—अधिक प्रबल हो गई है। दूसरी सामान्य सी बात यह हुई है कि मै अब विशुद्ध शाकाहारी हो गया हूँ, और इससे मुझको बहुत लाभ हुआ है[40]।

दोनो के अकारण स्नेह सम्बन्ध के विषय मे 20 अप्रैल, 1913 ई0 को एण्ड्रूज ने एक पत्र महात्मा मुशीराम को लिखा था। उस पत्र की कुछ पक्तियो को उद्धृत करते हुए विनोद चन्द्र लिखते हैं कि—

"मै आज सारे दिन आपको याद करता रहा हूँ और अब शाम के समय आपको विशेष रूप से स्मरण कर रहा हूँ, परन्तु आप इसे बिना कहे ही समझ सकते हैं। मैं यह नहीं कह सकता कि यह महान् प्रेम कहाँ से उत्पन्न हुआ है। वस्तुत यह परमात्मा की देन हैं और इसके लिये उसका धन्यवाद करता हूँ, क्योकि यह उसके हाथो से अब तक प्राप्त उपहारो मे सर्वश्रेष्ठ है[41]।

एण्ड्रूज ने इस प्रेम का प्रतिदान उचित समय आने पर प्रदर्शित किया सामान्य रूप मे आर्य समाज और विशेष रुप मे महात्मा मुशीराम और गुरुकुल के सम्बन्ध मे ब्रिटिश अधिकारियो का मनोभाव परिवर्तित करने मे एण्ड्रूज का बडा भारी हाथ रहा है, एण्ड्रूज को लार्ड हार्डिग और जेम्स मेस्टन (सयुक्त प्रान्त के राज्यपाल) के साथ मधुर सम्बन्ध थे। उसने इन दोनो ब्रिटिश अधिकारियो को आर्यसमाज और गुरुकुल के सम्बन्ध मे विश्वास की नीति' अपनाने का परामर्श दिया। वायसराय ने इस परामर्श के उपरान्त एण्ड्रूज से मुशीराम के विषय मे सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न किया। एण्ड्रूज ने वायसराय को पूर्ण विश्वास के साथ लिखा कि मुशीराम के सम्बन्ध मे जो बाते उन्होने कही हैं, यदि वे असत्य प्रमाणित हो जाती है, तो उनका सिर चौखटे मे रखकर काट दिया जाए[42]।

गुरुकुल में वायसराय का आगमन स्थगितः-

एण्ड्रूज ने दिनाक 8 जून, 1913 ई0 को शिमला से महात्मा मुशीराम को लिखा कि वे तीन दिन के लिए वायसराय के साथ शिमला मे रहेगे और उन दिनो मे जेम्स मेस्टन भी उपस्थित होगे। शिमला प्रवास के दिनो मे एण्ड्रूज ने वायसराय और सयुक्त प्रान्त के गर्वनर के मनो से मुशीराम के सम्बन्ध मे प्राय सभी सन्देहो को दूर कर दिया था। इसका शुभ परिणाम यह निकला कि लार्ड हार्डिग ने गुरुकुल मे आने का विचार बनाया। वायसराय के गुरुकुल मे आने से पूर्व सयुक्त प्रान्त के गर्वनर जेम्स मेस्टन मार्च, 1913 और फरवरी,1914 ई0 को गुरुकुल मे पधारे, और गुरुकुल के ब्रह्मचारियो की हथेलियो को दबा–दबा कर अपने इस सन्देह को मिटाया कि यहाँ इन्हे युद्धाभ्यास का प्रशिक्षण दिया जाता है। गवर्नर महोदय गुरुकुल की गतिविधि से सतुष्ट हुये। इसके पश्चात् गुरुकुल मे वायसराय के आगमन का कार्यक्रम बनाया गया। परन्तु वह सिरे नही चढ सका। इस सिरे न चढने के पीछे क्या कारण थे, इनकी जानकारी एण्ड्रूज के उस पत्र से होती है जो उन्होने दिनाक 22 मई, 1914 ई0 को महात्मा मुशीराम के नाम लिखा था। इस पत्र के अनुसार 'देहली षड्यन्त्र' के कारण गुप्तचर विभाग ने वायसराय को गुरुकुल न जाने का परामर्श दिया था।

एण्ड्रूज के अतिरिक्त गुरुकुल के प्रति राजद्रोह की भावना को कम करने वाले व्यक्तियो मे रैम्जे मैकडानल्ड को भी जोडना चाहिए। ये सन् 1913 ई0 मे ब्रिटिश पार्लियामैन्ट मे मजदूर दल के नेता थे ओर बाद मे वहाँ के प्रधान मन्त्री भी बने। अपनी भारत यात्रा मे ये 8 नवम्बर, 1913 ई0 मे गुरुकुल कागडी आए थे उन्होने अपनी यात्रा की समाप्ति पर 1914 ई0 मे डेली क्रानिकल मे गुरुकुल के विषय मे इस प्रकार लिखा था——

"जिन्होने भारतीय राजद्रोह का अध्ययन किया है, उन्होने गुरुकुल जहाँ आर्यसमाज के कुमारो को शिक्षा दी जाती है, का नाम अवश्य सुना होगा। यह शिक्षणालय आर्यो की मनोवृत्ति और आदर्शो का सबसे अधिक अनुरूप प्रतिबिम्ब है और इस प्रगतिशील धार्मिक सस्था के विरुद्ध उठाये गये सभी सन्देह इस पर केन्द्रित हो गये है। इसी कारण सरकार की वक्र दृष्टि इस पर रही है। .. कार्यकर्ताओ मे कोई अग्रेज नहीं, अग्रेजी शिक्षा का माध्यम नहीं, पजाब विश्वविद्यालय द्वारा भारतीयो की उच्च शिक्षा के मूल स्तम्भ के तौर पर निर्दिष्ट अग्रेजी साहित्य की पाठ्य पुस्तके यहाँ प्रयुक्त नहीं होती हैं। महाविद्यालय अपनी ही उपाधिया देता है। यथार्थत यह कानून भग हैं। आश्चर्य से स्तब्ध सरकारी अधिकारियो का इसे एक ही सास मे राजद्रोह कहना अनिवार्य था। परन्तु उसे गुरुकुल पर अन्तिम निर्णय कदापि नहीं कह सकते। . एक बार फिर हम अपने हाथ बाहर निकालते है। नौकर उन पर पानी डालता है। जूते उतार कर हम उन्मुक्त पवन मे सायकालीन भोजन के लिये चटाइयो पर बैठते है। हमारे चरणो मे गगा आह्लादकारी कल–कल करती हुई पत्थरो मे से होकर वेग से बह रही है। ऊँची–ऊँची घासो की ऊँची–ऊँची शिखाये चन्द्र ज्योत्स्ना को झेल रही है। वन भूमि ओस से व्याप्त हुई सी झिलमिला रही है। दूर, बहुत दूर से आते हुये अस्फुट वन्य शब्द भूतो और पथभ्रष्ट आत्माओ

कहते सुनता हूँ– "हमे और कुछ नहीं चाहिये। हमे शान्ति से प्रभु का भजन करने दो। क्या यह राजद्रोह है।"

अपने उपर्युक्त विचारो को उन्होने भारत मे रहने वाले पजाब, दिल्ली और सयुक्त प्रान्त के अग्रेज अधिकारियो के सम्मुख भी रखा था। इसका अनुकूल प्रभाव पडा ओर ब्रिटिश अधिकारी गुरुकुल के प्रति नरम हुए। रैम्जे मैकाडानल्ड का उपर्युक्त लेख स्पष्ट रूप से यह प्रकट करता है कि गुरुकुल राजद्रोह का केन्द्र न होकर शुद्ध प्रभुभक्ति का केन्द्र है इससे बडा प्रमाण पत्र और क्या दिया जा सकता था। इससे महात्मा मुशीराम के हाथ मजबूत हुए।

सन् 1914 ई0 मे दक्षिण अफ्रीका मे रहने वाले भारतीयो के अधिकारो की प्राप्ति के लिए आरम्भ किये गये सत्याग्रह की समाप्ति पर महात्मा गाँधी का भारत मे आगमन भारतीय राजनीति मे एक नवीन नक्षत्र के उदय के रूप मे देखा गया। यह नवीन नक्षत्र देखते–देखते भारतीय ~ ~~ आकाश मे सूर्य बनकर चमकने लगा। सन् 1914–18 तक प्रथम विश्व युद्ध भी आरम्भ हुआ इसी अवधि के मध्य गुरुकुल कागडी मे ब्रिटिश ताज के प्रतिनिधि भारत के वायसराय का आगमन हुआ। इसी अवधि के मध्य भारतीय जनमानस के भावी बेताज राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी भी गुरुकुल पधारे। उपर्युक्त घटनाओ के अतिरिक्त इसी अवधि मे आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब के चुनाव ने नई करवट ली और महाशयकृष्ण सभा के मन्त्री निर्वाचित हुए।

गुरुकुल विरोधियो का पुनरुत्थानः-

महाशय कृष्ण के सभामन्त्री बनते ही गुरुकुल के उद्देश्यो के सम्बन्ध मे विवाद खडा हो गया। गुरुकुल की स्थापना के समय के विरोधियो ने पुन गुरुकुल की अनुपयोगिता का राग अलापना आरम्भ कर दिया। इस विवाद को महाशय कृष्ण का प्रश्रय प्राप्त था।

पजाब सभा के अधीन चलने वाले गुरुकुल कागडी के सस्थापक महात्मा मुशीराम के 'एकाधिकार' को वे कैसे सहन कर सकते थे। महात्मा जी गुरुकुल को विश्वविद्यालय का स्वरूप प्रदान करना चाहते थे और महाशय कृष्ण गुरुकुल को प्रारम्भिक स्वरुप मे ही रखने के समर्थक थे। महाशय कृष्ण ने अपने पत्र 'प्रकाश' मे महात्मा जी के विचारो की कटु आलोचना करनी आरम्भ कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि गुरुकुल के छात्रो मे भी अपने भविष्य के प्रति चिन्ताये होने लगीं। आलोचनाओ के इस ज्वार मे गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के सम्बन्ध मे एक लेख निकला। लेख का शीर्षक था–"गुरुकुल से निकला स्नातक क्या करेगा?" अगली ही पक्ति मे इसका उत्तर भी था– वह तो वह काम करेगा जो कोई और नहीं" कर सकता अर्थात "खाली बैठना"। इस प्रकार के लेखो से विचलित होकर उच्च श्रेणी के छात्र महात्मा मुशीराम के पास गए और कहने लगे कि "आपने सरकार से असहयोग कर यह सस्था खोल तो दी, पर हमारे भविष्य पर विचार नहीं किया। जो स्नातक निकलते है, उन्हे गुरुकुल मे ही नियुक्त कर दिया जाता है, उनके लिए अन्यत्र कोई स्थान नहीं है। हमारे स्नातक बनने तक यहाँ भी छोटे–बडे सभी पद स्नातको से भर जायेगे तो फिर हम स्नातक बनने पर क्या करेगे।" महात्मा मुशीराम के सामने छात्रो ने दो बार गुरुकुल की शिक्षण पद्वति के प्रति अश्रद्धा प्रकट की थी। प्रथम अश्रद्धा का कारण 'विद्वान बनने की अभिलाषा थी, जिसे हरिश्चन्द्र और इन्द्र ने प्रकट किया था। इस दूसरी अश्रद्धा का कारण व्यावहारिक था और जीवन–निर्वाह के विषय से सम्बन्धित था। स्वामी जी इस प्रश्न का तुरन्त कोई सही उत्तर नहीं दे सके। उन्होने कहा–"तुम्हारी बात मैने सुन ली है, इसका उत्तर उचित समय पर दूँगा। छात्र निराश होकर लौट गए।

तीन–चार दिन पश्चात दिवाली का त्यौहार था। गुरुकुल मे इस सन्दर्भ मे सभा हो रही थी। महात्मा मुशीराम ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम की कथा सुनाते हुए कहा कि राम ने अयोध्या आने पर विदाई

के समय हनुमान को अपने गले का बहुमूल्य कठहार भेट किया। हनुमान ने कठहार के मनको को तोड–तोडकर देखना और फैकना आरम्भ कर दिया। सीता हनुमान के इस विचित्र व्यवहार को देखकर बोले बिना न

रह सकी और पूछा–हनुमान तुम यह क्या कर रहो हो? हनुमान मुस्कराता हुआ बोला–"माँ मैं देख रहा हूँ कि इन मनको मे राम नाम अकित है अथवा नहीं। यदि इन मनको मे राम नाम नहीं तो ये मेरे किस काम के है। इस उत्तर को सुन कर सीता पूछ बैठी–'क्या तेरे हृदय मे राम नाम अकित है?" हनुमान ने ऐसा सुनते ही अपना हृदय उघाड कर दिखा दिया, जिसमे सीता ने राम के पवित्र अक्षर देखे। यह घटना सुनाकर महात्मा जी बोले–"अभी कुछ दिन पूर्व तुममे से कुछ कुलपुत्र मेरे पास आये थे और पूछते थे कि स्नातक बनने के बाद हम क्या करेगे क्योकि नौकरियो के सभी द्वार हमारे लिए बन्द है। मै उनसे कहना चाहता हूँ कि मुझे तो भगवान पर पूरा भरोसा है और मेरा तो सदा से आदर्श वाक्य रहा है।–

जब दॉत न थे तब दूध दियो, तब दॉत दिये तब अन्न न देहे?
जल मे थल मे पशु पक्षिन की, सुधि लेत सदा सो तोरिहूँ लैहे।
काहे का सोच करे मन मूरख, हाथ मले कुछ हाथ न ऐहे।
जान को देत अजान को देत, जहान को देतसोई तोरेहूँ देहे।

एक बात और, मैने यह सस्था अग्रेज सरकार के गुलाम डिप्टी कलेक्टर या कलेक्टर पैदा करने के लिये नही खोली है। इस सस्था को जन्म देने और इसके लिये अपने जीवन का सर्वोत्तम भाग लगा देने का मेरा उद्देश्य तो इससे ऐसे स्नातको को जन्म देना था जो अपनी मातृभूमि को स्वामी दयानन्द के अनुसार पुन एक बार ससार का सिरमौर बनाने के लिए सिर–धड की बाजी लगा दे। मै तो चाहता हूँ कि इससे जो स्नातक निकले उनके हृदय मे हनुमान के रामनाम की तरह 'ओम्' नाम अकित हो। कुल पुत्रो ! यदि सैकडो मे से दो–चार भी ऐसे दिवाने इस कुल मे पैदा हो गए, तो मै अपना जीवन सफल समझूँगा।" महात्मा जी के इस प्रवचन से छात्रो को उनके प्रश्न का उत्तर मिल गया[43]।

महात्मा मुशीराम के विरोधियो ने जहाँ गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर आघात करके विद्यार्थियो मे असन्तोष की भावना फैलाई, वहाँ कुछ गुरुकुल विरोधियो ने यह अफवाह उडा दी कि महात्मा जी दूसरो के बच्चो को तो गुरुकुल मे भेजने का प्रचार करते है, लेकिन अपने लडको को यहाँ से निकाल कर अन्यत्र भेज रहे है। वस्तुत बात यह थी कि गुरुकुल मे रहते हुए इन्द्र का एक फेफडा खराब हो गया था। ईलाज के लिये उन्हे कई मास शिमला के पास सोलन मे रहना पडा। इसी बात का बतगड बना कर अफवाह फैला दी गई थी। इस अफवाह का प्रतिवाद करना भी अनिवार्य था इसके प्रतिवाद मे गुरुकुल के उत्सव पर महात्मा जी ने कहा कि "मेरे पुत्रो के विषय मे गुरुकुल को छोडकर चले जाने की बात बिलकुल निराधार है। वे गुरुकुल मे ही पढ रहे है। और पढते रहेगे। यदि पढते हुये उनकी मृत्यु भी हो जाती है तो उनका अन्तिम सस्कार भी इसी कुलभूमि पर ही होगा[44]।

भागलपुर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्षः-

इधर पजाब मे महात्मा मुशीराम के विरुद्ध अनर्गल आरोपो का जाल बुनकर उन्हे अपमानित करने का कुचक्र चल रहा था। उधर बिहार प्रान्त मे हिन्दी के प्रति उनकी सेवाओ को देखते हुए, 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' का सभापति बनाकर सम्मानित किया जा रहा था। महात्मा मुशीराम ने गुरुकुल मे उच्च कक्षाओ तक हिन्दी माध्यम रखकर तत्कालीन शिक्षा क्षेत्र मे यह सिद्ध कर दिया था कि यदि सकल्प मे दृढता है तो हिन्दी भाषा मे उच्च शिक्षा दी जा सकती है। तत्कालीन कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग के प्रधान मिस्टर सेडलर ने हिन्दी माध्यम के इस सफल प्रयोग के विषय मे कहा था, "मातृभाषा द्वारा उच्च शिक्षा देने के परीक्षण मे गुरुकुल को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। महात्मा मुशीराम को

सन् 1913 ई0 मे भागलपुर (बिहार) मे होने वाले चतुर्थ 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' का सभापति बनाया गया। इस सम्मेलन से पूर्व के सभी सम्मेलनो के सभापति हिन्दी के धुरन्धर विद्वान ही बनते आए थे। यह पहला अवसर था जबकि एक साहित्यिक विद्वान के स्थान पर हिन्दी प्रेमी को अध्यक्ष बनाया गया था। इलाहाबाद से निकलने वाले 'लीडर' नामक समाचार पत्र ने महात्मा जी के सभापति बनने पर लिखा था "लाला मुशीराम इतने विख्यात है कि उनकी प्रशसा करना व्यर्थ है। जिस सम्मेलन का ऐसा व्यक्ति सभापति हो, उसको अवश्य ही सफलता और सहायता प्राप्त होगी।" अपने अध्यक्षीय भाषण मे हिन्दी के लिए 'मातृभाषा' शब्द का प्रयोग करते हुए तथा हिन्दी माध्यम की सास्कृतिक महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा था कि "हमारी सभ्यता के तीन प्रधान चिन्ह है– अहिसा, मातृशक्ति का सत्कार और ब्राह्मणत्व। ये तीनो गुण परकीय भाषा द्वारा पनप नहीं सकते। इसलिए यदि हम परकीय भाषा को अपनायेगे तो हम भ्रष्ट होगे–एक राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकेगे[45]।

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के कारण महात्मा गॉधी से सम्पर्क:-

महात्मा गॉधी ने अफ्रीका मे गिरमिटियो के अधिकारो के लिए सन् 1913–14 ई0 मे सत्याग्रह आरम्भ किया हुआ था। 'गिरमिट' शब्द का प्रयोग उन भारतीयो के लिए होता था जो एक निश्चित इकरारनामे' (स्वीकृति पत्र) के अधीन पॉच वर्ष के लिए मजदूरी करने की इच्छा से नेटाल (अफ्रीका) जाते थे। अग्रेजी भाषा मे 'इकरारनामा' को 'एग्रीमैन्ट' कहते हैं। यही एग्रीमैन्ट शब्द बिगड कर 'गिरमिट' शब्द बन गया था। इन गिरमिट भारतीयो को अग्रेज लोग 'कुली' भी कहते थे। इन गिरमिटियो पर नेटाल मे तीन पौण्ड का कर लगता था। महात्मा गॉधी ने 1895 ई0 मे इस प्रथा को समाप्त करने के लिए पहला प्रार्थना पत्र दिया था[46]। परन्तु अफ्रीका की गोरी सरकार ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। इसी अर्धगुलामी (कर व्यवस्था) को समाप्त करने के लिए महात्मा गॉधी ने सत्याग्रह आरम्भ किया था।

महात्मा गॉधी ने प्रवासी भारतीयो के अधिकारो की प्राप्ति के लिए किए गए सत्याग्रह के लिए भारतवासियो के आर्थिक सहायता करने की अपील की। इस अपील पर स्वर्गीय गोखले चन्दा एकत्र करने के काम मे लग गए। गॉधी जी की अपील का गुरुकुल निवासियो पर भी प्रभाव पडा। गुरुकुल के ब्रह्मचारियो एव अध्यापको ने अपने–अपने भोजन मे कमी करके इससे होने वाली आय के अतिरिक्त हरिद्वार के समीप बनने वाले 'दूधिया बॉध' पर पत्थर तोडने और मिट्टी डालने की मजदूरी करके पन्द्रह सौ रुपया श्री गोखले के पास भेज दिया। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों और अध्यापको द्वारा अपनाई गई उपर्युक्त विधि के विषय में गोखले ने इस सम्बन्ध मे 27 नवम्बर, 1913 ई0 को एक पत्र भेजकर महात्मा मुशीराम को इस प्रकार लिखा–

"मुझे रेवरेण्ड एण्ड्रूज और पण्डित हरिश्चन्द्र (महात्मा मुशीराम के पुत्र) ने बताया कि किस प्रकार गुरुकुल के ब्रह्मचारी दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के लिए घी–दूध छोडकर और साधारण कुलियो और मजूरो की तरह मजूरी करके रुपया इकठ्ठा कर रहे हैं। दिल हिलाने वाले इस देश भक्तिपूर्ण कार्य के लिए मैं उनको क्या धन्यवाद दूँ? यह तो उनका वैसे ही अपना काम है, जैसा कि आपका और मेरा काम है। वे इस प्रकार भारत माता के प्रति अपने ढग से कर्तव्य का पालन कर रहे है। फिर भी भारतमाता की सेवा के लिए त्याग और श्रद्धा का जो आदर्श उन्होने देश के युवको तथा वृद्धो के सामने उपस्थित किया है, उसकी अन्त करण से प्रशसा किये बिना मैं नहीं रह सकता। मै आपका अत्यन्त कृतज्ञ होऊॅगा यदि आप मेरे ये भाव किसी तरह उन तक पहुॅचा दे।"

गुरुकुल के विषय मे एण्ड्रूज ने महात्मा गॉधी को अपनी मुलाकातो मे काफी कुछ बता रखा था। उन्होने ब्रह्मचारियो द्वारा सत्याग्रह के धनार्थ किए गए नूतन एव प्रभावोत्पादक प्रयोग का वर्णन भी गॉधी जी को सुनाया था। ब्रह्मचारियो के त्याग की भावना ने गॉधी जी को गुरुकुल का प्रशसक एव प्रेमी बना दिया। उन्होने दिनाक 21 अक्टूबर 1914 ई0 को फोनिक्स आश्रम नेटाल से मुन्शी राम को

अग्रेजी मे पत्र लिखते हुए अपने उद्गारो को इस प्रकार व्यक्त किया था–

फोनिक्स नेटाल

21, अक्टूबर, 1914

प्रिय महात्मा जी

श्रीयुत एण्ड्रूज ने आपके नाम और काम का परिचय मुझे दिया है। मै अनुभव कर रहा हूँ कि मै किसी अपरिचित को पत्र नही लिख रहा हूँ। इसलिए आशा है कि आप मुझे महात्मा जी लिखने के लिए क्षमा करेगे। मैं और मिस्टर एण्ड्रूज आपकी और आपके काम की चर्चा करते हुए आपके लिये इसी शब्द का प्रयोग करते हैं। श्री एण्ड्रूज ने मुझको यह भी बताया कि आप, गुरुदेव (रवीन्द्र नाथ टैगोर) और मिस्टर रुद्र (सेन्ट स्टीफन्स कालेज, दिल्ली के प्राचार्य) से वे किस प्रकार प्रभावित हुए है। आपके विद्यार्थियो ने सत्याग्रहियो के लिए जो काम किया है, उसका वर्णन भी उन्होने मुझ से किया है। गुरुकुल के जीवन का जो चित्र उन्होने खींचा है, उससे मै यह पत्र लिखते समय अपने को गुरुकुल मे बैठा हुआ समझता हूँ। निस्सन्देह इन्होने मुझे इन तीनो सस्थाओ को देखने के लिए अधीर बना दिया है और मैं इन सस्थाओ के सचालको, भारत के तीनो सपूतो के प्रति अपना आदर व्यक्त करना चाहता हूँ।

आपका

मोहनदास कर्मचन्द गॉधी

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह की समाप्ति पर गोखले की इच्छानुसार महात्मा गॉधी इगलैण्ड होते हुए भारत आना चाहते थे। किन्तु 4 अगस्त, 1914 ई0 को प्रथम विश्व युद्ध की घोषणा हो गई और महात्मा गॉधी 6 अगस्त को विलायत पहुॅचे। ऐसी स्थिति मे भारत आना सम्भव नहीं था। गॉधी जी ने युद्ध मे घायल सैनिको की शुश्रुषा करने के लिए अपनी सेवाए अग्रेजों को समर्पित कर दी। अत उनको विलायत मे ही कुछ समय के लिए रहना पडा। इससे गॉधी जी की योजनॉए खटाई मे पड गई। भारत मे गॉधी जी के आगमन के बाद आने वाले फिनिक्स आश्रम के छात्र और अध्यापक भारत के लिए चल पडे। ऐसी स्थिति मे गॉधी जी के सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि फिनिक्सवासियो को भारत मे कहॉ रखेगे? उनके मन मे यह था कि सब एक साथ ही रहे और फिनिक्स आश्रम जैसा जीवन बिता सके।

किसी आश्रम सचालक को वे नहीं जानते थे, जिन्हे वे लिख सके। इस परिस्थिति ने उन्होने फिनिक्सवासियो को एण्ड्रूज से मिलने के लिए लिखा। एण्ड्रूज ने महात्मा मुशीराम से इस विषय मे बातचीत की और उन्हे गुरुकुल मे रखा गया। महात्मा मुशीराम ने बच्चो की भॉति उनकी सेवा की[47]। बाद मे फिनिक्सवासी शान्ति निकेतन चले गए थे। भारत मे आने पर गॉधी जी ने आश्रम वासियो के निवास की समुचित व्यवस्था करने के लिए महात्मा मुशीराम को आभार प्रदर्शन के लिए इस प्रकार लिखा–

सर्वेन्ट आफ द इण्डिया सोसायटी पूना सिटी

माघ कृष्ण पक्ष 8 (फरवरी 8, 1915)
महात्मा जी

आपका तार मुझे मिला था। उसका प्रत्युत्तर तार से भेजा था, वो आपको मिला होगा। मेरे बालको के लिए जो परिश्रम आपने उठाया ओर उन को जो प्यार बतलाया इस वास्ते आपका उपकार मानने को मैंने भाई एण्ड्रूज को लिखा था। लेकिन आपके चरणो मे सिर झुकाने की मेरी उम्मेद हैं इसलिए बिन आमन्त्रण आने को भी मेरी फर्ज समझता हूँ। मै बोलपुर से पीछे फीरुँ उस बखत आपकी सेवा मे हाजिर होने की मुराद रखता हूँ।

आपका सेवक

मोहनदास गॉधी

ईस्वी सन् 1915 मे हरिद्वार मे कुम्भ का मेला था। इस मेले मे महात्मा गॉधी की जाने की कोई विशेष इच्छा नही थी। परन्तु उन्हे महात्मा मुशीराम के दर्शनो को तो जाना ही था। अत वे भारत सेवक समाज की टुकडो के साथ हरिद्वार पहुच गए और वहॉ से 8 अप्रैल को गुरुकुल मे महात्मा मुशीराम के दर्शन करने गए। उस प्रथम मिलन के सम्बन्ध मे अपनी भावनाओ को प्रकट करते हुए गॉधी जी ने लिखा "पहाड जैसे विशाल महात्मा मुशीराम जी के दर्शन कर और उनका गुरुकुल देखकर मुझे बडी शान्ति मिली। हरिद्वार के शोरगुल और गुरुकुल की शान्ति का भेद स्पष्ट दिखाई देता था। महात्मा जी ने मुझे प्रेम से नहला दिया। ब्रह्मचारी मेरे पास से हटते ही नही थे। रामदेव जी की मुलाकात उसी समय हुई और उनकी शक्ति का परिचय मै तुरन्त पा गया। यद्यपि हमे अपने बीच कुछ मतभेद दिखाई दिया, फिर भी हमारी स्नेह गॉठ बन्ध गई। गुरुकुल मे उद्योग शिक्षा की व्यवस्था करने की आवश्यकता के विषय मे रामदेव जी तथा अन्य शिक्षको के साथ मैने काफी चर्चा की। मुझे गुरुकुल छोडते हुए काफी दु ख हुआ[48]।

महात्मा मुशीराम और महात्मा गॉधी का सम्पर्क निरन्तर बना रहा। महात्मा गॉधी जब सत्याग्रह आश्रम खोलने की सोच रहे थे तो महात्मा मुशीराम की इच्छा थी कि गॉधी जी हरिद्वार मे बसे।[49] कुछ मित्र चाहते थे कि वे वैद्यनाथ धाम मे बसे। परन्तु महात्मा जी की दृष्टि मे अहमदाबाद ही जॅचा। गॉधी जी ने अहमदाबाद मे आश्रम खोल दिया। इस आश्रम की नियमावली बनाते समय गॉधी जी ने मुशीराम को स्मरण करते हुए एक पत्र इस प्रकार लिखा–

अहमदाबाद

जेठ शुक्ल 2 (जून 14, 1915)

महात्मा जी

लडके सब गुरुकुल से आने के बाद मे सब व्यवस्था करने के जजाल मे पड गया इसलिये आपको पत्र नहीं लिख सका। लडको पर आपने जो प्रेम बतलाया है यह वे कभी भूल नहीं सकते है। मेरे लडको और साथियो को आश्रय देकर मुझको आपका ऋणी बनाया है।

अहमदाबाद मे हाल मे तो आश्रम खोल दिया है। उसकी नियमावली हिन्दी मे बन रही है। तैयार होने से आपके अभिप्राय के लिए भेजी जायेगी।

हरिद्वार मे फेर आकर आपके साथ कुछ दिन रहने की बात मे बिल्कुल नहीं भूला हूँ। बखत मिलने से मैं जरुर पहुँचुगा।

आपका कृपाकाक्षी

मोहन दास गॉधी के बन्दे मातरम्

महात्मा गॉधी के उपर्युक्त पत्रो की 'हिन्दी भाषा' के सम्बन्ध मे हमे यह सूचित करते हुए अपार हर्ष होता है कि महात्मा मुशीराम की प्रेरणा से महात्मा गॉधी ने महात्मा मुशीराम के साथ हिन्दी मे पत्र लिखने का सकल्प लिया था। महात्मा मुशीराम के हिन्दी भाषा मे लिखे पत्र का उत्तर जब गॉधी जी ने अग्रेजी भाषा मे दिया तो प्रत्युत्तर मे मुशीराम ने लिखा कि जो व्यक्ति हिन्दी को देश की राष्ट्र भाषा बनाना चाहता हैं, उसे अपने देशवासी से अग्रेजी में पत्र–व्यवहार करने का कोई अधिकार नहीं। गॉधी जी ने यह

बात गॉठ बॉध ली ओर इसे सदा निभाया। इस प्रकार जो महात्मा गॉधी गुजराती होने के कारण गुजराती भाषा के द्वारा देश की अधिक से अधिक सेवा करना चाहता था, उसे हिन्दी भाषा के प्रयोग की प्रेरणा देकर समस्त भारत के लिए उनकी सेवाओ का द्वार खोला।

हरिश्चन्द्र का विदेश-गमनः-

1914 ई0 मे आरम्भ हुए प्रथम विश्व युद्ध ने भारतीय राजनीति मे बडी उथल–पुथल मचा दी। इस युद्ध ने मुशीराम के पारिवारिक जीवन को प्रभावित किया। महात्मा मुशीराम के बडे पुत्र हरिश्चन्द्र ने दिल्ली से 'विजय' दैनिक समाचार पत्र निकाला हुआ था, और महात्मा मुशीराम का पत्र 'सद्धर्म प्रचारक' भी दिल्ली से ही प्रकाशित होता था। इन दोनो मे आपत्ति जनक समाचार छपने के कारण सरकार ने इनसे 'जमानत' की राशि मॉगी। मुशीराम ने 'विजय' के सम्बन्ध मे 'जमानत' की राशि देने से इनकार कर दिया और अपने पत्र 'सदधर्म प्रचारक' को गुरुकुल कागडी ले गए और 'जमानत' की राशि के विषय मे यह आश्वासन दिया कि भविष्य मे यह पत्र साक्षात् उनके निरीक्षण मे प्रकाशित होगा। लेकिन इससे भी बडा झटका मुशीराम को दिसम्बर, 1914 ई0 को लगा। जबकि हरिश्चन्द्र महात्मा जी की आज्ञा लिए बिना ओर पत्नी तथा पुत्र को अलविदा कहे बिना विदेश चला गया। यह तो गौतम (महात्मा बुद्ध) के गृह–त्याग के समान था। इस गृह त्याग की भूमिका राजा महेन्द्र प्रताप के गुरुकुल आने के समय ही बन गई थी। महेन्द्र प्रताप ने अपने सस्मरण मे लिखा है।–

"वह 1914 ई0 की बात है (इस वर्ष महेन्द्र प्रताप गुरुकुल आये थे। इस दिन की दो बाते और यहॉ उल्लेखनीय हैं। उसी दिन सबसे पहले और सबसे पीछे प्रसिद्ध श्री गणेश शकर जी विद्यार्थी से भेट हुई थी। उस रोज उन्होने सबके सामने यह बतलाया था कि वे हिन्दी मे एक पत्र निकालना चाहते है। उस समय कुछ लोगो ने शका की और कुछ लोगो ने हसी उडाई। परन्तु बाद मे श्री विद्यार्थी जी का पत्र निकला और समस्त भारतवर्ष मे प्रसिद्ध हो गया। दूसरी बात यह हुई कि महात्मा मुशीराम जी के सुयोग्य दूसरे पुत्र श्री हरिश्चन्द्र जी ने निश्चय किया कि वे मेरे सेक्रेटरी होकर कुछ दिन मेरे साथ रहेगे और बाद मे निर्बल सेवक' (महेन्द्र प्रताप का समाचार पत्र) पत्र के सम्पादक बन कर कम से कम तीन वर्ष सहयोग देगे[50] जोर्डेन्स के कथनानुसार उस समय यह भी निर्णीत हुआ था कि हरिश्चन्द्र दो अथवा तीन मास के लिए राजा महेन्द्र प्रताप के साथ यूरोप भी जाएगा[51]।

प्राप्त सूचनाओ के आधार पर हरिश्चन्द्र राजा महेन्द्र प्रताप के साथ जिनेवा तक अवश्य गए। जिनेवा से उन्होने इन्द्र के नाम मार्च 1915 मे पत्र मे लिखते हुए अपनी भावनाओ को इस प्रकार व्यक्त किया–

"पिता जी के पत्र से प्रतीत होता है कि वे मेरी इस यात्रा से प्रसन्न नहीं हैं। सुभद्रा (हरिश्चन्द्र की पत्नी) ने भी लिखा है कि गुरुकुल मे मेरे सम्बन्ध मे क्या कुछ कहा जा रहा है। इससे उसका ह्रदय टूट गया है। मै समझती हूँ कि यह अन्याय होवेगा कि उसका भार भी तुम पर डालूँ। सभी परिस्थितियो पर विचार करके मै शीघ्र ही भारत आने की सोच रहा हूँ।

हरिश्चन्द्र ने पुन इगलैण्ड से दिनाक 23 अप्रैल,1915 को एक पत्र इन्द के नाम भेजा। इस पत्र मे भी पिता जी के विषय मे लिखते हुए कहा–

"मै पिता जी को एक लम्बा पत्र लिखना चाहता था। लेकिन मेरा ह्रदय विषण्ण हो गया हैं। मैने उनके ह्रदय को इस सीमा तक तोड दिया कि पत्र कैसे लिखूँ, यह समझ मे नही आ रहा है। मैं कभी सोचने लगता हूँ कि मै पिता जी और तुम्हारे लिए नितान्त अयोग्य हूँ। पहले मैं यह सोचता था कि यह

था कि यह ससार बडा ही विचित्र है मै इसमे ठीक प्रकार से काम नहीं कर सकता लेकिन अब मेरा घमण्ड चूर–चूर हो गया है। अब मै यह सोचता हूँ कि यह मेरा कसूर था। मेरा मन इस समय इतना अधिक दुखी है कि मै अधिक नही लिख सकता।"

यह एक पुत्र का पिता के प्रति प्रायश्चित कहा जा सकता है। यह प्रायश्चित अधूरा ही रहा और पुत्र पिता के चरणो से लिपट कर क्षमा नही माग सका। पुत्र पिता को सन्यासी बनने से पूर्व पिता के रूप मे नहीं देख सका। विदेश की अनाम गलियो मे खो जाने से पूर्व 1917 ई0 के मध्य हरिश्चन्द्र ने 'सदधर्म प्रचारक' मे जब यह समाचार पढा कि उसके पिता जी सन्यास आश्रम मे प्रविष्ट होने जा रहे है, तो उसने इन्द्र को लिखा "कि यह दुख (सन्यास से पूर्व पिता जी से मिलने की अपूर्ण इच्छा) मेरे साथ सदा रहेगा कि मै पिता जी की सेवा न कर सकने के कारण अपने कर्तव्य से चूक गया हूँ। अब मेरी रचमात्र भी इच्छा अपने देश मे आने की नहीं है। प्रिय भाई ! अब मेरे परिवार का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व आप पर है। ऐसा प्रयत्न करो कि सुभद्रा गुरुकुल मे ही रह सके। उसे यह भी अनुभव नहीं होना चाहिए कि वह पराई है और दूसरो पर भार स्वरुप है।

प्रतीत यह होता है कि हरिश्चन्द्र राजा महेन्द्र प्रताप के साथ किसी क्रातिकारी योजना के अर्न्तगत विदेश गए और वहाँ जो कुछ भी कर रहे थे देश हित के लिए ही कर रहे थे। इधर वे क्रातिकारियो के जासूस थे उधर अग्रेज उन्हे अपना जासूस समझते थे। इस खेल मे उनका रहस्य गुप्त न रह सका और सभवत अग्रेजो द्वारा शूट कर दिये गये।

वायसराय का सन् 1916 ई0 मे आगमन

सन् 1916 ई0 के अक्टूबर मास की 21 तारीख को भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड चैम्सफोर्ड गुरुकुल आए। उनके आगमन को आर्य समाजियो ने सस्था के प्रतिसद्भावना समझा। उनके आगमन से गुरुकुल के प्रति राजद्रोह के घुमडते बादल छितरा गए। इसे महात्मा मुशी राम की सबसे बडी उपलब्धि माना गया और उनका ऊँचा कद और भी ऊँचा हो गया। कुछ आर्य समाजी और गुरुकुल के अध्यापक तो उत्साह मे यहाँ तक कहते सुने गये कि अब गुरुकुल मे जार्जपचम का आना ही शेष है और उसे भी महात्मा जी बुला कर छोडेगे। गुरुकुल मे वायसराय के आगमन का एक गुप्त और निहित स्वार्थ भी था। इस स्वार्थ के प्रति किसी भी लेखक ने ध्यान नहीं दिया। प्रथम विश्व युद्ध के समय अग्रेजो को भारत की प्रत्येक राजनैतिक सामाजिक और धार्मिक सस्थाओ से सहयोग लेना अनिवार्य था। काग्रेस और मुस्लिम लीग दोनो इस युद्ध मे अग्रेजो का साथ दे रहे थे। गैर राजनैतिक सस्थाओ मे आर्य समाज का प्रभाव उत्तर भारत मे सर्वाधिक था। परन्तु आर्य समाज के प्रति सरकारी वक्रदृष्टि को देखते हुए वे सरकार के प्रति उदासीन थे। इसके अतिरिक्त भारतीय सेना की लडाकू जातियो के सैनिको मे आर्यसमाजी सिपाहियो एव सरदारो की सख्या इतनी थी कि उनकी उपेक्षा नही की जाती थी। युद्ध से पूर्व जाट सैनिको को यज्ञोपवीत उतार देने के आदेशो से सैनिको मे अग्रेजो के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न हो गया था। अन्तिम और महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि युद्ध के समय महात्मा मुशी राम गुरुकुल के सर्वेसर्वा और आर्य सार्वदेशिक सभा के प्रधान के नाते आर्य समाज के शीर्षस्थ नेता थे। इस शीर्षस्थ नेता को प्रसन्न करके सम्पूर्ण भारत के आर्यसमाजियो की सहानुभूति अर्जित की जा सकती थी। लार्ड चैम्सफोर्ड ने एक कूट प्रशासक की भॉति अपना कर्तव्य निभाया और आर्यसमाजी व्यक्तियो को युद्ध के समय अग्रेजो का सहायक बनाया। वायसराय की तरफ से गुरुकुल को सरकार की ओर से अनुदान देने का प्रस्ताव भी आया, परन्तु मुशीराम ने अस्वीकार कर दिया।

इसमे कोई सन्देह नहीं कि महात्मा मुशीराम ने गुरुकुल और आर्य समाज को सरकारी प्रकोप से बचाया, लेकिन आर्यप्रतिनिधि सभा, पजाब के आन्तरिक विवाद मे वे अपने आपको हारा और थका सा समझने लगे।

गुरुकुल की विशेषताएं

अब हम महात्मा मुशीराम के सन्यास आश्रम मे प्रविष्ट होने की घटना से पूर्व यहॉ गुरुकुल कागडी की उन विशेषताओ का सक्षिप्त वर्णन करना चाहते है, जिनसे आकर्षित होकर देशी–विद्वान् और राजपडित यहॉ आए। गुरुकुल कागडी की विशेषताओ को हम तीन रूपो मे पाते है।

पहला रूप शिक्षा के क्षेत्र से सम्बन्धित है। इस रूप की ओर सकेत करते हुये रैम्जे मैकडानल्ड ने लिखा था "सन् 1835 ई मे मैकाले ने सहकारी पत्रक मे अपने विचार (शिक्षा के सम्बन्ध मे) प्रस्तुत किये थे। उन विचारो से भारत मे प्रत्येक असन्तुष्ट है। परन्तु जहॉ तक मैं जान पाया हूँ, गुरुकुल के प्रवर्तको के अतिरिक्त अन्य किसी ने भी अपने असन्तोष को नवीन प्रयोग के रूप मे परिणत नहीं किया है।" इस नवीन प्रयोग की यह विशेषता थी कि यह भारत के बाहर से उधार लिया हुआ प्रयोग नहीं था। इस प्रयोग की जडे भारत भूमि की आर्य सस्कृति मे ही थीं। शिक्षा के नूतन प्रयोग की एक अन्य विशेषता यह थी कि आरम्भ से अन्त तक की सम्पूर्ण शिक्षा आर्य भाषा (हिन्दी) मे दी जाती थी और अब भी दी जाती है। ऐसा प्रयोग करने से शिक्षा और समाज का सीधा सम्बन्ध जुडा और हिन्दी के प्रति आस्था भी दृढ हुई।

दूसरा रूप गुरुकुल की स्थापना के नैसर्गिक वातावरण से सम्बन्धित है। सस्था का आदर्श वातावरण जहॉ विद्यार्थियो को परस्पर मिलकर रहने की प्रेरणा देता था, वहॉ इससे खिच कर दर्शक भी इसे देखने आते थे। गुरुकुल की आरण्यक स्थिति ने इसे रहस्यमय बना दिया था। आने वाला रोमाचित होकर जाता था। प्राकृतिक वातावरण ने छात्रो मे प्रकृति–प्रेम के पुजारी बनाकर कलात्मक जीवन जीने का अभ्यस्त बना दिया था। प्राकृतिक वातावरण के समान ही यहॉ का सास्कृतिक वातावरण भी जाति, वर्ण, सम्प्रदाय और वर्ग भेद से रहित सत्त्विक भावो से भरपूर था। कहीं छल'छद्म नही, सभी 'भ्राता जी' थे।

तीसरा रूप महात्मा मुशीराम का व्यक्तित्व था। प्रथम आकर्षण के केन्द्र गुरुकुल मे आकर दर्शक शीघ्र ही अनकहे द्वितीय आकर्षण महात्मा मुशीराम की ओर खिचे चले जाते थे। महात्मा गाधी जब गुरुकुल मे महात्मा मुशीराम से मिलने गये तो उन्होने उनके कायिक व्यक्तित्व को विशाल पहाड के समान कहा[53]। रेम्जे मैकडानल्ड जब गुरुकुल गए तो महात्मा मुशीराम की सन्तीय सौम्यता से प्रभावित हुए बिना नही रह सके और उन्होने लिखा" एक उन्नतकाय, दर्शनीय मूर्ति हम से भेट करने आती है। आधुनिक सम्प्रदाय का कलाकार ईसा की प्रतिकृति घडने के लिये आदर्श के रूप मे इसका स्वागत करता है और मध्यकालिक रुचि का चित्रकार इसमे सन्त पीटर का रुप देखता है।" महात्मा मुशीराम का कायिक और मानसिक साहस प जवाहर लाल नेहरु के मन पर भी सदा छाया रहा। इस प्रभाव के विषय मे उन्होने अपनी 'आत्मकथा' मे लिखा है– "विशुद्ध शारीरिक साहस का अथवा किसी भी शुभ कार्य के लिए शारीरिक कष्ट सहन करने एव इस कार्य के लिए मृत्यु तक की परवाह न करने वाले गुणो का मै सदा प्रशसक रहा हूँ। स्वामी श्रद्धानन्द मे इस प्रकार का निर्भीकतापूर्ण साहस आश्चर्यजनक मात्रा मे विद्यमान था। वृद्धावस्था मे भी उनकी उन्नत सीधी आकृति, सन्यासी के वेश मे भव्यमूर्ति, दीर्घकाया, शाही सूरत, अन्तर्भेदी चमकीली आखे, कभी–कभी दूसरो की कमजोरियो पर चेहरे पर उभर आने वाले झुझलाहट या गुस्से की छाया का गुजरना, मै उस जीवन्त मूर्ति को कैसे भूल सकता हूँ। प्राय यह तस्वीर मेरी ऑखो के सामने आ खडी होती है" इस प्रकार भव्यता, विशालता, सास्कृतिक धरोहर आदि गुणो मे गुरुकुल और महात्मा मुशीराम एक दूसरे के पूरक थे।

सन्दर्भ (तीसरा अध्याय)

		पृष्ठ
1	इन्द्र, मेरे पिता सस्मरण	62–65
2	सत्यदेव, स्वामी श्रद्धानन्द	304
3	निरुपण एव विनोद चन्द्र, स्वामी श्रद्धानन्द विलक्षण व्यक्तित्व	294
4	भवानी लाल भारतीय, स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली, खण्ड पॉच	158
5	निरुपण एव विनोद चन्द्र, वही	510
6	भवानी लाल भारतीय, वही, खण्ड एक	6
7	स्वामी दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश	48–50
8	भवानी लाल भारतीय वही खण्ड पॉच	157–58
9	स्वामी दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश	31
10	निरुपण एव विनोद चन्द्र, वही	86
11	निरुपण एव विनोद चन्द्र, वही	113–15
12	निरुपण एव विनोद चन्द्र, वही	288
13	नरदेव शास्त्री, आत्मकथा अर्थात् आपबीती जगबीती	41–42
14.	इन्द्र, वही	126
15.	सत्यदेव, वही	328
16	इन्द्र, वही	96–103
17	इन्द्र, वही	109
18	इन्द्र, वही	157
19	भवानी लाल भारतीय, वही खण्ड पॉच	35–6
20.	इन्द्र, वही	249
21.	सत्यदेव, वही	331
22	जोर्डेन्स, वही	76
23.	भवानी लाल भारतीय, वही खण्ड दस	24
24.	भवानी लाल भारतीय, वही खण्ड दस	156–7
25	भवानी लाल भारतीय, वही खण्ड दस	151
26	सत्यदेव, वही	466
27	सत्यदेव, वही	467
28.	भवानी लाल भारतीय, खण्ड दस	39
29	सत्यदेव आत्मकथा खण्डदस	345

30.	भवानी लाल भारतीय, खण्ड दस	42
31	भवानी लाल भारतीय, आत्मकथा अर्थात् आपबीती जगबीती खण्ड दस	150
32	इन्द्र	133
33	निरुपण एव विनोद चन्द्र,	332
34	इन्द्र	143–45
35	निरुपण एव विनोद	356–7
36	इन्द्र	175
37	सत्यदेव	307–8
38	भवानी लाल भारतीय खण्ड दस	42
39	इन्द्र	118
40	निरुपण एव विनोद चन्द्र	396
41	निरुपण एव विनोद चन्द	397
42	जोर्डेन्स	91
43	निरुपण एव विनोद चन्द्र	108–9
44	निरुपण एव विनोद चन्द्र	81
45	सत्यदेव	433
46	महात्मा गॉधी, आत्मकथा	373
47	महात्मा गॉधी, आत्मकथा	347
48	महात्मा गॉधी, आत्मकथा	363
49	महात्मा गॉधी, आत्मकथा	366
50	निरुपण एव विनोद चन्द्र	360–61
51	जोर्डेन्स	96
52	राजा महेन्द्र प्रताप, माई लाइफ स्टोरी आफ फिफ्टी इयर्स	36–9,321
53	महात्मा गॉधी, आत्मकथा	363
	खण्ड दस	345

चौथा अध्याय

स्वामी श्रद्धानन्द के रूप में (1917-22)

संन्यास आश्रम में प्रवेश

श्रद्धा के अवतार शुद्ध श्रद्धा की मूरत।
श्रद्धा के आधार अटल पर्वत की सूरत।।

महात्मा मुशी राम गुरुकुल के प्रति इतने समर्पित हो चुके थे कि वे इसको किसी भी प्रकार की हानि पहुचाने की कल्पना मात्र से सिहर उठते थे। गुरुकुल को मात्र सस्कृत की पाठशाला बनाने कि वा विश्वविद्यालय बनाने का मतभेद अनेक वर्षो तक भुतही छाया की न्याई गुरुकुल पर मडराता रहा। प्रकाश पार्टी के सर्वेसर्वा महाशय कृष्ण इन दिनो आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब के मन्त्री थे। महाशय कृष्ण गुरुकुल की नीति के सम्बन्ध मे तथा अन्य कई कारणो से महात्मा मुशीराम से रुष्ट थे। अपने पत्र 'प्रकाश' मे भी ये महात्मा जी की आलोचना करने मे नहीं चूकते थे। प्रकाश पार्टी के अग्रणी व्यक्ति गुरुकुल का काम भी पार्टी के अनुसार चलाकर महात्मा जी को पिछलग्गू बनाना चाहते थे। महात्मा जी ने इस प्रकार की नीति को किसी भी प्रकार की घास नहीं डाली। गुरुकुल की स्वामिनी सभा के मन्त्री होने के नाते महाशय कृष्ण अपने आपको गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता से ऊपर का अधिकारी मानते थे। इस अधिकार का असीमित प्रयोग करके वे महात्मा जी के कार्यो मे पग–पग पर बाधा उपस्थित करते रहते थे। महात्मा जी ने इस स्थिति को अपरिहार्य मानकर गुरुकुल को कुरूक्षेत्र का रणक्षेत्र न बनाने की भावना से स्वय ही गुरुकुल से अलग होने का विचार बनाकर सन्यास आश्रम मे प्रवेश लेने का सकल्प बना लिया।

सन्यास आश्रम मे प्रविष्ट होने की मानसिक स्थिति बना लेने पर महात्मा जी ने 29 ज्येष्ठ, सम्वत् 1972 (सन् 1915) को आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब के तत्कालीन प्रधान राम कृष्ण को लिखा कि "वैदिक धर्म की आज्ञा शिरोधार्य समझकर कुछ काल से उसके पालन का विचार मेरे अन्दर उठ रहा है। अब ऋषि दयानन्द के लेखानुसार वह समय आ गया है जबकि इस आज्ञा का उल्लघन नहीं किया जा सकता। मेरा दृढ सकल्प हो गया है कि अब मै सन्यास आश्रम मे प्रवेश करूगा। कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी सम्वत् 1972 (6 नवम्बर, 1915) के दिन मै शिखा–सूत्रादि के बन्धनो से मुक्त होकर परम पिता परमात्मा की शरण मे पूर्णतया आ जाऊगा।" महात्मा जी का उपर्युक्त पत्र मिलने पर अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करते हुए प्रधान जी ने लिखा कि "आपके गुरुकुल से अलग होने पर गुरुकुल की बहुत हानि होगी। 75 वर्ष की आयु तक सन्यासाश्रम मे प्रवेश न किया, तब भी कोई दोष नहीं[1]। आर्य समाज और गुरुकुल दोनो की सेवाए एक साथ हो सकती हैं। अधूरी अवस्था मे गुरुकुल को छोडना उचित नहीं है। आशा है, आप पुनर्विचार करेगे।" परन्तु महात्मा जी ने अपना निश्चय नहीं बदला और 21 आषाढ 1972 को अपना त्याग–पत्र लिखकर सभा प्रधान को भेज दिया। त्याग–पत्र मिलने पर पुन अपनी भावना के अनुरूप प्रधान ने पुनर्विचार का अनुरोध किया। सभा–प्रधान के अनुरोध को झटिति ठुकराना महात्मा जी ने अनुचित समझा, क्योकि सभा–प्रधान रामकृष्ण महात्मा जी के ऐसे मित्र थे, जिन्होने बीस से अधिक वर्षो तक महात्मा जी के साथ सामाजिक

बन्धुत्व निभाया था। इन्द्र के शब्दो मे "लाला रामकृष्ण ने पिता जी के सम्पूर्ण आर्य सामाजिक जीवन मे अपने को लक्ष्मण बना कर रखा[2]।" सभा–प्रधान लाला रामकृष्ण और महात्मा जी के मध्य सन्यास को लेकर गुरुकुल छोडने के सम्बन्ध मे निरन्तर पत्र–व्यवहार होता रहा। महात्मा जी ने अपनी मनोव्यथा को नियति मानते हुए सभा–प्रधान को लिखा कि "मैंने समझ लिया कि यही मेरा भाग्य है। सहायको के विघ्न डालते हुए भी यथाशक्ति काम करूगा। ऐसे सौभाग्यशाली दिन आने से पहिले ही यदि प्राणान्त हो गया तो भी आनन्द है, क्योकि अन्त्येष्टि सस्कार तो कुलपुत्रो के हाथ से हो जाएगा[3]।"

सम्वत् 1972–73 के दोनो वर्ष इसी विषय पर पत्र–व्यवहार मे चले गए। महात्मा जी के लिए जब स्थिति असहय हो गई, तब उन्होने 18 चैत्र, सम्वत् 1973 (30 मार्च, 1917) को सभा–प्रधान के नाम अन्तिम पत्र लिखा। इस पत्र की कुछ पक्तिया इस प्रकार थी "आपका तथा भक्त राम (जालन्धर के प्रसिद्ध आर्य समाजी नेता) का सन्देश पहुचा। भक्त राम की इच्छा तो स्वाभाविक है। परन्तु क्या सचमुच आप मेरे शरीर का भला चाहते है? मै तो अब शरीर का नाश कर चुका। मुझे तो यही अभीष्ट था कि चुपचाप किसी एकान्त स्थान मे रहकर धर्मग्रन्थो पर विचार करता और यदि कुछ जनता की भेट रखने योग्य अपने पास होता तो उसको उनके आगे रख देता। परन्तु मुझे अपनी निर्बलताओ का फल मिल रहा है। जिनके लिये अपयश खरीदा उन्हीं के द्वारा मुझको दारूण दुख पहुचे। अब सिवाय जबरदस्ती छुटकारा लेने के और कौन सा मार्ग है। बेचारे भक्तराम को क्या मालूम कि वर्षो से मै गुरुकुल मे कुछ भी काम नहीं कर सका हू और यहा बैठना निरर्थक है। मैने इसलिए कि मेरे काम मे विघ्न डालने वाले और मेरे पग–पग पर रुकावटे डालने वाले काम के अयोग्य न हो जावे एक शब्द भी लिख कर पब्लिक नहीं किया। ऐसी अवस्था मे मेरे लिये श्रेय मार्ग वही है जहा मैं विश्वासघाती और मित्रद्रोहियो की क्रियाओ को भूलकर उनके लिये भी परमात्मा से कल्याण की प्रार्थना कर सकू। सम्भव है कि आप अन्तिम युक्ति सोचे कि आप गुरुकुल के जल्से पर आवे ही नहीं। यदि आपने ऐसा ही किया तब भी मुझे 11 अप्रैल, 1917 के प्रात काल यहा से चल देना है[4]।"

गुरुकुल छोडकर सन्यास लेने की बात जब इन्द्र को पता लगी, तो उन्होने साहस करके महात्मा जी को अकाट्य युक्तियो द्वारा अपने निश्चय से हटाने का प्रयास किया। उन्होने कहा कि "सन्यास की प्रथा देश और जाति के लिए बहुत हानिकारक है। आप तो पहले ही सन्यासी हैं, वेश बदलने से क्या लाभ? सन्यास लेने पर भी आपको सार्वजनिक कामो के झझट से छुट्टी नहीं मिलेगी[5]।" इन्द्र की बातो को सुनकर महात्मा जी सन्यास की अवमानना से क्रोधित नहीं हुए, अपितु शान्त और सहज मुद्रा मे बोले– "इन्द्र! तुम्हे तो मालूम ही है कि मै युक्ति के आधार पर कोई कदम नही उठाता, केवल श्रद्धा से प्रेरित होकर ही उठता हू। यह निश्चय भी मैने श्रद्धावश ही किया है। मेरा यह निश्चय अटल है[6]।" ऐसी स्थिति मे इन्द्र के पास नतमस्तक होने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं रहा।

गुरुकुल का पन्द्रहवा (1917 ई0) वार्षिकोत्सव। कुलभूमि मे धूम–धाम और दौड–धूप। बीस–पच्चीस हजार लोगो की भीड। जिधर देखो उधर महात्मा जी के सन्यास लेने की चर्चा और परिचर्चा। सारा उत्सव सन्यास के रग मे रगा हुआ। गुरुकुल का यह उत्सव विगत वर्षो के उत्सव से कुछ हटकर था। महात्मा मुशीराम के लिये गुरुकुल की रिपोर्ट पढने का जब अवसर आया तो उन्होने पुरानी लीक से हटकर कहा –"देवियो और भद्र पुरूषो ! मैं इस समय आपके सामने गुरुकुल की वार्षिक रिपोर्ट–पढने नहीं खडा हुआ हू। गुरुकुल की रिपोर्ट तो तीन दिनो से यहा बराबर पढी जा रही है और आप यहा सुन रहे हैं। जो कुछ आप यहा देखते है या सुनते हैं या अनुभव करते हैं, वह सब गुरुकुल की रिपोर्ट ही है।" गुरुकुल के लिए धन की अपील करते हुए महात्मा जी ने कहा कि "जब मैंने गुरुकुल का कार्य आरम्भ किया था, तब अपने पर मुझे कम विश्वास था आप

लोगो पर कुछ अधिक था और परमात्मा पर सबसे अधिक और पूरा विश्वास था। वही विश्वास अब भी स्थिर है और मै घोषणा करता हू कि यदि आप धन देगे, तो यह गुरुकुल चलेगा। यदि आप लोग नहीं देगे, तो भी चलेगा[9]।" उपर्युक्त रिपोर्ट की छाया मे यह कहा जा सकता है कि महात्मा मुशीराम आत्म विश्वास और जग विश्वास की अपेक्षा ईश्वर विश्वास की दृढ नींव पर ही सन्यास की भूमिका मे उतर रहे थे।

इसी उत्सव पर सन्यास आश्रम मे प्रवेश से पूर्व आर्य जनता ने आपकी सेवाओ के प्रति आभार प्रकट करते हुए निम्न लिखित मान–पत्र भेट किया था–

आर्य जाति के हृदय सम्राट् !

आज आप सम्राट् से भी ऊचे परिव्राट् के सिहासन पर अधिरोहण करने लगे हैं। आज जो पुष्पाजलि लेकर हम आपकी सेवा मे आते हैं, वह आसुओ से भीगी है। यद्यपि हम जानते है कि जहा आप अब तक आर्य जाति के हृदयो पर उस अधिकार से शासन करते थे, जो आर्य जाति ने स्वय आपको आपके गुणो पर मुग्ध आपके गले मे पहनाया था, वहा अब आप उस अधिकार से शासन करेगे, जिसके लिये आप केवल परम साक्षी के आगे उत्तरदाता हैं, तो भी हृदय द्रव हुये बिना नहीं रहता।

श्रीमन् ! आर्य जाति आज बताना चाहती है कि जहा अब तक आपकी सेवा के लिये धन, समय और प्रेम का दान करने मे दरिद्र नहीं हुई, आज इस विदाई और मिलाप के विलक्षण सगम मे वह अपने एक सच्चे पुत्र पर शब्दो की वर्षा करने मे भी दरिद्र नहीं है। यदि है तो केवल इसलिये कि हृदय भरा हुआ है केवल इसलिए कि आपकी कीर्तिगान करने के लिये शब्द उचित साधन नहीं हैं।

भारत का विशेषत पजाब का कौनसा कोना है, जो आपके ओजस्वी नाद से न गूजा हो, जिसमे आपके वैदिक धर्म, ऋषि दयानन्द और आर्य–जाति के प्रति अगाध प्रेम का कोई न कोई स्मारक न हो, जिसमे आपके उस अपूर्व त्याग का कोई न कोई दृश्य उपस्थित न हो, जिसके कि एक जीते उदाहरण इस गुरुकुल मे आज हम आपकी सेवा मे उपस्थित हैं। इस कार्य के लिए इससे अच्छा स्थान हम नहीं चुन सकते थे। इन भावो से इस भूमि मे हम सम्राट् को विदाई देते है और परिव्राट् के चरणो मे सिर झुकाते है। राजन् ! मगल सकल्प पूर्ण हो। भगवन् ! आप हमे आशीर्वाद दे। आचार्य दयानन्द का महायज्ञ पूर्ण हो।

वशवद आर्य जाति।

महात्मा मुशीराम ने इस मान–पत्र के लिए आर्य जनता का धन्यवाद किया और साथ मे चतुर्थ आश्रम के कर्तव्यो के पालन के लिए आशीर्वाद मागा। परन्तु ब्रह्मचारियो और कुलभूमि से विदाई लेना इतना सहज और सरल नहीं था, जितना बाह्य दृष्टि से दिखाई पडता था। महात्मा जी ने जिस दिन से कुलभूमि के लिये जालन्धर से विदाई ली थी, उस दिन प्रेम और कर्तव्य मे इतना सघर्ष नहीं हुआ होगा, जितना कि सन्यास वाले दिन कुलभूमि को छोडते हुए हुआ था। आपका मन तो उसकी धूल के प्रत्येक कण–कण मे समाया हुआ था। यहा का प्रत्येक पुष्प और पादप, वृक्ष और ऋक्ष, भवन और हवन, पानी और पवन, ब्रह्मचारी और कर्मचारी आपके प्राणवन्त व्यक्तित्व का साक्षी था। सन्यास लेने की पूर्व सन्ध्या को आपने महाविद्यालय विभाग के ब्रह्मचारियो को विशेष उपदेश दिया। उपदेश के अन्त मे विदाई की ओर सकेत करते हुए आपका गला भर आया। कर्त्तव्य पर ममता भारी होती दिखाई दी। कुल स्नेह ने आखो को तरल बना दिया। अन्त मे कर्तव्यबोध ने ममता और प्रेम पर तुरीय स्थिति की ओर बढते विचारो द्वारा विजय पाई।

11 अप्रैल, 1917 के ब्रह्म मूहूर्त मे नित्य कार्यो से निवृत्त होकर पीत पट कन्धो पर डाले, हाथ मे ऊचा दण्ड लिये और पैरो मे खडाऊँ पहने महात्मा जी जब गुरुकुल की बैलगाडी मे बैठने लगे, तो उत्सव मे आये यात्रियो मे से एक उत्साही सज्जन उच्च स्वर मे बोल उठे–

1 कबीरा खडा बाजार मे लिये लुकाटी हाथ।
जो घर फूके आपना सो चले हमारे साथ।।

2 जमाना उसके कदमो मे झुका देता है सर अपना।
जो दुनिया मे तो रहते हैं, पर उससे है बेगाना।।

3 उसने कदम बढाये जब मकसद की ओर।
राह मे काफिला खुद ही बढता गया।।[9]

वस्तुत महात्मा जी का–काफिला बढता ही गया। कुलभूमि मे 24 ब्रह्मचारियो के साथ प्रवेश करने वाला महात्मा अब 240 के लगभग ब्रह्मचारियो के भरे–पूरे कुल को छोडकर विदा हो रहा था। सम्पूर्ण दृश्य राम के अयोध्या–त्याग के समान हृदय स्पर्शी सा बन गया था। परन्तु महात्मा जी के और राम के त्याग मे उद्देश्यो की दृष्टि से असमानता थी। राम ने स्वेच्छा से नहीं अपितु पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए वन गमन किया था। महात्मा जी का कुलभूमि से गमन स्वेच्छा से वैदिक सस्कृति के चतुर्थ आश्रम मे प्रवेश के लिए था। एक नगरी से वन की ओर गये थे तो दूसरे वन से नगरो की ओर प्रस्थान कर रहे थे। एक युवराज से अरण्यौकस बने थे, तो दूसरे कुल सम्राट से परिव्राट् बनकर विराट की ओर अग्रसर हो रहे थे। इतनी असमानता होते हुए भी दोनो मे वैदिक मान्यताओ के प्रति अगाध निष्ठा की समानता अद्वितीय रूप मे थी।

हरिद्वार और कनखल के मध्य स्थित मायापुर वाटिका महात्मा मुशीराम का सन्यासी रूप देखने के लिये जनसमूह से पटी पडी थी। 12 अप्रैल को सूर्योदय के साथ ही आर्य समाज के तत्कालीन वरिष्ठ सन्यासी सत्यानन्द की अध्यक्षता मे महात्मा मुशीराम का सन्यास आश्रम प्रवेश सस्कार आरम्भ हुआ। सस्कार की आधी विधि के बाद सिर के केश और दाढी–मूछ मुडवाये, सन्यासी के वस्त्र धारण किये महात्मा जी यज्ञ मण्डप मे उपस्थित हुए। महात्मा जी के इस रूप को देखकर प्राय सभी दर्शको की आखे प्रेम और प्रसन्नता से तरल हो गई। आर्य समाज के क्षेत्र मे उग्र सुधारवादी रूप मे पहचाने जाने वाले मुशीराम ने सन्यास दीक्षा के गुरू की परम्परा को तोडकर परम पिता परमात्मा को अपना गुरु मानकर गुरू द्वारा की जाने वाली प्रक्रिया स्वय ही पूरी कर ली। इस अकल्पित दृश्य को देखकर कुछ सन्यासियो और रूढिवादी आर्य सज्जनो मे असन्तोष अवश्य हुआ। हल्की सी बुदबुदाहट भी सुनाई पडी। परन्तु तालियो की गडगडाहट मे विरोधी स्वरो के शब्द दब गए। महात्मा मुशीराम ने बोलते हुए कहा कि "मैं सदा सब निश्चय परमात्मा की प्रेरणा से श्रद्धापूर्वक ही करता आया हू। मैंने सन्यास भी श्रद्धा की भावना से प्रेरित होकर ही लिया है। इस कारण मैने 'श्रद्धानन्द' नाम धारण करके सन्यास मे प्रवेश किया है। आप सब नर–नारी प्रभु से प्रार्थना करे कि वे मुझे अपने नये व्रत को पूर्णता से निभाने की शक्ति दे[10]।" महात्मा मुशीराम ने जहा सन्यास दीक्षा मे मानव गुरू बनाने की परम्परा तोडी, वहा सन्यास के नाम श्रद्धानन्द के साथ दण्डी या सरस्वती आदि विशेषणो की समाप्ति भी की।

गुरुकुल में आने का आग्रह

सन्यास आश्रम मे प्रवेश करने के उपरात स्वामी श्रद्धानन्द ने स्वास्थ्य सुधार के लिये गुरुकुल–कुरुक्षेत्र (हरियाणा) मे चातुर्मास्य किया। यहा का जल–वायु स्वामी जी के स्वास्थ्य के लिये

सदा ही अनुकूल रहा था। सन्यास आश्रम मे प्रवेश के पश्चात् दिल्ली रहते हुये भी जब कभी विश्राम की आवश्यकता होती, तो स्वामी जी इसी गुरुकुल मे चले आते थे। इनको इस शाखा से विशेष प्रेम था। 'आदिम सत्यार्थ प्रकाश' की समालोचना इसी गुरुकुल मे रहकर लिखी गई थी। एक युरोपीयन महिला ने आपको सौ रूपये देकर कहा कि आप किसी प्रिय सस्था को दे दे। स्वामी जी ने ये रूपये गुरुकुल कुरुक्षेत्र को ही दिये थे। कुरुक्षेत्र के चातुर्मास्य मे स्वामी जी ने 'आर्य समाज के इतिहास को लिखने का कार्य अपने हाथ मे लिया। इससे पूर्व भी परोपकारिणी सभा की ओर से 1909 ई0 मे आपने यह काम अपने हाथ मे लिया था। परन्तु सभा के कार्य से असतुष्ट होकर यह छोडना पडा था। इतिहास लेखन के सकल्प की पूर्ति के लिये आपने 17 भाद्रपद, 1974 वि0स0 (सन् 1917) को 'सद्धर्म प्रचारक' समाचार पत्र मे लिखते हुए सभी आर्य समाजी समाचार पत्रो, सस्थाओ के सचालको से अपनी–अपनी रिपोर्ट भेजने को कहा। इसके साथ ही आप इतिहास सामग्री के सकलन के लिये दो महीने के दौरे पर निकल पडे।

महात्मा मुशीराम के सन्यास लेने पर गुरुकुल कागडी की स्थिति पर विपरीत प्रभाव पडा। इस प्रभाव के विषय मे तत्कालीन गुरुकुल के एक स्नातक ने अपने सस्मरण लिखते हुए कहा है कि "महात्मा जी तो स्वामी जी हो गए, मगर उसका हम सब लोगो (ब्रह्मचारियो) पर और गुरुकुल पर–बडा विचित्र मनोवैज्ञानिक प्रभाव पडा। गुरुकुल मे भूचाल सा आ गया। प्रत्येक कार्य उथल–पुथल हो गया। परिणाम यह हुआ कि महाविद्यालय के अधिकाश छात्र इच्छा न रहने पर भी गुरुकुल छोड गये[10]।" विद्यार्थियो के गुरुकुल छोडने की सूचना जब आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब को मिली, तो वह बहुत चिन्तित हुई। स्थिति यहा तक पहुच चुकी थी कि गुरुकुल टूटने के कगार पर आ गया था। गुरुकुल को इस स्थिति से उभारने के लिये आचार्य रामदेव और आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब के अनुरोध पर स्वामी जी ने गुरुकुल कुरुक्षेत्र छोडकर गुरुकुल कागडी मे ही बैठकर इतिहास लिखने का कार्य प्रारम्भ कर दिया। इस बात की पुष्टि स्वाजी जी द्वारा गुरुदत्त को लिखे गये एक पत्र से इस प्रकार होती है–

16–10–1975 (विक्रमी)

प्रिय पुत्र गुरुदत्त जी, नमस्ते।

आपका पत्र पहुचा, बडी गडबड के पश्चात् अब फिर यही निश्चय कि गुरुकुल की रक्षा के लिए उद्यत होऊ। यदि मै शीघ्र वहा नहीं गया तो उसके टूट जाने की सम्भावना है, अतएव सब कुछ बेच–बाच कर चल देने का निश्चय पक्का हो गया है। परमात्मा सहायता करेगे। इस कारण किसी उत्सव पर न जा सकूगा। आपको प्रयत्न करके छुट्टी लेनी चाहिए, जिससे सुमित्रा को एक बार मिल सकू तथा सुशीला को भी देख सकू। सुमित्रा को नमस्ते, सुशीला को प्यार दे। प0 गणपति शर्मा लाहौर के उत्सव के पश्चात् आपके पास रुक सकेगे। लाला वजीर चन्द जी को उस समय भेजने का प्रयत्न करूगा।

मुशीराम[11]

गढ़वाल के अकाल में सहायता-कार्य

गुरुकुल कागडी मे स्वामी जी के आ जाने के समाचार से कुछ स्थिरता आई और स्वामी जी ने इतिहास लेखन के बिखरे पन्नो की धूल ही झाडी थी कि गढवाल के दुर्भिक्ष पीडितो की दयनीय स्थिति ने आपका ध्यान अपनी ओर खींचा। सरकार ने दुर्भिक्ष पडने का प्रतिवाद किया। इस प्रतिवाद

के पीछे सरकार का दोहरा स्वार्थ जुडा हुआ था। दुर्भिक्ष के समय प्रथम विश्व युद्ध चल रहा था रोजी–रोटी का अन्य कोई उपाय न देखकर इस क्षेत्र के लोग दबादब सेना मे भर्ती हो रहे थे। सरकार की मनमागी मुराद स्वत ही पूर्ण हो रही थी। दूसरी ओर ईसाई मिशनरी के लोग दुर्भिक्ष पीडितो की मानसिकता का लाभ उठाकर और प्रलोभन देकर पर्वतीय लोगो को धर्म परिवर्तन के लिये प्रेरित कर रहे थे। दुर्भिक्ष के कारण बढी हुई महगाई को देखकर सरकार ने बद्रीनाथ की यात्रा पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया था। ऐसी स्थिति मे हरिद्वार मे बैठे स्वामी जी किस प्रकार निष्क्रिय रह सकते थे। परिस्थितियो का दोहन करने के उपरान्त स्थिति का सही मूल्याकन करके स्वामी जी ने लाहौर के उर्दू दैनिक 'देश' मे 23 अप्रैल, 1918 को एक अपील प्रकाशित कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि आपके नाम धन पहुचना आरम्भ हो गया। 24 अप्रैल को 'भारत हिन्दू सभा' ने भी गढवाल के अकाल पीडित लोगो की सहायता का बिगुल बजाया। 25 अप्रैल को डी ए वी सस्थाओ के शलाका पुरुष महात्मा हसराज ने भी सहायता के लिए अपील प्रकाशित कर दी। इस प्रकार तीन तेरह और बारह बाट मे बिखरे हुए व्यक्तित्वो का एक साझा मोर्चा नहीं बन पाया और सहायता के कार्य के लिए स्वतन्त्र रूप से पृथक्–पृथक् कार्य क्षेत्र बाट कर अपनी–अपनी बासुरी बजाने लगे।

कोटद्वार के मार्ग से पौडी–श्रीनगर होते हुए बद्रीनाथ तक सहायता पहुचाने का काम स्वामी जी को सौपा गया। 3 मई, 1918 को स्वामी जी गुरुकुल से कोटद्वार के लिए चल पडे। मार्ग मे झगडमल नामक स्थान पर अकाल के कारण एक पुरानी आर्य पाठशाला ईसाइयो के प्रबन्ध मे चली गई थी। इसे ईसाइयो के हाथ से छुडाकर स्वतन्त्र प्रबन्धक समिति का निर्माण कर दिया। कोटद्वार पहुचकर गगादत्त के सहयोग से दुर्भिक्ष पीडितो को सहायता पहुचाने की व्यवस्था की। 7 मई को आप कन्या गुरुकुल के सबध मे होने वाली एक अत्यावश्यक बैठक मे भाग लेने के लिये दिल्ली चले गये। बैठक के पश्चात् आप 10 मई को गुरुकुल लौट आए। यहा मदनमोहन मालवीय् की 'भारत हिन्दू सेवा समिति' के मन्त्री हृदय नाथ कुजरू आप से मिले और परस्पर मिलकर कार्य करने का प्रस्ताव रखा। स्वामी जी ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। स्वामी ने अपने सुपुर्द किये गये क्षेत्र मे पाच राहत केन्द्र खोल दिये। गुरुकुल कागडी के अनेक स्नातक और महाविद्यालय विभाग के कुछ ब्रह्मचारी स्वामी जी की सहायता के लिये पौडी पहुच गए।

गढवाल के अकाल पीडित क्षेत्र मे सहायता कार्य करते हुए स्वामी जी को अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा। भारत सेवा समिति का झण्डा पौडी के सहायता केन्द्र पर लगा हुआ था। यह झण्डा वहा के राजा की आखो मे चुभने लगा और झण्डा उतारने का आदेश तुरन्त जारी हो गया। रियासत के कर्मचारी जब यह आदेश लेकर स्वामी जी के पास पहुचे, तो उनका उत्तर था कि "अपने मालिक से कह दो कि यह झण्डा गोखले की आत्मा ने लगाया है। सिवाय उसके दूसरा कोई इसको उतार या उतरवा नहीं सकता।" स्वामी जी का ऐसा उत्तर रियासत के अधिकारियो को प्रतिकूल करने के लिए पर्याप्त था। अधिकारियो ने 'सद्धर्म प्रचारक' मे गढवाली लोगो की सामाजिक कुरीतियो और अन्य अन्ध विश्वासो के सबध मे स्वामी जी द्वारा लिखे लेखो को आधार बनाकर स्वामी जी के विरूद्ध यह प्रचार करना आरम्भ कर दिया कि वे सहायता करने के बहाने से अपने धर्म को फैलाने आए हैं। गढवालियो की सस्कृति को स्वामी जी से खतरा है, इस प्रकार के दुष्प्रचार से गढवाली जनता भडक उठी और एक पचायत करके स्वामी जी के सामाजिक बहिष्कार का फरमान भी दिया। इसी सबध मे पौडी मे बहिष्कार सभा करके, स्वामी जी का सिर काट लेने की धमकिया भी दी गई। सभा के दिन स्वामी जी दौरे से पौडी लौट रहे थे। मार्ग मे ही हितैषियो ने स्वामी जी को परामर्श दिया कि वे पौडी न जाए। परन्तु निर्भीक सन्यासी ने एक न सुनी और ऊपर से तुर्रा यह कि वे सीधे सभा स्थल पर जाकर सभापति के आसन के समीप बैठ गए। स्वामी जी की उपस्थिति ने पासा ही पलट दिया और लोगो के दिमाग से बहिष्कार का नशा हिरन हो गया। इस प्रकार की निर्भीकता

का प्रथम प्रदर्शन (मुशीराम के नाम के समय) जालन्धर मे होने वाली सनातन धर्मियो की एक सभा मे कर चुके थे।

सन्यासी होने के उपरान्त भी स्वामी जी का गुरुकुल के प्रति ममत्व छीजा नहीं था। उनके मन के किसी कोने मे अभी तक यह ाव बैठा हुआ था कि वे पूर्ववत् ही गुरुकुल के अधिकारी है। राहत कार्य को एक स्वतन्त्र सन्यासी के रूप मे आरम्भ करने पर भी उनकी अन्तर्चेतना मे गुरुकुल के आचार्यत्व का भाव विद्यमान था। इसीलिए तो उन्होने राहत कार्य को 'गुरुकुल के प्रतिनिधि के रूप मे' करने के विषय मे लिखा।

धौलपुर आर्य समाज की समस्या

गढवाल के अकाल कार्य से निवृत्त होकर गुरुकुल मे आकर बैठे ही थे कि धौलपुर आर्य समाज की समस्या ने आ घेरा। राज्य सरकार ने धौलपुर आर्य समाज भवन के एक भाग को गिरा कर जन साधारण के शौचालय बनाने का निर्णय ले लिया[12]। जोर्डन के अनुसार सरकार वहा स्टेट बैंक का भवन बनाना चाहती थी[13]। वास्तविकता बैंक से ही सबधित थी। स्थानीय आर्य जनता रियासत के इस निर्णय से असन्तुष्ट थी। स्थानीय ार्य जनता के अनुनय और विनय को रियासती अधिकारियो ने अनसुना कर दिया। लोगो ने अपनी गुहार स्वामी जी के आगे जाकर की। स्वामी जी समस्या के समाधान के लिये तुरन्त धौलपुर के लिये चल पडे। धौलपुर पहुचकर परिस्थितियो का अध्ययन करने के पश्चात् स्वामी जी ने रियासती निर्णय बदलवाने के लिये राजप्रासाद के द्वार पर निराहार और निर्जल रहकर बैठने का निश्चय कर लिया। स्वामी जी के निश्चय के पक्ष मे भिन्न–भिन्न स्थानो से जत्थे भेजने के निर्णय से अकडी हुई रियासती सरकार को अपना निर्णय बदलने के लिये बाध्य होना पडा। अन्तत सरकार झुकी और बैक भवन बनाने का निर्णय वापिस लेना पडा। इस घटना ने सन्यासी के रूप मे श्रद्धानन्द को लोगो की सच्ची श्रद्धा का पात्र बना दिया।

धौलपुर आर्य समाज की समस्या के समाधान के बाद स्वामी जी जब गुरुकुल पहुचे, तो वहा इनफ्लूएजा की बीमारी फैली हुई थी। इस बीमारी मे उन्होने गुरुकुल के ब्रह्मचारियो की उसी भाव से सेवा की जैसी गुरुकुल के आचार्य के रूप मे बीमार विद्यार्थियो की करते थे। बीमारी शान्त होने पर सन् 1918 ई0 के नवम्बर मास मे लाहौर आर्य समाज के उत्सव पर होते हुए दिल्ली चले आए। दिल्ली के सेठ रघुमल लोहिया आर्य समाजी होने के कारण चिरकाल से स्वामी जी मे अटूट श्रद्धा रखते थे। उन्होने सन् 1913 ई0 मे दिल्ली से 18 किलोमीटर की दूरी पर स्थित गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की स्थापना के लिये अपने भाई की स्मृति मे एक लाख रूपया दान रूप मे दिया था। उनके नया बाजार (वर्तमान श्रद्धानन्द बाजार) मे दो मकान थे। उनमे से एक मकान का पहला तल (मजिल) सेठ जी ने स्वामी जी के स्थायी निवास के लिये समर्पित कर दिया। इसी मकान मे स्वामी जी ने शहीद की मृत्यु पाई।

राजनीति में प्रवेश

1918 ई0 यूरोप का पहला विश्वयुद्ध समाप्त हुआ। युद्ध के दिनो (1914–18) मे इग्लैण्ड के शासको ने भारतीयो को स्वराज्य देने की बडी–बडी आशाए दिलाई थीं। युद्ध की समाप्ति पर विजेता के रूप मे उभरी इग्लैण्ड की सरकार से भारतीयो को यह आशा थी कि वह स्वराज्य जैसी कोई योजना प्रस्तुत करेगी। परन्तु हुआ इसके विपरीत ही और स्वराज्य जैसी किसी योजना की कुरूप किश्त 'रौलट एक्ट' के रूप मे पेश की गई। इस प्रकार रोटी की आशा मे बैठे भारतीयो को पत्थर भेट किया गया। इस विश्वासघात के कारण देश मे असन्तोष और रोष का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। ऐसी सकट काल की परिस्थिति मे महात्मा गाधी मैदान मे आए और अहिसात्मक सत्याग्रह

द्वारा 'रौलट एक्ट' का विरोध करने का प्रस्ताव रखा। इसके अतिरिक्त यह सुझाव भी प्रस्तुत हुआ यदि आवश्यक हुआ तो कौसिल के सदस्य सदन का बहिष्कार करेगे। 'रौलट एक्ट' के अतिरिक्त उस समय की अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओ ने गाधी जी के असहयोग आन्दोलन मे प्रत्यक्ष रूप से सहायता की। प्रथम विश्वयुद्ध मे टर्की ने जर्मनी का साथ दिया था। युद्ध का अन्तिम परिणाम इग्लैण्ड के पक्ष मे रहा और जर्मनी के साथ ही परास्त होने के कारण उसने टर्की के सुलतान को खलीफा पद से हटा दिया। ब्रिटिश सरकार के इस कदम से भारत के मुसलमानो की धार्मिक भावना को ठेस लगी और ये अग्रेजो के विरूद्ध हो गये तथा 'खिलाफत आन्दोलन' आरम्भ कर दिया। परिस्थिति को अपने अनुकूल जानकर महात्मा गाधी के नेतृत्व मे काग्रेस ने 'खिलाफत आन्दोलन' का समर्थन किया। इस समर्थन के कारण देश का एक बडा धार्मिक समुदाय असहयोग आन्दोलन के साथ जुड गया।

स्वामी जी का सन्यास लेने से पूर्व का जीवन प्राय सक्रिय राजनीति से दूर ही था। काग्रेस के अधिवेशनो मे भाग लेते हुये भी उन्हे कोरी राजनीति मे कोई श्रद्धा नहीं थी। सन्यास के उपरान्त स्वामी जी महात्मा गाधी की सत्य और अहिसा आधारित राजनैतिक भागीदारी से इतने प्रभावित हुए कि एक घटना ने उनको राजनैतिक चौराहे पर खडा कर दिया। राजनीति मे पदार्पण की नाटकीय घटना का वर्णन करते हुये वे स्वय लिखते है कि "मै उस आन्दोलन मे कैसे सम्मिलित हुआ, उसकी कहानी कई बार पत्रो मे निकल चुकी है। मेरे परम मित्र स्वर्गवासी गोपाल कृष्ण गोखले के मुख्य शिष्य मिस्टर श्रीनिवास शास्त्री को मै माननीय मालवीय जी की प्रेरणा से मिलने गया। मेरे मिलने का उद्देश्य यह था कि यदि नौकरशाही 'रौलट बिल' को पास करने पर तुली ही रहे और हिन्दोस्तानी सभासद अपनी अप्रसन्नता प्रकट करने के लिये कौसिल से उठ खडे हो, तो मिस्टर शास्त्री भी उनके सग ही उठ जाए। मैने तो शास्त्री जी के साथ यह चर्चा छेडी और उन्होने गाधी जी की सत्याग्रह सबधी घोषणा का जिक्र करके 'लीडर'[14] पर्चा (समाचार पत्र) मेरे सामने कर दिया और कहा– वह उस घोषणा के विरुद्ध अपनी लेखनी उठाना अपना कर्तव्य समझते है। मैने बहुतेरा समझाया कि जब वह गाधी जी के मत और कर्मो के जिम्मेदार नहीं, तो खाहमखाह दाल–भात मे मूसल चन्द बनने का क्या लाभ। जब उन्होने एक न सुनी और कहा– It is my duty to protest against it (मेरा यह कर्तव्य है, मै इसका विरोध करू)। तब मैने उत्तर दिया Then I must sign the satyagrah vow (तब मुझे सत्याग्रह की प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर अवश्य करने है)। और तब मेरे लिए सत्याग्रह के प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर करना आवश्यक हो गया। मैने मिस्टर शास्त्री के यहा से लौटते ही गाधी जी को तार दे दिया[15]।

लेखको के अनुसार तार की भाषा इस प्रकार थी "अभी–अभी सत्याग्रह की प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर किए है। इस धर्मयुद्ध मे सम्मिलित होने मे प्रसन्नता अनुभव करता हू[16]।" इस तार के "धर्मयुद्ध" शब्द के अव्याख्यायित रहने पर भी यह तात्पर्यार्थ निकलता है कि स्वामी जी की दृष्टि मे असहयोग आन्दोलन मे ऐसे मौलिक मूल्य थे, जो कि इसे धर्म की परिधि के अन्तर्गत ले आते थे। इन्ही मूल्यो की प्रतिध्वनि स्वामी जी के भावी राजनैतिक चिन्तन मे गुजायमान रही। देहली से यह तार गाधी जी के पास जा रहा था और गाधी जी वायसराय से मिलने दिल्ली आ रहे थे। अत उन्हे यह तार नहीं मिला। गाधी जी दिल्ली आकर वायसराय से मिले। सम्भवतः यह 5 या 6 मार्च, 1918 का दिन था। वायसराय से निराशाजनक उत्तर मिला और गाधी ने सत्याग्रह की घोषणा कर दी। स्वामी जी ने महात्मा गाधी से भेट की। भेट का पूरा विवरण तो प्राप्त नहीं है, हा उस भेट के पश्चात् स्वामी जी ने इन्द्र को बताया कि यदि महात्मा गाधी ने सत्याग्रह किया तो वे निश्चित रूप से उनका साथ देगे[17]। परन्तु इस मुलाकात की कुछ झलकिया स्वामी जी द्वारा लिखित 'लिबरेटर' समाचार पत्र के लेख से इस प्रकार मिलती है–

सत्याग्रह के सम्बन्ध में सुझाव

"सत्याग्रह आन्दोलन का सम्पूर्ण सविधान पढे बिना ही मैं सत्याग्रह सेना मे भर्ती हो गया। बम्बई में उस समिति का गठन किया गया, जिसको यह तय करने का काम सौंपा गया था कि किन–किन अग्रेजी कानूनो की किस प्रकार अवहेलना करनी है। एक प्रकार से सारे आन्दोलन का केन्द्रीकरण कर दिया गया था। किन्तु मेरे विचार से कानूनो की अवहेलना को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए स्थानीय स्तर पर स्वतन्त्रता दिया जाना आवश्यक था। मैने महात्मा जी से कार्य की योजना विषयक उनके सुझाव जानने चाहे। उन्होने मुझे बताया कि आरम्भ मे पुलिस को सूचना देकर जब्तशुदा साहित्य को बेचा जायेगा। मेरा विचार था कि ऐसा करने पर चतुर नौकरशाही हम पर हसेगी और मैंने अपने भी सुझाव उनके समक्ष रखे। मेरा प्रथम सुझाव पचायत अदालते स्थापित करने का था, जिससे कि ब्रिटिश न्यायालयो का परोक्ष रूप मे बहिष्कार किया जा सके। मेरा दूसरा सुझाव यह था कि अक्टूबर 1919 ई0 तक, जबकि खरीफ की फसल का लगान दिया जाना था, दस ऐसे जिले तैयार किये जाते जहा जमीन का लगान तथा अन्य कर देने से लोग इन्कार कर दे। मैने पजाब मे ऐसे पाच जिलो को इस कार्य के लिये तैयार करने का वचन दिया, जहा हिन्दू जाटो का बहुमत था। मैंने महात्मा जी से निवेदन किया कि वे गुजरात मे भी पाच ऐसे जिले तैयार करे क्योकि खेडा जिला सत्याग्रह तथा अहमदाबाद की मिलो के सत्याग्रह के कारण वहा महात्मा गाधी अपने प्रभाव के कारण ऐसा कर सकते थे। किन्तु महात्मा जी ने मुस्करा कर कहा– भाई साहेब, आप यह जान जायेगे कि मैं सत्याग्रह के काम मे अत्यन्त निपुण हू। मैं अपने काम को भली भाति समझता हू। महात्मा जी के इस कथन को चुनौती देना निरर्थक ही था और मैंने उनके निर्णय के समक्ष अपना सिर झुका लिया।"[18]

यहा पाठको की जानकारी के लिए यह बताना आवश्यक है कि स्वामी जी दृष्टि मे पजाब प्रान्त के पाच हिन्दू जाट बहुल जिले अम्बाला डिविजन के ही थे। इन पाच जिलो के नाम इस प्रकार हैं– अम्बाला, करनाल, रोहतक, हिसार और गुडगावा। इन पाच जिलो के क्षेत्र से ही हरियाणा प्रदेश का निर्माण हुआ है। स्वामी जी ने द्वारा छाटे गये उपर्युक्त पाच जिलो की विश्वसनीयता का कारण इन जिलो मे गुरुकुलो की स्थापना को जाता है। सन् 1918 से पूर्व अम्बाला डिविजन मे जितने भी गुरुकुल स्थापित हुए, प्रायः उनकी आधार शिला रखने का गौरव स्वामी जी को मिला था। अम्बाला डिविजन के गुरुकुल कुरूक्षेत्र, गुरुकुल झज्जर (रोहतक), गुरुकुल–मटिण्डू (रोहतक), गुरुकुल भैंसवाल (रोहतक), गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ (गुडगावा) सभी स्वामी श्रद्धानन्द को आर्य जगत् का अप्रतिहत और अग्रणी नेता मानते थे। यदि महात्मा गाधी स्वामी जी के 'पाच जिला सिद्धान्त' को मान लेते तो क्या स्वामी जी अपने उद्देश्य मे सफल होते, इस पर आसानी से प्रश्न चिन्ह लगाया जा सकता है। कारण कि उस समय की अम्बाला डिविजन की आर्य सामाजिक और राजनैतिक स्थितिया यह बताती हैं कि किसानो के मसीहा छोटू राम द्वारा स्वामी जी का विरोध अवश्य होता। इस विचार की पुष्टि इस बात से भी होती है कि छोटू राम ने किसानो द्वारा लगान न देने की नीति से असहमत होकर काग्रेस छोड़ दी थी।

स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा लिखा गया उपर्युक्त लेख यह सकेत भी देता है कि यद्यपि महात्मा गांधी स्वामी जी को भाई के समान मानते थे तथापि वे असहयोग आन्दोलन के विषय मे अपनी अगुली उन्हे नहीं पकडवाना चाहते थे। इससे स्पष्ट हो गया कि भविष्य मे भी काग्रेस की नीतियो मे स्वामी जी को पीछे धकेला जा सकता है और हुआ भी ऐसा ही।

राजनीति में प्रवेश की प्रतिक्रियाएं-

7 मार्च, 1919 को दिल्ली मे एक सार्वजनिक सभा हुई। इस सभा मे स्वामी जी ने अपने जीवन मे प्रथम बार राजनैतिक विषय पर अपने विचार खुल कर प्रकट किया। स्वामी जी ने इस सभा मे कहा कि असहयोग आन्दोलन राजनीति से कहीं अधिक धार्मिक है। आर्य समाजी तो इस बात को सुनकर भौचक्के रह गए। परन्तु स्वामी जी, के पुत्र इन्द्र के लिए स्वामी जी का राजनीति मे प्रवेश वरदान के रूप मे सिद्ध हुआ। इन्द्र के शब्दो के अनुसार "मेरा बचपन से ही राजनीति की ओर झुकाव था। दिल्ली आकर मेरे उस झुकाव को पनपने और कार्यरूप मे परिणत होने का अवसर मिला, मानो प्यासे को पानी मिल गया। पिता जी के राजनैतिक प्रवेश ने मुझे अवसर दिया कि मैं बचपन की हवस को पूरा करने के लिये गहरे पानी मे लम्बी छलाग लगा दूं[19]।" इन्द्र ही नहीं, अपितु अनेक आर्य समाजी व्यक्ति जो कि सत्याग्रह की नदी किनारे बैठे–बैठे छलाग न लगाने के कारण ऊघ रहे थे, उनको भी हरी झण्डी मिल गई। इस प्रकार स्वामी जी के राजनीति मे प्रवेश के कारण काग्रेस को बडा भारी लाभ हुआ और इसे कर्मठ, चरित्रवान और देशभक्त आर्यसमाजी व्यक्तियो का एक समूह कार्यकर्ताओ के रूप मे मिल गया।

इसके पश्चात् स्वामी जी गुरुकुल कागडी मे खोली जाने वाली प्रोद्योगिक और व्यवसायिक शिक्षा के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करने के विचार से 10 मार्च को औद्योगिक नगरी बम्बई के लिए प्रस्थान कर गये। बम्बई पहुच कर शिक्षा जगत् का बूढा शेर राजनीति की दलदल मे ऐसा फसा कि वहा सत्याग्रह के पक्ष मे पाच भाषण दे डाले और मूल उद्देश्य 'प्रोद्योगिक सस्थानो' को देखना ही भूल गया। स्वामी जी ने बम्बई के उपरान्त महात्मा गाधी के प्रतिनिधि के रूप मे भडौच और सूरत मे भी व्याख्यान दिए। स्वामी जी के बम्बई, भडौच और सूरत के व्याख्यानो की दो प्रतिक्रियाए हुई। इनमे से एक प्रतिक्रिया अग्रेज शासको से सम्बन्धित है, तो दूसरी आर्य समाज के क्षेत्र से जुडी हुई है। ब्रिटिश शासको की प्रतिक्रिया महात्मा गाधी और स्वामी जी के परस्पर सहयोग की चिन्ता को लेकर थी। भारत के दो राजनैतिक और धार्मिक ऐरावतो के मिलन से व्याकुल होकर तत्कालीन वायसराय लार्ड चैम्स फोर्ड ने भारत सचिव मिस्टर मान्टेग्यू को एक पारिभाषिक तार इस प्रकार भेजा था–

"आन्दोलन (सत्याग्रह) तीव्र गति से चल रहा है महात्मा मुशीराम ने, जिसने अब श्रद्धानन्द नाम रख लिया है, गाधी के साथ हाथ मिला लिया है। बहुत काल से वह एक सुप्रसिद्ध धार्मिक मुखिया रहा है और सामाजिक सुधारक के नाते भी यथेष्ट प्रतिष्ठा अर्जित की है। प्रतीत होता है कि वह राजनैतिक आन्दोलनकर्ता के रूप मे ख्याति प्राप्त करना चाहता है। अभी देखना है कि कष्ट का समय आने पर उसकी सहन शक्ति कितनी है। उसका बडा लडका कुछ काल तक सुप्रसिद्ध विप्लवकारी का ब्यूनोस एरिस मे अतिथि रहा है[20]। उसका छोटा लडका दिल्ली से सरकार के विरुद्ध देशी भाषा का एक उग्र दैनिक निकालता है[21]। हमे प्रतीक्षा करनी है कि क्या होता है[22]।"

दूसरी प्रतिक्रिया आर्य समाजियो की थी। आर्य समाजियो मे यह भ्रम फैल गया कि आर्य समाज सामूहिक रूप मे सत्याग्रह मे सम्मिलित हो गया है। और हाथी के पाव मे सबके पाव आ गए हैं। आर्य समाजियो की इस भ्रान्ति के निवारण के लिये स्वामी जी ने बम्बई से इन्द्र को इस प्रकार का पत्र लिखा–

बम्बई

15–3–19

मेरे प्यारे इन्द्र,

आज प्रातःकाल शरीर ठीक है। हमारा कार्य भी बडी उत्तमता से चल रहा है। यहा गाधी जी मिले। मैं कल बोला भी। 'विजय' 'बाम्बे क्रानिकल' के नाम भेज दिया करो। मि0 हानीमैन कल सभा मे मिले थे। आज उन्हे कहूगा कि एक्सचेंज कर ले।

असहयोग–सत्याग्रह के आन्दोलन मे मेरे प्रवेश से कुछ आर्यसमाजी घबरा गए है। तुम मेरी ओर से ठीक समझकर 'सद्धर्म प्रचारक' मे लिख दो कि स्वामी श्रद्धानन्द सन्यासी हैं। उनका किसी आर्य सस्था से विशेष सम्बन्ध नहीं। उनके सत्याग्रह मे शामिल होने के अर्थ नहीं कि आर्य समाज सस्था रूप मे इसमे शामिल है। ऐसे आर्य समाजी होगे, जो सत्याग्रह को उचित न समझे।

कुछ भीरू लोग तथा ईर्ष्यालु कुछ का कुछ प्रकट करेगे। इसलिए तुम जो उचित समझो, नोट लिख छोडो।

तुम्हारा मगलाभिलाषी

श्रद्धानन्द

स्वामी जी 22 मार्च को दिल्ली लौट आए। दिल्ली मे आकर स्वामी जी ने देखा कि उनकी अनुपस्थिति मे स्थानीय सत्याग्रह समिति की निष्क्रियता के कारण सत्याग्रह अभियान निर्जीव सा हो गया है। स्थानीय सत्याग्रह समिति के सदस्य होने के नाते स्वामी जी ने 24 और 27 और 29 मार्च को तीन सभाओ का आयोजन किया। 29 मार्च की सभा मे लोगो को यह बताया गया कि 30 मार्च की हडताल मे क्या–क्या करना है और उसी दिन सायकाल चार बजे एक सार्वजनिक सभा भी होगी। महात्मा गाधी द्वारा प्रसारित स्मरण पत्र मे स्वामी जी ने एक चीज अपनी ओर से जोडते हुए कहा कि इस दिन प्रत्येक मनुष्य आधे घण्टे के लिए ध्यान करे और परमात्मा से प्रार्थना करे कि वे हमारे विरोधियो का हृदय परिवर्तन कर दे।

छाती को चूमती संगीनें

30 मार्च का दिन और दिल्ली की प्रत्येक दुकान और व्यावसायिक प्रतिष्ठानो मे सर्वत्र सन्नाटा और शान्ति। यह शान्ति मरघट की शान्ति न होकर स्वदेश प्रेम की अनुपम शालीनता का सिरोपा पहने हुई शान्ति थी। दिल्ली शहर मे क्या हिन्दू, क्या सिक्ख, क्या जैन और क्या मुसलमान सभी ने हडताल कर रखी थी। शहर मे तागे और ट्रामे तक बन्द थी। हलवाइयो के पास बन्धा दूध आया, वह उन्होने बच्चो और गरीबो मे मुफ्त बाट दिया। 12 बजे तक स्वामी जी ने शहर मे गश्त लगाई। इसके बाद कुछ सुस्ताए ही थे कि स्टेशन पर गोली चलने की सूचना मिली। स्वामी जी तुरन्त पैदल ही स्टेशन की ओर चल पडे। उन्होने मशीनगन से अन्धाधुन्ध गोलिया चलाये जाने की आवाज सुनी। एक दर्जन व्यक्ति या तो मारे गये या घायल हो गए। मृत और घायलो को खींच–खींच कर स्टेशन यार्ड मे ले जाया गया। स्वामी जी ने मौके पर मौजूद सिटी मैजिस्ट्रेट मिस्टर करी से सही तथ्यो की जानकारी चाही। अग्रेज मैजिस्ट्रेट ने स्वामी जी की उपेक्षा की और मुह मोड कर खडा रहा। स्वामी जी चाहते तो उसको उसके व्यवहार से भी अधिक कडवा पाठ पढा सकते थे। परन्तु असहयोग के अहिंसक सिपाही ने मन, वचन और कर्म से अहिंसा का पालन करते हुए इतना ही कहा कि वे लोगो को सभा स्थल पर ले जा रहे हैं, हालाकि अभी सभा होने मे काफी देर है। अतः उसे फौज

या मशीनगनो का प्रदर्शन करके जनता को उत्तेजित नहीं करना चाहिए। सिह की ठवन से चलते हुए स्वामी जी के पीछे–पीछे जनता चल पडी। धीरे–धीरे आरम्भ की तीन–चार हजार की भीड पच्चीस हजार के लगभग लोगो का समूह बन गई। इस भीड को सम्बोधित करते हुए स्वामी जी ने कहा कि हमे सत्याग्रही की भाति आचरण करके अपने शोक और क्रोध को नियन्त्रित करना चाहिए। इस समय तक स्वामी जी को यह समाचार मिल चुका था कि गोरे सिपाहियो ने चादनी–चौक के निकट गोली चलाई है और लगभग 12 व्यक्ति गोलियो के शिकार हुए है।

इस समाचार से लोगो मे हलचल मच गई। स्वामी जी द्वारा उन्हे शान्त किये जाने का प्रयास किया ही जा रहा था कि इतने मे उत्तर दिशा से घुडसवार सेना का एक दस्ता सभा की ओर बढता हुआ आया। उसके अफसर ने स्वामी जी से पूछा– यहा क्या हो रहा है? स्वामी जी का उत्तर था कि वे लोगो को शान्त रहने का उपदेश दे रहे हैं। उत्तर से सन्तुष्ट होकर घुडसवार चले गए। परन्तु पाच बजे के लगभग दूसरी बार सभा का चारो तरफ से घेराव कर लिया गया। दिल्ली के चीफ कमिश्नर मिस्टर बैरन ने स्वामी जी को सभा से बुलाकर कहा कि यदि वे इस बात का आश्वासन दे कि इस सभा मे कोई भडकाऊ बात नहीं कही जायेगी, तो उनके उत्तरदायित्व पर इस सभा को जारी रहने देता हू। स्वामी जी का स्पष्ट और सपाट उत्तर था कि वे इस शर्त पर उत्तरदायित्व लेने को तैयार है कि सेना व्यर्थ मे दखल देकर लोगो को न भडकाए। सभा की कार्यवाही चलती रही। माण्टेग्यू को भेजा जाने वाला प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार हो गया। सभा समाप्ति पर अनुशासित लोगो की तरह भीड स्वामी जी के पीछे–पीछे चल पडी। इस भीड के पीछे बहुत से घुडसवार सिपाही और मशीनगने पहरा सा देती चल रही थी। जब स्वामी जी की अगुआई मे भीड घण्टाघर के निकट आई तो देखा कि सडक के बीच मे गोरखा सिपाही दोहरी पक्ति मे खडे हैं। भीड को देखकर वे दाहिनी पटरी की ओर जाने लगे। स्वामी जी ने सोचा कि शायद भीड को रास्ता देने के लिए ही सिपाही पटरी की ओर चले गए हैं। लोग नारे लगाने मे मस्त थे और तेजी से आगे बढ रहे थे। भीड को अपनी ओर आता देखकर सिपाही घबरा गए और तीन–चार कदम पीछे हटकर अपनी बन्दूको को ऐसे ढग से सम्भालने लगे जैसे गोली छोडने के समय सम्भालते हैं। इतने मे भीड पर रायफल से एक गोली चलाई गई। इस पर हलचल मच गई और भीड की ओर से आपत्तिजनक आवाजे आने लगी। किन्तु स्वामी जी ने भीड को रुकने के लिये कहा और सन्यासी वेश मे अकेले ही सिपाहियो तक गये और पूछा कि निर्दोष और शान्त लोगो पर गोली क्यो चलाई गई है? उत्तर न देकर दो सिपाहियो ने अपनी रायफलो की सगीने स्वामी जी की ओर बढाते हुए कहा– हट जाओ नहीं तो छेद देगे। स्वामी जी का एक कदम और बढा। स्वामी जी ने गम्भीर घोष मे कहा– मार दो, और वहीं खडे रहे। तुरन्त आठ–दस रायफले स्वामी की की छाती की ओर बढ गई। अब सगीने छाती को चूम रही थीं।

ऐसी स्थिति मे भीड के लिए सयम दिखाना कठिन हो गया। वह आगे बढना ही चाहती थी कि स्वामी जी ने उन्हे अहिसा की प्रतिज्ञा की याद दिलाई और भीड वहीं रुक गई। परन्तु भीड मे से निरन्तर आवाजे आती रही कि वे मर जायेगे पर स्वामी जी को मरने नहीं देगे[23]।" अन्त मे सेना अधिकारियो ने सिपाहियो को हटाकर भीड के लिए रास्ता छोडने का हुक्म दिया। जनता ने अपना कोलाहलपूर्ण प्रयाण जारी रखा। स्वामी जी के निवास स्थान नया बाजार आने पर लोग अपने–अपने घरो की ओर चल दिए।

इस प्रकार दिल्ली मे सत्याग्रह प्रणाली के महाकाव्य का प्रथम सर्ग काली और नीली स्याही से न लिखा जाकर लाल स्याही से लिखा गया। इस अहिसात्मक लाल स्याही मे हिन्दू और मुसलमान दोनो की लाली मिलकर एक हो गई थी। यदि स्वामी श्रद्धानन्द रेलवे स्टेशन की घटना से लेकर

घण्टाघर तक की उत्तेजक परिस्थितियो के कारण–विस्फोटक मानसिकता मे आई जनता को नियन्त्रित नहीं करते, तो शायद गाधी जी का अहिसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन ससार के सबसे भयकर रक्तिम आन्दोलन के रूप मे स्मरण किया जाता। यह स्वामी जी के निर्भीक और प्रभावी व्यक्तित्व का ही जादुई प्रभाव था कि अपार भीड भी उनके सकेत पर एक अनुशासित समूह की तरह व्यवहार करने लगती थी। स्वामी जी के निर्भीक व्यक्तित्व ने बूढी नगरी मे सजीवनी बूटी का काम किया और दिल्लीवासियो ने धर्म और जाति के भेद–भाव बिना उन्हे नव चेतना का मसीहा मान लिया। राजनीति के क्षेत्र मे स्वामी जी का पहला चरण ही इतना सशक्त था, जिसने सबको चमत्कृत कर दिया था।

31 मार्च का प्रात कालीन सूर्य इस बात का साक्षी था कि मानो 30 मार्च की रात ने सदियो पुरानी हिन्दू–मुस्लिम भेद–भाव की दीवारो को चकनाचूर कर दिया था। यह प्रात काल 'हम एक हैं' (ह से हिन्दू और म से मुस्लिम) से उदित हुआ। 31 मार्च को प्रात काल 30 मार्च की गोली से मृत एक मुसलमान का जनाजा निकला। जनाजे के साथ चलने वाली भीड बहुत अधिक थी। भीड मे हिन्दू अधिक थे या मुसलमान यह कहना अनुमान का विषय था। जनाजे के साथ स्वामी श्रद्धानन्द भी थे और हकीम अजमल खा भी। इन दो महान् विभूतियो का प्रथम मिलन जनाजे के जुलूस से ही हुआ। अगले दिन सरकारी हस्पताल से पाच लाशे और मिली। उनमे से दो मुसलमान और तीन हिन्दू थे। मुसलमानो के जनाजे मुख्यतया हिन्दुओ के कन्धो पर थे और हिन्दुओ की अर्थियो को मुसलमान कन्धा दे रहे थे। इन शवो के उठाने वालो के मनो मे यह भावना नहीं थी कि वे किसी काफिर को अथवा हिन्दू को कन्धा दे रहे हैं। पाचो अर्थिया कुछ दूर तक साथ–साथ चलीं। चादनी चौक से भीड दो भागो मे बट गई। स्वामी जी मुसलमान शहीदो के जनाजे के साथ ईदगाह जाने की जिद्द कर रहे थे। किन्तु मुस्लिम नेताओ के आग्रह पर उनको अपना विचार बदलना पडा और वे हिन्दू–शहीदो की अर्थियो के साथ यमुना घाट के लिये चल पडे। इस स्थिति मे स्वामी जी के पैर तो निगम बोध घाट की ओर बढ रहे थे, परन्तु मन विपरीत गति से मुसलमान शहीदो के जनाजो के साथ भाग रहा था।

जामा मस्जिद में भाषण

शहीदो का खून सदा रग दिखाता है, यह उक्ति सत्य है। यह रग इतना सात्त्विक होता है कि इसमे जाति, धर्म, वर्ण और वर्ग के सकुचित विचार काफूर हो जाते है। दिल्ली के शहीदो के रग ने 'हम एक है' के दिखाने मे देरी नहीं की। 4 अप्रैल के दिन दोपहर बाद की नमाज के पीछे विश्व की प्रसिद्ध 'जामा मस्जिद' मे मुसलमानो का जलसा हो रहा था। भीड मे से मौलाना अब्दुल्ला चूडीवाले ने अचानक आवाज देकर कहा – "स्वामी श्रद्धानन्द की तकरीर भी होनी चाहिये। दो–तीन उत्साही युवक उठे और स्वामी जी को नये बाजार के निवास से लिवा लाए। अल्ला हो अकबर के नारो के साथ स्वामी जी मस्जिद के मिम्बर (वेदी) पर विराजमान हुए। स्वामी जी ने निम्न वेद मन्त्र बोलकर अपने भाषण को आरम्भ किया–

त्व हि न पिता वसो त्व माता शतक्रतो बभूविथ। अथा ते सुम्नीमहे।

इस मन्त्र की व्याख्या को सभी–श्रोताओ ने श्रद्धापूर्वक सुना और मस्जिद के किसी भी कोने से कोई विरोध का स्वर नहीं उठा। स्वामी जी ने अपने भाषण का अन्त 'ओ शान्ति' को तीन बार बोल कर किया। इस प्रकार स्वामी जी ने विश्व के धार्मिक इतिहास मे एक कीर्तिमान स्थापित किया। यह पहला अवसर था जबकि भारत मे ही नहीं अपितु सम्भवत सम्पूर्ण मुस्लिम जगत मे किसी गैर मुस्लिम व्यक्ति ने जामा मस्जिद की वेदी से उपदेश दिया हो। इस घटना से वे धर्म और जाति की सकीर्णताओ से ऊपर उठकर मानव से महामानव और 'अजातशत्रु' बन गए थे। यदि देखा जाए,

तो राजनीति के क्षेत्र मे यही उनकी प्रथम और अन्तिम उपलब्धि थी। इससे बडा सम्मान क्या हो सकता था?

दिल्ली की सत्याग्रह कमेटी ने 30 मार्च को हडताल करके पहल कर दी थी। वस्तुत महात्मा गाधी ने अभी हडताल का कोई दिन निश्चित नहीं किया था। अत स्वामी जी सहित अनेक नेता लोगों को दुकाने आदि खोलने के लिए प्रेरित करने लगे। 4 अप्रैल को सायकाल डिप्टी कमिश्नर बीडन ने शहर के रईसो और अफसरो की एक बैठक बुलाकर कहा कि रेलवे स्टेशन पर इकट्ठी भीड बदमाशो का जमावडा थी। बीडन के गलत वक्तव्य का प्रतिवाद सत्याग्रह समिति की ओर से छपवा कर 6 अप्रैल को प्रातःकाल लोगो मे वितरित करवा दिया गया। वस्तुतः 6 अप्रैल ही महात्मा गाधी द्वारा निश्चित हडताल का दिन था। दिल्ली सत्याग्रह कमेटी ने 30 मार्च को 'प्रार्थना दिवस' मना लिया था। इसलिये दिल्ली समिति 6 अप्रैल को मात्र सरकार के विरोध मे एक सभा करने का विचार रखती थी। जब 6 अप्रैल को सूर्योदय हुआ तो सारा कारोबार बन्द हो गया। हजारो लोग सवेरे के समय फतहपुरी मस्जिद मे एकत्र हुये और स्वामी जी को सत्याग्रह की प्रार्थना का सचालन करना पडा। जामा मस्जिद का इतिहास फिर दोहराया गया। दिल्ली के लोगो के आग्रह पर स्वामी जी ने महात्मा को तार देकर प्रार्थना की कि वे पजाब–सिन्ध के दौरे पर जाते हुए दिल्ली के लोगो को भी दर्शन दे। महात्मा जी का स्वीकारात्मक उत्तर आ गया किन्तु उन्हे 8 अप्रैल को दिल्ली प्रवेश से पूर्व ही पलवल रेलवे स्टेशन पर सरकार ने गिरफ्तार कर लिया। महात्मा गाधी की गिरफ्तारी के बाद 10 अप्रैल को पूर्ण हडताल हो गई। हडताल के पश्चात् यमुना के किनारे एक सभा हुई जिसमे गिरफ्तारी के समय महात्मा गाधी द्वारा महादेव देसाई के हाथ भेजा गया सन्देश स्वामी जी ने पढा।

12 अप्रैल को स्वामी जी को बम्बई से भेजा महात्मा गाधी का तार मिला। इस तार मे लोगो को सयम और अहिंसा का पालन करने को कहा गया था। साथ मे यह भी लिखा था कि स्वामी जी इस सन्देश को लाहौर और अमृतसर आदि स्थानो पर भी भेजे। स्वामी जी को ऐसा निर्देश इसलिये दिया गया था कि पजाब मे अधिकांश मे जिन लोगो ने सत्याग्रह की प्रतिज्ञा की थी, वे आर्य समाजी थे और वे इस आन्दोलन मे इसलिये प्रविष्ट हुए थे कि इसका नेतृत्व स्वामी श्रद्धानन्द कर रहे थे[24]। स्वामी जी ने लाहौर और अमृतसर तार अवश्य भेजे किन्तु सरकार ने ये तार बीच मे ही रोक लिए। महात्मा गाधी के तार से वचनबद्ध होकर स्वामी ने स्थानीय समाचार पत्रो मे हडताल समाप्त कर देने की सूचना भी प्रकाशित करवाई। लेकिन 13 तारीख को यह सुनकर उन्हे आश्चर्य हुआ कि महात्मा गाधी ने सत्याग्रह कार्यक्रमो को ही स्थगित कर दिया है और अपने देशवासियो के विरुद्ध अनशन आरम्भ कर दिया है। महात्मा गाधी के इस कारनामे से विचलित न होकर स्वामी जी तथा हकीम अजमल खा तथा डा0 अन्सारी हडताल खुलवाने के प्रयास मे जुटे रहे। दिल्ली के चीफ कमिश्नर मिस्टर बैरन ने स्वामी जी को बुलाकर कहा कि वे भारत की राजधानी मे और खून की बूद भी नहीं गिराना चाहते। स्वामी जी ने उत्तर देते हुये स्पष्ट किया कि उनका धर्म सब काल मे रक्तपात से घृणा करता है। अत उनका प्रयास होगा कि सर्वत्र शान्ति बनी रहे[25]। अन्त मे 10 अप्रैल को दिल्ली की हडताल समाप्त हो गई।

30 मार्च से आरम्भ होकर 10 अप्रैल तक चलने वाली दिल्ली की हडताल के विषय मे कहा गया है कि "उस समय ऐसा 'रामराज्य' रहा जिसे दिल्ली–निवासी अभी तक न भूले होगे। सेध लगाना बन्द, ताले टूटने बन्द, जुएखानो और शराबखानो के ठेकेदार बैठे शराबियो की प्रतीक्षा करते रहते थे।" इस लघु अवधि मे दिल्ली मे रामराज्य लाने मे दिल्ली की त्रिमूर्ति (डा0 अन्सारी, हकीम अजमल खा और स्वामी श्रद्धानन्द) मे से स्वामी श्रद्धानन्द का योगदान सर्वोपरि था। स्वामी श्रद्धानन्द की तुलना में दिल्ली की हिन्दू–मुस्लिम जनता मे अन्सारी और अजमल की पैठ द्वितीय श्रेणी की थी। जहा स्वामी

श्रद्धानन्द हिन्दू तथा मुसलमानो दोनो मे सम्पूज्य थे, वहां अन्सारी और अजमल हिन्दू जनता मे लोकप्रियता स्थापित नहीं कर सके थे। दिल्ली के सर्वोच्च अधिकारी भी स्वामी जी को ही सारे फिसाद (हड़ताल) की जड़ मानते थे।

जलियांवाला गोली काण्ड की जांच में सहायता

'रौलट एक्ट' के विरोध में सत्याग्रह की घोषणा के प्रारम्भिक चरणों में जो देश व्यापी हडताल हुई थी, उसको भिन्न–भिन्न प्रान्तों की सरकारों ने अपने–अपने तरीकों से निपटने की जुगत बैठाई। पजाब के गवर्नर माइकल ओडवायर की सरकार ने जलियांवाला बाग (अमृतसर) में निहत्थे और शान्त लोगों की भीड पर बडी निर्ममता से गोली चलवा कर सत्याग्रह की आत्मा को दबाना चाहा। इस भीषण गोली काण्ड से पजाब का वातावरण कांप उठा और श्मशान घाट जैसी शान्ति सर्वत्र फैल गई। प्रान्त की आह भरी पुकारे बाहर न जाने पायें, इस विचार से 'सैन्सरशिप' का पर्दा तान दिया गया। वाणी और लेखनी दोनों कैद हो गई। लोकमत को प्रचण्ड रूप मे उभरते देखकर बडी विवशता के साथ सरकार ने 'सैन्सरशिप' का पर्दा हटाया। 'सैन्सरशिप' हटने पर पंजाब की स्थिति के विषय में देश के नेताओ को वास्तविकता का बहुत कुछ पता चला। पंजाब के आतक पीडित लोगों को सान्त्वना देने एव वस्तुस्थिति से पूर्णतया परिचित होने के लिये देश के शीर्षस्थ नेता पजाब के लिये प्रस्थान करने लगे। ऐसी अवस्था में सिसकते पजाब की सुध लेने, उसी का एक सपूत, सन्यासी वेश मे सर्वप्रथम अमृतसर पहुंचा। वह संन्यासी अन्य कोई न होकर स्वामी श्रद्धानन्द ही था। 'भारत सेवा समिति' के उपप्रधान के नाते सन्यासी श्रद्धानन्द ने पीडित और आहत अनाथो एव विधवाओं को सहायता देने का काम अपने हाथ में लिया। अपने व्यक्तिगत प्रभाव द्वारा सवा लाख रुपया सहायता कार्य के लिए सगृहीत किया। स्वामी जी के अपनत्व को पाकर पजाब का मृतप्राय वातावरण सजीव हो उठा। पजाब मे अपनी उपस्थिति को सार्थक बनाकर कुछ समय के पश्चात् स्वामी जी दिल्ली लौट आए।

कांग्रेस पार्टी ने पजाब की घटनाओ की तहकीकात के लिये पं0 मोतीलाल नेहरू और चितरजन दास को भेजा। इस सन्दर्भ में स्वामी जी के पास प0 मोतीलाल नेहरू का इस आशय का पत्र आया कि वे मार्शल ला की घटनाओं की तहकीकाती कमेटी में भाग लेने के लिये लाहौर जा रहे हैं। आप पजाब में सहायता का कार्य करके अभी आए हैं। अतः इलाहाबाद से लाहौर जाते हुए आपसे मिलना चाहूगा। प0 मोतीलाल पत्र में लिखी तारीख को स्वामी जी से उनके निवास स्थान पर मिले। एक ही कालेज के सहपाठी होने पर भी पैंतालीस वर्ष के अन्तराल के कारण एक दूसरे को अपरिचित समझने वाले दो चेहरे आमने–सामने खडे एक दूसरे का मुंह ताक रहे थे। एक दूसरे के मुख से 'अरे तुम–अरे तुम' शब्द ही सबसे पहले निकले। प्रत्यक्षदर्शी इन्द्र के शब्दो मे "दोनों ने खूब कसकर हाथ मिलाए। पिता जी ने कहा– मैं नहीं जानता था कि पंडित मोतीलाल नेहरू तुम ही हो। पंडित जी ने उत्तर दिया कि मैं भी अब तक नहीं समझता था कि महात्मा मुशीराम और स्वामी श्रद्धानन्द तुम्हीं हो[27]।

इसके पश्चात् दोनों ने अपनी–अपनी राजनैतिक स्थितियों के लबादे उतार कर कालेज के दिनों को स्मरण करके बड़ी आत्मीयता से बातचीत की। स्वामी जी से सहयोग का आश्वासन पाकर पं0 मोतीलाल तहकीकात के लिये लाहौर चले गए। इस तहकीकात में स्वामी जी ने पूरा–पूरा सहयोग दिया। घटना से सबंधित गुप्त कागज–पत्र और चित्रों को तहकीकात कमेटी तक पहुंचाने का कार्य स्वामी जी ने किया। इसके अतिरिक्त जहां से साक्षियां मिलनी कठिन होती थीं, वहां स्वामी जी के पहुंचते ही लोग निर्भय होकर साक्ष्य के लिये तैयार हो जाते थे।

सत्याग्रह के संबंध में गांधी जी से मतभेद और त्यागपत्र

सत्याग्रह मे नवचेतना फूंकने वाले, सन्यासी होते हुये भी स्वाभिमानी और अपने सिद्धान्तों पर दृढ रहने वाले स्वामी श्रद्धानन्द का सत्याग्रह की नीति को लेकर शीघ्र ही मतभेद हो गया। मतभेद के प्रमुख कारण गाधी जी की कार्य शैली और चिन्तन से सबंधित थे।(1) गांधी जी ने सत्याग्रह को वापिस लेते समय जो घोषणा पत्र प्रसारित किया था, उसमें फौज और पुलिस द्वारा शान्त नागरिको को मारे जाने का उत्तरदायित्व सत्याग्रहियो के कन्धों पर ही डाला गया था। दिल्ली के लोगों द्वारा इसका प्रतिवाद किये जाने का गाधी जी पर कोई असर नहीं हुआ। एक प्रकार से उत्तरदायित्व अप्रत्यक्ष रूप से सीधा स्वामी श्रद्धानन्द पर आता था। क्योकि वे ही दिल्ली सत्याग्रह के अग्रणी नेता थे।(2) इसी प्रकार जब लाला शकरलाल पर यह झूठा आरोप लगा कर कि उन्होने सी.आई.डी. के इन्सपेक्टर फकीर मुहम्मद को पीटा, गिरफ्तार कर लिया गया, तो महात्मा गांधी ने शकर लाल को तार भेजकर कहा कि वे अपना कोई बचाव न करे और सच्चे बयान दें। स्वामी जी ने इसका प्रतिवाद करते हुये गाधी जी को लिखा कि वे तथ्य को जाने बिना हस्तक्षेप न करें।

(3)हर डाक से महात्मा गाधी द्वारा ऐसे पोस्टर आते थे, जिनमे यह निर्देश होता था कि यदि कोई सत्याग्रही पुलिस द्वारा वाछित है, तो वह अपने आपको गिरफ्तार करा दे। स्वामी जी ने इस प्रकार के सभी पोस्टरों को जलाने का आदेश दे दिया और महात्मा गाधी द्वारा प्रेषित इन अनावश्यक हुक्मनामो के विरोध मे स्थानीय सत्याग्रह समिति से अपना सम्बन्ध तोड लिया। इन सब कारणों का परिणाम यह हुआ कि स्वामी जी ने 2 मई को अपना त्याग पत्र सत्याग्रह समिति को दे दिया। यहा पाठकों की जानकारी के लिये त्याग पत्र उद्धृत किया जाता है, जिससे स्वामी जी के राजनैतिक चिन्तन को समझने मे कोई भ्रान्ति नहीं रहे–

"सरकार द्वारा उठाये गए 'रौलट बिल' जैसे असाधारण कदम के सम्बन्ध में आप द्वारा प्रस्तावित सत्याग्रह का व्रत–लेने से पूर्व ही मैं न केवल अहिंसा और सत्य को दृढता के साथ व्यवहार में लाने का उपदेश देता था, अपितु यम–नियमों में वर्णित अन्य सद्‌गुणो का भी उपदेश देता था। मैंने सदा ब्रह्मचर्य पर विशेष बल दिया है और सोचता हू यह सब सद्‌गुणो का मूल है। मेरा विचार रहा है कि केवल ब्रह्मचर्य पालन ही ससार के वर्तमान सघर्षो को रोक सकता है। मैंने सत्याग्रह की सफलता मे ब्रह्मचर्य की शर्त को जोडकर सत्याग्रहियो को इसकी सूचना समाचार पत्रों द्वारा दे दी।

आपको भली प्रकार मालूम है कि मैंने वर्तमान राजनीति में भाग लेने की कभी चाह नहीं की है। मैं मोन्टेग्यू–चैम्सफोर्ड की सुधार योजनाओं से बहुत ही कम सरोकार रखता हूं। मेरा विचार यह रहा है कि हजारो वर्षो से ससार की कूटनीति के सिरमौर होने के कारण शासको (अग्रेजो) के सामने गोलमेज काफ्रेसों मे भारतीय डटे नहीं रह सकते। मेरे विचार से राजनैतिक अधिकारो की प्राप्ति का एक मात्र मार्ग यह है कि हम अपने शासको को स्वयं उन द्वारा सुधार योजना तैयार करने की गुंजायश दें।

परन्तु 'रौलट बिल' ने मानवीय स्वतन्त्रता और न्याय के प्राथमिक सिद्धान्तों के मूल पर ही कुठाराघात कर दिया। जिसे मैं भारतीय आध्यात्मिक सस्कृति के रूप मे मानता हू, ऐसे आप जैसे व्यक्ति द्वारा आह्वान हुआ, तो मैंने उस आह्वान को पूर्ण मन और आत्मा से माना। जब रौलट बिल का एक अंश कानून के रूप में पारित हो गया, तो आपका आदेश था कि एक दिन अपमान और प्रार्थना दिवस के रूप मे मनाना है। सारे देश ने सर्वोच्च संकल्प के साथ आपके आदेश का पालन किया। इसके उपरान्त 30 मार्च, 1919 को दिल्ली में क्या घटित हुआ, सम्पूर्ण देश को विदित है।

तब दिल्ली की ओर आते हुये आपको पकड लिया गया और सारा देश बडी गहराई तक झकझोरा गया। सरकार के इस कुमन्त्रित कार्य का परिणाम सबको मालूम है।

अहमदाबाद, बीरमगाव, अमृतसर और कसूर आदि स्थानो पर भ्रमित और विकृत लोगो ने जो ज्यादतिया और अत्याचार किये, उनकी निन्दा करने मे, मैं आपके साथ हू। इसके अतिरिक्त मैं सार्वजनिक एव अन्य भवनो, विशेष रूप से ईसाई चर्चो को, अमृतसर और गुजरानवाला मे जलाये जाने के प्रति अपने घृणा के भाव प्रकट करता हू। ईसाई धर्म के मानने वाले भारतीय ईसाई धर्मयाजकों को मारने और स्त्रियो पर अकारण असभ्य आक्रमण से बडा भारी सदमा पहुचा है। मैं आशा करता हू कि अमृतसर तथा अन्य स्थानो के हिन्दू–मुसलमान चर्चो के पुनर्निर्माण मे सहायता एव मृत यूरोपीय एव भारतीय परिवारो के साथ वास्तविक सहानुभूति प्रदर्शित करेगे।

लेकिन मैं सरकारी अधिकारियो द्वारा दिल्ली तथा अन्य स्थानो पर जानबूझ कर जनता को चिढाने के सम्बन्ध मे तथा कानून के नाम पर पजाब मे किये गये वीभत्स कार्यो के प्रति आपकी चुप्पी का साथ नहीं दे सकता। यदि मैं जनता की ज्यादतियों और सरकारी अधिकारियो के अत्याचार पूर्ण कार्यो के प्रति अपनी आवाज नहीं उठा सका, तो इसका कारण पजाब सरकार के अनुरोध पर दिल्ली से भेजे जाने वाले तारो एव पत्रो पर मतभेद रहित सार्वजनिक सेन्सरशिप लगाकर प्रैस का गला घोटना ही था।

यह पत्र लिखते समय भी मेरे मन मे आपके व्यक्तित्व एव आपके सन्तीय चरित्र के प्रति सर्वोच्च सम्मान है। अत किन्हीं महत्त्वपूर्ण विषयो पर आपसे मतभेद होने पर दु:ख होता है। यदि मैं आपसे कर्तव्यनिष्ठता के कारण मतभेद रखता हू, तो उनको न कहना और परिणामो को न जानने का अर्थ अपने साथ बेईमानी करना है।

आपने कानूनो की अवज्ञा करने के आन्दोलन को, यह कहकर कि देश मे सकट उत्पन्न हो गया है और यह परिस्थिति के अनुकूल नहीं रहा, इसे अस्थायी रूप से स्थगित कर दिया है। आप आशा रखते हैं कि जब देश मे शान्ति स्थापित हो जाएगी और लोग सामान्य रूप मे सत्याग्रह के सत्य सिद्धान्तो को पूर्ण रूप मे हृदयगम कर लेगे, तो इसे पुनः आरम्भ किया जाएगा। अब, मैं यह मानता हू कि जब तक इस प्रकार की सरकार रहेगी तब तक देश में शान्ति स्थापित होने की कोई सम्भावना नहीं है और न ही सामान्य लोग आपके सत्याग्रह के सत्य सिद्धान्त को हृदयगम करेगे। केवल कागज पर हस्ताक्षर करने से ऐसा नहीं हो सकता। मेरा यह मानना है कि भारत में वर्तमान परिस्थितियो मे महापरिवर्तन लाये बिना अवज्ञा आन्दोलन असम्भव है। अतः आपके विचारों के अनुरूप ही यह विचार रखता हू कि रौलट एक्ट से भिन्न अवज्ञा आन्दोलन के अनुकूल अवसर निकट भविष्य मे आना सम्भव नहीं है। मेरा यह भी दृढ मत है कि जब भारत मे वास्तविक शान्ति आएगी, तब तक रौलट एक्ट का मुद्दा काफूर होगा और फिर कोई अवसर इस मुद्दे को लेकर अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करने का नहीं आएगा। फलत: आप द्वारा निर्धारित सत्याग्रह के प्रतिज्ञा–पत्र पर हस्ताक्षर करने का वास्तविक कारण ही समाप्त हो गया है। मैं आप द्वारा गठित सत्याग्रह समिति से अपना नाम वापिस लेने की प्रार्थना करता हू। एक सन्यासी के नाते, मैं धर्म के, सत्य, अहिंसा एव ब्रह्मचर्य के शाश्वत सिद्धान्तो के प्रचार और प्रयोग के लिये निरन्तर प्रयास करता रहूगा।

व्यक्तिगत रूप में मेरी धारणा पारित रोलट एक्ट एव प्रस्तावित रोलट एक्ट के सम्बन्ध मे अपरिवर्तनीय रहेगी। मैं सोचता हू कि एक सन्यासी के नाते यह मेरा धार्मिक कर्तव्य है कि इस प्रकार के कानून द्वारा पारित आदेशो के प्रभावी होने पर उनको न मानू। मैं इन कानूनों की रोक के लिये

आध्यात्मिक साधना भी करूगा। लेकिन धर्म प्रचार के कार्य मे लगने पर भी देशवासियो के लिए मेरी सेवाए सदा निम्न रचनात्मक कार्यो के लिए समर्पित रहेगी–

(1) भारत की एकता– इसके लिये हिन्दू, मुसलमान और सिक्ख इत्यादि को एक सामान्य मच पर लाकर सयुक्त पचायतो द्वारा उनके मतभेदो को दूर करना।

(2) स्वदेश की वस्तुओ को लोकप्रिय बनाना।

(3) हिन्दुस्तानी को राष्ट्रीय भाषा के रूप मे स्थापित करना।

(4) वर्तमान सरकारी विश्वविद्यालयो से हटकर एक स्वतन्त्र राष्ट्रीय शिक्षा नीति का विकास करना।

स्वामी जी के सत्याग्रह समिति से त्याग–पत्र सम्बन्धी पत्र का उत्तर महात्मा गाधी ने 6 मई, 1919 को देते हुए लिखा–

भाई साहब,

आपका खत मुझे मिला है, पढकर मैं बहुत दु खित हुआ हू। मै कैसा भी करू, मेरी भूल हो जाये तो भी आप अपना प्रण क्यो छोड सकते है। यदि लोग सत्य, अहिसा का पालन करने के लिये तैयार न हो जायेगे तो हम सार्वजनिक सत्याग्रह छोड सकते हैं, किन्तु हम सब क्यो छोड सकते हैं ? मै नहीं जानता हू कि आपको सब पत्रिका मिल चुकी है या नहीं। एक पत्रिका जिसमे लडते (आन्दोलन) किस तरह फिर शुरु हो सकती है उस बारे लिखा गया है। जब तक रौलट कायदे रद्द नहीं हुये हैं तब तक हम शान्ति नहीं रख सकते ऐसा मेरा दृढ मन्तव्य है।

दिल्ली मे मिलिटरी ने भूल की ऐसा मैंने आपके खत से जान लिया और आपको मालूम है, मेरे व्याख्यानो मे इस विषय मे मैने सख्त टीका की थी। पजाब के बारे मे अब तक भी मुझे मालूम नहीं कि मुख्य दोष किसका है। पजाब के बारे मे मैने कुछ भी नहीं कहा। अहमदाबाद और वीरमगाम मे पोलिस का कोई दोष नहीं था। केवल स्वच्छन्दता ही से लोगो ने बडा भारी अत्याचार किया था। प्रजा के साथ–साथ काम करते हुए प्रजा को सीधा रास्ता बताना आपका और मेरा धर्म है, ऐसी मेरी अल्पमति है। मेरी उम्मीद है कि आप प्रतिज्ञा का ठीक–ठीक पालन करेगे।

आपका

मोहन दास गाधी

महात्मा गाधी का उपर्युक्त पत्र मिलते ही स्वामी जी ने उन्हे 9 मई, 1919, को उत्तर देते हुए अपने पूर्व निश्चय की दृढता के सम्बन्ध मे इस प्रकार लिखा–

श्री महात्मा गाधी जी,

आपका 6 मई का पत्र मुझे मिला, उसमे मेरे पत्र का पूरा उत्तर नहीं आया। आपने अपनी नई पत्रिका पढने के लिये मुझे लिखा है। 8 मई के इन्डेपेन्डेन्ट (समाचार पत्र) मे मैने आपके दो लेख पढे। आप जुलाई के प्रारम्भ से फिर कानून भग का कार्य आरम्भ करने को लिखते हैं। मेरी सम्मति मे इन दो मास के अन्दर सारी जनता मे सत्याग्रह के भाव नहीं फैलाये जा सकेगे और जब तक गवर्नमैन्ट का इस समय का बर्ताव जारी रहेगा तब तक कभी भी ऐसे उच्च भाव जनता मे फैल नहीं सकेगे। आपको भी इसमे सन्देह है और इसीलिए आप लिखते है कि यदि ऐसा न हुआ तो भी सरकार इतनी फौजे लगा देगी कि लोग वायलेन्स (हिंसा) न कर सकेगे। इस लेख ने इधर के

सब सत्याग्रहियों में असन्तोष फैला दिया है। मेरा निश्चय है कि ऐसी बेइज्जती को सहन करना सत्याग्रह नहीं, किन्तु सरल जनता को फौजियों के हवाले करना रूपी पाप है। शोक यह है कि जिन सहस्रों आदमियों ने आप मे श्रद्धा के भाव से प्रेरित होकर सासारिक और अपने भविष्य की परवाह न करके सांसारिक सब कुछ छोडा, उनसे कुछ भी सम्मति न लेकर आप एकदम घोषणा पत्र छपवा देते हैं।

रौलट एक्ट के विरुद्ध मेरा वैयक्तिक सत्याग्रह जारी रहेगा, परन्तु पहले पत्र मे जो कुछ मैंने लिखा है उस पर 6 मई वाले इन्डेपेन्डेन्ट के लेख को पढकर मेरा निश्चय और दृढ हो गया है।

आपका

श्रद्धानन्द

उपर्युक्त पत्र–व्यवहार की परिणति यही निकली कि स्वामी जी ने सत्याग्रह समिति से नाता तोडकर अपने आपको काग्रेस से विलग कर लिया। स्वामी जी के सत्याग्रह समिति से पृथक होने पर मिश्रित प्रतिक्रियाए हुई। पजाब के शासन द्वारा की गई ज्यादतियो के सम्बन्ध में जाच के लिये सरकार की ओर से भी हन्टर की अध्यक्षता मे एक कमेटी गठित की गई थी। लार्ड हन्टर ने स्वामी जी के सन्दर्भ को लेकर महात्मा गाधी से पूछा कि क्या आपके लैफ्टिनेन्ट स्वामी श्रद्धानन्द ने आपके सत्याग्रह को दूषित समझ कर आपसे सम्बन्ध तोड लिया है। महात्मा जी ने उत्तर देते हुए कहा– कि लैफ्टिनैन्ट न कहिये, मेरे सहयोगी कहिये। स्वामी जी ने मेरे सत्याग्रह को दूषित नहीं समझा था। प्रत्युत वे मुझ से कुछ आगे जाना चाहते थे और मैं उनके साथ आगे नहीं बढ सकता था[29]।

अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष

प0 मोती लाल नेहरु जब पजाब मे मार्शल लॉ की गैर सरकारी समिति के अध्यक्ष बनकर लाहौर आए थे, तो उन्होंने काग्रेस के अधिवेशन के लिए उपयुक्त नगर के सम्बन्ध मे स्वामी जी से राय मांगी थी। स्वामी जी ने काग्रेस का अगला अधिवेशन अमृतसर मे करने का आग्रह किया, क्योकि स्वामी जी की विचारधारा मे ऐसा करने से पजाब के लोगों की हिम्मत और इच्छा शक्ति को प्रबल बनाये रखा जा सकता था। इसके लिये उन्होने कांग्रेस प्रधान को विधिवत् निवेदन पत्र भी भेज दिया। 8 जून, 1919 को इलाहाबाद में काग्रेस कार्यकारिणी मे इस पर विचार होना था। स्वामी जी अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिये वहा गए। तत्कालीन प्रधान मदनमोहन मालवीय किसी अन्य प्रान्त मे काग्रेस अधिवेशन करने के इच्छुक थे। स्वामी जी ने कार्यकारिणी के सदस्यो को लाहौर के पक्ष में मना लिया लेकिन प्रधान को मनाना कठिन हो गया। स्वामी जी ने एन्ड्रूज को भेजकर मदनमोहन मालवीय को मनाना चाहा फिर भी उनकी गर्दन नहीं मुडी। अन्त में अनेक प्रयासो के पश्चात् मालवीय जी इस शर्त पर अमृतसर में अधिवेशन करने के लिये सहमत हुए कि दूसरे प्रान्तो और नेताओ से किसी भी प्रकार की आर्थिक सहायता की अपेक्षा नहीं करनी होगी[30]। स्वामी जी बडे उत्साह से अमृतसर आये और अधिवेशन की तैयारी के लिए नागरिको की स्वागत समिति का गठन किया। इस समिति के मन्त्रियो और उपाध्यक्षो का चयन भी हो गया किन्तु बहादुर पजाब मे किसी को भी समिति का अध्यक्ष बनने के लिये राजी नहीं किया जा सका। आखिरकार काग्रेस के नेताओ और महिलाओ के आग्रह करने पर स्वागत समिति का प्रधान का पद स्वामी जी को ही सम्भालना पडा। स्वामी जी ने स्वागताध्यक्ष बनने की स्वीकृति देने से पूर्व गाधी जी की सम्मति प्राप्त करना उचित समझ कर उन्हे पत्र लिखा। कारण यह था कि अनेक प्रमुख हिन्दू और आर्य समाजी स्वामी जी को राजनीति के क्षेत्र मे प्रविष्ट होकर सन्यास की अवमानना करने से विरत करना चाहते थे। गाधी जी ने इसका उत्तर इस प्रकार लिखा–

तिथि भाद्रपद शुक्ला 10, 1975 वि0,

साबरमती।

भाई साहब, मुझे आपका पत्र मिला। मेरा विश्वास है कि जब तक हम धार्मिक उद्देश्य को लेकर राजनीति के क्षेत्र मे प्रविष्ट नहीं होते, तब तक हम भारत के पवित्र और सच्चे उत्थान के कार्य मे सफल नहीं हो सकते। यदि आप स्वागत समिति के अध्यक्ष बनते हैं तो आप काग्रेस में धार्मिक भावनायें प्रविष्ट करा पायेगे। इसलिए आपको स्वागत–समिति का अध्यक्ष पद स्वीकार कर लेना चाहिए। यही राय मैं आपको दे सकता हू।

आपका

मोहन दास गांधी

स्वामी जी ने ऊॅच–नीच और आगा–पीछा देखकर स्वागताध्यक्ष बनना स्वीकार कर लिया। स्वामी जी के स्वागताध्यक्ष बनने पर मद्रास से प्रकाशित होने वाले 'हिन्दू' समाचार पत्र ने 10 अक्टूबर, 1919 के अक मे सम्पादकीय टिप्पणी लिखते हुए निम्न उद्‌गार व्यक्त किए–

"पंजाबी जोश शाश्वत और अजेय है। उसकी आहत भावनाओ में (जलिया वाला बाग काण्ड) जीवन ज्योति जलाने, वीरता की अग्नि को प्रज्वलित रखने, आशा के प्रकाश–स्तम्भ को पुनः स्थापित करने और पजाब के राजनैतिक जीवन को व्यवस्थित करने के लिये उन्होने एक नेता की खोज कर ली है और वह है स्वामी श्रद्धानन्द। जिन्होने भारत माता की वेदी और सत्य पर अपना जीवन न्यौछावर किया हुआ है। यह बात उस रीति–नीति से सुस्पष्ट है जो उन्होने वेद की शिक्षाओं पर दृढ रहने और उनका अनुसरण करने मे दर्शायी है।

वेद ही उनका प्रकाश–स्तम्भ और मार्गदर्शक है, जिन्होने एक बार भारत को सब देशों का सिरमौर बनाया था और जिस काल को हम हर्ष और गर्व के साथ याद करते हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द जी सच्चाई, साहस और स्वतन्त्र निर्णय शक्ति के प्रतीक हैं। वे बात बनाने वाले नहीं, अपितु काम करने वाले कार्यकर्ता हैं। पब्लिक प्लेटफार्म से भाषण देने, बढिया राजनैतिक भाषण देने या प्रकाशित हुई सम्मतियो से ही वे सन्तुष्ट नहीं रहते।

शिक्षा के क्षेत्र मे उनका गुरुकुल (कागडी) उनकी रचनात्मक प्रवृत्ति का जीता–जागता सबूत है। जिसकी स्थापना और सचालन पर उन्होने अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया।"

स्वागत समिति की प्रथम बैठक मे स्वामी जी को प्रधान पद की कठिनाईयो का आभास हुआ। ये कठिनाईयां भीतरी और बाहरी दोनो प्रकार की थी। भीतरी कठिनाईयों में से एक कठिनाई यह थी, स्वागत समिति के कुछ सदस्यो ने स्वामी जी के काम मे बाधा डालने का प्रयास किया। बाहरी कठिनाई– सरकारी हस्तक्षेप का भय था। काग्रेस स्थल के लिए किसी उपयुक्त स्थान का चुनाव करना सबसे कठिन कार्य था। स्वामी जी की दूरदृष्टि नगर ने एक मील दूर कृषि की भूमि किराये पर लेकर इस समस्या का समाधान कर लिया। अभी स्वामी जी को अकल्पित प्राकृतिक आपदा से भी जूझना शेष था। स्वामी जी के परिश्रम से जब विशाल पण्डाल और प्रतिनिधियों के ठहरने की व्यवस्था पूर्ण हो गई तो अचानक 24 दिसम्बर को ऐसी वर्षा हुई जैसी पिछले चालीस वर्षो मे कभी नहीं हुई थी। प्रतिनिधियो के ठहरने हेतु लगाई गई छोलदारिया पानी मे तैरने लगीं और सभा पण्डाल तालाब के समान हो गया। परन्तु विपरीत परिस्थितियो में निढाल होना स्वामी जी के स्वभाव मे नहीं था। स्वामी जी की एक अपील पर नगरवासियों ने प्रतिनिधियो के लिये अपने घरों

में स्थान दे दिया। पण्डाल के लिए स्वामी जी ने [illegible] अधिकारियों के सहयोग से जगह माग ली। इस प्रकार [illegible] उद्धार [illegible]

26 दिसम्बर का अधिवेशन आरम्भ होने पर स्वामी जी ने जो स्वागत भाषण दिया वह इस प्रकार था–

"ओउम् त्व हि नः पिता वसो त्व माता शतक्रतो बभूविथ।

अथाते सुम्नीमहे[illegible]।।

हे, सारी सृष्टि के आधार! तुम्हीं हमारे रक्षक हो– तुम्हीं हमें मान दिलाने वाले हो। इसलिए हम सब तुम्हें इस पवित्र यज्ञ में आह्वान करते हैं। हे शासकों के परम शासक और जातियों के परम सहायक! तुम आज इस जातीय भवन में अपने दृढ़ न्याय, असीम प्रेम का प्रसार करो जिससे प्रवाहित होकर सब बहिनें और भाई, चेतन और अचेतन– दोनों प्रकार के जगत् के डर से मुक्त हो कर, न्याय और प्रेम की आहुतियों से इस जातीय यज्ञ को पूर्ण करें।

भारत माता की पुत्रियों और पुत्रों!

स्वागतकारिणी सभा अमृतसर की ओर से मैं आप सबका हार्दिक स्वागत करता हू। जिन्होंने दिल्ली नगर मे पहुचकर इस जातीय महासभा के रत्नों को निमन्त्रित किया था, जिन्होंने आप सबके स्वागत के लिए देहली से लौटते ही असली काम शुरू कर दिया, जो मातृ–भक्ति के प्रेम–मद से उन्मत्त होकर दिन रात जातीय सेवा की मस्ती मे झूमते फिरते थे, जिन्होंने गगा और यमुना के सगम की बुनियाद गत रामनवमी के दिन रखकर सिख गुरुओं से पवित्र किए हुए इस नगर को सचमुच अमृत–सरोवर बना दिया था– उनको भयभीत स्वार्थ तथा अन्याय की शक्तियों ने गत 10 अप्रैल को गुम कर दिया। अपने नेताओं का बिछोडा एक ओर, और जिस देवता की पूजा के लिए सत्याग्रह का मानसिक व्रत धारण किया था, उसकी गिरफ्तारी दूसरी ओर–इन दोनो घटनाओं ने अमृतसर की व्याकुल जनता को अन्धा कर दिया। प्रजा अपनी पैत्रिक प्रथा के अनुसार सिर और पैर से नगी, अपनी मा–बाप हाकिम के पास, फरियाद को दौडी। परन्तु हाकिम को उसके अन्दर का भय कपा रहा था। वह मानता है कि उसने पहले से ही फौज इकट्ठी कर रखी थी और उसको हुक्म दे दिया था कि यदि भूलकर, उसे मा–बाप समझने वाली, प्रजा उसके मन्दिर की ओर चलने का यत्न करे तो, जैसे भी हो सके, उसे आगे बढने से रोका जाए। भोली निहत्थी प्रजा ने रूठे हुए बालक की तरह मारपीट कर आगे बढने का यत्न किया और प्रजा के प्रति सम्राट जार्ज पंचम के प्रतिनिधियो ने उसकी प्रजा को गोलियो से भून डाला। अपने निरपराधी सम्बन्धियो को घायल होते हुए और उनमें से बहुतों को रणभूमि में बेजान पडे हुए देखकर, जनता मे आसुरी भाव का विकास हुआ। जिस लाडले मान के भाव से प्रेरित होकर चले थे, उसका उल्टा परिणाम देखकर भी जिन वीरों के हृदय नहीं डोले और जो फिर भी एक ओर मृत शरीरों और घायलों को उठाते हुए, दूसरी ओर जनता से काम लेने की प्रेरणा करते रहे, उन पर अब तक सत्यपरायण देवताओं के मानसिक भावो की पुष्प–वर्षा हो रही है। परन्तु साधारण पुरुष क्रोधाग्नि में दग्ध होकर बुद्धिहीन हो गए। उस तामसी अवस्था मे जो पिशाचत्व के काम कुछ भारत के कुपुत्रों से हुए वह जाति के उज्ज्वल मुख पर एक बदनुमा धब्बा है और उसी के लिए सारे पंजाब को प्रायश्चित करना पड़ा है। यदि गगा और यमुना के सगम के साथ सरस्वती भी उनमे आ मिलती तो पूर्ण पवित्र प्रयाग बन जाता, और हिन्दू, मुसलमान और ईसाई जन समाजों के मेल से भारत से दुई दूर होकर ब्रिटिश साम्राज्य की जड़े पाताल मे पहुच, संसार में सचमुच एक चक्रवर्ती राज्य की बुनियाद डाल देती। परन्तु जहां स्वार्थ का चारों ओर राज्य है, वहा इस गिरे हुए समय मे निःस्वार्थ क्षमता का प्रकाश कैसे होता! नियम के नाम पर विप्लव और

शान्ति के नाम पर अत्याचार का राज्य फैल गया। मार्शल–ला ने – नर, नारी, बाल, वृद्ध और युवा सबको बेजान कर दिया। वैशाख की पवित्र संक्रान्ति के दिन जो रक्त से भूमि लाल हुई उसके श्रवण मात्र से सबके छक्के छूट गए। हां, उस दिन मार्शल–लॉ की विजय हुई और शान्ति फैल गई, परन्तु वह श्मशान–भूमि और कब्रिस्तान की शान्ति थी–वह मौत की शान्ति थी।

इस शान्ति का निष्कण्टक राज उस समय तक बराबर रहा जब 29 जून सन् 1919 की दोपहर के समय मैंने, भारत के दो प्रसिद्ध नेताओं और पंजाब के अपनाए हुए संरक्षकों के साथ, अमृत नाम्नी–परन्तु विष से मूर्छित–नगरी में प्रवेश किया मेरा मतलब पूज्य मालवीय जी तथा माननीय पं० मोती लाल नेहरु जी से है।

जिस दिन से इन दोनों वीरों ने जलियांवाला बाग नामी पवित्र तीर्थ की प्रदक्षिणा करके धैर्य और निर्भयता का अमर मंत्र फूकना शुरु किया, उसी दिन से अमृतसर में जीवन का संचार हो चला और इस जागृति का पहला परिणाम यह हुआ कि मूर्छा से जागते ही जनता ने अपने नेताओं की प्रतिज्ञा को याद करके कहना आरम्भ किया कि कांग्रेस का आगामी अधिवेशन अमृतसर में ही होना चाहिए। किस प्रकार यह शब्द सारे शहर में गूंज उठा, किस प्रकार इस आवाज की गूँज दबाने की कोशिश हुई किस प्रकार 'दिन–दिन चढे संवाया गूढा रग' की उक्ति के अनुसार जनता की दृढता को कामयाबी हुई, इस पर कुछ भी कहने की जरूरत नहीं। 'जिन ढूँढा तिन पाइया' अमृतसर की जनता की मुराद आज पूरी हुई और मुझे भारत की पूज्या देवियो और माताओं पर न्यौछावर होने वाले पुत्रों का स्वागत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इस जातीय महासभा के इतिहास में शायद यह पहला ही अवसर है जब संन्यासी शानदार वेदी पर खड़ा दिखाई देता है। जिस दिन से स्वागतकारिणी सभा का सभापति चुना गया, उसी दिन से यह प्रश्न हो रहा है कि– 'क्या संन्यासी को राजनैतिक आंदोलन मे भाग लेना चाहिए?' मेरा उत्तर बहुत सीधा है। जिस दिन से मैंने संन्यासाश्रम में प्रवेश किया उसी दिन से सारे ससार को एक परिवार समझने, सारे ससार के धन को एक आख से देखने और लोक लज्जा को छोड़कर लोक सेवा में दत्तचित्त होने का व्रत धारण कर लिया। मैं राजनैतिक आदोलन के लिए नहीं प्रत्युत किसी और कर्त्तव्य के पालन के लिए आज इस वेदी पर खडा हू। पहला कारण मेरे इस वेदी पर आने का यह है कि पजाब के जिन रत्नों ने भारत माता के उज्ज्वल माथे को दाग से बचाने के लिए फासी और जन्म कैद को तुच्छ समझा और निरपराध होते हुए रहम की दर्खास्त को पाप समझकर कैदखाने को काशी और काबे का रुतबा दिलाया– हरिकिशन लाल, दूनीचंद, रामभज दत्त, किचलू, सत्यपाल– उन्होंने भरी सभा से मुझे आज्ञा भेजी कि मैं स्वागतकारिणी का सभापति बनू। फिर मैंने जेल के खूनी पिंजरो में श्रद्धा सम्पन्न चौधरी बुग्गा और वीर महाशय रत्तो–से सिंह–पुरुषों के मुख से भी यही ध्वनि सुनी। परन्तु जब इनमें से कुछ धर्मवीरों की धर्मपत्नियों ने कहा– 'बंदीगृह में गिरे हुए हमारे पति महाशयों की आत्मा तभी शान्त होगी जब कांग्रेस का महोत्सव न ढले, और भिक्षु सन्यासी से उल्टी भिक्षा मागी तो उसे मातृ शक्ति के आगे सिर झुकाना पड़ा।

यह पहला कारण मेरे इस वेदी पर आने का है। दूसरा कारण मेरा आश्रम और उसका कर्त्तव्य है। सनातन वैदिक धर्म की रक्षा के लिए जो सम्प्रदाय (सनातन धर्म समाज, आर्य समाज और सभा समाजें) भारतवर्ष में स्थापित है, उनका प्रश्न है कि संन्यासी का राजनीति से क्या सम्बन्ध ? मेरा उत्तर 'वेद मुझे आज्ञा देता है कि सौ बरसों की उम्र तक जीने की आशा कर्म करते हुए ही करूं, परन्तु शर्त यह है कि उन कर्मो में फंसू नहीं।

कवि तुलसीदास ने सच कहा है– **'करमप्रधान विश्व करि राखा'**- प्रत्येक को अपना धर्म

पालन करना है। आज तक यह 'भारत जातीय महासभा' साधारण पोलिटिकल काम करती रही है, परन्तु आज इसे धर्म के शिखर पर उठाना पडेगा, और उसके साथ ही हे, बहिनों और भाइयो! हम सबको भी अपनी दृष्टि ऊँची करनी पडेगी। पजाब का तप सहस्र मुख से यही उपदेश दे रहा है कि मानवी मूल अधिकारो की प्राप्ति के लिए बडे गभीर तप की आवश्यकता है।

अब नीतियो और राजीनामो और सौदा—सुलुफ का जमाना नहीं रहा, अब निर्भयता से सत्य पर दृढ होने का समय आ गया है। सन्यासी की सम्प्रदायो से—चाहे वे धार्मिक हो या राजनैतिक—क्या काम? उसने तो सारे ससार की सेवा का बीडा उठाया है— उसका किसी सम्प्रदाय के साथ क्या सम्बन्ध! शायद इसी विचार से प्रेरित होकर मेरे हस्बेहाल फारसी कवि ने कहा है— 'न हिन्दू अम् न मुसलमान न गब्रियम न यहूद'

मैं न 'हिन्दू' हू न 'मुसलमां', न 'ईसाई' हू और न 'यहूदी'। मैं न 'मॉडरेट' हू, न 'एक्स्ट्रीमिस्ट', न 'होमरूलर' हूं और न किसी विशेष पक्ष का समर्थक हू। लेकिन, शायर के दूसरे मिसरे के साथ मैं सहमत नहीं। मैं नहीं कहता कि— 'बहैरतम् कि संरजामे माचिरखाहद बूद'।

मैं विस्मित नहीं हू कि मेरा अन्त क्या होगा। मेरा आनन्द श्रद्धा मे है और इसलिए मै जानता हू कि भारत माता की सन्तान के साथ मेरा भविष्य भी उत्तम ही होगा।

एक राजनैतिक बुद्धिमान् ने मुझे सम्मति दी है कि मैं रिलीजस और सोशल कामो मे लगा रहू और पोलिटिकल कामो मे दखल न दू। उनके लिए मेरा उत्तर यह है कि जिस समय पजाब की भूमि मे आते हुए 'परिन्दो के भी पर जलते' थे, उस समय सन्यासी ने अपना कर्त्तव्य समझा कि यहा की मुरझाई हुई वाटिका को प्रेम जल से सींचने के काम मे आपके राजनैतिक नेताओ के कन्धे से कन्धा जोड दे। परन्तु आज जब देश के रत्नो ने एक स्वर से पजाब को अपना लिया है, तब मैं जाति के अमीनो को उनकी अमानत सौंपकर अपने—आपको कृतकृत्य समझता हू।

बहिनो और भाइयो! मैं पजाब की ओर से साधारणतया और अमृतसर की प्रजा की ओर से विशेषतः आप सब का स्वागत करता हूं। मैं जानता हूँ कि आपकी सेवा हम यथार्थ रूप से नहीं कर सकते। इस नगर को धनहीन, सम्पत्तिहीन, बलहीन और उत्साहहीन बनाने मे मार्शल लॉ ने कुछ कसर नहीं छोडी। परन्तु एक भाव है जिसे मार्शल लॉ का भयानक अत्याचार भी दबा नहीं सका। वह है मातृभूमि का प्रेम और माता की सन्तान के साथ सच्चा अनुराग और वही भाव मैं आपको भेट करता हूँ। इस भाव मे ऐसी वृद्धि हुई है कि यदि हम उसके लिए मार्शल लॉ के सचालक श्रीमान् सरमाईकल ओडवायर और उनके हाथ के दोनो हथियारो— अर्थात् जनरल डायर और कर्नल फ्रेक जानसन का हार्दिक धन्यवाद करे तो अनुचित नहीं है और शायद कुछ व्यक्तियो ने इसी भाव को लक्ष्य मे रखकर कर्नल फ्रेक जानसन के सामने 'मार्शल लॉ की जय' गुजाई हो। निष्कपट कर्नल फ्रेक और मातृप्रेम के रग मे प्रजा को रग देने वाले जनरल डायर ने जो मार्शल लॉ की घुट्टियॉ पजाब को पिलाई हैं उनसे पजाब का जातीय जीवन पचास वर्षो के लिए मर तो क्या जाता उल्टा आधी शताब्दी का उल्लघन करके आज पजाब अपने आगे बढे हुए बगाली, मराठी, गुजराती, मद्रासी भाईयो के साथ कधे से कधा भिडाने को तैयार है। जिस पजाब प्रात मे राष्ट्रीयता और उसके अधिकारो की चर्चा पढे लिखो मे से भी केवल मुट्ठी भर आदमियो मे रह गई थी वहा आजकल गुमनाम से गुमनाम ग्राम मे भी जातीय महासभा के उद्देश्य और उसकी शक्ति को केवल पुरुष ही नहीं, स्त्रियां भी कुछ—कुछ समझने लग गई हैं। गत् 15 दिनो के अन्तर्गत मेरे पास ग्रामो से जो पत्र आए हैं और 24 जून, 1919 ईस्वी से अब तक जिन ग्रामीण बहनो और भाईयो से मेरी भेट हुई है उनकी काया पलट देखकर मुझे विश्वास हो गया कि जाति मे अब पूरी जागृति हो गई है।

इस समय जाति रूपी वीणा की सम्प्रदाय रूपी विविध तारे एक दूसरे से मिली हुई हैं और उनमे से एक ही स्वर निकल रहा है। इन स्वरों की एकता की बधाई मे क्या पोलिटिकल पार्टी बाजी के बेसुरे आलाप को न्यौछावर नहीं कर देना चाहिए? मॉडरेट, लिबरल्ज और एक्सट्रीमिस्ट रेडिकल्ज, महाराष्ट्र होम रूलर्ज और अडियार होम रूलर्ज तथा इनकी शाखाए–प्रतिशाखाए, एक ही लक्ष्य को सामने रखकर काम करने की दावेदार हैं। उनका एक मात्र उद्देश्य मातृभूमि को स्वतत्र करना और ससार के अन्तर्जातीय सगठन मे उसे माननीय बनाना बतलाया जाता है तब एक दूसरे से इतनी घृणा क्यो? अपनी कमजोरी मनुष्य स्वय नहीं देख सकता और जब दो पक्ष प्रत्यक्ष मे स्थापित हो कर विवाद आरम्भ हो जाए तब तो विचारो का पक्षपात स्वाभाविक है, परन्तु तीसरा निष्पक्ष दर्शक दोनों की कमजोरी को ठीक बतला सकता है। सच्चाई के प्रकट करने मे क्षमा प्रार्थना की आवश्यकता नहीं और इसलिए मैं अपनी सम्मति स्पष्ट कह देता हू।

इस समय के मतभेद का कारण भारत सचिव मिस्टर माण्टेगू की पेश की हुई सुधार–स्कीम समझी जाती है। नरम दल के महानुभाव कहते थे कि इसे स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाओ तो हम तुम सबके साथ शामिल होगे। तब प्रश्न होता कि क्या आप इतने ही संशोधन से सन्तुष्ट हैं? उत्तर मिलता था कि नहीं, परन्तु जितना मिले उसे स्वीकार करके और लेने के लिए हाथ फैलाना और बात है और मिले हुए को सर्वथा अस्वीकार करना और बात है। नरम दल की दृष्टि से यह उत्तर ठीक था, परन्तु अब गरम दल भी तो यही कहने लग गया है। अब तिलक महाराज भी तो यही कहते हैं कि जितना मिलता है उसे ग्रहण करो और शेष के लिए आन्दोलन जारी रखो। फिर मतभेद क्यो? उत्तर दोनो ओर से एक सा ही मिलता है। नरम कहते हैं– 'हम अपनी सम्मति से नहीं डिगे, गरमो ने अपनी सम्मति बदल दी है– वे हमारे समीप पहुँच गए हैं और इसलिए हमारी जीत स्वीकार करो'। गरम कहते हैं– 'नरम तो बिना ननुनच के सब–कुछ स्वीकार करने को तैयार थे, अब वे हमारी ओर उठे हैं, इसलिए उन्हे हार स्वीकार करनी चाहिए।' एक दूसरे की दलीले समाचार पत्रों में निकल चुकी है, उनको दोहराने की यहाँ आवश्यकता नहीं। बात सीधी यह है कि दोनों मे से कोई भी हार मानने को तैयार नहीं है। दोनो ही अपने स्थान मे डटे खडे हैं। नरम कहते हैं कि भारत–सचिव हमारी बुद्धिमत्ता पर मोहित हुए और हमारी माकूल महदूद तजवीजो से सहमत होकर उन्होने भारतवर्ष को कुछ अच्छे अधिकार दिए हैं। इसके उत्तर मे गरम कह सकते हैं कि यदि हम पूरे स्वराज की एकदम याचना न करते तो देश को इतना भी न मिलता जो अब मिला है। वे पजाबी की लोकोक्ति पेश कर सकते हैं कि 'मौत को पकडो तो जहम कबूल करता है।' परन्तु मिस्टर माण्टेगू एक तीसरी बात कह रहे हैं– 'हाउस ऑफ कामन्स' मे सुधार–स्कीम पर वक्तृता करते हुए उन्होने 4 दिसम्बर को मिस्टर स्पूर के उत्तर मे कहा कि न तो कामन्स भारत की शासन–पद्धति को हिन्दुस्तानी आन्दोलन के कारण बदल रहे हैं और ना ही वह विश्वास करते हैं कि यह आन्दोलन आगे जारी रहेगा। उन्होने यह भी कहा अर्थात् 'आन्दोलन से शक्ति के परिवर्तन मे शीघ्रता न होगी प्रत्युत देरी हो सकती है।'

तीन दल हैं और तीनो की बात एक–दूसरे को काटती है। परन्तु अपने–अपने ख्याल मे तीनों सच्चे हैं। नरम यदि सचिव माण्टेगू के प्रस्ताव का समर्थन करते तो उनके पास सुधार–स्कीम के विरोधियो के आक्षेपो का उत्तर देना कठिन हो जाता। परन्तु यह सच नहीं कि इस सुधार–स्कीम को एकदम से पास कराने के लिए 'काग्रेस की एक शिकायत आज के अधिवेशन से पहले दूर करना' ही मिस्टर बानरला ने बतलाया था। मिस्टर माण्टेगू भी सच्चे हैं क्योकि उन्होने जो कुछ ब्रिटिश पार्लियामेट से भारत को दिलवाया है उन्हीं के दृढ सकल्प का नतीजा है – भारत की नरम और गरम पार्टी तो उनकी शतरजी चालो के मोहरे मात्र थे।

जब यह हाल है तो लडाई काहे की? पुराने पठानो की तरह दोनो मूछो पर ताव दे रहे हैं और मातृभूमि के विरोधी उनकी खिल्ली उडा रहे हैं। यह घरू युद्ध कैसे दूर हो? सुधार–स्कीम अब विवादास्पद विषय नहीं रहा। नरमों का उसे स्वीकार करना और गरमो का उसे अस्वीकार करना–दोनों निरर्थक डीगे हैं। बुरी है वा भली पूर्ण है वा अपूर्ण–सुधार–स्कीम हम पर लागू हो चुकी है।

नरमो से तो इस पर कोई प्रश्न नहीं हो सकता, परन्तु मैं गरमो से पूछता हू कि आपके अस्वीकार करने के अर्थ क्या हैं? क्या आप इस पास हुए कानून का सर्वथा बहिष्कार करने को तैयार हो? क्या आप यत्न न करोगे कि लेजिस्लेटिव काउसिलो मे आपके चुने हुए, आपका पक्ष समर्थन करने वाले प्रतिनिधि बैठे? यदि सारी जाति, एकसम्मत होकर, इन मिले हुए अधिकारो की उपेक्षा करने को तैयार होती है, तब तो अस्वीकार करने के कुछ अर्थ भी हो सकते। परन्तु इस समय तो यह असम्भव है। तब झगडा कैसे तै हो? झगडा तै हो गया है क्योंकि लोकमान्य तिलक महाराज ने व्यवस्था दे दी है कि "जो मिला है उसे ले लो और शेष के लिए व्यवस्थित आन्दोलन जारी रक्खो।"

भारत मे राष्ट्रीयता के भाव के आदि सचारको मे से तिलक महाराज का ऊँचा दर्जा है। और कौन भारत का सपूत है जिसने बहादुर तिलक से बढकर माता की शान की रक्षा के लिए सहन किया है? क्या 'मातृ–सेवक–सेना' के सैनिक अपने बूढे सेनापति की व्यवस्था के आगे सिर न झुकाएगे?

अब रास्ता साफ हो गया। नरम और गरम दोनो मिले अधिकारो को लेने मे सहमत है। मतभेद इतना ही है कि इतना भी किसकी कृपा से मिला? मैं उस पक्ष की सेवा मे, जिसके हाथो मे इस समय काग्रेस की बागडोर है, एक निवेदन करता हू। आपकी शक्ति बडी है। बुद्धि और नीति का चाहे आपके कुछेक मॉडरेट लिबरल भाइयो ने ठेका ले रक्खा हो, लेकिन सस्था और बल मे आपका पाया इस समय ऊँचा है। सामने शत्रु नहीं है, एक ही माता के पुत्र आपके भाई हैं। उनमे से कुछ ऐसे पुराने योद्धा भी हैं जिन्होने माता की सेवा में बहुत कुछ सहन किया है। क्या स्वर्गवासी गोखले–मातृसेवा मे मुग्ध उसी चिन्ता मे प्राण देने वाले गोखले–को आप भुला सकते हो? और उस राजनैतिक सन्यासी के त्यागी उत्तराधिकारी साधु–स्वभाव श्रीनिवास शास्त्री की तुम उपेक्षा कर सकते हो? आज समय के फेर ने चाहे कुछ पलटा दे दिया हो, परन्तु क्या राजनैतिक आन्दोलन के प्रथम वीर सिपाही श्री सुरेन्द्रनाथ बदोपाध्याय का तुम तिरस्कार करोगे?

झगडा एक पल मे निबटता है, यदि एक सन्यासी का कहना मान लो। तुम ही मूँछे नीची कर लो। और जो कुछ मिला है उसके सभालने मे लग जाओ।

इस सम्बन्ध मे आपका एक कर्तव्य है जिसे मैं आपके सामने रखना चाहता हू यह सच है कि हमारी जाति को उसके अधिकारो से ब्रिटिश शासको ने मुद्दत तक वचित रक्खा, यह सच है कि इस देश के साथ कई बार विश्वासघात हुआ, यह सच है कि इस समय भी ब्रिटिश जाति के अन्दर ऐसे लोग हैं जिन्होने आपके पोलिटिकल अधिकारों को दबाने का ही नहीं बल्कि हमारे बचे–खुचे मानवी अधिकारो तक को छीनने का यत्न किया है, परन्तु क्या कुपात्रो की खुदगर्जी और बे–इनसाफी को देखकर सुपात्रो के धर्मभाव और न्याय को भूल जाना चाहिए? मिस्टर माण्टेगू ने इस समय वह काम किया है जो ससार के इतिहास मे सदा के लिए यादगार रहेगा। कहा जा रहा है कि मि माण्टेगू ने क्या किया है? किसी हद तक उन्होने अपना कर्तव्य पालन किया है और जो कुछ भी किया है अपने साम्राज्य की भलाई के ख्याल से किया है। तब उनका धन्यवाद करने की क्या जरूरत है?' मैं पूछता हू कि ससार मे कितने व्यक्ति है जो अपना कर्तव्य पालन करते हैं? क्या यह सच नहीं है कि आपमे से जितने पोलिटिकल अधिकार पाने के लिए अधिक शोर मचाते हैं, वे भारत के साढे छह करोड अन्याय से पीडित अपने भाइयो को अछूत समझकर उनसे घृणा का भाव दूर नहीं कर

रहे? और कितने हैं जो अपने उन दीन भाइयो को अपनाते हैं? यदि अपनी जाति के एक अन्त्यज को अपनाने के लिए आप 'मोहनदास कर्मचन्द गाधी' को देवता मान सकते हो तो घोर विरोधो का मुकाबिला करते हुए एक रसातल को गई हुई जाति को, किसी अश तक, उसके अधिकार दिलाने मे कृतकार्यता प्राप्त करने के उपलक्ष्य मे क्या आप मिस्टर माण्टेगू का वाणी से भी धन्यवाद न करेगे? और जिस ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ने अपने कर्तव्य को (चाहे वह किसी स्वार्थ के विचार से क्यो न हो) समझा है, क्या हम उसे साधुवाद न कहेगे? बहिनो और भाइयो ! भारत की प्राचीन सभ्यता के नाम पर मै आप सबसे अपील करता हू कि इस अपूर्व अवसर को हाथ से न जाने देना और कृतघ्नता का दाग माथे पर न आने देना।

परन्तु इस कृतज्ञता प्रकट करने का यह मतलब नहीं है कि आप अपने शेष अधिकारो के लिए आन्दोलन करना छोड दो। मिस्टर माण्टेगू के कृतज्ञ होते हुए भी इस अश मे उनसे मतभेद आवश्यक है। परन्तु एक बात मैं अवश्य कहूगा कि कहीं आन्दोलन मे फसकर मिले हुए अधिकारो का ही नाश न हो जाय। एक शायर का कलाम बिल्कुल हस्बे–हाल है–

धोने की 'रिफार्मर है जा बाकी, कपडे पै है जब तलक कि धब्बा बाकी।
धो शौक से धब्बे को पै इतना न रगड, धब्बा रहे कपडे पै न कपडा बाकी।

अब मै उस घटना की ओर आता हू जो आपको स्वदेश के दूर से दूर कोने से खींच कर लाई। देश जिस परीक्षा मे से गुजरा है उसे यहा दोहराने की आवश्यकता नहीं। जिस घटना ने पचनद की पुरानी पाक सरजमीन से चगेज खा और नादिरशाह के अत्याचारो को विस्मरण करा दिया, उसकी बुनियाद भारत की असली और बनावटी–दोनो प्रकार की राजधानी देहली नगर मे रखी गई थी। 30 मार्च सन् 1919 ई के तीसरे पहर पहली गोली देहली मे चली और उस समय पता लगा कि जिस देश को बेजान समझा जाता है उसमे कितनी जान है। हण्टरकमेटी के आगे जो शहादत गुजरी है वह क्या जाहिर करती है? उससे मालूम होता है कि इस सदियो से सोई हुई जाति के अन्दर सच्ची वीरता का भाव भी सोया हुआ ही था, मर नहीं गया था। भारतवर्ष के पुनरूद्धार के लिए पहला रक्त पाण्डवो की पुरानी राजधानी की भूमि पर गिरा और उस रक्त ने भारतमाता के प्रधान पुत्रो (अर्थात् हिन्दुओ और मुसलमानो) के सदियो से जुदा हुए दिलो को जोड दिया। 31 मार्च को पहला जनाजा पचास हजार मातमदारो के साथ कब्रिस्तान की तरफ चला और वहा शहीद की लाश पर मुस्लिम ईमान, हिन्दू मुस्लिम एकता के शैदा, इस समय के मेरे सबसे प्यारे भाई, हकीम अजमल खा से मेरी भेट हुई। मुसलमान शहीद का जनाजा और हिन्दू बराबर कन्धा दे रहे थे। यह तो एक विचित्र दृश्य था। शहीद की कब्र पर उसके खून के पबन्द से, बरसो के बिछुडे हुए दिल एक–दूसरे से जुड गए।

फिर जब शाम को दो जनाजे कब्रिस्तान की ओर चलते करके मैं तीन अर्थियो के साथ श्मशान–भूमि मे पहुचा और दाह कर्म के पीछे परमेश्वर के दरबार मे शान्ति के लिए प्रार्थना की और हिन्दू–मुसलमानो को इस ईश्वरदत्त एकता को स्थिर रखने के लिए अपील की तो एक सिख भाई ने कहा– 'हम पर क्यो जुल्म करते हो? सिख भी कौम के साथ है।' अब हजारो के मजमे में उस वक्त सैकडो आखो से प्रेम की जलधारा बह रही थी। और जब मैं श्मशान भूमि से चल दिया तो (पूर्वीय तपस्वी महात्मा मसीह के सच्चे चेले और भारत माता के प्रेम–पुत्र, मेरे प्रिय भाई महाशय चार्ली ऐण्ड्रयूज के धर्मभ्राता) प्रिंसीपल 'सुशील कुमार रुद्र' मुझे आकर गले से मिले और कहा– 'मातृभूमि के निरपराध पुत्रो पर अत्याचार देख नहीं सकता। मेरा हृदय जाति के साथ है और प्रत्येक सच्चा ईसाई आपके साथ है।' परमेश्वर इस मरुभूमि मे बहुत से ऐसे रागद्वेषरूपी दुष्ट व्यवसनो के दलन करने वाले रुद्र उत्पन्न करे यह मेरी हार्दिक याचना है।

4 अप्रैल स. 1919 ई का दिन आया तब जामा मस्जिद देहली मे खुदा की शान दिखाई दी। उसके पश्चात 18 अप्रैल की रात तक (जब तक कि पुलिस का राज फिर से स्थापित न हुआ) दिल्ली नगर मे रामराज रहा। यह ठीक है कि 3 मार्च के प्रातःकाल से 18 अप्रैल की रात तक एक ताला नहीं टूटा, एक मारपीट नहीं हुई, एक जेब नहीं कतरी गई—और तो और, जुएखाने बन्द रहे, शराबखानों मे कोई विरला आदमी ही दिखाई देता था और प्रसिद्ध गुण्डो ने भी देवियो को मा, बहिन, और बेटी समझकर उनको अभयदान दे छोडा था।

देहली से यह प्रेम–मयी वायु सारे पजाब मे फैल गई। एकता और मिलाप की लहर बिजली की तरह सारे देश मे घूम गई। मस्जिद और मन्दिर मे कुछ भेद न रहा। ऐसे समय मे सच्चाई और सहनशीलता का सन्देश देने के लिए महात्मा गाधी देहली की ओर चले। जिन हुकूमत के नशे मे चूर मनुष्यों का जीवन ही स्वार्थ का स्वरूप हो, उनकी समझ मे न सत्य का गौरव आ सकता है और न ही वे सत्याग्रह की शान को समझ सकते हैं। स्वार्थ का इन्द्रासन डावाडोल हो गया। इस दुबले, बीमार, मुनहनी जिस्म के अन्दरवाले आत्मा के तेज को दुनियादार स्वार्थ सहन न कर सका। जिन बहादुर ब्रिटिश जनरलो और गम्भीर नीतिमान् ब्रिटिश शासकों ने एक तिहाई दुनिया को जीतकर जर्मन साम्राज्य की शक्ति खाक में मिला दी थी, उसके योद्धा इस नई शक्ति के उद्भव से दहल गए, और उसी का नतीजा पजाब का घोर उपद्रव है। अराजकता का राज हो गया, मनुष्य की जान का कुछ मूल्य न रहा, जेलखाने भर दिए गए, बोलना अपराध हो गया, नगे चूतडो पर कोडे खाकर चिल्लाना पाप हो गया, इज्जतदारो ने खयाली इज्जत को बचाने के लिए पुलिस रूपी यमदूतो के घर भर दिए और साध्वी सतियो को अपनी रक्षा कठिन हो गई। जलियावाले बाग की घटना को सामने लाओ और जनरल डायर के कथन को याद करोः

'हा, मैं समझता हू कि बिना गोली चलाए भी शायद मैं उनको मुन्तशिर कर सकता था।' इस पर प्रश्न हुआ कि फिर आपने ऐसा क्यो न किया? उत्तर मिला– 'वे लौट आते और मेरी हँसी उडाते और मैं समझता हू कि मैं बेवकूफ बनता।' शायद इसी मौके के लिए शायर ने कहा था– 'किसी की जान गई आपकी अदा ठहरी'। एक बहादुर ब्रिटिश जनरल की शान पर सैकडो युवा, बूढे और बालको के सीस चढ जाएं तो क्या परवाह है, उसकी शान मे फर्क न आना चाहिए। उन 11 से 15 वर्ष की विधवाओ का चित्र अपने सामने लाइए जिनके पति सूली पर चढे या भून डाले गए और जिनके उदासीन मुखों के दर्शन मात्र ने मुझे, नेहरु जी और मालवीय जी को आठ–आठ आंसू रुलाया। एक युवक के नगे चूतडो पर बैतो की मार का हाल सुनाकर एक वृद्ध ऐसा रोया कि उसकी घिग्घी बँध गई। सिह–पुरूष चौधरी बुग्गा की वीर रमणी का एक गोरे के हाथ से खींचकर मकान से लाया जाना एक घटना है।

मैंने इन घटनाओ का स्मरण आपके हृदयो में शोक और घृणा का भाव उभारने के लिए नहीं दिलाया। घृणा किससे दिलाऊँ? क्या ब्रिटिश जाति से जिसने रिपन, ब्राइट, फासेट, ब्रैडला, वेडरबर्न, इस कांग्रेस के पिता ह्यूम काटन और उनके बीसियो सहकारियों को उत्पन्न किया और इस गिरी हुई जाति को उठाने में सहायता देते हुए ही समाप्त हुए ? क्सर उस जाति से जिसने हार्डिग और मॉर्ले, और माण्टेगू को जन्म दिया, जिनसे आगे भी बहुत–सी सहायता मिलने की आशा है? परन्तु स्वार्थ के सौदे को छोडकर मैं पूछता हू कि जिस जाति ने देवी वसन्ती और हार्नीमेन, बुड्राफ और इनके बीसियो साथियों को उत्पन्न किया और श्रद्धा–सम्पन्न सरल हृदय ऐण्ड्रूज को भारत माता की गोद में दे दिया–उस ब्रिटिश जाति से घृणा दिलाने के लिए मैंने आपकी स्मरण शक्ति को नहीं प्रेरित किया है और न मैं आपको व्यक्तियों से घृणा दिलाना चाहता हू। व्यक्ति सब हमारे भाई है, उनमें जो दोष घुस जाते हैं वे ही हमारे शत्रु हैं। ओडबायर और डायर "जानसन" और ओब्रायन में सब

हमारे ही तो भाई हैं। एक पिता की तो सब सन्तान हैं। उनके अन्दर जो क्रोध और असाधुता के भाव हैं वे ही हमारे शत्रु हैं। परन्तु क्या उन शत्रुओ पर घृणा और क्रोध और "कीने" की सहायता से हम विजय पा सकेगे? इसका एक कवि ने ठीक उत्तर दिया है–

अक्रोधेन जयेत्क्रोध, असाधु साधुना जयेत्।
जयेत्कदर्य दानेन, जयेत्सत्येन चानृतं।।

'क्रोध को हम शान्ति से जीते, असाधुता को साधु–भाव से, कंजूसी को दान से और झूठ को सच्चाई से जीतने की आशा रखें।' जातियों की परस्पर की घृणा ने तो ससार के नाश की बुनियाद रखी है– उस घृणा का मैं समर्थक नहीं। न मैंने आपको शोकातुर करने के लिए इन घटनाओ का वर्णन किया है। मेरा मतलब केवल यह बतलाने का है कि जिस वेदना मे से गुजरने का पजाब को सौभाग्य प्राप्त हुआ है उससे हम सबको क्या शिक्षा मिलती है।

इस वेदना का प्रथम फल हिन्दू–मुसलमानों का ईश्वरदत्त मिलाप है जिसे स्थिर रखना जाति का प्रथम कर्तव्य है। इस मिलाप को स्थिर रखने के लिए दिलों को तीसरो के द्वेष से भी पाक रखना चाहिए। हिन्दु–मुसलमानो की एकता के स्थान मे हिन्दोस्तानी मात्र के अन्दर एकता उत्पन्न करके ससार को अपनाना इस समय का मुख्य कर्तव्य है।

दूसरा फल इस वेदना का यह है कि जाति को तप का गौरव मालूम हो गया। मार्शल–लॉ के दिनों मे पता लगा कि पोलिटिकल अधिकारो का शोर मचानेवाले यदि चरित्रहीन हों तो वे देश को रसातल मे ले जाते हैं। इसलिए सबसे बढकर काम चरित्र–सगठन का है जो जाति को अपने हाथ मे लेना चाहिए।

तीसरा फल यह हुआ कि जाति को व्यवस्था–बद्ध आन्दोलन के प्रभाव का पता लग गया। जहा भी नेता बुद्धिमान, सहनशील और सत्य–परायण थे और जनता ने उनकी आज्ञाओं का पालन किया, उन स्थानों मे बडा भारी बचाव हुआ और शीघ्र शान्ति स्थापित हो गई। सबसे बडा लाभ यह हुआ कि सहनशक्ति का गौरव प्रत्यक्ष हो गया। सबसे बढकर सहनशक्ति का प्रकाश जलियांवाले बाग मे हुआ। इस वृक्ष–पुष्प–फल–हीन (किन्तु अमर) वाटिका मे युवा पुरुषो ने ही नहीं, बल्कि बूढो और बालको तक ने सत्य पर आरूढ होकर घातक गोली की वर्षा को फूलों की वर्षा समझा। इस स्थान की 'जलन' को हिन्दू–मुसलमान और सिख वीर शहीदो के लहू ने मिलकर शान्त कर दिया है। यह भूमि अब 'अमर–वाटिका' के नाम से प्रसिद्ध होगी क्योंकि इस पवित्र भूमि में जो मरे वे स्वयं अमर हो गए और हम सबको और आनेवाली नस्लो को अमृत–नगर मे पहुचने का सीधा रास्ता दिखा गए।

बहिनो और भाइयो! पश्चिमी परिभाषा मे 'पोलिटिकलमैन' जिसे कहते हैं, वह मैं नहीं हू। अपने पोलिटिकल अधिकार लेने का जो आधुनिक मार्ग है उसका मुझे अनुभव नहीं और उसमे मेरा दखल देना धृष्टता मात्र होगा। कितना, किस दर्जे का, किस क्रम से स्वराज्य मिलना चाहिए और किस प्रकार उसके लिए यत्न करना चाहिए, यह देश के राजनैतिक नेता ही जानते हैं, इसलिए इसका विचार मैं उन्हीं पर छोडता हू। और इस काम के लिए मैं मुनासिब साधन उन विविध राजनैतिक सभाओं को समझता हू जो इस समय, कई कारणो से स्थापित हो चुकी है और जिनके नेता उनको दिनों तक उन्नत करने में लगे हुए हैं। परन्तु इस जातीय महासभा के सामने मैं कुछ अपने विचार रखना चाहता हू जो मेरे क्रियात्मक अनुभव का निचोड हैं।

इस जातीय महासभा का प्रधान काम अब तक यह रहा है कि स्वदेश के पोलिटिकल अधिकारो को विदेशी गवर्नमेण्ट से प्राप्त करने के लिए रेज़ॉल्यूशन मात्र पास करे, परन्तु जहां एक

ओर उन पास किए प्रस्तावो (Resolutions) को अमली जामा पहिनाने के लिए बहुत कम यत्न हुआ है वहा कौम की असली बुनियाद डालने और उस कौम को मिलने वाले अधिकारो को पचाने के योग्य बनाने का बहुत कम क्या, इस जातीय महासभा की तरफ से कुछ भी यत्न नहीं हुआ। स्वराज्य प्राप्त करके उसे पचाने के लिए पहली जरूरत यह है कि कौम का एक-एक बच्चा ऐसी तालीम हासिल कर सके जिससे उसकी आत्मा दृढ होकर उसके अपने शरीर, इन्द्रियो और मन का मालिक, उनको वश मे करने वाला बन सके। यह तब हो सकेगा जब एक ओर जातीय शिक्षा-पद्धति बनाकर कौम की तालीम कौम के हाथो मे हो जाए और दूसरी ओर जाति के माता और पिता अपने शरीरो, इद्रियो और मनो को शुद्ध करके अपनी सन्तान के सामने, पैरवी करने के लिए उत्तम मिसाल रखे। मैंने देश की आचार तथा समाज-सम्बन्धी सेवा करते हुए गत 26 वर्षो मे अनुभव किया है कि जहा प्रत्येक शिक्षित पुरुष कालिज से निकलते समय देश और धर्म-सेवा का मानसिक व्रत धारण करके निकलता है वहा परीक्षा के समय एक हजार मे से शायद ही एक साबितकदम रहता हो। ऐसे हिन्द के देशभक्त उगलियो पर गिने जा सकते हैं। जो विदेशी शासको से प्रलोभित किये जाने पर भी देश के हित के लिए उपाधि (Title) रूपी सुनहरी जजीरो को तोड के फेक दे। वाइसराय की अनुचित धमकी के उत्तर मे 'सर' की उपाधि को सिर से उतार के फेक देने वाले डाक्टर सुब्रह्मण्यम-से ब्राह्मण देश मे कितने हैं? अपनी जाति पर अत्याचार करने वाले पिशाच-भाव का जिस गवर्नमेण्ट की तरफ से इजहार हुआ, जिस गवर्नमेण्ट के चाकरो ने स्वजाति के गौरव को नष्ट करने में कुछ कसर न छोडी, उसकी दी हुई उपाधि को एक दिन के लिए भी धारण किए रखना पाप समझने वाले भारत के सूर्य, कवि रवीन्द्रनाथ से कितने देवता हैं? और सच्चे राजधर्म का पालन करने वाले, मनुष्य और पशु के भय से मुक्त, वैदिक निर्भयता के उपदेश पर अमल करने वाले, स्वदेश को पद दलित करनेवाले शासको की श्रेणी को एकदम छोड देनेवाले वीर शकर नायर से सिहपुरूष कितने हैं? देवियो और भारत माता के सुपुत्रो! यदि जाति को स्वतत्र देखना चाहते हो तो स्वय सदाचार की मूर्ति बनकर अपनी सन्तान के सदाचार की बुनियाद रख दो। अब सदाचारी, ब्रह्मचारी, शिक्षक हो, और कौमी हो शिक्षा-पद्धति (National Scheme of Education) तब ही कौम की जरूरतो को पूरा करने वाले नौजवान निकलेगे, नहीं तो इसी तरह आपकी सन्तान विदेशी विचारो और विदेशी सभ्यता की गुलाम निकलती रहेगी।

परन्तु यह पहली जरूरत पूरी होना कठिन है जब तक कि कौम की बुनियाद न पड ले। मैं इण्डियन नेशनल काग्रेस की वेदी पर खडा हू और इसलिए शायद यह कहना सिडीशन समझा जाए कि 30 मार्च सन् 1919 से पहले तक कौमो की बुनियाद नहीं पडी थी। परन्तु मैंने, और जिन निर्भय देश सेवक देवताओ का मैं साथी हू उन्होने मशीनगनो (Machine Guns) और हवाई जहाजो (Aeroplanes) की मालिक गवर्नमेंट की धमकी पर भी सच को कभी नहीं दबाया तब आप दयालु बहिनो और भाइयो ! मुझे सत्य के प्रकाश करने मे क्या सन्देह हो सकता है ! मेरा मन्तव्य है कि 30 मार्च, 1919 ई तक 'नेशन' का नाम ही नाम था, उसकी बुनियाद नहीं रखी थी। जो काम हिन्दु मुसलमानो के समझदार नेताओ की 34 वर्षो की मेहनत पूरा न कर सकी उसकी बुनियाद, परमेश्वर की कृपा से, देहली नगर मे 30 मार्च की शाम को रखी गई और 13 अप्रैल की शाम को जब जलियावाले बाग मे हिन्दू, मुसलमान और सिख, बाल, युवा और वृद्धो का रक्त मिलकर बहा-उस समय जातीयता के महल की बुनियादे भरी जाकर दृढ हो गई। अब कसर केवल एक है जिसे निकाल डालिए।

लण्डन नगर मे भारत की रिफार्म स्कीम कमेटी के सामने 'ईसाई मुक्ति फौज' के जनरल बूथ टकर (Booth-Tucker) साहब ने कहा था कि भारत के साढे छ करोड अछूतो को विशेष अधिकार मिलने चाहिए और उसके लिए हेतु दिया था-- "**Because they are ancher-sheets of the** *Britsh Government*"

इन शब्दो पर गहरा विचार कीजिए और सोचिये कि किस प्रकार आपके साढे छ करोड भाई–आपके जिगर के टुकडे जिन्हे काटकर परे फेक दिया–किस प्रकार भारतमाता के साढे छ करोड पुत्र एक विदेशी गवर्नमेण्ट रूपी जहाज के लगर बन सकते हैं । मैं आप सब बहिनो और भाइयो से एक याचना करूँगा कि इस पवित्र जातीय मन्दिर मे बैठे हुए अपने हृदयो को मातृभूमि के प्रेम–जाल से शुद्ध करके प्रतिज्ञा करो कि 'आपके वे साढे छ करोड हमारे लिए अछूत नहीं रहे, बल्कि हमारे बहिन और भाई है। उनकी पुत्रिया और उनके पुत्र हमारी पाठशालाओ मे पढेगे, उनके गृह–नर–नारी हमारी सभाओ मे सम्मिलित होगे और हमारे स्वतत्रता प्राप्ति के युद्ध मे वे हमारे कन्धे से कन्धा जोडेगे और हम सब एक–दूसरे का हाथ पकडे हुए ही अपने जातीय उद्देश्य को पूरा करेगे।' हे देवियो और सज्जन पुरुषो ! मुझे आशीर्वाद दो कि परमेश्वर की कृपा से मेरा यह सकल्प पूरा हो।

देहली नगर की जामा मस्जिद मे मैने वह दृश्य देखा था जिसका स्वप्न मुझे 26 वर्षो से आ रहा था और क्या आश्चर्य है कि परम पिता और जगत् की दयालु माता की कृपा से मुझे अपने दूसरे स्वप्न का दृश्य भी जागृत अवस्था मे देखना नसीब हो ! जब वह दिन आवेगा जब आपको अपने विदेशी खानपान, अपने विदेशी पहरावे और अपने विदेशी भोग जीवन (Life of Luxury) को तिलाजली देनी होगी और कोई छूआछूत नहीं बन सकेगी जो इस जातीय महासभा के सभ्यो को अपने नीचे महदूद कर सके। जाति के बिखरे हुए अग मिलाकर फिर से जातीय भवन खडा हो जाए और भारत सन्तान की शिक्षा जाति के ही अधिकार मे हो। यह जाति की स्वतन्त्रता का मूल तत्र है। आओ, बहिनो और भाइयो ! उस स्वर्गीय समय की एक झलक देखने के लिए परमेश्वर के पवित्र अदृश्य चरणो मे अपने हृदयरूपी सीस नवा दे। कौन परमेश्वर?

'काटा है हरिक जिगर मे खटका तेरा,
हलका है हरिक गोश मे खटका तेरा।
माना नही जिराने तुझको जाना है जरूर,
भटके हुए दिल मे ही खटका तेरा'।

"हे गोरे और काले के मालिक ! हे राव और रक के स्वामी ! इस जातीय महासभा मे अपनी सच्ची रोशनी का प्रकाश कर जिसकी सहायता से जाति के नेता सत्य का यथार्थ स्वरूप देखे और उसकी रोशनी मे अपने और बेगाने के साथ एक–सा न्याय का बर्ताव कर सके[61]।"

श्रद्धानन्द सन्यासी

जब हम उपर्युक्त भाषण की समीक्षा करने बैठते है, तो हमे यह भाषण पुराने अधिवेशनो की लीक से हट कर एक स्वतत्र सन्यासी के निष्पक्ष व्यक्तित्व की छाप का दस्तावेज प्रतीत होता है। यह हिन्दू धर्म के किसी भी सन्यासी का भगवे वेश मे काग्रेस मच से दिया गया प्रथम और अन्तिम भाषण था। इस भाषण के सम्बन्ध मे महात्मा गाधी ने लिखा था कि "श्रद्धानन्द का भाषण उच्चता, पवित्रता, गम्भीरता और सच्चाई का नमूना था।" स्वामी जी ने सत्याग्रह समिति से त्याग–पत्र भेजते हुए लिखा था कि वे कानूनो को वापिस लेने के लिए आध्यात्मिक साधना करेगे। स्वामी जी की आध्यात्मिक साधना करने के उपायो की झलक इस स्वागत भाषण मे स्पष्ट दिखाई देती है। जब स्वामी जी यह कहते है कि क्रोध को हम शान्ति से जीते, असाधुता को साधु–भाव से, कजूसी को दान से और झूठ को सच्चाई से जीतने की आशा रखे, तो यह आत्मा की उन्नति के लिए ही कहते है। स्वामी जी की मान्यता के अनुसार आध्यात्मिक उन्नति के लिये चारित्रिक शुद्धता अनिवार्य है। इसीलिए स्वामी जी ने अपने भाषण मे यह कहा कि चरित्र गठन के कार्य को जाति को अपने हाथ मे लेना चाहिए। स्वामी जी ने अपने त्याग–पत्र मे अपनी भावी योजनाओ मे शिक्षा की एक राष्ट्रीय प्रणाली को विकसित

करना भी बताया था। इस योजना का सकेत देते हुए उन्होने कहा कि स्वराज्य प्राप्त करके उसे पचाने के लिए पहली जरूरत यह है कि कौम का एक–एक बच्चा ऐसी तालीम हासिल कर सके जिससे उसकी आत्मा दृढ होकर उसके अपने शरीर, इन्द्रियो और मन का मालिक, उसको वश मे करने वाला बन सके। इसके अतिरिक्त अपने त्याग–पत्र मे स्वामी जी ने यह भावना भी प्रकट की थी कि उनके कार्यक्रमो मे हिन्दुस्तानी के विकास का सतत् प्रयास रहेगा। स्वामी जी का हिन्दुस्तानी से क्या अभिप्राय था, इसका निदर्शन स्वय स्वागत भाषण है। काग्रेस अधिवेशन के मच से हिन्दुस्तानी (हिन्दी) मे अपना भाषण पढकर काग्रेस के इतिहास मे नई शुरुआत की। इस अधिवेशन के स्वागत भाषण मे स्वामी जी की अछूतोद्धार की आर्यसमाजी आत्मा राजनीति का लबादा ओढकर प्रकट हुई। उन्होने लोगो से यह प्रतिज्ञा करने को कहा कि आपके साढे छ करोड भाई अछूत नहीं रहने चाहिये। काग्रेस के मच से एक स्वामी ने प्रथम बार अछूतोद्धार की समस्या को राष्ट्रीय समस्या के रूप मे प्रस्तुत करके राष्ट्र के नायको को इस विषय मे सोचने के लिये बाध्य किया। इस प्रकार स्वामी जी का स्वागत भाषण एक सन्यासी के व्यक्तित्व की आध्यात्मिक और सामाजिक छाप का बोलता चित्र है।

यह अधिवेशन काग्रेस के राजनैतिक इतिहास मे अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस अधिवेशन से पूर्व यह लगता था कि अमृतसर मे काग्रेस के सारे नेता एक हो जाएगे। परन्तु अधिवेशन से दो दिन पूर्व ब्रिटिश सरकार ने भारत सचिव माण्टेग्यू के द्वारा कुछ सुधार की स्कीम प्रस्तुत करवा दी। इस स्कीम मे यह कहा गया था कि सम्राट् भारतवासियो को स्वराज्य देना चाहते है, परन्तु यह कार्य शनै शनै किया जायेगा। सम्राट् की सद्भावना को दिखाने के लिये मार्शल–लॉ के कुछ कैदी छोड दिये गये। इस घोषणा का परिणाम यह हुआ कि काग्रेसी नेता तीन विचारधाराओ मे बट गए। गाधी जी सरकार से सहयोग करने के लिये तैयार हो गए। तिलक ने जितना सहयोग का हाथ सरकार बढाये उतना ही हम बढाये की नीति को उपयुक्त माना। तीसरी विचारधारा उन लोगो की थी जो सरकारी घोषणा को छलावा मानते थे। इसके मुखिया देशबन्धु दास थे। काग्रेस के इस मतभेद की चर्चा स्वामी जी ने अपने भाषण मे भी की थी। स्वामी जी ने अपने भाषण मे कहा था कि सुधार स्कीम अब विवादास्पद विषय नहीं रहा। नरमो का उसे स्वीकार करना और गरमो का उसे अस्वीकार करना दोनो निरर्थक डींगे हैं। बुरी है या भली, पूर्ण है या अपूर्ण सुधार स्कीम हम पर लागू हो चुकी है। यह झगडा कैसे खत्म हो, इसका निर्णय देते हुए स्वामी जी ने कहा– झगडा तै हो गया है क्योकि लोकमान्य तिलक महाराज ने व्यवस्था दे दी है कि "जो मिला है उसे ले लो और शेष के लिए व्यवस्थित आन्दोलन जारी रखो।" अत हमे सुधारो के सम्बन्ध मे धन्यवाद का प्रस्ताव पारित करना चाहिए। अन्त मे श्रीमति एनी बैसेन्ट, मदनमोहन मालवीय और स्वामी श्रद्धानन्द के प्रयासो से तीनो पक्षो मे समझौता हो गया और धन्यवाद का एक सर्वसम्मत प्रस्ताव पास हो गया।

इस अधिवेशन की एक और विशेषता की ओर हम पाठको का ध्यान आकर्षित करना चाहते है। इस अधिवेशन से यह प्रतीत हो रहा था कि 'तिलक युग' समाप्त हो रहा है। प्रस्ताव के सम्बन्ध मे तिलक द्वारा प्रकट किये गये निम्नलिखित उद्गार इसके प्रमाण है–

"मैं अब शारीरिक दृष्टि से वृद्ध हो गया हू। अब आवश्यक है कि देश का नेतृत्व दूसरे हाथो मे जाए। वह व्यक्ति जिसके हाथ मे नेतृत्व सम्भालने की शक्ति दिखाई देती है, वह गाधी है। इसी कारण मैंने गाधी का सशोधन स्वीकार कर लिया है। देश की बागडोर अब उसी के हाथ मे जाएगी।"

पुनः गुरुकुल के आचार्य और अधिष्ठाता

काग्रेस के अधिवेशन के उपरान्त भी लगभग एक महीने तक स्वामी जी पजाब प्रान्त की सेवा मे लगे रहे। अधिवेशन मे आपने जलियावाला बाग को 'अमर वाटिका' का नाम दिया था। आप

इस स्थल पर शहीदो का स्मारक बनवाकर इसे वस्तुत अमर वाटिका बनाना चाहते थे। परन्तु घटना चक्र आपको अमर वाटिका के स्थान पर 'अमन वाटिका' अर्थात् गुरुकुल कागडी को पुन सम्भालने की ओर ले चला। सन् 1920 के प्रारम्भिक महीनो मे गुरुकुल मे एक विस्फोटक स्थिति उत्पन्न हो गई। वार्षिक परीक्षाए आने का समय निकट था। पाठ्यक्रम पूरा न होने के कारण ब्रह्मचारियो ने एक मास के लिए वार्षिक परीक्षा स्थगित करने की प्रार्थना की। स्वामी श्रद्धानन्द के सन्यास मे प्रवेश करने पर उनके स्थान पर आचार्य बने रामदेव जी ने अनुशासन के नाम पर इस माग को अस्वीकार कर दिया। आचार्य रामदेव जी सम्बन्ध मे महात्मा हसराज के भाई लगते थे। उनका कोई कार्य छोटे आकार मे या धीमी प्रगति से नही होता था। वे अतिशयता के प्रेमी थे[32]। अर्थात उनका स्वभाव आर या पार था। माग को अस्वीकार करने के बाद मानने का प्रश्न ही नहीं उठता था।[33] गुरुकुल टूटने के कगार पर दिखाई देने लगा। अन्त मे लाचार होकर आचार्य रामदेव सभामन्त्री महाशय कृष्ण के पास गए और उत्तराधिकारी की नियुक्ति की प्रतीक्षा किये बिना ही वे फरवरी, 1920 मे अपना पद त्याग कर चले गये। अन्य कोई विकल्प न देखकर गुरुकुल की प्रबन्धकारिणी समिति के प्रधान तथा मन्त्री ने अन्य सदस्यो से परामर्श करके प० मालवीय एव महात्मा गाधी से निवेदन किया कि वे स्वामी श्रद्धानन्द को गुरुकुल के हेतु जलियावाला बाग स्मारक हेतु चन्दा सग्रह करने की प्रतिज्ञा से मुक्त कर दे[34]। गुरुकुल के लिए मालवीय जी और महात्मा जी दोनो ही श्रद्धा रखते थे अत श्रद्धानन्द जी को उन्होने सहर्ष गुरुकुल का भार सम्भालने की स्वीकृति प्रदान कर दी। आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब ने 25 माघ, सम्वत् 1976 को आचार्य पद से रामदेव जी का और मुख्याधिष्ठाता पद से रामकृष्ण का त्याग पत्र स्वीकार करते हुये यह प्रस्ताव भी पारित किया कि "गुरुकुल की वर्तमान अवस्था मे इस सभा की सम्मति मे स्वामी श्रद्धानन्द ही पूर्ण योग्यता के साथ गुरुकुल को सम्भाल सकते हैं। अत अन्तरग सभा स्वामी जी से प्रार्थना करती है कि वे पूर्ववत् इस कार्य को सम्भाले। सभा उनको गुरुकुल का आचार्य और मुख्याधिष्ठाता नियत करती है। स्वामी जी के वही अधिकार होगे, जो उन दिनो मे थे, जब वे गुरुकुल के आचार्य और मुख्याधिष्ठाता थे। चूकि स्वामी जी की शारीरिक अवस्था इस योग्य नहीं है कि वे अन्तरग सभा के प्रत्येक अधिवेशन मे सम्मिलित हो सके, इसलिए यह निश्चय हुआ कि गुरुकुल के प्रबन्ध सम्बन्धी सब अधिकार सभा–प्रधान विश्वम्भरनाथ और मुख्याधिष्ठाता की तीन सदस्यीय उप समिति को होगे[35]।" प्रस्ताव की प्रति मिलने पर स्वामी जी ने इस बार फूक–फूक कर गुरुकुल मे आने की सोची और निम्न लिखित शर्ते प्रस्तुत कीं–

(1) गुरुकुल की पाठविधि और प्रबन्ध मे परीक्षणार्थ जो परिवर्तन किये जाए, उनमे दो वर्ष तक सभा किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न करे।

(2) गुरुकुल की धन–सम्पत्ति को सभा की धन–सम्पत्ति से पृथक् करके ब्याज पर दिया जाए।

(3) दो वर्ष के लिए अन्तरग सभा के स्थान पर तीन सज्जनो की एक उपसमिति बनाई जाए जो गुरुकुल का बजट सीधा सभा के साधारण वार्षिक अधिवेशन मे प्रस्तुत करे।

(4) कृषि विभाग और औद्योगिक और वाणिज्य विभाग पुनः आरम्भ करने की स्पष्ट आज्ञा दी जाए।

(5) गुरुकुल प्रैस मे प्रिटिग मशीन तथा अन्य सामान के लिये दस हजार रूपया लगाया जाए।

(6) गुरुकुल नियन्त्रण–परिषद, निर्माण (आर्य विद्या सभा) का प्रस्ताव दस ग्यारह वर्ष पहिले पेश किया गया था उसको पारित कराने का पुन· प्रयास हो[36]।

उपर्युक्त शर्तो से यह प्रमाणित होता है कि उनके पूर्वकालीन आचार्यत्व की अवधि मे सभा की अन्तरग और स्वामी जी के मध्य नीतियो को लेकर गहरा मतभेद था। दोनो के मध्य मतभेद मिटा नहीं था, किन्तु गुरुकुल की विकट परिस्थिति ने उन्हे एक दूसरे के समीप ला दिया था। स्वामी जी यह नहीं चाहते थे कि इस बार उनकी योजनाओ की भ्रूण हत्या हो जाए। अत उन्होने शर्ते रखकर स्पष्टोक्ति चाही। लेखको ने यह माना है कि स्वामी जी अपने असिद्ध स्वप्नो की पूर्ति की आशा से ही गुरुकुल मे आए थे[57]। गुरुकुल की स्थापना के साथ ही स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने मन मे इस विषय मे विभिन्न योजनाओ का कल्पना–चित्र बनाया था। किन्हीं कारणो से सन्यास लेने से पूर्व वे अपनी कल्पनाओ को साकार नहीं बना सके थे। उसी समय उन्होने सद्धर्म प्रचारक मे 'मेरे असिद्ध स्वप्न' नाम से एक लेख लिखा था, जिसमे उन्होने आर्य जनता के सम्मुख अपनी मनोव्यथा को प्रकट करते हुए यह बताया था कि उनके कौन–कौन से स्वप्न अपूर्ण रह गए है। इस अपूर्णता मे किस सीमा तक किसका दोष है, इस पर भी प्रकाश डाला था। उन असिद्ध स्वप्नो की जानकारी पाठको को भी हो जाये, इस विचार से यहा स्वामी जी का वह लेख अविकल रूप से प्रस्तुत किया जाता है–

' स्वप्नावस्था मे ही जाग्रत की सारी तैयारी होती है। इसी अवस्था मे योगी परमात्मा की सृष्टि का सौन्दर्य देखना आरम्भ करता है और इसी साधारण पुरुष का मन कर्म–काण्ड की तैयारी करता है।''

गुरुकुल के लिये जिस दिन धन एकत्र करने के लिये मै घर से निकला था (12 भादो 1956 वि0 तदनुसार 26 अगस्त 1899) उसी दिन रेलगाडी मे बैठते ही कुछ विशेष कल्पनाए, गुरुकुल सम्बन्धी कार्यक्रम की, मैने कर ली थीं। फिर जब कार्तिक सम्वत् 1958 मे मुझे आर्य–प्रतिनिधि सभा पजाब की ओर से आज्ञा मिली कि शीघ्र कागडी ग्राम मे कुछ अस्थिर मकान बनवा गगातट पर गुरूकुल खोल दिया जाये, तब भी 22 फाल्गुन 1958 की शाम तक गुरुकुल भूमि मे पहुचने से पहिले मेरे मन मे बहुत से सकल्प उठे थे। उस समय से सब सकल्प स्वप्नवत् ही थे। उन मे से कुछ तो जाग्रत मे परिणत हो आशा से बढ कर पूरे हुये कुछ असिद्ध रहकर अब भी स्वप्नावस्था मे ही पडे हुये है। स्वप्नावस्था मे ही पडे हुये असिद्ध सकल्पो का वर्णन इसलिये कर देता हू कि शायद कोई उन्हे सिद्ध करने वाला कर्मवीर निकल आवे और अपने व्यक्तित्व के प्रतिकूल अवस्थाओ के कारण जो मै न कर सका, उस मे वह कृतकार्य हो जावे।

प्रथम आर्थिक दशा सम्बन्धी कुछ स्वप्न थे जो पूरे न हो सके। आरम्भ मे मेरा विचार यह था कि 50 लाख रुपयो का स्थिर कोष जमा करके उसके सूद से ही गुरुकुल का काम चलाया जावे। परन्तु ब्रह्मचारियो को कागडी मे ले जाते ही ऐसा चौमुखी युद्ध करना पडा कि धन एकत्र करने के लिये बाहिर जाना मेरे लिये कठिन हो गया और जिनका इस सस्था को चलाना कर्तव्य था उनमे बहुधा उसको तोडने के लिये ही कमर बाध बैठे। तब धन कौन लाता? फिर शनै शनै यह भाव स्थिर हुआ कि रुपयो के स्थिर कोष के स्थान मे आमदनी का स्थिर यत्न किया जाये, जिससे यह शिक्षणालय आर्थिक दृष्टि से अपने पैरो पर खडा हो सके। इसके लिये मैंने नीचे लिखे साधन सोचे थे–

(क) एक वर्कशॉप (कारखाना) खोला जाये जिसमे एजन लगा कर कई प्रकार के व्यवसाय का काम हो। कागडी ग्राम और उसके आस–पास के जगल मे खैर के वृक्ष बहुत है। एक कारखाना कत्था बनाने का खोला जाये। अपने जगल मे ढाक के वृक्ष बहुत है उनसे लाख पैदा की जाये, और उन्ही के फूलो (टेसू) से रग बनाया जावे। सेभल की रुई इकट्ठी करके बेची जाये। पास के जगल से शीशम और तुन की लकडी सस्ती मिल सकती है। उन लकडियो से मेज कुर्सी आदि सामान बनवा कर बेचा जाये। इनके अतिरिक्त और भी व्यवसाय के

कार्य जारी हो सकते थे। स्वामिनी सभा के अधिकारियो से जब बातचीत की तो उन्होने विरोध ही किया। शिवालिक की पडोसी पहाडियो पर औषधियॉ बहुत होती है और बिना मूल्य मिल सकती है। वैद्य के आने पर सभा से आज्ञा चाही गई कि चरक, सुश्रुत मे दिये नुस्खो के अनुसार औषधियॉ बनाकर वैद्यो के हाथ बेचने की आज्ञा दीजिये। हुकुम हुआ कि ना मजूर।

अब सभा ने ऐसी बेरुखी दिखाई तो मैने एक धनाढ्य पुरूष को व्यवसाय के कामो के लिये धन देने को तैयार कर लिया। धामपुर के रईस रायबहादुर चौधरी रणजीतसिह जी गुरुकुल देखने आये। कारखाने की बातचीत आते ही उन्होने मुझसे पूछा कि पूरा कारखाना बनाने के लिये क्या व्यय होगा। मैने एक लाख का अनुमान बतलाया। उक्त महोदय ने प्रतिज्ञा की कि 50 हजार रूपये वह देगे, शेष इकट्ठा करने का मै यत्न करू। परन्तु जहा घर मे कलह हो और उल्टी माला फेरी जाती हो वहा बाहर से क्या सहायता मिल सकती है। श्रीमान् चौधरी रणजीतसिह जी गुरुकुल से घर लौटकर दस पन्द्रह दिनो के अन्दर ही अचानक मृत्यु के ग्रास हुये। यह विचार दिल का दिल मे ही रह गया। यदि यह स्वप्न जागृत मे परिवर्तित होता तो जहा एक ओर गुरुकुल चलाने के लिए स्थिर आय होती, वही ब्रह्मचारियो के आर्थिक भविष्य का प्रश्न भी शायद किसी हद तक हल हो जाता।

(ख) कागडी ग्राम की भूमि 1200 पक्के बीघो के लगभग है। उनमे से केवल अनुमानत 175 बीघे मे खेती होती है। 325 बीघे के लगभग मे नाला आदि है। 100 बीघे भूमि गुरुकुल की इमारतो के नीचे होगी। शेष 600 बीघे मे से 400 बीघे को नौतोड किया जा सकता है। मैने कृषि विभाग इसीलिये खोला था कि उस विभाग के ब्रह्मचारी तो कृषि का सारा काम सीखेगे परन्तु जो काम (नलाई, कटाई, जुताई इत्यादि) केवल मजदूरी सम्बन्धी होगे वह गुरुकुल के अन्य ब्रह्मचारियो से, उनके खाली समय मे, कराया जावेगा। पैदावार बढाने के लिये ग्राम मे एक कूप लगवाया था। विचार था कि दानियो को प्रेरित करके दस बारह कूप लगवा कर खेती की पैदावार बढाई जावे। मेरा अनुमान था कि यदि 400 बीघे और नौतोड हो जाये तो वर्ष भर मे से नौ महीनो के लिये अनाज यहीं से निकल आया करेगा। ब्रह्मचारियो मे जोश भी पैदा कर दिया गया था। कृषि विभाग से विभिन्न ब्रह्मचारी भी आश्रम की बाटिकादि मे काम करने लग गये थे। परन्तु प्रबन्धकर्तृ सभा के अधिकारियो की असहानुभूति के कारण यह काम भी न चल सका।

(ग) एक बार ब्रह्मचारियो मे यह उत्साह हुआ कि इमारत का काम वे स्वय (मिस्तरी की सहायता से) कर लिया करे। एक कमरे की तैयारी मे बहुत कुछ काम उन्होने किया भी, परन्तु उनके मार्ग मे इतने विघ्न डाले गये और इतना निरूत्साहित किया गया कि उनका जोश ठन्डा पड गया और फिर उन्हे इस काम के लिये किसी ने उत्साहित नहीं किया।

(घ) कागडी ग्राम के जगल से एक वर्ष ईटो के भट्टे के लिये लकडियॉ कटवाई गई। उस वर्ष जगल की आमदनी तीन हजार से बढ गई। मैने बजट मे वह रकम ग्राम की उन्नति के लिए स्वीकार करवाई। साथ ही उपाध्यायो तथा अध्यापको के लिये निवासस्थान उसी भूमि मे बनवाने का विचार किया, जहा नया आदर्श ग्राम बनाया जाना था। मै कई कारणो से गुरुकुल से अलग जा बैठा। मेरे उत्तराधिकारियो ने जहा उपाध्याय–गृह गुरुकुल के समीप बना लिये, वहा ग्राम के लिए स्वीकार की हुई रकम बिना व्यय हुई ही, वर्ष के अन्त मे, लिप्त हो गई और उसकी पुन स्वीकृति न मिली। यदि कृषिकारो के जीवन का सुधार हो जाता तो पैदावार बहुत बढ जाती और गुरुकुल का यश भी अधिक विस्तृत होता। एक बार फिर विचार उठा कि स्थिर धनराशि को जमीन पर लगाना चाहिये। पचास हजार मे एक ग्राम बिकता था।

उनका नकदी लगान इतना वसूल होता था कि 40 पैसे सैकडा मासिक का सूद फैल जाता। नगर का पानी लगता था। यदि उन्नति की जाती तो पैदावार और बढ सकती थी। कुछ एक आर्य पुरुषो का पालन भी हो सकता था। परन्तु इस विषय को सभा मे पेश करने से ही अधिकारियो ने इकार कर दिया। गुरुकुल को तो 50 हजार मे ही ग्राम मिलता था। पीछे उसका मूल्य 60 हजार से भी बढ गया।

इन सब प्रस्तावो का उत्तर अधिकारियो की ओर से यही था कि यदि इन कामो की आज्ञा लाहौर से दूर दी गई तो साधारण सभासद् यह समझेगे कि सारी शक्ति कागडी को जा रही है। मुझे कहा जाता था कि मेरी बदनामी इस प्रकार की जायेगी कि जो थोडी बहुत सेवा धन या तन से मैंने की है उसके बदले मै अपनी शक्ति बढाना चाहता हू। अब यत ऐसा आक्षेप नहीं हो सकता इसलिए वर्तमान कार्यकर्त्ताओ की आय बढाने के लिए उपरोक्त साधनो को प्रयोग मे लाने का यत्न करना चाहिये, यदि वे इसे उचित समझे।

दूसरे ब्रह्मचारियो के शारीरिक स्वास्थ्य तथा उन्नति सम्बन्धी कुछ विचार थे जो स्वप्नावस्था मे ही विलीन हो गये। गतकर, फरी, घुडसवारी और अन्य देशी खेलो का शिक्षक अर्जुनसिह बहुत उत्तम मिला था। कई कारणो से वह अलग किया गया। कई ड्रिल मास्टर आये और चले गये। अन्त मे चैत्र, 1973 को सरदार फतेहसिह को रखा गया जो दिल से काम कर रहे है। खेलो मे तो ब्रह्मचारी अनुराग से सम्मिलित होते है और उससे उनकी शारीरिक दशा औरो की अपेक्षा बहुत उत्तम रहती है, परन्तु प्रात काल का, नसो को सगठित करने तथा शरीर को दृढ करने वाला, व्यायाम ठीक प्रकार नही होता। मुझे आशा थी कि शनै शनै गुरुकुल के स्नातक ही अध्यापन के काम मे लग जायेगे और व्यायाम के स्वय अभ्यासी ब्रह्मचारियो के प्रात-काल के व्यायाम को ठीक कर देगे। परन्तु न तो गुरुकुल और उसकी शाखाओ मे पढाने के लिये अधिकत गुरुकुल के स्नातक ही मिले और न ही अन्य सब अध्यापक ऐसे आये जो स्वय भी व्यायाम के प्रेमी हो।

(क) जिस प्रकार पहिले कुछ वर्षो के अध्यापक स्वय खूब व्यायाम करते थे और अब भी कोई–कोई ऐसा करते है, इसी प्रकार इस समय की सर्वशाखाओ तथा मुख्य गुरुकुल के अध्यापक और उपाध्याय स्वय व्यायाम को अत्यन्त आवश्यक समझ कर ब्रह्मचारियो के साथ व्यायाम किया करे, तब मेरा स्वप्न फलीभूत होगा।

(ख) शारीरिक शिक्षा तथा शरीर रक्षा और उन्नति के सम्बन्ध मे बडा विचार मै यह लेकर गुरुकुल मे आया था कि रात की पढाई विद्यार्थियो को न करनी पडे। परमेश्वर ने दिन शरीर और इन्द्रियो से काम लेने को बनाया है और रात इन सबको आराम देने के लिए। यदि अध्यापक ऐसे मिले जो दिन की पढाई के समय ही विद्यार्थी को सब कुछ उपस्थित करा दे तो रात मे पढने की आवश्यकता नहीं रहती और दिन के अन्य समयो मे मानसिक परिश्रम का कोई प्रयोजन नहीं रहता। तब आखो और दिमाग को कमजोरी की शिकायत भी नहीं हो सकती। आरम्भ मे दो वर्ष तक तो कुछ यह क्रम चला, शायद इसलिये कि उस समय सर्व नियत विषयो की पढाई का प्रबन्ध न था, परन्तु आगे चलकर जब बडे–बडे अध्यापक और प्रोफेसर जमा हो गये तो जितना परिश्रम मै इस आदर्श को ले जाने मे करता उतनी ही रात को पढाई अधिक होती जाती। शायद इसमे मेरी ही भूल हो, परन्तु यदि गुरुकुल के सचालको को मेरे प्रस्ताव मे कुछ सार दिखाई दे, तो आशा है कि वे इस ओर फिर ध्यान देगे।

तीसरी कुछ कल्पनाये मानसिक शिक्षा सम्बन्धी थीं। उनमे से बडी कमी उचित पाठयपुस्तको की है। आज कल के सभ्यताभिमानी देशो की युनिवर्सिटियो के पास अपना प्रेस होना अत्यन्तावश्यक

समझा जाता है। गुरुकुल की शिक्षाप्रणाली (इस युग के लिये) नई, उसका पाठ्यक्रम नया, उसकी उमगे नई–फिर पुस्तको का सशोधन तथा निर्माण इस शिक्षणालय का एक मुख्य अग होना चाहिए था। यही सोचकर मैने गुरुकुल के अर्पण सद्धर्म्म–प्रचारक प्रेस का सारा सामान कर दिया था। इसी आवश्यकता को लक्ष्य मे रखकर गुरुकुल कोष से सहस्रो रूपये व्यय करके प्रिटिग मशीन, एन्जन तथा टाइप का विस्तृत सामान भी मगाया था। आधुनिक सस्कृत साहित्य की पाठ्य पुस्तको मे से अश्लील तथा अनुचित भाग निकाल कर पुस्तके तैयार की गई, वैदिक मेगजीन आदि की सारी अपनी छपाई गुरुकुल मे होने लगी, गुरुकुल का यन्त्रालय इन प्रान्तो मे केवल इण्डियन प्रेस, प्रयाग, से दूसरे दर्जे पर पहुच गया था, पर अकस्मात् प्रेस–भवन मे आग लग गई और दस बारह हजार का सामान जलकर राख हो गया। प्रेस के जलने के साथ पाठ्य पुस्तके छपवाने का प्रश्न भी फिर खटाई मे पड गया, फिर प्रैस दिल्ली मे गया उसका बडा भाग ६५ सौ रुपये मे भेजा गया और कुछ हैन्डप्रेस और कटिग मशीन आदि बचाकर फिर से गुरुकुल प्रेस की बुनियाद पडी। उसके पश्चात् दो बार मैने सभा से कुछ स्वीकृति प्रेस को बढाने के लिये मागी, परन्तु मुख्य अधिकारियो के कटाक्ष पर कि मैने सहस्रो रुपये प्रेस मे बरबाद करा दिये हैं, मै अपने प्रस्ताव पर जोर नहीं देता रहा।

प्रेस का कार्य बढाने से बहुत से अन्य लाभ भी हैं, इसलिये जब वर्तमान मुख्याधिष्ठाता जी की कार्यकुशलता तथा धन रक्षा की योग्यता पर पूरा भरोसा है तो आशा है कि सभा उनको आठ दस हजार रूपया व्यय करके प्रेस को बढाने की आज्ञा देगी।

गुरुकुल विश्वविद्यालय और उसकी शाखाओ के लिये उत्तम साहित्य मुद्रित करना तो गुरुकुल यन्त्रालय को विस्तृत करने का फल होगा ही किन्तु उसके साथ ही उससे स्थिर आय भी खासी हो जायेगी।

(ख) गुरुकुल के स्नातको के लिये आजीविका का प्रबन्ध करने के विचार से ही नहीं, प्रत्युत उनको जाति और राष्ट्र के लिये अधिक से अधिक फलदायक बनाने के लिये, गुरुकुल की आरम्भिक शिक्षा प्रणाली मे ही आयुर्वेद, कृषि और व्यापार शिक्षा का ध्यान रक्खा गया था। कब से मै इन विषयो के लिये बल देता रहा हू और किस प्रकार की रुकावटे उस प्रयत्न के मार्ग मे खडी होती रही है– इस कहानी से यहा कुछ लाभ न होगा। मैने कृषि शिक्षा का कार्य आरम्भ भी किया परन्तु कई कारणो से उसमे अब तक वह कृतकार्यता प्राप्त न हुई, जो सहज मे ही हो सकती थी। मेरे सामने तो कृषि विभाग का जीवन ही सदिग्ध था, परन्तु अब फिर कृषि विभाग को योग्य उपाध्याय मिल गये है। यदि इस विभाग को तोडने का प्रयत्न न हुआ तो जहा ब्रह्मचारियो को कार्यशील बनाने मे सहायता मिलेगी वहा कुछ वर्षो के पीछे इससे आय भी अच्छी होने लग जायेगी।

फिर आयुर्वेद के लिये भी कुछ वर्षो से मैने प्रस्ताव कर रक्खा था। जिस वर्ष गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर कविराज योगेन्द्रनाथ सेन एम०ए० आये थे, उसी वर्ष बहुत से धन की भी, आयुर्वेद विभाग खोलने के लिये, प्रतिज्ञाये हुई थीं कुछ धन वसूल भी हुआ था, और योग्य वैद्य भी मगा लिये गये थे। परन्तु शासक सभा के अधिकारियो ने उस विभाग को खुलवाना उचित न समझा। मेरा निश्चय है कि यदि आयुर्वेद विभाग के साथ ही, एक योग्य डाक्टर रख कर अनाटमी, सर्जरी आदि की शिक्षा का भी प्रबन्ध कर दिया जाता तो शायद इस समय तक गुरुकुल के स्कूल ऑफ मेडिसिन को गवर्नमेन्ट का चिकित्सा विभाग प्रमाणित भी कर देता। अब बडी प्रसन्नता की बात है कि आयुर्वेद विभाग के खोलने का प्रस्ताव गुरुकुल की शासक सभा मे स्वीकार कर लिया है और यदि इस समय कोई योग्य डाक्टर भी अपनी सेवा गुरुकुल के अर्पण कर दे तो आशा है कि जहा गुरुकुल के स्नातक कलकत्ता, मद्रास आदि भटकते फिरने से बच जायेगे वहा बाहर के विद्यार्थी भी इस विभाग से पूरा लाभ उठा सकेगे।

यह भी सुनने मे आया है कि व्यापार तथा महाजनी की शिक्षा के लिये भी पाठविधि तैयार हो रही है। परमेश्वर शासक सभा को बल प्रदान करे जिससे अधिकारीगण इन कार्यो के चलाने मे आलस्य न कर सके।

आत्मिक शिक्षा सम्बन्धी जो दिव्य स्वप्न देखकर मै गुरुकुल मे गया था, उनका निरन्तर 16 वर्षो तक काम करते हुये, स्मरण नही आता था। उनके सस्कार तो प्रबन्ध के द्वन्द्व युद्ध से मुक्त होने पर ही पुन जागे है। गुरुकुल भूमि मे पग धरा था यह दृढ प्रतिज्ञा करके की सात वर्षो तक वेदागो मे परिश्रम कर तथा आत्मिक साधनो द्वारा बल प्राप्त करके ऋषि दयानन्द की बतलाई प्रणाली पर वेदाध्ययन मे ब्रह्मचारियो की स्वय सहायता करूगा और तब आचार्य कहलाने का अधिकारी बनूगा। गया था अभ्यासी बनने और आत्मिक शक्तिया सम्पादित करने, परन्तु गुरुकुल भूमि मे प्रवेश करते ही घोर सग्राम मे फसना पडा। जहा प्रकृति प्रत्येक प्रकार से अनुकूल थी। हिमालय के पवित्र चरणो मे जाह्नवी के किनारे डेरा डालकर आशा थी कि ब्रह्मचर्याश्रम के बडे बोझ को उठाने के लिये बल मिलेगा, वहा मानवी हृदयो की उठाई अशान्ति ने पूर्व के साधनो से प्राप्त बल को भी शिथिल करने के लिये आक्रमण कर दिये। इस विषय मे मनुष्यो के प्रति, वाणी या लेखनी द्वारा, कुछ बतलाया नहीं जा सका। जो कल्पनाओ का मनोहर तथा शान्तिप्रद उद्यान हृदय भूमि पर बनाया था वह अब स्मरण मे आ रहा है। आत्मिक अवस्था को उच्चासन पर ले जाने और वैदिक ज्ञान को क्रियात्मक बनाने का अवसर, परमेश्वर की कृपा से, अब मिलेगा और इस जन्म की तैयारी आगामी जन्मो मे अवश्य काम आवेगी–इस आशा पर ही मै काम कर रहा हू। परन्तु अपनी मृत्यु के पहिले यदि एक बार यह दृश्य देख लू कि गुरुकुल विश्वविद्यालय के आचार्य पद पर एक ऐसे विद्वान् स्थित है जो वेद ज्ञान प्राप्त करके उस ज्ञान को आचरणो मे ढालते हुये ब्रह्मचारियो को मनुष्य के परम पुरुषार्थ की ओर ले जा रहे है, तो मै बडे सन्तोष से आने वाले जन्म की तैयारी कर सकूगा।

ब्रह्मचारियो के आत्माओ पर नि स्वार्थ भाव को भली प्रकार अकित करने तथा उन्हे धर्म और जाति सेवा के लिये तैयार करने का बडा भारी साधन यह समझा गया था कि उनके सरक्षको पर उनकी पढाई एव उनके पालन–पोषण का कुछ भी बोझ न पडे। गुरुकुल की आरम्भिक शिक्षा–विधि की तैयारी के समय से ही मै इस पर बल देता रहा और इसीलिये नियम धारा 6 के नीचे नोट दिया गया था– 'जब कुछ समय मे पर्याप्त धन एकत्रित हो जायेगा तो समस्त ब्रह्मचारियो का शिक्षा–दान तथा उनका पालन पोषण बिना किसी व्यय लिये किया जायेगा।' मैने बहुत बार हाथ–पॉव मारे कि पर्याप्त धन (50 लाख रुपये) जमा हो जावे, परन्तु उसके लिए परिश्रम करने का मुझे समय और अवसर ही न मिला। फिर जब सवत् 1967 मे कई कारणो से मै मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य पद से त्याग–पत्र देकर अलग हुआ तो कुछ सज्जन मित्रो ने मेरी हार्दिक इच्छा को जानकर सर्वथा शुल्क मोचन पर बल दिया और उनका प्रस्ताव स्वीकृत भी हो गया। फिर जब मुझे पुन गुरुकुल की सेवा के लिये लौट आने के लिये बाधित किया गया तो शुल्क लगाने का प्रश्न फिर उठ खडा हुआ। उस वर्ष तो पुराने प्रस्ताव को ही सभा से दृढता मिली, परन्तु उससे दूसरे वर्ष इस प्रश्न को फिर सभा मे रक्खा गया। यह देखकर कर कि कुछ काम करने वाले बिना गुरुकुल के ब्रह्मचारियो पर शुल्क लगवाये काम करना छोड देगे, मैने उस अधिवेशन मे सम्मिलित होने से ही बचना चाहा, परन्तु शुल्क के पक्षपातियो की ओर से श्री प्रधान जी ने विश्वास दिलाया कि आठ श्रेणियो तक कोई शुल्क लगाने का विचार नहीं, उससे ऊपर शुल्क लगाने का निश्चय है। मै तो इस समझौते पर चुप रहा परन्तु प्रस्तावकर्ताओ ने पूर्ववत् सब श्रेणियो के लिये शुल्क स्वीकार करा लिया। मैंने अपनी निज प्रतिज्ञानुसार मौन धारण किये रक्खा और सम्मति भी कुछ न दी।

इस समय बिना शुल्क के गुरुकुलो को चलाना असम्भव सा ही हो गया है, क्योकि जहा प्रबन्ध उत्तम है और अपने कर्तव्य को समझने वाले सचालक है वहा धन पर्याप्त नहीं, और जहा शुल्क न लेने का आडम्बर रचा जाता है वहा ब्रह्मचारी तो साधारण भोजनो के लिये भी तरसते है और गुरुकुल भक्त सासारिक भोगो का आनन्द लूटते हैं। मेरा यह स्वप्न भी इस जीवन मे पूरा होता नहीं दीखता।

गुरुकुल के सम्बन्ध मे मेरी एक और प्रबल इच्छा थी जो अपूर्ण रह गई। मेरा विचार था कि प्रत्येक नगर के पास और प्रत्येक पाच ग्रामो के समूह के मध्य स्थान मे प्रारम्भिक शिक्षा के लिये पाठशालाए खोल दी जाये, जिनमे बालक गुरुकुल के लिये तैयार किये जाये। चार वर्ष की पाठ विधि हो। जनता की सभाए बना कर अनिवार्य शिक्षा का प्रचार किया जाये, जिससे उस ओर का कोई भी बच्चा (लडकी हो या लडका) अशिक्षित न रह जाये। गुरुकुलो के सम्बन्ध मे तो कई कारणो से मै इस विचार को अमली सूरत न दे सका, परन्तु यह प्रबल इच्छा अवश्य है कि आर्यसमाज का इतिहास समाप्त करके, धर्म प्रचार करता हुआ, आर्यभाषा पाठशालाए खुलवाने का यत्न करता रहू। उन पाठशालाओ मे साधारण ज्ञान देने के अतिरिक्त प्रत्येक आर्य बालक और बालिका को वैदिक–धर्म का आवश्यक ज्ञान भी कराया जावे। इस काम के लिये ऐसे धर्मवीरो की आवश्यकता होगी जो वर्तमान समय के अनुचित भोगो को तिलाजली देकर तप का जीवन व्यतीत करने के लिये तैयार हो। स्वर्गीय महात्मा गोपालकृष्ण गोखले को इस काम के लिये उत्तेजित करने का मैने प्रयत्न किया था, परन्तु वह कई बार इच्छा प्रकट करके भी मेरी प्रार्थनानुसार एक सप्ताह गुरुकुल मे निवास न कर सके और इसलिये हमारी स्कीम पक न सकी।

गुरुकुल सम्बन्धी और भी बहुत सी मेरी आकाक्षाए थीं जो पूरी नहीं हुई, उनके वर्णन से इस समय लेख को बढाना उचित नहीं है। मैने इन सब असिद्ध स्वप्नो मे असफलता का कारण यही समझा था कि गुरुकुल का प्रबन्ध एक ऐसी कार्यकारिणी सभा के आधीन है जिसके सभासदो का गुरुकुल के साथ सीधा सम्बन्ध बहुत कम रहता है। प्रथम तो आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरग सभा मे सभासद लिये ही किसी अन्य भाव से जाते है, फिर बहुत से गुरुकुल के सच्चे हितैषी (अधिक दान देने वाले, स्नातक, ब्रह्मचारियो के सरक्षक तथा अन्य विद्वान्) इसके नियन्त्रण मे भाग नही ले सकते और सबसे बढकर कमी यह है कि शासक सभा की बैठके गुरुकुल से दूर होने के कारण उसकी आवश्यकताओ को सभासद दृष्टि मे नहीं रख सकते। मैने गुरुकुल की भलाई इसी मे समझी थी कि उसके लिये एक पृथक् नियन्त्रण–परिषद् बनाई जावे जिसमे दानियो, स्नातको तथा अन्य गुरुकुल प्रेमियो के प्रतिनिधि भी लिये जा सके। मैने ऐसा प्रस्ताव दस, ग्यारह वर्षो से कर रक्खा है। परन्तु ऐसा नियम–सशोधन का प्रस्ताव आर्य प्रतिनिधि सभा के उस अधिवेशन मे पेश हो सकता है जिसमे सभासदो की उपस्थिति दो तिहाई से कम न हो। एक बार उपस्थिति (कोरम) ठीक हो भी गई और बहुपक्ष अनुकूल भी था, परन्तु सम्मति लेना दूसरे दिन पर रोका गया और दूसरे दिन कोरम न रहा।

सारा सभ्य ससार इस समय अनुभव कर रहा है कि शिक्षा प्रणाली पर ही ससार की वर्तमान अशान्ति की औषधि आर्यपुरुषो ने समझ रक्खी है। बाह्य ससार के कुछ शिक्षक भी इस विषय मे आर्यो के साथ सहमत हो चुके है। तब गुरुकुल की रक्षा और उन्नति के लिये जो भी उपाय उचित हो उनकी आर्य जनता को उपेक्षा नहीं करना चाहिये। इसीलिये मैने आर्यजनता की सेवा मे अपने उद्‌गार उपस्थित करने का यत्न किया है।

स्वामी जी ने गुरुकुल मे पुन आने की शर्तों मे प्राय अपने 'असिद्ध स्वप्नो' की मुख्य–मुख्य बाते लिख दी थी। गुरुकुल की स्वामिनी सभा ने स्वामी जी की शर्तो को स्वीकार कर लिया। इस

प्रकार 11 फरवरी, 1920 ई0 (4 फाल्गुन, 1976 वि0) को स्वामी जी ने फिर गुरुकुल मे पदार्पण किया। गुरुकुल मे आने पर स्वामी जी दिल्ली की दिन प्रतिदिन होने वाली राजनीति से अवश्य कट गये। परन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि दिल्ली सत्याग्रह और अमृतसर के काग्रेस अधिवेशन ने स्वामी को खिलाफत आन्दोलन और काग्रेस के उच्च श्रेणी के नेताओ की दृष्टि मे एक महत्वपूर्ण व्यक्ति बना दिया था। यद्यपि गुरुकुल मे आकर स्वामी जी का कार्य आर्य समाज की सेवा करना था, किन्तु वे यहा आकर भी राजनीति के चक्रव्यूह से नहीं निकल सके।

1920 और 1922 के मध्य की अवधि स्वामी जी के लिये ''दुविधा मे दोनो गई, न माया मिली न राम'' की स्थिति वाली रही। 'जुम्मे–जुम्मे अढाई दिन' ही हुए थे कि सभा के कुछ सम्मानीय सदस्यो के साथ पुराना मतभेद सिर उठा कर खडा हो गया। 'प्रकाश' के सम्पादक महाशय कृष्ण ने गुरुकुल के उद्देश्यो को लेकर वही पुराना राग छेड दिया। विरोध की गरमाहट को देखकर स्वामी जी ने गुरुकुल के सचालन के लिए गठित उपसमिति के सदस्य विश्वम्भर नाथ को 14 अप्रैल, 1920 को एक पत्र लिखा। अपने पत्र मे स्वानी जी ने लिखा कि ''महाशय कृष्ण को लिखा मेरा पत्र आपने देखा होगा। मैने गुरुकुल आने मे चाहे भूल की हो, पर आप तथा अन्य गुरुकुल प्रेमियो की अपील पर ही मै यहा आया हू और कम से कम तीन वर्ष लग कर काम करना चाहता हू। मैने अपने विचार और मन्तव्य कभी किसी से छिपाये नही, इसलिए आप, कृष्ण, नारायणदत्त, गगाराम तथा अन्य सज्जनो ने जब अन्तरग मे मेरे गुरुकुल आने का प्रस्ताव उपस्थित किया था और सभा ने उसको स्वीकार किया था तब सोच–समझ कर ही किया होगा।'' इससे आगे स्वामी जी ने नीतिगत भेदो की चर्चा करते हुए स्पष्ट शब्दो मे लिखा कि ''पहली बात जिसमे मै सहमत नही हू, यह है कि गुरुकुल को किसी भी सरकारी विश्वविद्यालय के साथ सम्बन्धित करना भारी भूल होगी। यदि शिक्षा का सब अधिकार देशी मन्त्रियो के हाथ चला जाए, तो भी गुरुकुल पद्धति से शिक्षा देने की आवश्यकता बनी ही रहेगी। दूसरा मतभेद उपदेशको के सम्बन्ध मे है। मेरा यह मत है कि आजकल शास्त्रार्थ वास्तविक धर्म–प्रचार के लिये बडी भारी बाधा है। इसलिये मै अपने शिष्यो मे अन्य धर्मो के विरुद्ध खण्डनात्मक भाव भरने की अपेक्षा उनके सामने उन सबकी अच्छाइया रखूगा और उनको बताऊँगा कि इन सब अच्छाइयो का मूल वेद है। सम्भव है गुरुकुल से इस प्रकार की शिक्षा से निकलने वाले उपदेशको से आप लोग सन्तुष्ट न हो। तीसरी बात वैदिक धर्म के साथ राजनीति के सम्बन्ध की है। यदि इस सम्बन्ध मे इस समय के आर्य समाज के नेता यह समझते है कि उनका और अधिकाश आर्य समाजियो का मत मुझ से नही मिलता है तो यह आपका धार्मिक कर्तव्य है कि आप मुझ को उसकी तुरन्त सूचना दे दे, जिससे मेरे कारण आप मे से किसी को भी कुछ उलझन मे फसना न पडे(38)।

स्वामी जी शान्त भाव से जैसे–तैसे गुरुकुल की स्थिरता के कार्य मे लगे रहे। उन्होने गुरुकुल प्रैस मे सुधार करके 'श्रद्धा' नामक हिन्दी का साप्ताहिक निकालना आरम्भ किया। इस साप्ताहिक मे धार्मिक लेखो के अतिरिक्त तत्कालीन भारतीय राजनीति पर भी स्वामी जी के लेख होते थे। स्वामी जी ने इस साप्ताहिक मे 'आर्य समाज और राजनीति' नामक लेख लिखकर अपना मन्तव्य स्पष्ट करते हुए लिखा है कि–

''पजाब मे आर्य समाज का अधिक प्रचार है। यहा ही इसका अधिक बल है। और पजाब ने ही अपनी उत्तम से उत्तम सन्तान आर्य समाज को भेट की हुई है। इसलिये जब पजाब पर मार्शल–लॉ (अर्थात् नौकर शाही की अराजकता के राज्य) की चढाई हुई उस समय भी आर्य समाजियो का ही कर्तव्य था कि वे आई हुई आपत्ति को धैर्य और शान्ति से अगीकार करके जनता के सामने दृष्टान्त रूप से खडे हो जावे। उनकी परीक्षा का यही समय था। जब जलती हुई आग बीच मे हो और

स्वधर्म पालन के लिये दूसरे पार जाना हो, उसी समय धर्मध्वजियो की परीक्षा होती है। कवि ने क्या पते की बात कही है–

धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी। आपत काल परखिए चारी।।"

उस समय पजाब के आर्य समाजियो के धर्म तथा धैर्य की परीक्षा हुई। यद्यपि उस परीक्षा मे बहुत से आर्य उत्तीर्ण हुए, परन्तु उन आर्य नामधारियो की सख्या भी उपेक्षा से देखने योग्य नहीं, जो उस समय मे धर्म के उच्चासन से गिर गए और ऐसे आर्य समाजियो ने इसी गिरावट को अपना श्रगार कहना सिद्ध करना आरम्भ कर दिया। वह यह कह कर अपनी पीठ ठोकते रहे कि "जब सब राजनीतिक लहर मे बह गए तो आर्य समाज को राजनीति से पृथक् सिद्ध करने के पत्र तथा अन्य साधनो से उन्होने आर्य समाज की रक्षा की और लहर मे नही बह निकले।"

परन्तु परिणाम क्या हुआ? जिन्होने अपनी चमडी बचाने के लिये अपने आप को नोन पुलिटिकल सिद्ध करने का यत्न किया, नौकर शाही की दृष्टि मे वह भी इस सम्बन्ध से जुदे न समझे गए। हा, उन्हे एक अधिक उपाधि मिली। जैसा कि एक मित्र ने दिखलाया – पजाब गवर्नमैंट ने उन्हे कातर (Coward) की उपाधि अवश्य दी। मेरी सम्मति यह है कि पजाब के गत विप्लव मे जिन्होने जनता का साथ दिया उन आर्य समाजियो ने पालिटिक्स मे भाग नहीं लिया, उन्होने मनुष्य अर्थात् आर्य धर्म का ही पालन किया। अब बैठे बाल की खाल उतारते जाओ तो उनकी स्थिति मे भेद नहीं आता। मै प्रति सप्ताह आदित्य वार को व्रतपूर्वक 'रौलट एक्ट' से स्वदेश की मुक्ति के लिए परमात्मा से प्रार्थना करता हुआ यह भी बलपूर्वक इच्छा किया करता हू कि जब भी किसी मनुष्य समूह पर अन्याय और अत्याचार का आक्रमण हो उसे रोकने के लिये आर्य सामाजिक पुरुष सबसे पहले आगे बढा करे[३०]।

खिलाफत आन्दोलन के सम्बन्ध में विचार

जनसमूह की उपर्युक्त भावना को लेकर ही स्वामी श्रद्धानन्द ने खिलाफत आन्दोलन मे रुचि दिखाई थी। अमृतसर काग्रेस के समय तक महात्मा गाधी अग्रेजी सरकार के साथ सहयोग के हामी थे। अमृतसर काग्रेस के बाद मार्शल लॉ के शिकार हुए लोगो की अपीले जब सरकारी दबाव के कारण लार्ड केन की अध्यक्षता वाली न्यायिक समिति द्वारा खारिज कर दी गई, तो महात्मा गाधी का ब्रिटिश सरकार के प्रति असहयोग का रुख बन गया। इस मे अली भाइयो की प्रेरणा का भी हाथ था। अली भाइयो ने खिलाफत के सन्दर्भ मे भारतीय मुसलमानो को हिजरत (देश छोडने) करने के लिए कहा। हिन्दू लोग मुसलमानी खिलाफत आन्दोलन मे कुछ इस तरह फस गए थे कि अनेक लोग सरकारी सेवा छोडकर इस आन्दोलन मे कूद पडे थे। ऐसी स्थिति मे स्वामी जी ने अपने सन्देहो को दूर करने के लिए महात्मा गाधी को निम्न पत्र लिखा–

श्रीमान् महात्मा गाधी जी,

मुझे ठीक पता नही है कि आप सिह गढ मे है या और कही, इसलिए आश्रम के पते से ही पत्र भेजता हू। आशा है कि जहा कही आप होगे, मेरा पत्र वहा पहुच जायेगा।

मै समाचार पत्रो मे खिलाफत के सम्बन्ध मे आपके सम्भाषणो का साराश और मिस्टर शौकत अली के व्याख्यानो का हाल पढता रहा हू। अपने मुसलमान भाइयो की जो न्यायानुकूल माग है, उसके पूरा न होने पर आपने अपनी गवर्नमैन्ट के साथ सहयोगिता का त्याग बतलाया है। यहा तक तो मै आपके साथ सहमत हू कि हिन्दू–मुसलमानो को न्यायानुकूल निबटारा न होने पर उपाधिया त्याग देनी चाहिये, औनरेरी कामो से भी फिर किनारा करना चाहिये, परन्तु प्रश्न यह है कि यदि आप

लाखो सिविल और मिलिटरी के सरकारी नौकरो को उनकी नौकरी से अलग कर लेगे और उनकी आजीविका का कोई प्रबन्ध न कर सकेगे तो जनता के अन्दर कितनी अराजकता फैलेगी। इससे तो रोग और बढेगा, घटेगा नही। मै इसके विरूद्ध नहीं हू कि मुसलमानो और हिन्दुओ के सुशिक्षित उच्च पदाधिकारी अपने पदो को छोड दे, मेरा मतलब लाखो सिविल और मिलिटरी चाकरो से है जिनको जीविका से जुदा करके सत्याग्रह की उच्च मर्यादा पर स्थिर रहना कठिन होगा। मुझे डर यह है कि जिन मुसलमानो की धार्मिक इच्छाओ को पूरी करने के लिए आप उनके पथ प्रदर्शक बन रहे है, कहीं वे ही न कष्ट अनुभव करने लग जावे।

परमेश्वर की कृपा से मुझे कोई उपाधि प्राप्त नहीं, इसलिए उसके त्याग का प्रमाण नहीं दे सकता। कभी चाकरी भी नहीं की, इसलिए उस प्रकार की सहानुभूति भी नही दिखला सकता, किन्तु एक ही प्रकार का सत्याग्रह है जिसमे मै सम्मिलित हो सकता हू अर्थात् यदि जनता के उपाधि और नौकरी त्याग करने पर भी गवर्नमैन्ट की आखे न खुले, तो मुसलमान भाइयो के साथ स्वय भी ब्रिटिश साम्राज्य का त्याग कर दिया जावे। यदि आप अगुआ बने तो कौन न चाहेगा कि आपके पीछे चलकर अपनी आत्मा को सन्तोष दे लेवे। परन्तु प्रश्न यह है कि ब्रिटिश साम्राज्य को छोडकर किस राष्ट्र की शरण ली जावे, जहॉ धर्मानुसार जीवन व्यतीत करने का आश्रय मिल सकेगा। समाचार पत्रो मे इशारा देखा है कि काबुल हम सबको बुला रहा है, परन्तु वहॉ जाकर ब्रिटिश सरकार पर दबाव पड सकेगा और सिवाय ब्रिटिश सरकार के साथ भौतिक युद्ध किए कैसे अभीष्ट की प्राप्ति होगी, यह समझ मे नहीं आता। और यदि भारतवर्ष के हिन्दू–मुसलमान भौतिक शस्त्रो का आश्रय लेकर ब्रिटिश गवर्नमैन्ट से लडने को ही बाधित हुए तो वे कहॉ तक सत्याग्रही रह सकेगे।

मै चाहता हूॅ कि इस विषय मे आपके मन्तव्य का स्पष्ट ज्ञान मुझको हो जावे जिससे मै अपने मन्तव्य के साथ कर्तव्य को बराबर मिलाये रखू । अब आप आराम कर रहे है तब यह कष्ट देना अनुचित है, परन्तु जहॉ हमारी सारी जाति के भविष्य का प्रश्न हो, वहॉ ऐसा कष्ट देना अनिवार्य भी हो जाता है।

आपका उत्तराभिलाषी

श्रद्धानन्द[40]

महात्मा गाधी ने स्वामी जी के पत्र का उत्तर देते हुए लिखा–

भाई साहेब।

आपका पत्र मिला। सरकारी नौकरो को नौकरी छोडने को तब ही कहा जाएगा जब उनके लिए खाने–पीने का प्रबन्ध की ठीक योजना बन जाएगी। इस बारे मे मुसलमान भाइयो के साथ मै मसलत कर रहा हू।

देश त्याग करने की सलाह मै तो कोई नहीं दी, न मै दे सकता हू। कितनेक मुसलमान भाइयो का हिजरत करने का अवश्य अभिप्राय है, उनको हम नहीं रोक सकते है। उनसे भी हिजरत का नतीजा अच्छा नहीं आ सका है, ऐसा बता रहा हू। यदि सत्याग्रह दृष्टि से यदि हम हिन्दुस्तान का त्याग करे तब उसमे सरकार पर कुछ भी दबाव पडने का ख्याल नहीं दीखता है। मगर मेरी राय से हिन्दुओ को हिन्दुस्थान छोडने का मौका तो तब आ सकता है जब कोई हिन्दु राजा होगा और प्रजा उसके साथ मिलकर हिन्दू धर्म का पालन ही अशक्य कर देगी। यदि सरकार का असहकार करने मे इस समय असमर्थ होगे तो उसका अर्थ मै ऐसा ही निकालूगा कि मुसलमानो की धर्मप्रवृत्ति क्षीण हो गई है। हर कोई भी देख सकता है इस खिलाफत के प्रश्न मे इस्लाम को बडा धक्का पहुॅचाने

की बात है। यदि ऐसे समय पर भी मुसलमान जान–माल की कुरबानी करने के लिए तैयार नहीं होगे तब तो धार्मिकता का लोप हो गया ऐसा ही कह सकते हैं। यदि ऐसा बुरा परिणाम आ जायेगा तो भी मुझे आश्चर्य नहीं होगा क्योकि मै भ्रमण करता हुआ कलिकाल की महिमा को देख रहा हू। धर्म की भावना हरेक जगह बहुत मन्द हो गई है, और अनेक जो कार्य धर्म के नाम पर होते है उसमे भी मैं तो अधर्म ही देख रहा हूँ। यदि मैने जो लिखा है वह स्पष्ट नहीं होगा तो आप मुझे फिर पूछेगे।

गुरुकुल का कार्य अब अच्छी तरह से चलता होगा। मै आज चार दिन से एकान्त स्थान मे आया हूँ।

आपका

मोहनदास गाधी[41]

स्वामी श्रद्धानन्द ने महात्मा गाधी के उत्तर तथा अखबारो के द्वारा खिलाफत आन्दोलन के सम्बन्ध मे जो सम्मति बनाई थी, उसे प्रकट करते हुए उन्होने मुसलमानो से कहा–

"(क) जब हिन्दू तय है खिलाफत के सवाल पर अपने मुसलमान भाइयो के साथ है तो शिया साहेबान तथा अन्य मुसलमानो को भी (जो मुसलमान रूम को खलीफा नहीं मानते) अपनी कौम का साथ देना चाहिए क्योकि यह एक प्रतिज्ञा पालन या विश्वास का सवाल है।

(ख) उपाधियॉ या ओनरेरी ओहदे जितने भी अधिक मुसलमान भाई त्याग करेगे उतना ही ब्रिटिश गवर्नमैन्ट को निश्चय होगा कि वे लोग अपने मतालबे पर दृढ हैं। यदि मुसलमान ही पीछे रह गए तो हिन्दुओ से क्या आशा हो सकती है। परन्तु यदि उनमे जोश बढा तो हिन्दू भी अवश्य साथ देगे।

(ग) मुसलमान उच्च पदाधिकारी यदि सिविल–मिलिटरी कामो से त्याग पत्र दे दें– यथा आनरेबल हाईकोर्ट जज– मिया मुहम्मद शफी, मुसलमान हाईकोर्ट जज साहिबान और अन्य मुसलमान सिविलियन तथा मिलिटरी आफिसर तो हिन्दू भी कुछ उनके साथ शरीक हो जायेगे।

(घ) फिर भी यदि कुछ ध्यान न खिचे तो कम वेतन वाले मुलाजिम त्याग पत्र दे तो पहले उनके परिवारो के निर्वाह का प्रबन्ध कर लिया जाए। इनको हिजरत के लिए पीछे न चलाया जावे प्रत्युत इनसे जातीय (कौमी) पुलिस का काम लिया जाए। गत वर्ष के अप्रैल मे जैसा रामराज्य 19 दिनो तक दिल्ली मे रहा फिर बहुत स्थानो मे लाया जा सकता है, परन्तु यह तब हो सकेगा जब दौलतमन्द आदमी भी और काम छोडकर इस पुलिस की अफसरी मे लग जाए। यदि यह क्रियात्मक दौर चल जाए तो मुझे निश्चय है कि ब्रिटिश गवर्नमैन्ट स्वय मित्र दल को हमारे पक्ष का बनाने मे कृतकार्य हो सकेगी। यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश सरकार को अपनी प्रतिज्ञा का ख्याल तो है परन्तु दूसरी और भी फस चुकी है। यदि यह ठीक हो तो उन्हे भारत प्रजा की दृढता से मित्रदल की काउन्सिल मे बल मिलेगा[42]।

उपर्युक्त सुझावो के अतिरिक्त 'हिजरत' के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट करते हुए आपने कहा कि "मेरे भाइयो! भागना कायरो का काम है। हम यहा ही रहेगे, यहॉ ही जीएगे और इसी पवित्र भूमि मे माता की सेवा करते हुए प्राण त्यागेगे। यहॉ से 'हिजरत' के स्थान मे यहा ही शहीद बनेगे। अपने सहन तथा तप से गोरी जातियो के कठोर ह्रदयो को भी ऐसा पिघला दे कि उन्हे भारत के एक–एक बच्चे से दीन प्रार्थना करनी पडे और ब्रिटिश गवर्नमैन्ट के प्रतिनिधि यह कहने के लिए विवश

हो कि 'उठो भारत के सच्चे पुत्रो और उसकी पुत्रियो! अपनी अमानत को सम्भालो क्योकि अब हम अमानत मे खयानत नहीं करना चाहते[43]।''

राजनैतिक उड़ान मे आचार्यत्व पिछड़ गया

राष्ट्रीय राजनीति मे छलाग लगाने वाले सन्यासी को गुरुकुल के प्रबन्ध मे बार–बार कठिनाइया आने लगी। उन्होने इन कठिनाइयो से सम्बन्धित एक पत्र सभामत्री को 14 अप्रैल को लिखा था। इस पत्र के प्रत्युत्तर मे सभामत्री ने सम्पूर्ण परिस्थितियो के लिए स्वामी जी को ही उत्तरदायी ठहराया। इसके उत्तर मे स्वामी जी ने सभामत्री (महाशय कृष्ण) को 13 जून 1920 को लिखा कि गुरुकुल का कार्यभार पुन सम्भालने से पहिले यदि मुझे उन कठिनाइयो का पता लग जाता, जो इसके मार्ग मे पड चुकी है, तो मै फिर से काम सम्भालने का साहस ही नहीं करता। परन्तु जब एक बार बोझ उठा चुका हू, तो किसी मजिल तक उसे पहुचाने का यत्न करुँगा[44]।'' परिणाम स्वरूप अगस्त 1920 ई0 मे स्वामी जी ने गुरुकुल के लिये स्थायी कोष स्थापित करने का विचार किया और इस कार्य के लिये सर्वप्रथम कलकत्ता को चुना। स्वामी जी ने वहा गुरुकुल के प्रचार और धन सग्रह का कार्य आरम्भ ही किया था कि खिलाफत आन्दोलन के परिशिष्ट के रूप मे कलकत्ता मे काग्रेस का एक विशेष अधिवेशन आमन्त्रित किया गया। स्वामी जी का इस अधिवेशन मे भाग लेना अत्यावश्यक था क्योकि उन्होने 'अस्पृश्यता निवारण' विषय से सम्बन्धित एक प्रस्ताव विषय समिति के विचारार्थ भेजा हुआ था। किन्तु इसे जानबूझ कर विषय समिति ने ताक पर रख दिया। यहा तक कि महात्मा गाधी जी ने भी इसके महत्व को अनुभव नहीं किया। इससे स्वामी जी को बडी निराशा हुई। अक्टूबर के अन्त मे स्वामी जी गुरुकुल के लिए धन सग्रह हेतु बर्मा चले गये तथा दिसम्बर, 1920 के प्रथम सप्ताह मे लौटे। स्वामी जी ने गुरुकुल के लिये 20 लाख रूपया सग्रहित करने का सकल्प किया था, परन्तु स्वामी जी अपने लक्ष्य से बहुत दूर रहे और मात्र साठ हजार रुपया ही इकट्ठा कर सके।

बर्मा की 31 दिन की यात्रा मे स्वामी जी को 14 मान पत्र दिये गए और लगभग 60 भाषण स्वामी जी को देने पडे। स्वामी जी के भाषणो के विषय धार्मिक होने के साथ–साथ राजनैतिक भी होते थे। बर्मा की सम्पूर्ण यात्रा मे एक पुलिस उप–अधीक्षक दो निरीक्षक तथा दो थानेदार स्वामी जी के साथ रहे। उन्होने स्वामी जी से अनुरोध किया कि वे अपने व्याख्यानो मे राजनैतिक चर्चा से दूर रहे, परन्तु स्वामी जी ने न उनके अनुरोध को माना और न वे उनकी धमकियो से डरे।

देश की स्वतन्त्रता के लिये किये जाने वाले आन्दोलनो मे स्वामी जी की अत्यधिक रूचि होने के कारण गुरुकुल का कार्य उस गति से आगे नहीं बढा जिस गति से आशा की जा रही थी। जोर्डेन्स के अनुसार सम्भवत राजनैतिक कार्यो मे खुलकर भाग लेने की स्वीकृति सभा की ओर से स्वामी जी को मिली हुई थी[45]। वस्तुत ऐसी बात नहीं थी। स्वामी जी को जब यह अनुभव हुआ कि उनकी राजनैतिक गतिविधिया सभा के अधिकारियो की दृष्टि मे उपेक्षणीय नहीं रही तो उन्होने सभा प्रधान को निम्नलिखित आशय का एक पत्र लिखा–

गुरुकुल

10 आश्विन, 1977
(25 सितम्बर, 1920)

श्रीमान लाला राम कृष्ण जी

प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब

नमस्ते।

इस समय मेरी सम्मति मे 'असहयोग' की व्यवस्था के क्रियात्मक प्रचार पर ही मातृभूमि के भविष्य का निर्भर है। यदि यह आन्दोलन अकृत कार्य हुआ और महात्मा गाधी को सहायता नहीं मिली तो देश की स्वतन्त्रता का प्रश्न 50 वर्ष पीछे जा पडेगा। यह जाति के जीवन–मृत्यु का प्रश्न हो गया है। इसलिए मै इस काम मे शीघ्र ही लग जाऊँगा। यदि आपकी सम्मति मे इस काम मे लगने के लिये मुझे गुरुकुल या आर्य समाज के अन्य कामो से अलग होना चाहिये तो जैसा पत्र आप तजवीज करेगे मै पब्लिक मे भेज दूँगा। मै इस कार्य से रुक नहीं सकता, मुझे यह काम सर्वोपरि दीखता है।

आपका

श्रद्धानन्द

कलकत्ता अधिवेशन के पश्चात् महात्मा गाधी और स्वामी जी दोनो एक रात एक साथ नागपुर मे एक खिलाफत सम्मेलन मे गए थे। मौलाना लोग उस अवसर पर कुरान की जो आयते पढ रहे थे उनमे काफिरो को कत्ल करने तथा जिहाद के अनेक सन्दर्भ आए थे। स्वामी जी ने खिलाफत आन्दोलन के इस पहलू पर महात्मा गाधी का ध्यान खींचा। महात्मा जी का उत्तर था – "ये अग्रेज नौकरशाही की ओर सकेत करते है।" उत्तर मे स्वामी जी ने कहा – "यह सब अहिसा के विचार का उच्छेदक है और जब इनकी भावनाओ मे आकस्मिक प्रतिक्रिया होगी तो वे इन्हीं आयतो को हिन्दुओ के खिलाफ प्रयुक्त करने मे सकोच नहीं करेगे[46]।"

नागपुर मे स्वामी जी अस्वस्थ हो गये और स्वास्थ्य लाभ के लिए सीधे गुरुकुल कुरुक्षेत्र चले आए। वहा हालत नही सुधरी और बाद मे गुरुकुल कागडी आना पडा। अप्रैल, 1921 मे स्वास्थ्य लाभ होने पर मई के आरम्भ मे मोती लाल नेहरू की पुत्री विजय लक्ष्मी के विवाह मे सम्मिलित होने के लिये इलाहाबाद पहुँच गये। यहा महात्मा गाधी ने स्वामी जी को एक पत्र और तार दिखाया जो उन्हे मालवीय जी से मिले थे। पत्र एव तार का विषय यह था कि गाधी जी को राजनैतिक सुधारो के लिये शिमला जाकर लार्ड रीडिग से मिलना चाहिए। स्वामी जी ने गाधी जी को परामर्श दिया कि वे काग्रेस कार्यकारिणी की सम्मति लिये बिना न जाए। स्वामी जी ने लार्ड रीडिग से भेट हेतु मना करने के जो कारण बताये थे, वे 'मॉडर्न रिव्यू' मे प्रकाशित हुए थे। स्वामी जी का परामर्श अनसुना कर दिया गया। स्वामी जी ने महात्मा गांधी की इस भूल को 'हिमालय के तुल्य' भूल माना[47]।

गांधी जी की नीतियों की आलोचना

17 अगस्त, 1921 को स्वामी जी दिल्ली पहुँचे और वहा अस्पृश्यता–निवारण के कार्य मे आने वाली बाधाओ की समीक्षा की और यह पाया कि काग्रेसी मुसलमान इस कार्य मे बाधक बन रहे हैं। इस सकटावस्था मे स्वामी जी ने 9 सितम्बर, 1921 को महात्मा गाधी को निम्न लिखित पत्र लिखा–

दिनाक 9 सितम्बर, 1921

आदरणीय महात्मा जी,

मैने लाहौर से आपको तार दिया था जिसमे आपको सूचित किया था कि मै दिल्ली प्रान्तीय काग्रेस कमेटी के माध्यम से आर्थिक सहायता के लिये प्रार्थना करुँगा। लेकिन दिल्ली पहुँचने पर अनुभव हुआ कि काग्रेस के माध्यम से दलित जातियो का उत्थान करना दुष्कर है। दिल्ली तथा आगरा के चमार केवल इतना ही चाहते है कि हिन्दू एव मुसलमान दोनो द्वारा प्रयुक्त कुओ से उन्हे भी पानी भरने दिया जाय और हिन्दुओ की प्याउओ से उन्हे बॉस की नली और पत्तो से पानी न पिलाया जाय। केवल यही करना काग्रेस के लिए असम्भव हो रहा है। इतना ही नहीं, दिल्ली सदर के एक मुसलमान व्यापारी ने तो यहा तक कहने की जुर्रत की कि यदि हिन्दू इन्हे जनसाधारण के कुओ से पानी भरने दे तो भी मुसलमान उन्हे ऐसा करने से जबरदस्ती रोकेगे क्योकि चमार तो मुर्दा मास खाते है।

मै जानता हू कि हजारो चमार ऐसे है जो न शराब पीते है और न किसी प्रकार का मास खाते है। इनमे से कुछ जो मुर्दा मास खाते हे, आर्य समाजियो ने उनकी यह गन्दी आदत छुडवाई है। लेकिन मै यह पूछता हू कि क्या मासाहारी हिन्दू और मुसलमान जीवित प्राणियो का मास निगलते है। क्या वे भी इन जीवो का मास मरने के बाद नहीं खाते।

नागपुर मे आपने 12 मास मे स्वराज्य प्राप्त करने की शर्तो मे एक शर्त यह निर्धारित की थी कि दलितो को उनका अधिकार दिलाना है। परन्तु उनके उत्थान की पूर्णता की प्रतीक्षा किये बिना आपने यह घोषणा कर दी कि यदि 30 सितम्बर तक विदेशी वस्त्रो का बहिष्कार को पूरा कर लिया जाता है तो एक अक्टूबर को स्वराज्य एक उपलब्ध वास्तविकता के समान होगा। स्वदेशी वस्त्रो का प्रसार निश्चित रूप मे आवश्यक है किन्तु जब तक हमारे 6–1/2 करोड दलित जातियो के भाई ब्रिटिश नौकरशाही की शरण ले रहे है तब तक स्वदेशी का प्रसार भी असम्भव होगा।

अब मै अपनी सीमित शक्ति को दलित जातियो के उत्थान मे लगा देना चाहता हू। मै नही समझता कि इन तथाकथित अपने अछूत भाइयो के हमारे साथ मिले बिना प्राप्त किया स्वराज्य भारत राष्ट्र के लिये हितकारी सिद्ध होगा।

मैं यह पत्र आपको मात्र यह सूचना देने के लिए लिख रहा हू कि अब मै वर्किंग कमेटी से आर्थिक सहायता के लिए आवेदन नहीं करुँगा। मैं अपने सीमित साधनो से जो कुछ बन पडेगा, करुँगा।

मैं, आपका ध्यान अन्य अत्यावश्यक विषय की ओर दिलाना चाहता हू। आपने जलियावाला बाग की सभी भूमि खरीदने पर बल दिया है। यह किया जा चुका है। इस सौदे मे मेरी भी थोडी भागीदारी रही है। आपने अपने महान् प्रभाव से इस उद्देश्य के लिये धन–सग्रह किया। वह स्थान खरीद लिया गया है और शहीदो का उपयुक्त स्मारक बनाने के लिये लगभग अढाई लाख रूपया पडा है । किन्तु जलियावाला बाग के आहते की दशा से मै बहुत दु खी हुआ। मुझे यह बताया गया कि जब लार्ड रीडिग इस स्थान को देखने के लिये आये थे तो सरकार के एक उच्च यूरोपीयन अधिकारी ने कहा था कि इस स्थान पर हुये रक्तपात को लेकर भारतीयो मे कोई बडा रोष दिखाई नहीं पडता। यह तो कुछ आन्दोलनकारियो द्वारा उठाया गया हुल्लड है। क्या आप इस पर थोडा ध्यान देगे।

आपने जलियावाला स्मारक पर जोर दिया है। आपने उसको अधूरा छोडकर कलकत्ता मे अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन आरम्भ कर दिया। देश के अत्यधिक बहुमत ने आपके आदेश के

आगे सिर झुकाया। इस कार्यक्रम द्वारा आप नौकरशाही को अपग कर देना चाहते है। इस सबध मे पहली बात तो पदवियो को छोडने की बात है। इससे सरकार को ठप्प नहीं किया जा सकता। यदि हम सरकारी तथा अर्धसरकारी शिक्षण सस्थाओ से आधे विद्यार्थियो को भी बाहर निकालने मे सफल हो सकते तो कुछ प्राप्त कर सकते थे। मेरी विनम्र सम्मति मे इस आन्दोलन से हमे कुछ प्राप्त नहीं हुआ। इस सबध मे केवल बचा हुआ कार्य यह है कि हम नव स्थापित राष्ट्रीय शिक्षण सस्थाओ को स्थायित्व प्रदान करे और शिक्षण की एक राष्ट्रीय योजना तैयार करे। इसके लिये भडकाऊ आन्दोलन की आवश्यकता नहीं है। अगली बात यह है कि यदि तीन–चौथाई वकील और बैरिस्टर अपनी वकालत छोड देते, तो कुछ हलचल मच जाती। लेकिन इसमे भी कुछ सफलता नहीं मिली। जिन उच्च आत्मा वाले वकीलो ने अपनी वकालत छोडी, उन्होने राष्ट्र के राजनैतिक दृष्टिकोण को ऊँचा उठाने मे मदद की है। किन्तु इससे भी हम सरकार को ठप्प करने मे सफल नहीं हुए।

इसके बाद हम नागपुर अधिवेशन मे स्वराज्य प्राप्ति के लिये निर्धारित शर्तो को पूरा करने मे सफल नहीं हुए। आपकी विजय के जलूस आपको वास्तविक स्थिति से अवगत नहीं होने देते। विगत कुछ दिनो मे, मैंने पजाब तथा सयुक्त प्रान्त के द्वितीय श्रेणी के हिन्दू तथा मुसलमान नेताओ से बातचीत की है। इन्हीं नेताओ के हाथ मे जनता की बागडोर है। मैं जानता हू कि दोनो सम्प्रदायो के मध्य आपसी विश्वास मे कमी आई है। दक्षिण मे ब्राह्मणो और अब्राह्मणो का विवाद सुलझा नहीं है और दलित जातियो को आत्मसात् करने मे एक भी कदम नहीं उठाया है। आपने इस सबध मे जो किया है और बहुत कुछ किया है, यह प्रशसनीय है। परन्तु उसका प्रभाव शेष असहयोगियो ने मिटा दिया है।

इन सबकी उपेक्षा करके आपने विदेशी वस्त्रो के बहिष्कार को ही स्वराज्य–प्राप्ति का एक मात्र उपाय घोषित किया है। अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी ने पुन आपके निर्णय को नतमस्तक होकर स्वीकारा। विगत कुछ सप्ताहो मैं स्वदेशी वस्त्रो को लोकप्रिय बनाने मे बहुत कुछ किया गया है। इससे विदेशी वस्त्रो के आयात पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडा है। परच आपने पुन: घोषणा कर दी कि यदि 30 सितम्बर, 1921 तक विदेशी वस्त्रो का बहिष्कार पूरा नहीं होता तो स्वराज्य प्राप्ति की सम्भावना मे 12 मास और व्यतीत हो जायेगे।

उपर्युक्त तथ्यो पर दृष्टिपात यह दर्शाता है कि आपकी सोच है कि सविनय अवज्ञा तथा उसके परिणामस्वरूप करो की अदायगी को रोका जाता है तो हिंसा भडक उठने की सम्भावना है, और मैं भी इसकी सच्चाई मे विश्वास करता हू। किन्तु हमारे दृष्टिकोणो मे अन्तर है। आपकी मान्यता है कि जनसामान्य को इतना अनुशासित नहीं किया है कि वे अहिंसक रह सके जबकि मै सोचता हू कि यदि जन सामान्य अनुशासित भी हो जाये तो भी नौकरशाही के सच्चे आश्रितो द्वारा इतने भडकाये जायेगे कि जन साधारण का अहिसक रहना सम्भव नहीं होगा। शायद कराची के खिलाफत सम्मेलन ने एक गणतन्त्र स्थापित करने का प्रस्ताव पारित किया है, जिसे बम्बई मे मौलाना शौकत अली ने इस प्रकार के शब्दो मे समर्थित किया है – जब तक सरकार खिलाफत के विषय तथा पजाब की शिकायतों को नहीं सुलझाती तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के आगामी अहमदाबाद अधिवेशन मे आजादी का परचम फहरा देगे। क्या स्वराज्य की समस्या को सुलझाने की यह उचित प्रक्रिया है?

साढे छः करोड तथाकथित अछूत आपसे अलग हो गए हैं। मद्रास के अब्राह्मण आपके कट्टर विरोधी हैं। प्रतिभा के ठेकेदार लोग, नरम दलीय ये सब सरकार के समर्थक ही नहीं है अपितु उससे

दस कदम आगे जाने वाले है। उत्तर भारत के लोग दक्षिण भारत वालो से भिन्न हैं। आप जो भी आदेश दे, उसका बिना ननुनच के 25 दिसम्बर, 1921 (काग्रेस अधिवेशन के आरम्भ होने से एक दिन पूर्व) तक अवश्य पालन होना चाहिए। यदि उस दिन तक वह स्वराज्य प्राप्त नहीं होता जिसके लिये लोगो ने दीप्तिमान बलिदान किये है तो आपको भावी कार्यक्रम की योजना लेकर तैयार रहना चाहिए। किन्तु सम्भव है कि आपकी दिव्यदृष्टि ने यह सब देख लिया है, जो जन साधारण से छिपा है।

आपका शुभचिन्तक

श्रद्धानन्द सन्यासी

उपर्युक्त पत्र के तेवर यह दर्शाते है कि नीतियो के सम्बन्ध मे स्वामी जी महात्मा गाधी की आलोचना करने से भी नहीं कतराते थे। यही आलोचना आगे चलकर शनै शनै मतभेदो के ऐसे बिन्दुओ पर पहुच गई कि स्वामी जी को काग्रेस से ही अलविदा कहनी पडी। गाधी जी का स्वराज्य प्राप्ति का नया नारा 'विदेशी वस्त्रो के बहिष्कार' का था। 1902 ई0 मे गुरुकुल कागडी का भार सम्भालने से बहुत पहले ही स्वामी जी ने स्वदेशी को अपना लिया था। इसलिये विदेशी वस्त्रो का बहिष्कार उनके लिये कोई नई वस्तु नहीं थी। किन्तु जब महात्मा गाधी ने सारे विदेशी वस्त्रो को जला डालने का आदेश दिया और जब यह कार्य बम्बई मे एक बडे प्रदर्शन के रूप मे किया जाने वाला था तो स्वामी जी ने महात्मा जी को तार भेजकर कहा कि "वे ऐसा करके विदेशियो के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न न करे तथा उतारे गये विदेशी वस्त्रो को भारत के भूखे तथा नगे लोगो मे बाटने की आज्ञा दे दे[48]।" महात्मा गाधी के विदेशी वस्त्रो के बहिष्कार के सम्बन्ध मे दिये प्रेस वक्तव्य से स्वामी जी सन्तुष्ट हो गए। इधर विदेशी वस्त्रो को जलाना भारतवासियो का धार्मिक कर्तव्य है, यह सोचकर देश के चोटी के नेताओ ने हजारो रुपये के मूल्य के वस्त्रो की होली जलाई तो उधर खिलाफत वाले मुसलमानो ने महात्मा जी से यह आज्ञा ले ली कि वे विदेशी वस्त्रो को अपने तुर्की भाइयो के लिये बाहर भेज सकेगे।

स्वामी जी के लिये महात्मा गाधी का यह दोहरा आचरण एक भयानक आघात के समान था। स्वामी जी के अनुसार महात्मा जी हिन्दू भावनाओ के प्रति किचिन्मात्र भी सम्मान न दिखाकर कठोर रुख अपना लेते थे तथा मुसलमानों के द्वारा स्वकर्तव्य के प्रति लापरवाही दिखाने पर भी उनके हृदय मे उनके प्रति कोमल भावना रहती थी। तुर्की की राजधानी अकारा मे विदेशी वस्त्र भेजने का मुसलमानो मे इतना उत्साह था कि स्वामी जी की अनुपस्थिति मे उनके मकान पर जलाने के लिये एकत्र किये गये विदेशी वस्त्रो को भी उठा ले गए। स्वामी जी महात्मा गाधी के इस विचित्र आचार शास्त्र को समझने मे असमर्थ रहे कि जिन वस्त्रो से इस देश के लाखो गरीबो के नगेपन को ढका जा सकता था, उन्हे इससे वचित करना तथा उन्हीं कपडो को दूरस्थ देश मे भेजने की क्या तुक है?

हताशा की स्थिति में गुरुकुल से त्याग पत्र

इधर महात्मा जी के साथ स्वामी जी उलझे हुये थे, तो उधर गुरुकुल के सम्बन्ध मे आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब के अधिकारो को लेकर स्वामी जी और सभा मन्त्री महाशय कृष्ण के मध्य विवाद अखबारो की सुर्खियो मे झाकता दिखाई दे रहा था। स्वामी जी के साथ की गई समझौते की शर्ते प्राय तोड दी गई थीं। महाशय कृष्ण अपनी तूती द्वारा बोल रहे थे कि अभी गुरुकुल के उद्देश्य निश्चित होने को हैं। महाशय कृष्ण की गुरुकुल विरोधी गतिविधियो को देखते हुए आर्य समाजी क्षेत्र मे विरोधी प्रतिक्रिया होनी निश्चित थी। सर्वप्रथम इस विषय मे गुरुकुल के सहायक मुख्याधिष्ठाता इन्द्र ने 9 माघ, 1977 के श्रद्धा के अक मे लिखा कि "कोई अनजान यदि ऐसी बात

कहता तो दु ख न था, पर दु ख तो यह है कि गुरुकुल कागडी के उत्सव से तीन मास पूर्व, जबकि आर्य पुरुष गुरुकुल के लिये चन्दा जमा करने की तैयारियो मे थे, 'प्रकाश' के सम्पादक महाशय कृष्ण ने आर्य जनता को यह बतलाकर बहकावट मे डाल दिया है कि गुरुकुल का उद्देश्य अभी निश्चित होने को है। जब महाशय कृष्ण ने इतनी अनभिज्ञता प्रकट की तो क्या आश्चर्य था कि 'आर्य गजट' को गुरुकुल के सबध मे बहुत कुछ लिखने का अवसर मिल गया ('आर्य गजट' के लेख की उपेक्षा हो सकती है पर महाशय कृष्ण की भूल की उपेक्षा नहीं की जा सकती।" इसी लेख मे महाशय कृष्ण से प्रार्थना की गई थी कि गुरुकुल पर समाचार पत्रो मे तिरछे वार करना छोड कर प्रतिनिधि सभा अथवा अन्तरग सभा मे गुरुकुल के उद्देश्य का प्रश्न उपस्थित करके उसका निबटारा करवा ले। पर 'प्रकाश' के सम्पादक ने तिरछे वार बन्द नहीं किए। महाशय कृष्ण और रामदेव के प्रति आर्य समाजियो ने निन्दा के प्रस्ताव पारित करने आरम्भ कर दिए।) स्वामी जी ने इस प्रवृत्ति को घातक समझ कर रोका और जिन आर्य समाजो ने प्रस्ताव पारित कर दिये थे उन्हे लिखा कि "यह जानकर दु ख हुआ कि आपके आर्य समाज की अन्तरग सभा ने महाशय कृष्ण पर मेरे कारण 'मलामत का वोट' पास किया है। ये सज्जन आर्य समाज की दिल से सेवा कर रहे हैं। यदि ये सच्चे दिल से मेरे अमल को आर्य समाज के लिए हानिकारक समझते है तो क्यो न मेरे विरुद्ध लेखनी उठावे? यदि मेरा अपराध न होगा तो मुझे कोई जोखम नहीं और यदि सचमुच मेरा अपराध है तो उससे लोगो को सावधान रहना चाहिए महाशय! आर्य समाज मे पहले ही काम करने वाले कम है। आप क्यो श्रेष्ठ काम करने वालो को धर्म–सेवा से उदासीन करने का पाप अपने सिर पर लेते है और जिन कठोर वचनो का आपने प्रयोग किया है, उन्हे लौटा लीजिए[43]।"

अन्त मे स्वामी जी ने 9 ज्येष्ठ, 1978 वि0 को दिल्ली से सभा प्रधान को लिखा कि "मेरे विरुद्ध जो– फैलना था, वह फैल चुका है और आगे भी गुप्त रीति से फैलेगा, वह भी फैलता रहे। मै नोटिस नहीं लूगा। अब तो लाहौर भी नहीं जाऊँगा। न कुछ सभा को सुनाऊँगा। गुरुकुल से जो त्याग पत्र भेजा था, बल्कि जिस पर अमल कर छोडा है, काफी समझता हूँ। आपकी सभा से अब मेरा सम्बन्ध समाप्त हुआ। अब सन्यासी स्वनिर्मित सस्था के मोहपाश से मुक्त थे। इस प्रकार इस बार भी गुरुकुल के अलग होने की कहानी पहली कहानी की ही पुनरावृत्ति है। परन्तु पहली कहानी का नायक महात्मा मुशीराम सन्यास लेने पर भी हतोत्साह नहीं था। गुरुकुल से विदाई प्रेममय थी, उसमे खिन्नता के स्थान प्रसन्नता, सम्बन्ध तोडने की अपेक्षा सम्बन्ध जोडने की पुनीत भावना थी। परन्तु दूसरी बार की कहानी का नायक स्वामी श्रद्धानन्द हताश और निराश स्थिति मे विदाई ले रहा था। उसके असिद्ध स्वप्नो की माला के दाने बिखर गए थे। इस बार का स्वामी पुराने अनुभवो से कुछ नहीं सीख सका। वह गुरुकुल मे आने पर वर्तमान की दीवार पर लिखी इबारत को नहीं पढ सका और अपने आपको सर्वेसर्वा समझ कर कार्य सीमाए पार करने लगा। परिणाम सामने आया और 'अपने ही कूचे से अपमानित होकर' निकलना पडा। इसको नियति कहे, या स्वामी जी की प्रकृति कहे या समाज की विकृति कहे, कुछ समझ मे नहीं आता। लेकिन जो कुछ भी हुआ, वह आर्य समाज के क्षेत्र के लिए दुर्भाग्यपूर्ण था।

गुरुकुल से विदाई लेने के पश्चात उडाने भरने के लिए स्वामी जी के पास काग्रेस का विस्तृत आकाश था। इस आकाश का ओर–छोर स्वामी जी द्वारा परखा और पहचाना हुआ था। इस आकाश के ध्रुव तारे महात्मा गाँधी के सप्तर्षियो मे से स्वामी जी एक थे। इस ध्रुव तारे के भारतीय आकाश मे उदित होने से पूर्व ही पत्राचार के माध्यम से गाँधी जी से 'भाई साहेब' का नाता जुड चुका था। काग्रेस के असहयोग आन्दोलन की प्रात कालीन लाली मे एक भगवावेशधारी सन्यासी की लाली भी मिल गई थी।

युवराज के बहिष्कार की योजना

3–4 नवम्बर, 1921 को दिल्ली मे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की बैठक बुलाई गई। इस कमेटी की बैठक मे सविनय अवज्ञा आन्दोलन की शर्ते तय कर ली गई और महात्मा गाँधी को बारदोली तालुका मे सविनय अवज्ञा के आन्दोलन को जारी करने की तैयार के लिये आज्ञा दे दी गई। इसी समय 7 और 8 नवम्बर को हिन्दुओ के एक विशेष सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन मे सरकार के विरुद्ध काग्रेस द्वारा स्वीकृत अहिंसात्मक असहयोग के कार्यक्रम को इसलिए चलाने के लिए कहा गया था क्योकि सरकार ने हिन्दुओ द्वारा की गई गोरक्षा–विषयक–प्रार्थनाओ को अनसुना कर दिया था। इस सम्मेलन मे पारित प्रस्तावो मे कहा गया था कि "चूंकि ब्रिटिश युवराज का आगमन ब्रिटिश सरकार की शक्ति को बढाने का कारण बनेगा। अत प्रत्येक हिन्दू का यह धार्मिक कर्तव्य है कि वह युवराज की भारत यात्रा का पूर्ण बहिष्कार करे। उसे विदेशी वस्तुओ का भी बहिष्कार करना चाहिए और शुद्ध स्वदेशी धारण करना चाहिए। फौजी छावनियो मे लाखो गाये प्रतिवर्ष काटी जाती हैं, इसलिये भी हिन्दू को पुलिस और सेना में विशेषतया और विभागो मे सामान्यतया नौकरी नहीं करनी चाहिए।

उपर्युक्त प्रस्तावो के क्रियान्वयन के लिये जो उपसमिति गठित की गई स्वामी जी को उसका अध्यक्ष नियुक्त किया गया। आर्य समाज के क्षेत्र से तिरस्कृत हुए सन्यासी की कार्यक्षमता, राजनैतिक स्थिति और हिन्दू समुदाय पर प्रभाव को देखते हुए ही हिन्दू महासभा ने अवसर का लाभ उठाया। इससे स्वामी जी को यह लाभ हुआ कि हिन्दू महासभा मे प्रविष्ट होने के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया। अब स्वामी जी काग्रेस और हिन्दू महासभा नामक दोनो ही घोडियो के सवार थे।

कांग्रेसी मुसलमानों की हिन्दू विरोधी मानसिकता

17 नवम्बर, 1921 को बम्बई मे प्रिस आफ वेल्स (ब्रिटिश युवराज) आ गए और एक भीषण दगा हो गया। इस अवसर पर स्वामी जी 22 नवम्बर को होने वाली काग्रेस की कार्यसमिति मे भाग लेने बम्बई के लिए चल पडे। गाँधी जी ने बम्बई के दगे मे काग्रेस के असहयोगी आन्दोलन के समर्थक व्यक्तियो की सलिप्ता को स्वीकारते हुए अपने साथियो की निन्दा की और अनशन करके सत्याग्रह आरम्भ करने की धमकी दे दी। परिस्थिति की स्पष्टता के लिए स्वामी जी ने 1 दिसम्बर को महात्मा गॉधी जी से यह जानना चाहा कि क्या उन्होने स्वय अपनी ऑखों में असहयोग आन्दोलन के समर्थको को दगे मे सम्मिलित होते देखा था। गॉधी जी का उत्तर स्पष्टत हा मे था। गाँधी जी के उत्तर के प्रत्युत्तर मे स्वामी जी ने स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा कि "गाधी टोपी तथा खद्दर के वस्त्र पहने हुये दगाई काग्रेसी न होकर सी0आई0डी0 के आदमी थे। स्वामी जी की यह टिप्पणी 'टाइम्स आफ इण्डिया' नामक समाचार की सूचना के आधार पर थी। देश की राजनैतिक परिस्थिति की नौबत यहा तक पहुच गई थी कि गाँधी जी निराश हो चुके थे और काग्रेस का विश्वांस भी हिल चुका था। लेकिन सरकार ने 'क्रिमिनल एमेण्डमेन्ट एक्ट' लगाकर लोगो को चुनौती दे दी। गाँधी जी के पक्ष मे लोगो का एक बार और झुकाव हो गया। स्वामी जी ने उन लोगो का साथ देना उचित समझा जो सरकार को चुनौती दे रहे थे।

इसके पश्चात् स्वामी जी दिसम्बर, 1921 के अन्त मे होने वाले अहमदाबाद काग्रेस अधिवेशन मे भाग लेने के लिए चले गये। इस अधिवेशन के समय राजनैतिक उत्साह अपनी चरम सीमा पर था और हिन्दू–मुस्लिम एकता का बाहय प्रदर्शन चरम बिन्दु पर पहुचा हुआ था। इस अधिवेशन मे स्वामी जी ने अनुभव किया कि काग्रेस की हिन्दू–मुस्लिम एकता कितनी खोखली है। कार्य समिति मे हिन्दुओ पर मोपलाओ द्वारा किये गये अत्याचारो की निन्दा का प्रस्ताव आया तो यह प्रस्ताव सर्वसम्मति

से पारित नही हो सका। कट्टर राष्ट्रवादी मुसलमान सदस्यो तक ने यह कहा कि मोपलाओ के शत्रु हिन्दू लोग अग्रेजी सरकार से मिले हुए है। इसलिए यदि मोपलाओ ने हिन्दुओ को कुरान या तलवार मे से एक को चुनने के लिए कहा तो क्या गलत था? और यदि अपने को मौत से बचाने के लिए हिन्दू लोग मुसलमान भी बन गए तो यह तो स्वैच्छिक धर्म–परिवर्तन ही था, इसे बलात् परिवर्तन नहीं कहा जा सकता[50]। उपर्युक्त वक्तव्य से स्वामी जी को निश्चय हो गया कि मुसलमानो का हिन्दुओ के प्रति द्वेषभाव दृढ मूल है और कट्टर राष्ट्रवादी मुसलमान भी इससे अछूते नहीं है। अहमदाबाद अधिवेशन मे महात्मा गॉधी को सविनय अवज्ञा आन्दोलन का प्रथम सर्वाधिकारी घोषित कर दिया गया। उन्हे यह अधिकार भी दिया गया कि यदि वे गिरफ्तार हो जाये तो वह अपने उत्तराधिकारी की घोषणा स्वय कर सकेगे। स्वामी जी महात्मा जी को सर्वाधिकारी बनाने के पक्ष मे तो थे लेकिन उनके द्वारा उत्तराधिकारी की नियुक्ति करने के समर्थक नही थे। वे चाहते थे कि यह नियुक्ति कार्यकारिणी द्वारा होनी चाहिए। किन्तु महात्मा जी की इच्छा के आगे स्वामी जी को झुकना पडा।

गॉधी जी से मतभेद के कारण

अहमदाबाद के अधिवेशन से पूर्व तक के काग्रेस के कार्यक्रमो मे महात्मा गॉधी से मतभेद होने पर प्राय स्वामी जी व्यक्तिगत सम्पर्क अथवा पत्र–व्यवहार द्वारा अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते रहते थे। अहमदाबाद अधिवेशन के पश्चात् सर्वाधिकारी बनने पर महात्मा गाधी के प्रति स्वामी जी के मानसिक दृष्टिकोण मे परिवर्तन आया। इस परिवर्तन को उन्होने व्यक्तिगत अथवा पत्राचार द्वारा प्रकट न करके बम्बई के समाचार पत्रो मे प्रकाशनार्थ भेज दिया। स्वामी जी की मानसिक परिवर्तन की प्रतिक्रिया कितनी तीव्र थी इसका परिचय प्रकाशनार्थ भेजे गए निम्न वक्तव्य से प्रकट होती है–

अखिल भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की कार्य समिति अभी तक निर्माणाधीन है, तथापि महात्मा गाधी ने उन लोगो के दृष्टिकोण के आधार पर अपने मत को प्रकट करना उचित समझा है जो लोग वर्तमान क्षण मे ही भारतवासियो की आकाक्षाओ के लक्ष्य के रूप मे पूर्ण स्वराज्य पर जोर देते है। सम्भवत महात्मा जी सोचते हैं कि उनके लिए डिक्टेटर की समस्त शक्तिया ग्रहण करने का समय आ गया है। यही आशका उन्हे तथा कतिपय अन्यो को अहमदाबाद मे पीडित कर रही थी। यदि महात्मा जी बडी चतुराई से उन लोगो को अपने सशोधनो को वापिस ले लेने के लिए मना नहीं लेते, जिन्होने डिक्टेटरो की नियुक्ति के सम्बन्ध मे अपने सशोधन रखे थे, और यदि उन्होने इन लोगो को पूर्ण प्रस्ताव पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करने के लिए न कहा होता तो खुले अधिवेशन मे सशोधन रखे जा सकते थे, किन्तु वे जानते थे कि ऐसा होना असम्भव है। महात्मा जी से अहिसक असहयोग के अनेक पहलुओ पर मेरा मतभेद है क्योकि मै यह मानता हू कि समस्त आन्दोलन का सार तत्व ही मन, वचन और कर्म की अहिसा है तथा हिन्दू शास्त्रो को मूल रूप मे पढे बिना ही हिन्दू धर्म के सिद्धान्तो पर अपने व्यक्तिगत विचारो को ही प्रामाणिक रूप मे मनवाने की उनकी धृष्टता की निन्दा करता हू। फिर भी मैने उनके साथ काम किया है क्योकि मेरे विचार मे इस समय उनके इस आन्दोलन मे ही हमारी मातृभूमि की मुक्ति निहित है। तथापि उनके दैवी चरित्र के प्रति अपना सम्पूर्ण आदर तथा श्रद्धाभाव रखने पर भी मै 'यग इण्डिया' के 5 जनवरी, 1922 के अक मे प्रकाशित उनकी विज्ञप्ति के विरोध मे अपना प्रतिवाद प्रकाशित किए बिना नहीं रह सकता।"

स्वामी जी का गॉधी जी से मतभेद दो मुख्य बातो को लेकर था। प्रथम बात महात्मा गॉधी द्वारा अपने आन्दोलनो मे प्रयुक्त विधियो से सम्बन्धित थी और दूसरी बात महात्मा जी का अपने नेतृत्व मे तानाशाही रवैया थी। मतभेद की सर्वप्रथम झलक 14 मई, 1920 को गॉधी जी के नाम लिखे पत्र मे दिखाई पडती है। विषय की दृष्टि से यह मतभेद अस्पृश्यता और मुसलमानो के रूप मे था।

अहमदाबाद मे स्वामी जी ने अपने आर्य भाइयो के आग्रह करने पर 20 जनवरी तक आर्य समाज सम्बन्धी उत्सवो तथा अन्य धार्मिक कार्यक्रमो के लिए समय देना स्वीकार कर लिया था। वहा से दिल्ली वापिस आने पर स्वामी जी ने अधूरे पडे 'शहीद स्मारक फण्ड' के कार्य को अपने हाथो मे लिया। स्वामी जी हिन्दुओ से धन सग्रह का काम पहले ही पूरा कर चुके थे, अब मुसलमानो से चन्दा लेना शेष था। लेकिन डा० एम० ए० असारी ने काग्रेस से सहानुभूति रखने वाले मुसलमानो से कह दिया कि जब तक अकोरा फण्ड (तुर्की के मुसलमानो की सहायता के लिए) के लिए एक लाख रुपया इकट्ठा न हो जाये, तब तक वे स्वामी जी की अपील की उपेक्षा करे।

इसके बाद स्वामी जी ने दिल्ली काग्रेस के अध्यक्ष डा० असारी से 'क्रिमिनल एमेण्डमैन्ट एक्ट' के विरोध मे सत्याग्रह करने की आज्ञा मागी। लेकिन डा० असारी ने नये स्वयसेवको की एक निश्चित सख्या की भर्ती को पुन उन्हे टुकडियो मे बाटने की बात और नायको को नियुक्ति आदि का बहाना बनाकर स्वामी जी को सत्याग्रह करने से रोक दिया। किन्तु दिल्ली की महिला स्वय सेविकाओ ने नागरिको को प्रेरणा दी कि प्रिस आफ वेल्स के दिल्ली आगमन पर नगर मे पूर्ण हडताल की जानी चाहिए। स्वामी जी ने इस अवसर पर हिन्दू गोरक्षिणी सभा के अध्यक्ष के नाते प्रिस के आगमन पर हडताल करने की प्रेरणा देने वाले पोस्टरो को जन समान्य मे वितरित करवाया। इसके अतिरिक्त प्रैस द्वारा गौघातको के पुश्तपनाह, प्रिस के स्वागत से अलग रहने को हिन्दू मात्र को सलाह दी। हिन्दू विश्वविद्यालय के सचालक पण्डित मदन मोहन मालवीय से भी प्रेस द्वारा प्रश्न किया कि जिस प्रिन्स के साथ मनो गौमास जहाज के द्वारा कई दिनो के भोजन के लिये आया है, उसको किस मुह से हिन्दू सस्था की ओर से उपाधि देने के लिये बुला रहे हो। इस अवसर पर दिल्ली काग्रेस कमेटी कुम्भकर्णी नीद मे सोई रही। इस स्थिति मे दिल्ली काग्रेस के नेताओ से खिन्न स्वामी जी ने महात्मा जी को निम्न पत्र लिखा–

दिल्ली, 7 फरवरी, 1922

आदरणीय महात्मा जी,

मै आज पुन आपको पत्र लिख रहा हू। मैने आप द्वारा वायसराय को लिखा पत्र पढा है। यदि बारदोली मे सत्याग्रह की पूरी तैयारी नहीं है तो मै नहीं समझ पाता कि इसके लिए इतनी शीघ्रता क्यो की जा रही है। इसकी तुलना मे दिल्ली सामूहिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन के लिए न्यूनतम रूप मे तैयार नहीं है। मैने वायसराय का उत्तर भी पढा है। वह भ्रामक तर्को से परिपूर्ण है। उसे अपनी सैनिक शक्ति पर विश्वास है।

मैं, यहा युवराज के आगमन तक ठहरुगा। यहा के नेता घरो से बाहर नहीं निकलना चाहते है। शराब और नशीली दवाओ के ठेके नीलाम हो चुके हैं। इससे कोई हलचल नहीं हुई। मैने हिन्दू सभा की ओर से पूर्ण हडताल करने के पोस्टर बाटे हैं, किन्तु जब तक प्रदेश और जिला काग्रेस कमेटियो के अध्यक्ष अपनी स्वीकृति नहीं देते तब तक कुछ भी नहीं हो सकता।

यहा सरकार की दमनात्मक नीतियो का विरोध करने के लिए कोई कार्य नहीं हो रहा है। महिलाये जुलूस बनाकर जाती हैं जबकि पुरुष घरो मे मुँह छुपाये बैठे है। इसलिए मै इस कार्य मे सफल नहीं हो सकता। सामूहिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन का मुख्य विषय करो को न देने के लिए लोगो को तैयार करना है। परन्तु दिल्ली के लोगो को न तो खद्दर पहनने के लिए, और न चरखा कातने और करघो पर बुनने के लिए तैयार किया गया है। अछूतो के प्रति घृणा के भावो को दूर

करने मे भी काग्रेस को सफलता नहीं मिली है। शान्त वातावरण की सम्भावना की चर्चा करना तो निरर्थक ही है। इसके अतिरिक्त असहयोग की शेष बचे विषयो से भी मै असहमति रखता हू।

इन्हीं कारणो से मै 15 या 16 फरवरी, 1922 को दिल्ली से चल पडूगा और आर्य समाज का इतिहास लिखने का काम हाथ मे लूगा। ईश्वर पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने मे उसी प्रकार आपके सहायक हो जिस प्रकार आपके द्वारा भारत के लोगो मे सत्य, निर्भीकता की भावना भरने मे सहायक हुए थे। यही मेरी विनम्र प्रार्थना है।

मै वायसराय को लिखे आपके पत्र के अन्तिम भाग से सहमत नहीं हू, जिसमे आपने नवीन मागे प्रस्तुत की है। इसका अभिप्राय यही होगा कि पारस्परिक समझौता नहीं हो सकता है।

आपका शुभचिन्तक

श्रद्धानन्द सन्यासी

'चौरीचौरा काण्ड' महात्मा गॉधी द्वारा चलाए जाने वाले अहिसक आन्दोलन मे एक वज्रपात की भॉति आया। स्वामी श्रद्धानन्द के मन्तव्य के अनुसार इसकी प्रतिक्रिया इतनी भीषण नहीं हुई होती, यदि असहयोग आन्दोलन की घोषणा तुरही नाद के साथ महात्मा गाधी जी द्वारा नही की जाती। साबरमती के आश्रम बारदौली के लिए प्रस्थान करने से पूर्व महात्मा जी ने साबरमती नदी के किनारे पर सवा लाख से अधिक लोगो को सम्बोधित किया था। इस सम्बोधन मे लंगोटी धारण करने वाला जनता का बेताज बादशाह कह उठा "मै चाहता हू कि गुजरात मे कई जलियावाला बाग जैसे काण्ड हो। मै चाहता हू कि अग्रेजो की गोलियो से मेरी मौत हो। मै चाहता हू कि अग्रेज की गोलियो से बहुसख्यक गुजराती मारे जाये इत्यादि।"

स्वामी श्रद्धानन्द के अनुसार महात्मा गाधी के उपर्युक्त भाषण का सार पाच वाक्यो के तार द्वारा इधर–उधर पहुचा, तो सारा देश उत्तेजित हो उठा[61]। इस काण्ड के विषय मे स्वामी जी ने महात्मा जी को निम्न तार भेजा–

"चौरीचौरा काण्ड अत्यन्त भयानक है। कृपया आक्रामक प्रचार बन्द करे। दिल्ली मे अखिल भारतीय काग्रेस की बैठक बुलाये। नवीन कार्यक्रम बनाये[60]।"

श्रद्धानन्द सन्यासी

बारदोली मे 11 फरवरी, 1922 को कार्यकारिणी की बैठक बुलाकर एक प्रस्ताव पारित किया गया कि "सार्वजनिक स्तर पर सविनय अवज्ञा आन्दोलन तब तक स्थगित रखा जाएगा, जब तक कि वातावरण इतना अहिंसक न बन जाये, ताकि गोरखपुर (चौरीचौरा) मे घटित अत्याचारपूर्ण घटनाओ की पुनरावृत्ति न हो तथा 17 नवम्बर, 1971 और 13 जनवरी, 1922 को क्रमश बम्बई और मद्रास मे घटी गुण्डागर्दी की घटनाए फिर न घटे।"

उपर्युक्त प्रस्तावो की सपुष्टि के लिए दिल्ली मे 24 और 25 फरवरी, 1922 को अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की बैठक आमन्त्रित की गई। दिल्ली की बैठक मे बारदोली प्रस्ताव के विरुद्ध बुलन्द आवाजो को सुनकर महात्मा गाधी को कुछ सशोधनो के साथ प्रस्ताव स्वीकार करना पडा। स्वामी जी ने भी एक सशोधन रखा था, जो इस प्रकार था–

(1) आज के परिवर्तित प्रस्ताव के आगे यह अश बढाया जाये – "अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी यह निर्णय लेती है कि काग्रेस सगठन के बाहर के लोगो द्वारा की गई किसी भी हिसा के

लिए वह उत्तरदायी नहीं होगी तथा यदि काग्रेस का कोई सदस्य व्यक्तिगत रूप मे दोषी पाया जाता है तो उसे काग्रेस कमेटियो तथा अन्य सम्बन्धित सस्थाओ से बहिष्कृत कर दिया जायेगा। यदि उपर्युक्त सशोधन अस्वीकृत कर दिया जाता है तो मै प्रस्ताव रखता हू–

(2) सविनय अवज्ञा आन्दोलन चाहे वह व्यक्तिगत हो या सामूहिक, समाप्त कर दिया जाए[63]।"

काग्रेस के मन्त्री बिट्ठल भाई ने स्वामी जी को अपना सशोधन वापिस लेने के लिए तर्क सहित मनाने का प्रयास किया। अन्त मे अपनी असफलता को देखकर वे स्वामी जी को महात्मा गाधी के पास ले गये। महात्मा गाधी द्वारा प्रस्तुत युक्तियॉ भी स्वामी जी को सशोधन वापिस लेने मे कारगर सिद्ध नहीं हुई। अन्त मे महात्मा गाधी ने आत्मीयता का सहारा लेते हुए कहा कि "कमेटी मे कोई भी व्यक्ति आपका समर्थन नहीं करेगा और मुझे उस समय बडी शर्म महसूस होगी जब मैं देखूँगा कि मेरे भाई साहब का सशोधन समर्थन के अभाव मे ठुकरा दिया गया है।" गाधी जी की बात सुनकर स्वामी जी ने उत्तर देते हुए कहा – "महात्मा जी! आत्मा की आवाज पर चलने का एकाधिकार अकेले आपको ही नहीं मिला है। मैं अपने विवेक के अनुसार कार्य करता हू और ऐसा करते समय यदि मै केवल एक के अल्पमत से रह जाऊँ, तो भी मैं अपने सिद्धान्त पर दृढ रहने मे आपका ही अनुसरण करुँगा।" परन्तु इतना सुनने पर भी महात्मा जी चाहते थे कि स्वामी जी अपना सशोधन वापिस ले ले। महात्मा गाधी के मनोभाव को जानकर स्वामी जी ने पूछा – क्या उनका अडे रहना कमेटी के कार्य मे बाधक होगा। गाधी जी का सक्षिप्त सा उत्तर था "हमको मिटिग मे हरकत होगी।" गाधी जी के इस उत्तर से स्वामी परास्त हो गए और उन्होने खुले अधिवेशन मे अपने सशोधन को वापिस लेने का वचन दिया किन्तु साथ मे यह भी कहा कि इसके बाद काग्रेस के कार्य से मेरा कोई वास्ता नहीं रहेगा[64]। इसके बाद अपने साहित्यिक कार्य को पुन आरम्भ करने के लिए गुरुकुल कुरुक्षेत्र चले गए और 12 मार्च, 1922 को औपचारिक त्याग पत्र भेज दिया। त्याग पत्र का मूल पाठ इस प्रकार था–

"मै कल दिल्ली से कुरुक्षेत्र के लिए प्रस्थान कर रहा हू और निकट भविष्य मे काग्रेस के किसी विचार–विमर्श मे भाग नहीं ले सकूँगा। मै मानता हू कि महात्मा गाधी द्वारा प्रतिपादित उच्च आदर्शो के अनुकूल शान्त और अहिंसायुक्त वातावरण भारतीय जनता मे उत्पन्न किया जाना फिलहाल असम्भव है, इसलिए इस धारणा से सहमत होना भी कठिन है कि निकट भविष्य मे कानूनो की सविनय अवज्ञा का आन्दोलन चलाया जा सकेगा। ऐसा मानना मेरी आत्मा के प्रतिकूल होगा। इसके अतिरिक्त, असहयोग विषयक प्रचार के कुछ बिन्दुओ के सम्बन्ध मे कार्य समिति की धारणा से मेरे दृष्टिकोण मे भिन्नता है। इसलिए मै काग्रेस सगठन के सभी पदो से अपना त्याग पत्र देता हू। सम्भवत यह कहा जायेगा कि अब तक की नौकरशाही के हाथो ने महात्मा जी को हमसे छीन लिया है, (महात्मा जी कैद कर लिये गये थे) तो मुझे अपने मतभेदो को भुला देना चाहिए। किन्तु अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की बैठक मे अपने सशोधन को वापिस लेते समय मैंने महात्मा जी से स्पष्टतया कह दिया था कि अपने विश्वासो के अनुरूप मैं अब इस काग्रेस सगठन के कार्यभारी के रूप मे काम नहीं कर सकता। अब मै यदि कोई काम अपना कर्तव्य समझ कर करुँ और साथ–साथ काग्रेस मे भी रहूँ, तो यह न तो महात्मा जी न स्वय के प्रति ही सत्याचरण होगा।"

स्वामी जी के त्याग पत्र के सम्बन्ध मे महात्मा गाधी ने डा0 असारी द्वारा एक सन्देश भेजा कि उन्हे त्याग पत्र स्वीकार किये जाने के लिए जोर नहीं देना चाहिए। इसके पश्चात् स्वामी जी बटाला मे दिनाक 28 से 30 अप्रैल तक सम्पन्न होने वाली पजाब काग्रेस की काफ्रेस मे भाग लेने चले गए। इस काफ्रेस मे बिट्ठल भाई पटेल भी आए हुए थे उन्होने त्याग पत्र के सम्बन्ध मे स्वामी जी को समझाते हुए कहा कि गाधी जी के इस कथन को कि "स्वामी जी जैसे विचार रखने वाले

व्यक्तियो को काग्रेस के सारे पद त्याग देने चाहिये" के पीछे न तो कार्यसामिति और नैव अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की सहमति है। इस काफ्रेस मे उपस्थित अन्य लोगो ने भी स्वामी जी को स्पष्ट कहा कि बहुमत स्वामी जी के इस दृष्टिकोण से सहमत है कि काग्रेस सगठन के बाहर होने वाली हिसा के लिए काग्रेसी उत्तरदायी नहीं ठहराये जा सकते हैं। इन बातो से प्रभावित होकर स्वामी जी काग्रेस के रचनात्मक कार्यो मे सहयोग देने के लिए सहमत हो गए और काग्रेस को प्रेरणा दी कि वह अस्पृश्यता–निवारण के प्रश्न को हाथ मे ले।

अस्पृश्यता-निवारण कार्य में बाधाएं

अस्पृश्यता–निवारण की दृष्टि से ही स्वामी जी ने जून, 1922 के प्रथम सप्ताह मे लखनऊ मे होने वाली अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी मे भाग लेने का निश्चय किया। लखनऊ जाते समय स्वामी जी हरिद्वार मे साधु–महामण्डल का सगठन करने के लिए ठहरे। इस महामण्डल की नींव अहमदाबाद मे काग्रेस अधिवेशन के समय डाल दी गई थी। दिल्ली निवास के समय 1919 ई0 मे स्वामी जी का ध्यान लोगो ने इस ओर दिलाया था कि जो चमार ईसाई धर्म को छोडकर शुद्धि द्वारा 'आर्य समाज' मे आ चुके हैं, दिल्ली के समीपवर्ती क्षेत्र मे उन्हे पुलिस परेशान कर रही है। स्वामी जी ने अप्रैल, 1919 मे *'जाति के दीनो को मत त्यागो'* पुस्तक द्वारा आर्य समाजियो को प्रबोधित करते लिखा कि हमे हरिजनो के बच्चो की शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए। पुलिस से उनकी सुरक्षा हो यह हमारा दायित्व है और उनके सामाजिक–उत्थान का भार भी हम पर है, क्योकि पुरातनपन्थी हिन्दू इस दिशा मे कुछ नहीं करेगे। स्वामी जी की मान्यताओ मे अस्पृश्यता–निवारण का महत्वपूर्ण स्थान था। स्वामी जी ने अपने सामाजिक और धार्मिक जीवन के आरम्भ मे अछूतोद्धार के विचारो को आर्य समाज द्वारा प्राप्त किया था। वे चाहते थे कि काग्रेस भी अपनी कुछ शक्ति इस समस्या के समाधान के लिए लगाए। इन्होने एतद् विषयक विचार अमृतसर के काग्रेस अधिवेशन मे स्वागताध्यक्ष रूप मे दिये गये भाषण मे व्यक्त किये थे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होने कलकत्ता काग्रेस अधिवेशन मे विषय निर्वाचन समिति के सम्मुख एक प्रस्ताव भेजा था। नागपुर और बारदोली अधिवेशनो मे भी काग्रेस द्वारा पारित प्रस्तावो मे अस्पृश्यता–निवारण को कार्यक्रमो मे रखा गया था। परन्तु काग्रेस के आकाओ ने अछूतोद्धार को कभी प्राथमिकता नहीं दी। इसी बात का खेद तो सदा स्वामी जी को सालता रहा। स्वामी जी ने जब–जब काग्रेस के माध्यम से इस कार्य को आगे बढाना चाहा तब–तब कोई न कोई बहाना बनाकर इसको टालने का प्रयास ही किया जाता रहा। इस टाल–मटोल के इतिहास को जानने के लिए हम स्वामी जी के उस पत्र–व्यवहार को यहाँ उपस्थित करते है, जो स्वामी जी और काग्रेस महामन्त्रियो के मध्य हुआ था। स्वामी ने इस विषय मे अपना पहला पत्र इस प्रकार लिखा था–

गुरुकुल कुरुक्षेत्र
पोस्ट आफिस थानेसर
मई 22, 1922 ।

सेवा मे,

महामन्त्री,
अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी, बम्बई

मेरे प्यारे मिस्टर पटेल,

एक समय था (यग इण्डिया का 25 मई, 1921 का अक) जब महात्मा गाधी काग्रेस के कार्यक्रम

मे अस्पृश्यता को सबसे आगे रखते थे। अब, मै अनुभव करता हू कि दलित वर्गों की स्थिति को सुधारने का प्रश्न एक अन्धेरे कोने मे डाल दिया गया है, जबकि खादी हमारे कुछ सर्वश्रेष्ठ कार्यकर्ताओ का ध्यान आकृष्ट किये हुए है और इस वर्ष इसके लिये 17 लाख का उदार अनुदान सुनिश्चित कर दिया गया है। जबकि राष्ट्रीय शिक्षा की ओर ध्यान देने के लिए एक प्रभावशाली उपसमिति गठित कर दी गई है और इसके लिये धन सग्रह करने की विशेष अपील भी की गई है। मैं अनुभव करता हू कि अहमदाबाद, अहमदनगर और मद्रास को अल्प अनुदान देकर अस्पृश्यता–निवारण को ताक पर रख दिया गया है। मेरी धारणा यह है कि जब नौकरशाही ने छ· करोड दलितो के बहुमत को हमारे विरुद्ध कर दिया है तो ऐसी स्थिति मे खादी की योजना भी पूर्ण रूप मे सफल नहीं हो सकती। कार्यकारिणी के सदस्यो को सम्भवत यह नहीं मालूम कि इस तरफ हमारे दलित भाइयो ने खादी छोडकर सस्ता विदेशी वस्त्र खरीदना आरम्भ कर दिया है। मैं आगामी 7 जून को होने वाली अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी मे निम्न प्रस्ताव रखना चाहता हू–

"कि अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के तीन सदस्यो की एक समिति तथाकथित दलित जातियो से सम्बन्धित प्रस्तावो को प्रभावी बनाने के लिए गठित की जाये। और इस उपसमिति को प्रचारार्थ पॉच लाख रुपये प्रदान किये जाये। भविष्य मे अनुदान के प्रार्थना पत्रो के भुगतान का विषय इस उपसमिति को सौंपा जाये।"

आपका शुभचिन्तक

श्रद्धानन्द सन्यासी

स्वामी जी के इस पत्र की स्याही सूखने भी नहीं पाई थी कि उन्होने हरिद्वार पहुँच कर इसी समस्या के विषय मे काग्रेस महामन्त्री को दिनाक 3 जून, 1922 को इस प्रकार लिखा–

हरिद्वार

3 जून, 1922

मेरे प्रिय मिस्टर पटेल,

मै कल हरिद्वार से चल पडूँगा और 6 जून को लखनऊ पहुँचूगा। तुम्हे विदित है कि मैं तथाकथित दलित वर्ग के लिए बहुत चिन्तित हू। पजाब तक मे इस रचनात्मक कार्य के लिए कोई कहने योग्य ध्यान नहीं दिया गया है। उत्तर प्रदेश मे निस्सन्देह यह कार्य श्रम साध्य होगा। लेकिन इस विषय मे अन्य गम्भीर कठिनाई है।

बारदोली कार्यक्रम मे मद सख्या 4 की टिप्पणी मे कहा गया है कि जहा अभी तक छुआछूत दृढ मूल है, वहा काग्रेस फण्ड से पृथक् कुए और पृथक् विद्यालय जारी रखने चाहिए। यह उन काग्रेस जनो के लिए छिद्र छोड देता है जो कि अछूत जातियो के द्वेषी है अथवा मन से दुर्बल हैं। ऐसे आदमियो से दूसरे आदमियो को इस बात की प्रेरणा देना कि वे अछूतो को सामान्य कुओ से पानी भरने दे, का कार्य नहीं किया जा सकता। मुझे पता चला है कि बिजनौर जिले मे सामान्य कुओ से पानी भरने के लिये कोई प्रतिबन्ध नहीं है। लेकिन बारदोली प्रस्ताव की टिप्पणी के सरक्षण मे कुछ स्थानो पर नया द्वेष उत्पन्न किया जा रहा है। मेरी अम्बाला छावनी, लुधियाना, बटाला, लाहौर, अमृतसर और जन्डियाला स्थानो की वर्तमान यात्राओ मे, मैंने देखा कि अस्पृश्यो की कमजोरियो को दूर करने की उपेक्षा की जा रही है। दिल्ली और उसके समीप काग्रेस नहीं अपितु जिस दलितोद्धार सभा का मै प्रधान हू, वह प्रशसनीय कार्य कर रही है। मैं सोचता हू कि जब तक बारदोली प्रस्ताव की रचनात्मक

कार्यक्रम की धारा 4 मे ठीक रूप से सशोधन नहीं किया जाता तब तक काग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम मे मेरे द्वारा लगाये गये मोर्चे को हानि ही होगी।

कृपया निम्न सुझाव को अध्यक्ष के समक्ष रखे, और यदि वे मान लेते हैं तो यह सुझाव अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की आगामी बैठक मे रखे। मै इसे वहा प्रस्तुत करूँगा। बारदोली प्रस्ताव की धारा 4 की टिप्पणी के स्थान पर निम्न नोट रखा जाना चाहिए – दलित जातियो की निम्न मागो को तुरन्त स्वीकार करना चाहिए। जैसे (1) उन्हे अन्य जातियो के नागरिको के साथ एक ही दरी पर बैठने की अनुमति होनी चाहिए। (2) सामान्य कुओ से पानी भरने का अधिकार होना चाहिये और (3) उनके बच्चो को राष्ट्रीय विद्यालयो और महाविद्यालयो मे प्रवेश मिले और वे तथाकथित उच्च जातियो के छात्रो से निर्बाध रूप मे मिले–जुले।

मै अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के सदस्यो के मन मे इस बात की महत्ता को बैठाना चाहता हू। मै ऐसे मामलो को जानता हू जहा दलित वर्ग के लोगो ने तथाकथित उच्च जातियो के अत्याचारो के विरूद्ध खुला विद्रोह किया है। जब तक इनकी उपर्युक्त मागो को स्वीकार नहीं किया जाता, तब तक ये नौकरशाही के षड्यन्त्रो के आगे झुकते रहेगे।

आपका शुभचिन्तक

श्रद्धानन्द सन्यासी

स्वामी जी के उपर्युक्त दोनो पत्रो पर काग्रेस कार्यकारिणी ने विचारोपरान्त यह प्रस्ताव पारित किया कि "यह समिति स्वामी श्रद्धानन्द, श्रीमति सरोजिनी नायडू, जी.बी. देशपाण्डे तथा आई.के. याज्ञिक की एक समिति गठित करती है। यह कमेटी एक ऐसी योजना तैयार करेगी जिसके द्वारा सुझाये गये व्यावहारिक उपायो से सारे देश मे तथाकथित अछूतो की दशा को सुधारा जा सकेगा, साथ ही यह समिति कार्यसमिति की अगली बैठक मे सम्प्रति 2 लाख रुपये इस कार्य हेतु एकत्र करने का प्रस्ताव भी विचारार्थ रखेगी।" स्वामी जी ने उपर्युक्त प्रस्ताव को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और काग्रेस कमेटी की प्रथम बैठक मे 2 लाख के स्थान पर 5 लाख की राशि रखने का आग्रह इस शर्त के साथ किया कि काग्रेस अपने कोष से 1 लाख रुपया देगी और शेष के लिये अपील प्रकाशित की जायेगी। स्वामी जी के सशोधन पर राजगोपालाचार्य ने प्रस्ताव किया कि काग्रेस फण्ड से राशि निश्चित किये जाने की अपेक्षा यह होना चाहिये कि जब कार्य समिति यह योजना स्वीकार कर ले, उसी समय उक्त समिति इस उद्देश्य के लिये, जितना उचित समझे उतनी राशि प्रदान करे।

इस बात पर सदस्यो ने जानकारी मागी कि काग्रेस कमेटी के पास जो जमा पूजी है, उसे घोषित किया जाए। स्थिति बिगडती देखकर हकीम अजमल खा (अध्यक्ष) स्वामी जी को एक ओर ले गये तथा कहा कि काग्रेस के पास अभी बहुत थोडी जमापूजी है। यदि इस धनराशि की घोषणा की जाती है, तो हमारे आन्दोलन पर इसका बुरा प्रभाव पडेगा, क्योकि यहां बाहर के लोग ही नहीं, अपितु सी.आई.डी. भी गुप्त वेश मे उपस्थित हैं। हकीम साहेब की बातो को सुनकर अपने प्रस्ताव के अनुमोदको और समर्थको के प्रतिवादो के बावजूद स्वामी जी ने राजगोपालाचार्य का सशोधन स्वीकार कर लिया। उपर्युक्त प्रस्ताव स्वीकार किये जाने के पश्चात् चार सदस्यो वाली उपसमिति के सयोजक का प्रश्न उठा। इस पर तत्कालीन काग्रेस के महामन्त्री बिट्ठल भाई पटेल ने कहा – "स्वामी श्रद्धानन्द का नाम उपसमिति मे सबसे पहले स्थान पर है, अत वे ही सयोजक होगे। इस पर अन्य प्रस्ताव लाने की आवश्यकता नहीं है।"

स्वामी जी ने यह समझ कर कि वे उपसमिति के सयोजक बन गये हैं, वहा उपस्थित सभी प्रान्तो के प्रतिनिधियो से अस्पृश्यता की जानकारी प्राप्त की। कार्य को आरम्भ करने के लिये स्वामी जी ने काग्रेस अध्यक्ष को प्रारम्भिक कार्यों के लिये 10 हजार रुपये देने के लिए 8 जून, 1922 को एक पत्र लिखा। स्वामी जी के पत्र का उत्तर देते हुए महामन्त्री ने लिखा कि "कार्य सामिति मे आपके पत्र को पढा गया, जिसमे दलित जातियो के कार्य की योजना बनाने हेतु अग्रिम राशि देने के लिए कहा गया है। निश्चय हुआ कि इस उद्देश्य के लिये उपसमिति सयोजक गगाधर राव, बी देशपाण्डे नियुक्त किये जाएँ और उनसे अनुरोध किया जाय कि वे यथाशीघ्र एक बैठक बुलाये, जिसमे स्वामी श्रद्धानन्द के पत्र पर विचार किया जा सके।"

स्वामी जी को इस पत्र को पाकर बडा आघात लगा। उन्होने इसे मन ही मन अपना अपमान समझा। जोर्डन्स ने इसे अपनी पुस्तक मे "एक घोटाला" कहा है[65]।

स्वामी जी के हरिद्वार से लिखे पत्र के विषय 'बारदोली प्रस्ताव की धारा 4 मे परिवर्तन' के सम्बन्ध मे सूचित किया गया कि कार्य समिति इस विषय मे उपसमिति से पूछेगी। अत स्वामी जी को इस पर जोर नहीं देना चाहिये। स्वामी जी इससे सहमत हो गये। किन्तु दुर्भाग्य की बात यह रही कि स्वामी जी को कार्य समिति के किसी भी प्रस्ताव की कोई ऐसी प्रति नहीं मिली, जिसमे स्वामी का प्रस्ताव उपसमिति के समक्ष रखे जाने की बात कही गई हो। स्वामी जी के लिये यह दूसरा आघात था।

काग्रेस के शीर्षस्थ नेताओ की उपेक्षा से प्रताडित होकर तथा अछूतोद्धार को अपने जीवन की प्राथमिकता मानकर स्वामी जी ने उपसमिति से छुटकारा पाने के लिये काग्रेस कमेटी के महामन्त्री को पत्र लिखते हुए कहा कि "दिल्ली और उसके समीप अछूत–समस्या अत्यन्त विकट है और मुझे अविलम्ब जूझना है। किन्तु इसके लिये नियुक्त उपसमिति तुरन्त कार्य आरम्भ नहीं कर सकती। काग्रेस के तत्त्वाधान मे अस्पृश्यता को दूर करने के लिए किन्हीं व्यावहारिक उपायो के सम्बन्ध मे निर्णय लेने से पूर्व कार्य समिति को देश मे उपस्थित अनेक अन्य राजनैतिक परिस्थितियो के बारे मे भी सोचना होगा। इन परिस्थितियो मे मै उपसमिति के लिये उपयोगी सिद्ध नहीं होता, परिणामस्वरूप इसकी सदस्यता से त्याग–पत्र देता हू।"

स्वामी जी का त्यागपत्र किसी सामान्यजन का त्यागपत्र नहीं था। इसकी प्रतिक्रिया निश्चित रूप से होनी थी। स्वामी जी के त्यागपत्र के प्रसग के समय प मोतीलाल नेहरु काग्रेस के महामन्त्री थे। उन्होने स्वामी जी को लिखा–

प्रिय स्वामी जी,

आपका 30 जून, 1922 का पत्र मेरे कार्यालय मे उसी मास की 30 तारीख को प्राप्त हुआ। इसमे 18 तारीख को बम्बई मे कार्य समिति द्वारा पारित प्रस्ताव का हवाला दिया गया है। मुझे यह निर्देश मिला है कि मैं इस सम्बन्ध मे आपको तथ्यो से अवगत कराऊँ और आपसे प्रार्थना करुँ कि आप दलित वर्ग की उपसमिति से अपने त्याग पत्र के सम्बन्ध में पुनर्विचार करके साधु स्वभाव का परिचय दे।

जैसा कि आपको विदित है कि मेरे जेल से छूटने से पूर्व की घटनाओ के विषय मे मुझे कोई जानकारी नहीं है। किन्तु मैं 10 जून, 1922 की उस बैठक मे उपस्थित था, जिसमे प्रस्ताव पारित करके श्री देशपाण्डे को उपसमिति का सयोजक बनाया गया था। उस समय यह उल्लिखित नहीं किया गया था कि ऐसा कोई समझौता हो चुका है कि किसी व्यक्ति विशेष को इसका सयोजक

बनाया गया है। उस समय तो सम्पूर्ण प्रस्ताव मात्र रुपये की अदायगी की आवश्यक औपचारिकताओ को पूर्ण करने के लिये पारित किया गया था। यह अनुभव किया गया कि रुपया खर्च करने से पूर्व स्वीकृति के लिये एक उपसमिति आवश्यक है। इसी के अनुसार श्री देशपाण्डे को सयोजक नियुक्त किया गया और इन आरम्भिक कार्यों के लिये 500 रुपये की राशि स्वीकृत की गई। असावधानी के कारण प्रस्ताव के प्रारूप मे 500 रुपये की स्वीकृति का उल्लेख रह गया। इस प्रकार आप मानेगे कि इसमे कार्य समिति द्वारा 10000 रुपये अछूतोद्धार के लिये न देने की इच्छा की कोई बात नहीं थी, लेकिन प्रस्ताव को उस रूप मे बनाने का वास्तविक कारण वही था, जो मेरे द्वारा ऊपर वर्णित किया गया है। आपकी कार्य समिति द्वारा किये जाने वाले कार्य के अवमूल्यन करने की कोई इच्छा कार्य समिति की थी, ऐसा कहना सच्चाई से दूर है। यह भी सत्य नहीं है कि कार्य समिति आप द्वारा दी गई मूल्यवान् सलाह की उपेक्षा करती है। कार्य समिति की गत बैठक मे जब आपका पत्र प्रस्तुत किया गया तो 500 रुपये के भूल की जानकारी दे दी गई और मुझे आदेश हुआ कि यह सूचना आप तक पहुँचा दूँ। यह वस्तुत एक चिन्तनीय बात होगी कि अस्पृश्यता–उपसमिति अस्पृश्यता के सम्बन्ध मे आपके अनुभव और इस समस्या से सम्बन्धित विशेष ज्ञान से वचित रहे। अतः मैं आपसे निवेदन करता हू कि जनता के हित की दृष्टि से अपने निर्णय पर पुनर्विचार करे और अपने त्यागपत्र को वापिस लेने की सूचना तार द्वारा मेरे इलाहाबाद स्थित कार्यालय को दे। मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आपकी उपसमिति द्वारा स्वीकृत सभी प्रस्तावो पर कार्य समिति समुचित ध्यान देगी।

कार्य समिति के पृथक् विद्यालयो तथा पृथक् कुओ के निर्णय के विषय मे परिवर्तन के लिए यही कहना है कि आपकी उपसमिति परिवर्तनो के सम्बन्ध मे अपनी सिफारिश करे और कार्य समिति उसे स्वीकार करे।

मैं इस बात से स्तम्भित हू कि इलाहाबाद के 'दि इण्डिपेन्डेण्ट' तथा दिल्ली के 'दि काग्रेस' समाचार पत्रो को दिये जाने वाले अनुदान के विषय मे आपको कुछ भ्रान्ति हुई है। प्रथम के सन्दर्भ मे जो कुछ हुआ वह इतना ही था कि सयुक्त प्रान्त की प्रदेशीय कमेटी ने 'नेशलिस्ट जर्नल्स लिमिटिड' को 25 हजार रुपये दिये जाने के प्रार्थना पत्र को स्वीकृति दी है। जबकि दूसरे मामले मे कर्ज देने के बारे मे प्रस्तुत की गई अर्जी को पूर्णतया ठुकरा दिया गया है।

बम्बई — आपका विश्वासपात्र

23 जौलाई, 1922 — मोतीलाल नेहरु, महामन्त्री

परन्तु मोतीलाल नेहरु के पत्र की मर्यादापूर्ण भाषा और उपसमिति इत्यादि विषयो मे दिये गये तर्कों का स्वामी जी पर कोई प्रभाव नहीं पडा। और उन्होने 29 जौलाई के निम्न पत्र के माध्यम से त्यागपत्र के पुनर्विचार के निवेदन को ठुकरा दिया–

प्रिय पडित मोतीलाल जी,

बम्बई से आप द्वारा लिखा गया पत्र दिनाक 23 जौलाई, 1922 को मिला। जिसमे अस्पृश्यता–विषयक उपसमिति से मेरे त्यागपत्र की चर्चा है। मुझे खेद है कि मैं त्यागपत्र पर पुनर्विचार करने मे असमर्थ हू क्योकि मेरे पहले पत्र मे प्रदर्शित कुछ तथ्य पूर्णतया उपेक्षित कर दिये गये हैं।

(1) कृपया श्री राजगोपालाचार्य से पूछे कि क्या मैंने प्रथम यह प्रस्तावित नहीं किया था कि अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के पास जो राशि है, उसमें से एक लाख रुपया नगद अस्पृश्यता निवारण के लिये दिया जाय। उनसे यह भी पूछा जाय, क्या उपर्युक्त प्रस्ताव के स्थान पर

जो सशोधन रखा था, उसका यही भाव था कि कार्य समिति जब उपसमिति द्वारा बनाई गई कार्य योजना को स्वीकार कर लेगी तब ही कार्य समिति अस्पृश्यता–निवारण विभाग को उतना धन प्रदान करेगी, जितना उसके लिये सम्भव हो? उनसे यह भी पता करे कि अध्यक्ष द्वारा अलग ले जाकर आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध मे समझाये जाने पर मैने उनके सशोधन को उस समय स्वीकार नहीं कर लिया था। अगर तथ्य यही है तो प्रस्ताव के साथ सशोधन क्यो नही प्रकाशित किया गया?

(2) क्या आप बिट्ठल भाई जे. पटेल से यह पता करेगे कि अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के सदस्यो ने मेरा नाम उपसमिति के सयोजक के रूप मे प्रस्तुत नहीं किया था? क्या उन्होने उस समय यह नहीं कहा था कि स्वामी जी का नाम सदस्यो मे प्रथम है, स्वभावत वे ही सयोजक रहेगे। इसलिए किसी अन्य प्रस्ताव रखने की आवश्यकता नही है। मैने इस सम्बन्ध मे डा0 असारी से भी पूछा तो उन्होने 17 जून, 1922 को मुझे लिखा कि मुझे ही सयोजक बनाया गया था। डा0 असारी आपके पास है और आप पूछ सकते है। मुझे आशा है कि श्री पटेल इस बात को भूले नहीं होगे।

आपका विश्वासपात्र

श्रद्धानन्द सन्यासी

इसके बाद यहॉ भी अस्पृश्यो के मध्य काम करना अत्यावश्यक है। मै किसी अन्य कारण से इसमे विलम्ब नहीं कर सकता। कृपया कार्यसमिति की आगामी बैठक मे मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर ले, जिससे की मै अपनी योजना के अनुसार अस्पृश्यता निवारण के लिए स्वतत्र हो सकू।

अस्पृश्यता–निवारण के लिये अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी द्वारा गठित उपसमिति ने कोई कार्य नहीं किया। गया के काग्रेस अधिवेशन मे इसका कारण बताते हुये कहा गया कि स्वामी श्रद्धानन्द का कोई स्थानापन्न व्यक्ति नही मिल सका[56]।

काग्रेस ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के सन्दर्भ मे हुई हिसात्मक घटनाओ की जाच–पडताल के लिये एक समिति का गठन किया। इस समिति के समक्ष स्वामी जी ने अपना बयान दिया। यह बयान दिनाक 14 अगस्त, 1922 को कलकत्ता के एक समाचार पत्र मे प्रकाशित हुआ था। इस बयान का वह अश यहॉ उद्धृत किया जाता है–

"काग्रेस के द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाने के लिये ही रचनात्मक कार्यक्रम को सचालित करने मे उसका विश्वास नही है। वे रचनात्मक कार्यक्रम को स्वय एक लक्ष्य के रूप मे चलाने मे विश्वास करते है और उनकी दृढ धारणा है कि कानूनो की अवज्ञा को यदि छोड भी दिया जाता है और पूर्ण निष्ठा तथा उत्साह के साथ रचनात्मक कार्यक्रम को चलाया जाता है तो उससे देश को स्वराज्य प्राप्त हो सकता है। कौसिलो मे प्रवेश करके असहयोगी अधिक प्रभावशाली ढग से रचनात्मक कार्य कर सकते है। किन्तु यह अधिक उपयोगी ढग से तब किया जा सकता है यदि सविनय अवज्ञा के विचार को भविष्य मे पूर्णतया त्याग दिया जाये। देश को सविनय अवज्ञा तथा करो को न देने के लिये शीघ्र तैयार करने के लिये कौसिलो मे प्रवेश एक विडम्बना ही है।

हिन्दू–मुस्लिम एकता की चर्चा करते हुए स्वामी जी ने कहा कि बाहरी रूप मे तो इसमे कोई विरोध दिखाई नहीं देता, किन्तु हिन्दू–मुसलमान दोनो के हृदय एक–दूसरे के प्रति सन्देहास्पद हो चुके है। इसका एक कारण यह प्रतीत होता है कि एक ओर जहॉ मुसलमान और सिख परस्पर सगठित है, एक घटक के रूप मे हिन्दू असगठित है। इसका एक उपाय उनके मस्तिष्क मे यही दिखाई पडता

है कि हिन्दू नेता अपने समाज को सगठित करे तथा मुसलमान नेता खिलाफत की अपेक्षा स्वराज्य प्राप्ति पर अधिक बल दे।

अहिसा के सम्बन्ध मे अपने बयान देते हुए स्वामी जी ने कहा कि अहिंसा की भावना को बाहरी तौर से तो प्रतिपादित किया जाता है, किन्तु लोग अपने हृदय मे उसके प्रति विश्वास नहीं करते तथा उनकी वाणी और मन हिसापूर्ण विचारो से भरे पडे है।"

उपर्युक्त बयान स्वामी जी के राजनैतिक विचारो का दस्तावेज होने के साथ–साथ उन द्वारा प्रतिपादित 'हिन्दू सगठन' की भावी योजना की ओर भी सकेत करता है। स्वामी जी के रचनात्मक कार्यक्रमो मे दलितोद्धार प्रमुख था। अपने त्यागपत्र के पश्चात् इस कार्य मे हृदय और आत्मा से लग गये। किन्तु थोडे समय बाद ही ऐसा अवसर आया कि स्वामी जी ने काग्रेस नेताओ के साथ काम करने का विचार किया। यह उस समय हुआ कि जब देवदास गाधी एव जवाहर लाल नेहरु को अपराधी घोषित किया गया। परिस्थितियाँ तुरन्त बदलीं। हकीम अजमल खा के यह कहने पर कि काग्रेस के पदाधिकरियो को काग्रेस के दृष्टिकोण से असहमत होने पर भी अपने विचार प्रकट नहीं करने चाहिये। ऐसी स्थिति मे वे या तो पदो को छोड दे या चुप रहें। पुन: उनके अनुसार पदाधिकारी ऐसे होने चाहिये जो काग्रेस कार्यक्रम को उसके अन्तिम विवरण सहित पूरा करे, चिन्तामणि केलकर ने त्यागपत्र दे दिया। इस त्यागपत्र ने स्वामी जी की आखे खोल दीं। स्वतन्त्रचेता स्वामी श्रद्धानन्द ने काग्रेस के नेताओ की विचार स्वतन्त्रता अपहरण की नीति को घातक समझकर – हकीम अजमल खा को लिखा कि वे ईमानदारी से अनुभव करते है कि वे काग्रेस कार्यसमिति मे नहीं रह सकते। स्वामी जी ने साधु महामण्डल की अस्पृश्यता निवारण मे निष्क्रियता देखकर इससे भी त्याग पत्र दे दिया।

मुस्लिम प्रश्न को लेकर भी स्वामी जी का काग्रेसी नेताओ से मतभेद हो गया था। 1893 मे हुए काग्रेस के लाहौर अधिवेशन से ही स्वामी जी ने यह अनुभव कर लिया था कि काग्रेस मुसलमानो के प्रति कितनी अनुरक्ति के साथ झुकी हुई थी। मुसलमान प्रतिनिधियो को प्रवेश शुल्क और शुल्क मे छूट देना इसका प्रमाण था। यही छूट लखनऊ अधिवेशन 1899 मे भी दी गई थी। इतना सब कुछ होने पर भी 1916 मे हुये लखनऊ अधिवेशन मे हिन्दू–मुस्लिम समझौते की गुप्तवार्ता मे सम्मिलित हुये। मदन मोहन मालवीय साम्प्रदायिक आधार पर प्रतिनिधित्व दिये जाने के समझौते के विरुद्ध थे। 1920 के आरम्भ मे स्वामी जी 'खिलाफत आन्दोलन' के समर्थक बनकर मुसलमानो के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रहे थे। वह उस प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य भी थे जो 'खिलाफत आन्दोलन' के सम्बन्ध मे वायसराय से भी मिला था। हिन्दू–मुस्लिम एकता के स्वामी जी यहा तक पक्षपाती बन गये कि उन्होने आर्य समाज के उपदेशको को यह कहना आरम्भ कर दिया था कि मुस्लिम धर्म के खण्डन का समय लद गया है और अब नया दौर आरम्भ हो गया है।

लेकिन 1920 का अन्त आते–आते स्वामी जी को मुसलमानो की हिन्दू विरोधी भावनाओ का सकेत मिलने लगा। कलकत्ता के विशेष काग्रेस अधिवेशन ने जबकि अहिसा के महत्व की चर्चा चल रही थी, मच पर बैठे लगभग 50 लोगो को सुनाते हुए मौलाना शौकत अली ने कहा "महात्मा गॉधी एक चालाक बनिया है। तुम लोग उसके वास्तविक उद्देश्य को नहीं समझते। तुम्हे– अनुशासन मे रखकर वह छापामार युद्ध की तैयारी कर रहा है। जैसा तुम लोग सोचते हो, वैसा वह कट्टर अहिंसावादी नहीं है[67]। अली भाई के मुख से यह सुनकर स्वामी जी को धक्का लगा। इस बात की सूचना स्वामी ने महादेव देसाई द्वारा गॉधी जी के पास पहुचवाई। नागपुर के सामान्य काग्रेस अधिवेशन के अवसर पर एक सभा मे मौलवियो द्वारा काफिरो को कत्ल करने की आयतो का उल्लेख पिछले पृष्ठों मे किया जा चुका है। 1921 मे स्वामी जी विदेशी वस्त्रो के बहिष्कार की दोहरी नीति से भी क्षुब्ध थे,

इसे पाठक पढ चुके है। अहमदाबाद के काग्रेस अधिवेशन मे मोपलाओ की निन्दा के प्रस्ताव पर भी स्वामी जी खिन्न थे। स्वामी जी के डा0 असारी से भी उस समय सम्बन्ध कटु हो गये थे जब उन्होने मुसलमानो को यह कह दिया था कि पहले 'अकारा फण्ड' के लिए चन्दा देना है। स्वामी जी ने उपयुक्त परिस्थितियो के दोहन के बाद ही समाचार पत्रो मे यह बयान दिया था कि "हिन्दू मुस्लिम एकता मे बाहरी तौर पर तो कोई भेद दिखाई नहीं देता, किन्तु उन्होने सभी प्रान्तो मे देखा है कि हिन्दू और मुसलमान कौमो के हृदय एक-दूसरे के प्रति सन्देहास्पद हो चुके है।

इस प्रकार स्वामी जी महात्मा गॉधी के असहयोग आन्दोलन की नीतियो, प्रक्रियाओ और अछूतोद्धार एव मुस्लिम तुष्टिकरण की नीति से खिन्न होकर महात्मा गॉधी और काग्रेस से बहुत दूर चले गये।

स्वामी जी को बन्दी बनाया जाना

1919 से 1922 के सितम्बर महीने के प्रथम सप्ताह तक स्वामी श्रद्धानन्द जी अनाथित बैल की तरह अग्रेजी सरकार के लिए जहा चाहे वहा भी सींगो से मिट्टी उछालते रहे। सरकार ने इस शक्तिशाली और विशालकाय व्यक्ति को अनेक बार बन्दी बनाने की सोची। स्वामी जी को पहली बार 10 अप्रैल, 1919 को गिरफ्तार करने की बात चली। स्वामी जी लिखते है कि "मैंने ऊपर का और नीचे सीढी का, दोनो किवाड रात को भी खुले रखने शुरु कर दिये। मै उन दिनो इतना तग था कि यदि जेल ले जाते तो मुझे आराम मिलता। डेढ-दो लाख प्रजा को अहिसा धर्म का क्रियात्मक पालक बनाना कोई छोटी बात न थी। परन्तु कोई भी यमदूत मुझे विश्रामगृह मे ले जाने को न पहुचा[59]।"

दूसरी बार चीफ कनिश्नर, दिल्ली को शिमले मे बुलाकर पजाब के छोटे लाट ओडवायर ने कहा कि पजाब मे सारी आफत दिल्ली से आती है और इस आफत की जड स्वामी श्रद्धानन्द है। ओडवायर को वह पत्र हाथ लग गया था जो स्वामी जी ने दुनीचन्द को लिखा था, जिसमे यह लिखा कि यदि आवश्यकता हो तो वे लाहौर पहुचे। ओडवायर स्वामी जी से खार खाये बैठा था। उसने आदेश दे रखा था कि स्वामी जी को सीधा लाहौर आने दो। वहॉ स्वामी जी के हाथ-पैरो मे कडियॉ डालकर बाजारो मे घुमाया जाय। परन्तु स्वामी जी किन्हीं कारणो से लाहौर नही जा सके।

तीसरी बार- शिमला में गर्मी बिताने के लिये गये दिल्ली के एक राय बहादुर और वकील से सी0आई0डी0 के निदेशक सर चार्ल्स क्लीवलैंड ने पूछा कि यदि शान्ति स्थिर रखने के लिये स्वामी श्रद्धानन्द को गिरफ्तार किया जाये तो उनका क्या विचार है? दोनो ने गिरफ्तारी के पक्ष मे अपनी सम्मति दी। लेकिन यह जरूर कहा कि गिरफ्तारी दिल्ली न होकर अन्यत्र करनी चाहिए, क्योकि दिल्ली मे फिसाद होने का डर है। गिरफ्तारी का यह अवसर भी जाता रहा।

चौथी बार- पुलिस ने प्रसिद्ध किया कि स्वामी जी को दिल्ली से बाहर जाने की आज्ञा नहीं है। परन्तु प0 मोती लाल के निमन्त्रण पर दिल्ली से चलकर 4 जून, 1919 को प्रयाग पहुच गए। सी0आई0डी0 द्वारा पीछा किये जाने से ऐसा प्रतीत होता था कि गिरफ्तारी होगी। परन्तु परिणाम शून्य ही निकला।

पाचवी बार- अमृतसर काग्रेस अधिवेशन के समय स्वागताध्यक्ष बनने की सहमति के पश्चात् यह प्रचारित हुआ कि काग्रेस अधिवेशन को रोकने के लिये स्वामी जी को देश निकाला दिया जायेगा। परन्तु हुआ कुछ नहीं।

छटी बार– आर्य समाज के एक लेखक ने स्वामी जी को गिरफ्तार करवाने का प्रयास और सरकार को युक्तिया भी बताई। परन्तु उस आर्य समाजी लेखक की इच्छा फलीभूत नहीं हुई।

सातवीं बार– स्वामी जी जब बर्मा मे गये थे तो प्रान्त के छोटे लाट सर रेजिनल्ड क्रैडक ने लार्ड चैम्सफोर्ड से स्वामी जी को गिरफ्तार करने की आज्ञा मागी थी। परन्तु परिणाम मे वही ढाक के तीन पात निकले।

आठवीं बार– यह जनश्रुति फैली कि दलितोद्धार सभा के प्रधान के नाते धार्मिक विद्वेष फैलाने के कारण स्वामी जी की गिरफ्तारी शीघ्र ही सम्भावित है। परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ।

सरकार ने 1919–22 के सितम्बर के प्रथम सप्ताह के अन्त तक स्वामी जी की गिरफ्तारी की बार–बार उपेक्षा क्यो की, इसका उत्तर जोर्डन्स के शब्दो मे यह है कि "स्वामी जी की लोकप्रियता ही सरकार को ऐसा करने से रोकती रही" थी[59]। परन्तु सरकार ने स्वामी जी को गिरफ्तार करने का विचार त्यागा नहीं था। वह प्रशासन की दृष्टि से ऐसे अवसर की प्रतीक्षा मे थी कि साँप भी मर जाये और लाठी भी नहीं टूटे। स्वामी जी गिरफ्तार भी कर लिये जाये और इस सम्बन्ध मे कोई आन्दोलन भी न हो। वह अवसर सरकार के हाथ 'गुरू का बाग' सत्याग्रह के प्रसग मे आ गया।

अगस्त, 1922 मे जिला अमृतसर मे अजनाला के समीप एक गुरूद्वारा के कब्जे मे होने वाले 'गुरू के बाग' नामक भूखण्ड के स्वामित्व के सम्बन्ध मे झगडा हो गया[60]। सिक्ख इस भूखण्ड को गुरुद्वारा की सम्पत्ति मानते थे और वहाँ से गुरुद्वारा के लगर के लिये लकडिया काट कर लाते थे। स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए पुलिस हस्तक्षेप अनिवार्य हो गया। पुलिस ने सिक्खो को गिरफ्तार करना आरम्भ कर दिया। इस समस्या को अकाली दल ने गम्भीरता से लिया और उन्होने अहिसक आन्दोलन आरम्भ करके गिरफ्तारियां देनी आरम्भ कर दीं। पुलिस ने शान्त सत्याग्रहियो को निर्दयता से पीटना आरम्भ कर दिया। पुलिस के अत्याचार को देखने के लिए अकाली नेताओ ने बिना धार्मिक भेदभाव के देश के नेताओ को आमन्त्रित किया। स्वामी जी ने तुरन्त प्रतिक्रिया दिखाई और अजमल खा और प्यारे लाल के साथ 10 सितम्बर को अमृतसर पहुच गये। मालवीय जी वहा पहिले ही उपस्थित थे। स्वामी जी अमृतसर मे सर्वप्रथम अकाल तख्त पहुचे और वहा अहिसक अकाली सत्याग्रहियो को सम्बोधित करते हुए दिल्ली निवासियो का सन्देश सुनाया कि दिल्ली से 'शिरोमणि गुरुद्वारा कमेटी' का सन्देश पाते ही सौ आदमी सत्याग्रह के लिये तुरन्त आने को तैयार है और पाच हजार रूपये तक की सहायता दिल्ली करेगी। इसके उपरान्त स्वामी जी जब गुरु का बाग मे सत्याग्रहियो को 'धर्मयुद्ध' मे विजय प्राप्ति का आशीर्वाद देकर वापिस आने की तैयारी ही मे थे कि उनको गिरफ्तार करके अमृतसर जेल मे बन्द कर दिया गया। अमृतसर की पवित्र नगरी मे काग्रेस अधिवेशन के अवसर पर प्रतिनिधियो का स्वागत करने वाले स्वामी का अमृतसर की जेल के फाटक ने स्वागत किया। अमृतसर की प्रथम घटना ने राजनैतिक दृष्टि से भारत के उच्च से उच्च काग्रेसी नेताओ के परिचय बढाकर स्वामी जी के लिये मार्ग प्रशस्त किया था तो दूसरी घटना ने मायावी राजनीति मे उनकी असम्प्रदायिक भूमिका का पटाक्षेप कर दिया।

स्वामी जी को धारा 117 के अन्तर्गत एक वर्ष और धारा 143 के अन्तर्गत 4 मास की सादी कैद की सजा मिली। कैद की सजा सुनाने के पश्चात् स्वामी जी को 'मियावाली' जेल पहुचा दिया गया। जेल का जीवन स्वामी जी के लिये बच्चो के खेल के समान था। गुरुकुल के आवासकाल मे स्वामी जी सयमित और अनुशासित जीवन के अभ्यस्त हो चुके थे। जेल तो उनके गुरुकुलीय जीवन के व्रताभ्यास का पुनरभ्यास मात्र था। जेल मे स्वामी जी ने गुरुकुलीय जीवन के समान प्रात काल उठना, नित्यकर्मो से निवृत्त होकर ईश्वरोपासना करके स्वाध्याय और प्रवचन मे लगा दिया। जेल

मे ही स्वामी जी ने अपनी आत्मकथा लिखने का श्रीगणेश किया। 'मियावाली' जेल मे स्वामी जी गीता, रामायण या दर्शनो पर उपदेश दिया करते। मौलाना आशफ अली ने स्वामी जी से 'गीता रहस्य' माग कर पढा। कहीं शका होने पर स्वामी जी उसका समाधान कर देते थे। स्वामी जी को जेल मे शारीरिक दृष्टि से बडा कष्ट रहा। उन्हे अतिसार (पेचिश) की बीमारी परेशान करती रही। इस परेशानी से बढकर एक अन्य परेशानी स्वामी जी की आत्मा को कचोट रही थी। वह परेशानी थी जेल प्रबन्ध मे शासन की ओर से उपेक्षा का भाव। इस परेशानी की व्यथा कथा 'बन्दीघर के विचित्र अनुभव' नामक पुस्तक मे स्वामी जी ने उडेल दी है। स्वामी जी की सजा तो लम्बी थी किन्तु उन्हे 26 दिसम्बर को अचानक जेल से रिहा कर दिया गया।

स्वामी जी के 'गुरु का बाग' सत्याग्रह के सम्बन्ध मे एक महत्वपूर्ण बात यह कहनी है कि महाशय कृष्ण ने स्वामी जी के अकाल तख्त वाले व्याख्यान के विषय मे एक अश पर आपत्ति प्रकट करते हुए अपने समाचार मे लिखा कि स्वामी जी को गृहस्थ पुरुषों का सन्देश शिरोमणि प्रबन्धक कमेटी तक पहुचाना नहीं चाहिए था, क्योकि यह सन्यास धर्म से बाहर है। स्वामी जी ने इस आपत्ति का उत्तर देते हुए कहा कि उन्होने सन्यास का अर्थ कर्म का न्यास (त्याग) नहीं समझा है। प्रत्युत् गुरुवर आचार्य दयानन्द के चरणचिन्हो पर चलने का यत्न करते हुए कर्मफल मे अनासक्ति अर्थात् त्याग को ही सन्यास समझा है। इसलिये ये उन सर्वसाधारण लोगो से सहमत नहीं है जो कहते है कि "सर्व कर्मनासी– सन्यासी" होता है। यदि दिल्लीवालो का सन्देश धर्मानुकूल था तो सन्यासी से बढकर सन्देश पहुचाने वाला उन्हे कहा से मिल सकता था। स्वामी जी ने आगे कहा कि यदि 'गुरु का बाग' का आन्दोलन धर्म विरुद्ध था तो उनकी सारी वक्तृता ही निन्दनीय समझनी चाहिये। ऋषि दयानन्द लिखते हैं "जिससे दुष्ट कर्मो का त्याग किया जाये, वह उत्तम स्वभाव जिसमे हो, वह सन्यासी होता है[60]।

जेल से छूटने के पश्चात् अमृतसर और जालन्धर मे अकालियो और आर्य समाजियो के अभिनन्दनो को स्वीकार करते हुए स्वामी जी 29 दिसम्बर को दिल्ली पहुच गये। यदि हम 1917 से 1922 की अवधि मे स्वामी जी का मूल्याकन करना चाहे तो कह सकते है कि इस अवधि मे उन्होंने ब्रिटिश सरकार को हिलाने वाले प्रत्येक राष्ट्रीय आन्दोलन मे निस्स्वार्थ नेतृत्व प्रदान किया और उनका यथाशक्ति प्रयास रहा कि– महात्मा गॉधी के साथ कन्धा मिलाकर चला जाये। किन्तु सत्य और धर्म के दोनो शोधार्थियो के चिन्तन के मार्ग भिन्न–भिन्न रहे। इस भिन्नता मे कहीं न कहीं समता का सूत्र पकडकर स्वामी श्रद्धानन्द कभी तन से और कभी मन से काग्रेस के साथ जुडे रहे। इस अवधि मे स्वामी जी का यह चिन्तन रहा कि अछूतोद्धार स्वराज्य प्राप्ति का साधन न होकर साध्य है। जबकि काग्रेसी विचारधारा मे अछूतोद्धार साध्य न होकर स्वराज्य प्राप्ति का अन्य साधनो के समान एक साधन था। स्वामी जी के जेल से छूटने के बाद 'खिलाफत आन्दोलन' के कारण बनी हिन्दू–मुस्लिम एकता की भावना इत्यलम् हो चुकी थी। ऐसी परिस्थितियो मे 67 वर्ष के वृद्ध स्वामी की आत्मा से एक नवीन श्रद्धानन्द का जन्म हुआ, जिसने धर्माचार्य का रूप लेकर हिन्दूवाद के आधार पर अपने ही ढग से अछूतोद्धार समस्या को सुलझाना चाहा। अगले वर्षो की कहानी इसी ताने–बाने की उधेड–बुन की कहानी है।

सन्दर्भ (चौथा अध्याय)

1.	स्वामी दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश			पृ0	86
2	इन्द्र, मेरे पिता सस्मरण			पृ0	194
3	सत्यदेव, स्वामी श्रद्धानन्द			पृ0	380
4.	सत्यदेव, स्वामी श्रद्धानन्द			पृ0	380–81
5	इन्द्र	वही		पृ0	188
6	इन्द्र	वही		पृ0	188
7.	निरुपण एव विनोद चन्द्र	वही		पृ0	327–28
8	निरुपण एव विनोद चन्द्र	वही		पृ0	92
9.	इन्द्र	वही		पृ0	195–96
10	निरुपण एव विनोद चन्द्र, वही			पृ0	59
11	सन्यासी बनने के पश्चात् भी स्वामी जी रिश्तेदारो से व्यक्तिगत पत्र–व्यहवार करते समय मुशीराम के नाम का प्रयोग करते थे।				
12	सत्यदेव	वही		पृ0	463
13.	जोर्डन्स	वही		पृ0	104
14	इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाला अग्रेजी दैनिक पत्र। सर सी वाई चिन्तामणि इसके सम्पादक थे।				
15	भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड चार	पृ0	120
16	सत्यदेव,	वही		पृ0	475
17.	इन्द्र	वही		पृ0	199
18	भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड पॉच	पृ0	46
19.	इन्द्र	वही		पृ0	201
20	हरिश्चन्द्र स्वामी श्रद्धानन्द का बडा लडका था। सन् 1914 ई0 मे वह राजा महेन्द्र प्रताप के सचिव के रूप मे विदेश गया था। वह वहॉ से वापिस नही आया और अज्ञात रूप मे मर गया।				
21	श्रद्धानन्द जी के सरक्षण मे दिल्ली से निकलने वाला हिन्दी दैनिक 'विजय'।				
22	भवानी लाल भारतीय	वही	खण्ड चार	पृ0	120–21
23	(क) भवानी लाल भारतीय	वही	खण्ड पॉच	पृ0	50–53
	(ख) इन्द्र	वही		पृ0	210–11
24.	भवानी लाल भारतीय	वही	खण्ड पॉच	पृ0	65
25.	भवानी लाल भारतीय	वही	खण्ड पॉच	पृ0	69

26	भवानी लाल भारतीय	वही	खण्ड चार	पृ0	121
27.	इन्द्र	वही		पृ0	219
28.	सत्यदेव	वही		पृ0	501
29	सत्यदेव	वही		पृ0	492
30.	इसी वेदमन्त्र से स्वामी जी ने दिल्ली की जामा मजिस्द मे अपना उपदेश आरम्भ किया था।				
31.	विष्णु प्रभाकर तथा विष्णु दत्त, स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती			पृ0	82–97
32	इन्द्र,	वही		पृ0	97
33	निरुपण एव विनोद चन्द्र	वही		पृ0	95
34.	भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड पाँच	पृ0	93
35	सत्यदेव	वही		पृ0	538–39
36	सत्यदेव	वही		पृ0	539
37.	सत्यदेव	वही		पृ0	540
38.	सत्यदेव	वही		पृ0	549–50
39	श्रद्धा (साप्ताहिक), 14 मई, 1920			पृ0	4
40.	श्रद्धा (साप्ताहिक), 14 मई, 1920			पृ0	3–4
41.	श्रद्धा (साप्ताहिक), 14 मई, 1920			पृ0	4
42	श्रद्धा (साप्ताहिक), 14 मई, 1920			पृ0	4
43	सत्यदेव,	वही		पृ0	542
44	सत्यदेव,	वही		पृ0	553
45.	जोर्डेन्स	वही		पृ0	117–18
46	भवानी लाल भारतीय	वही	खण्ड पाँच	पृ0	100
47.	भवानी लाल भारतीय	वही		पृ0	104
48.	सत्यदेव	वही	खण्ड तीन	पृ0	112
49.	सत्यदेव	वही		पृ0	555
50.	भवानी लाल भारतीय	वही	खण्ड पाँच	पृ0	121
51.	भवानी लाल भारतीय	वही	खण्ड पाँच	पृ0	130
52	भवानी लाल भारतीय	वही	खण्ड पाँच	पृ0	130
53.	भवानी लाल भारतीय	वही	खण्ड पाँच	पृ0	133
54	भवानी लाल भारतीय	वही	खण्ड पाँच	पृ0	134
55.	जोर्डेन्स	वही		पृ0	124
56	भवानी लाल भारतीय	वही	खण्ड पाँच	पृ0	148

57.	भवानी लाल भारतीय	वही	खण्ड पाँच	पृ0	99
58.	भवानी लाल भारतीय	वही	खण्ड चार	पृ0	121
59.	जोर्डेन्स	वही		पृ0	127
60	भवानी लाल भारतीय	वही	खण्ड चार	पृ0	133

पंचम अध्याय

श्रद्धानन्द का शुद्धि के लिए बलिदान

अस्पृश्यता निर्वाण और शुद्धि का शंखनाद

जेल जीवन मे जहा स्वामी जी ने लेखन कार्य, स्वाध्याय और प्रवचन का कार्य आरम्भ किया था, वहा वे आत्म चिन्तन की प्रक्रिया मे भी लगे रहते थे। इस आत्म चिन्तन की प्रक्रिया मे अपने जीवन की अतीत घटनाओ की समीक्षा करके भावी जीवन की योजनाओ का निर्माण करना था। इन्द्र के अनुसार स्वामी जी जेल से मुक्त होकर जिस परिणाम पर पहुँचे, उसे उन्होने अपने सस्मरणो मे इस प्रकार लिखा है–

"मुझे निश्चय हुआ है कि अभी चरित्र गठन मे बडी कमी है। कम से कम मैं तो ऐसे साँचे मे ढला हू कि कई अशो मे स्वय सदाचार की कमी अपने अन्दर अनुभव करते हुये भी चरित्रहीन पुरुषो के साथ काम नहीं कर सकता। काग्रेस, हिन्दू–महासभा, खिलाफत और अन्य अखिल भारतवर्षीय सस्थाओ को चलाने के लिये बडे–बडे व्यक्ति विद्यमान हैं। मुझ जैसे अल्पशक्ति वाले मनुष्य के लिये यही बडा काम है कि ब्रह्मचर्य के उद्धार और दलित जातियो के उत्थान का मार्ग जो अपने को सूझा है, उसका सन्देश आर्य जाति के आगे रखने का यत्न करूँ[1]।"

उपर्युक्त भावना से स्पष्ट है कि स्वामी जी राजनीतिज्ञो के चक्कर से बचकर स्वय अपने ही बलबूते पर अस्पृश्यता निवारण के उपायो को सोच चुके थे। स्वामी जी की दृष्टि मे वर्तमान मे अस्पृश्यता ही भारत मे अग्रेजी राज का लगर है और समस्याओ मे सबसे बडी समस्या अस्पृश्यता निवारण की है[2]। स्वामी जी ने धर्माचार्य के रूप मे हिन्दूवाद को सुदृढ आधार देने के लिये शुद्धि और अछूतोद्धार की दुधारी तलवार हाथ मे ले रखी थी।

जम्मू के क्षेत्र मे शुद्धि का कार्य करने वाले आर्योपदेशक रामचन्द्र की जब वहा के राजपूतो की पिटाई से 20 जनवरी, 1923 मे मृत्यु हो गई तो आर्य समाजी लोग बडे चिन्तित हुए[3]। फरवरी 1923 के प्रथम सप्ताह मे स्वामी दयानन्द की जन्म शताब्दी मनाने के सन्दर्भ मे बुलाई गई सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा मे रामचन्द्र की मृत्यु के प्रसग मे शुद्धि का विषय भी चर्चित हुआ। सभा की इस बैठक मे एक निर्णय लिया गया कि दयानन्द जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य मे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के अधीन 'दयानन्द दलितोद्धार मिशन' स्थापित किया जाये और उसके लिये जनता से एक लाख रूपये की अपील की जाये। बैठक मे सर्वसम्मति से यह निश्चय भी हुआ कि उक्त मिशन का प्रबन्ध और कार्य का भार प्रधान स्वामी श्रद्धानन्द के सुपुर्द किया जावे[4]। उपर्युक्त प्रस्ताव के अनन्तर स्वामी जी ने निम्न वक्तव्य समाचार पत्रो के लिये दिया–

"काग्रेस भी तथाकथित अस्पृश्यो को आत्मसात् करने मे असमर्थ है। मैंने इस कार्य को अपने शेष जीवन का एक मात्र उद्देश्य बना लिया है। मैं उन हिन्दुओ से जो यह नहीं चाहते कि छः करोड भाई उनसे अलग हो जायें, धर्म और राजनीति से ऊपर उठकर अपील करता हू कि वे इस कार्य मे धन और जन से मेरी सहायता करे[5]।"

स्वामी जी के मन मे शुद्धि के विचार आर्य समाज मे प्रवेश के समय से ही घर कर चुके थे। जालन्धर आर्य समाज के प्रधान के नाते उन्होने रहतियो, मेघो और ओडो जाति के लोगो को

वैदिक वर्ण व्यवस्था मे लाकर शुद्ध किया था। अत शुद्धि का कार्य उनके लिये नया नहीं था। हॉ परिस्थितियॉ अवश्य नई थीं। बीसवीं शती के प्रथम दशक की शुद्धि के समय और इसी शती के तीसरे दशक के समय की राजनैतिक परिस्थितियो मे नितान्त असमानता थी। इस समय शुद्धि को सामाजिक और धार्मिक परिधि की सकीर्णता से निकाल कर इसे राजनैतिक क्षेत्र का महत्वपूर्ण विषय बना दिया गया था। इस काल मे शुद्धि का अभिप्राय प्राय हिन्दू–मुस्लिम एकता को भग करके स्वराज्य प्राप्ति मे बाधक से लिया जाता था, परन्तु स्वामी जी शुद्धि के विषय मे इतने समर्पित थे कि उनकी भावना को राजनैतिक झझावत भी रोकने मे असमर्थ रहा।

भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा के प्रधान

समय ने स्वामी जी का साथ दिया और मलकाना राजपूतो के शुद्धि आन्दोलन ने उनको नया नेतृत्व प्रदान किया। कुछ शिक्षित मलकाना राजपूत सन् 1905 से ही इस प्रयास मे लगे हुये थे कि उनकी बिरादरी को हिन्दू धर्म मे पुनः दीक्षित किया जाये। परन्तु सन्तोषजनक परिणाम न निकलने से उनका प्रयास ठन्डा पड गया था। फिर सन 1910 मे 'राजपूत शुद्धि सभा' की स्थापना हुई और शुद्धि की गाडी चल पडी। सन् 1922 के दिसम्बर मास मे शाहपुराधीश की अध्यक्षता मे राजपूतो के सगठन "क्षत्रिय उपकारिणी सभा" ने प्रस्ताव पारित करते हुए कहा कि मलकाना राजपूत शुद्धि सस्कार के द्वारा हिन्दू राजपूतो मे पुन सम्मिलित हो सकते है। इस प्रस्ताव के पश्चात् 13 फरवरी, 1923 को आगरा मे बाबू शलिग्राम वकील के घर एक बैठक हुई। इसमे आर्य समाजी, सनातनी, जैन और सिख समुदाय के चुने हुए लोगो के अतिरिक्त स्वामी श्रद्धानन्द को भी बुलाया गया था। स्वामी जी इस बैठक मे भाग लेने आगरा पहुच गये। वहाँ 'भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा' नाम से एक सगठन का निर्माण किया गया। उपस्थित लोगो ने सर्वसम्मति से स्वामी जी को इसका प्रधान बना दिया[6]। इसी दिन रात्रि को स्वामी जी ने आर्य समाज आगरा मे शुद्धि के सम्बन्ध मे प्रभावशाली व्याख्यान दिया।

अगले दिन स्वामी जी को शुद्धि के लिये सॉधन नामक ग्राम मे जाना था। स्वामी जी ने गुरुकुल कागडी के स्नातक ब्रह्मानन्द दीक्षित को आदेश दिया कि वे उनके साथ सॉधन चलेगे। आगरा से अछनेरा तक रेल द्वारा यात्रा की। आगे की यात्रा के लिये तागे की तलाश की गई। इसे दैवयोग ही समझिये कि स्वामी जी को सॉधन गाव ले जाने और वापिस लाने के लिये जो तागा किराये पर लिया गया था, उनका कोचवान मुसलमान था। वह आगरा मे सम्पन्न हुई शुद्धि सभा की गतिविधियो से पूर्ण परिचित था। स्वामी जी को अपने तागे मे सवार देखकर उसके मन मे पाप जाग गया। उसने ऊबड–खाबड कच्चे रास्ते पर तागे को इस नीयत से दौडाया कि वह उलट जाये औरे तागे मे बैठी सारी सवारियॉ चोट खा जायें। ब्रह्मानन्द दीक्षित ने कोचवान की भावना को ताड लिया और तागे से उतर कर उसकी पिटाई कर दी। स्वामी जी ने दीक्षित को धमकाया। पिटाई से कोचवान और भी बौखला गया औरे तागे को बहुत ही धीमी गति से चलाने लगा। किन्तु वह जानबूझकर एक पहिये को ऊची जगह चढा देता था, ताकि तागा उलट जाये। एक बार जब तागा उलटने को हुओ तो दीक्षित तागे से कूद पडा और तीन मील तक तागे को हाथो का सहारा देते हुए चला। अन्त मे स्वामी जी सहित सभी सवारी सकुशल सॉधन गॉव मे पहुच गई। वहॉ के शुद्धि सस्कार को देखकर कोचवान जल–भुन गया। दीक्षित ने परिस्थितियो की नजाकत को समझते हुए सॉधन से अछनेरा तक का साढे चार मील का वापिसी मार्ग तागे को सहारा देते हुए पैदल ही पार किया[7]। इस प्रकार एक दुर्घटना होने से बच गई।

स्वामी जी की अध्यक्षता मे बनी शुद्धि सभा की कार्यकारिणी का बहुमत इस पक्ष मे था कि इस विषय मे सावधानी पूर्वक शनै शनै कार्य आरम्भ करना चाहिए। परन्तु स्वामी जी का विचार

था कि हमे इस कार्य मे शीघ्रता करनी चाहिये, क्योकि मुसलमान तबलीग (धर्म परिवर्तन) के माध्यम से पहले ही हिन्दुओ से आगे जा चुके हैं। अत उनकी दृष्टि मे धन और जन की अपील शीघ्रता से ही प्रकाशित होनी चाहिये। बहुत विचार विमर्श के उपरान्त शुद्धि सभा के गठन के दस दिन बाद 'मरती हुई जाति को बचाओ' शीर्षक से स्वामी जी ने एक अपील इस प्रकार प्रसारित की—

"वर्तमान समय मे महान् आर्य जाति को मरती हुई जाति कहा जाता है। इसका कारण इसकी छीजती सख्या नहीं अपितु इसका असगठित होना है। व्यक्तिगत रूप मे प्रतिभा और शरीर तथा अन्य जातियो द्वारा अप्राप्य नैतिकता के नियमो को धारण करने से भूमण्डल पर अद्वितीय समझी जाने वाली आर्य जाति अपनी फूट और स्वार्थ के कारण असहाय है। इस जाति के लाखो श्रेष्ठ पुरुषो ने मुस्लिम धर्म को स्वीकार कर लिया है और हजारो को ईसायइत ने ललचाया है। हमने उन्हे रोकने और उद्धार का कोई प्रयास नहीं किया है। नये मुसलमान बने कुछ ब्राह्मण, वैश्य, राजपूत और जाट दो सौ वर्षो के अधिक समय से हिन्दू धर्म के विश्वासो को सजोये हुये इस आशा मे बैठे है कि उन्हे पुन हिन्दू धर्म अपनाने का अवसर मिलेगा। मलकाना राजपूतो के कारण यह सुयोग हमे अब प्राप्त हुआ है। राजपूत महासभा ने ढोल पीट कर यह घोषणा की कि साढे चार लाख मुसलमान राजपूत हिन्दू बनने के लिए तैयार है। इस भ्रामक घोषणा के पश्चात् राजपूत सभा चद्दर तानकर सो गई। मै इस घोषणा को भ्रामक इसलिये कहता हू कि इनमे से अत्यधिक बहुमत ने विश्वास और व्यवहार मे कभी मुस्लिम धर्म को स्वीकार नही किया। हिन्दू समाज सो गया लेकिन मुसलमान एक जागृत शक्ति के समान कार्य मे लग गये। उनके दर्जनो प्रचारक इस कार्य मे लगे हुए है। जिनके रख—रखाव और प्रचार के लिये रुपया पानी की तरह आ रहा है। इसने आखिरकार हिन्दू जाति को भी जागृत किया और अब चारो तरफ से यह आवाज आ रही है कि इन बिछडे भाइयो को वैदिक धर्म की छाती से लगाया जाये। इस उद्देश्य से उन हिन्दुओ का पुनरुद्धार करने के लिये जो मुस्लिम धर्म त्याग कर पुन हिन्दू धर्म मे आना चाहते है, एक नई सभा का गठन किया गया है[६]।

इस अपील के पश्चात् स्वामी जी सर्वात्मना शुद्धि कार्य मे लग गये। शुद्धि ही उनका धर्म और शुद्धि ही उनका कर्म बन गया। 25 फरवरी, 1923 को आगरा के समीपवर्ती गॉव 'रैबना' मे हुये विशाल शुद्धि सस्कार मे भी सम्मिलित हुए। स्वामी जी ने अगले दो महीनो मे ग्राम—ग्राम घूम कर शुद्धि को सामान्य लोगो तक पहुचाने का प्रशसनीय कार्य किया। इन दो महीनो मे लगभग 200 ग्रामो का दौरा किया और शुद्धि आन्दोलन को राष्ट्रीय महत्व का प्रश्न बना दिया। शुद्धि सभा की ओर से 'शुद्धि समाचार' मासिक पत्र भी निकलने लगा। शुद्धि आन्दोलन के प्रथम मास मे 5000 मलकानों को शुद्ध किया गया और वर्ष के अन्त तक यह सख्या 30000 तक पहुच गई[७]। शुद्धि आन्दोलन के प्रारम्भिक दिनो मे आर्य समाज तथा इसके सहयोगी व्यक्ति ही अगुआ थे। अत यह स्वाभाविक ही था कि मुसलमान शुद्धि आन्दोलन के विरुद्ध हो गये और आर्य समाजी सन्यासी उनकी आखो मे काटा बन कर चुभने लगा। सन्यासी के भगवे वस्त्रो से मुसलमानो को साक्षात् शुद्धि की ज्वालाये निकलती दिखाई पडने लगीं। अत स्वामी श्रद्धानन्द का सामूहिक और व्यक्तिगत विरोध करने की तैयारियॉं होने लगी।

23 मार्च, 1923 मे 'जमायत—उल—उलमा' नामक सस्था के तत्त्वाधान मे हुई बम्बई की एक सभा मे स्वामी जी के शुद्धि कार्य की निन्दा की गई। स्वामी जी की शुद्धि सम्बन्धी सरगर्मियो को देखते हुए अफवाह यह फैली कि मुसलमान मौलवी हिन्दू साधुओ के वेश मे मलकाने राजपूतो मे जाकर यह प्रचार कर रहे हैं कि शुद्धि हिन्दू शास्त्रो के विपरीत है। वे मलकानो को यह कह कर भी भयभीत कर रहे थे कि तुम्हारी रोटी—बेटी की समस्या उत्पन्न हो जायगी। सवर्ण हिन्दू तुम्हारे साथ विवाह सूत्र मे बधना पसन्द नहीं करेगे। अत तुम हमारे धर्म को मत बिगाडो और अपने पुराने ढॉचे

मे ही बने रहे। उन्होने यहाँ तक भी कहना आरम्भ कर दिया कि हम सन्यासी श्रद्धानन्द को देख लेगे कि वह हिन्दू धर्म को कैसे बिगाडता है। इससे स्वामी जी के शुभचिन्तको मे चिन्ता व्याप्त गई और वे स्वामी जी की सुरक्षा के विषय मे सोचने लगे। स्वामी जी का स्पष्ट उत्तर मिला "परम पिता मेरा रक्षक है।"

'जमायत–उल–उलमा' के पहल करने पर अनेक स्थानों पर स्वामी जी की सभाओ के प्रत्युत्तर मे मुसलमानो ने भी सभाये की। प्रशासन ने भी मुसलमानो का साथ दिया और स्वामी जी को मुरादाबाद मे भाषण देने से रोका गया। मुसलमानो द्वारा सभी प्रयास करने पर भी जब शुद्धि का आन्दोलन ठडा नहीं पडा तो उन्होने एक मात्र बचे ब्रह्मास्त्र को चलाया और कहना आरम्भ कर दिया कि इससे 'हिन्दू–मुस्लिम' एकता को खतरा है। इस बात से राजनीतिज्ञो के कान खडे हो गये। राजनीतिज्ञ मानवाधिकार के नाते यह तो स्वीकार करते थे कि धर्म परिवर्तन प्रत्येक व्यक्ति का निर्बाध अधिकार है। अत वे इस कारण शुद्धि आन्दोलन को रोक तो नहीं सकते थे परन्तु यह कहकर कि यह सामयिक नहीं है, इससे लोगो को विरत अवश्य कर रहे थे। राजगोपालाचार्य ने 'यग इण्डिया' मे लिखा "यदि स्वामी श्रद्धानन्द का मलकाना राजपूतो के सम्बन्ध मे दावा सत्य है, पर अधिक सम्भावना है कि यह सत्य है तो यह धर्म परिवर्तन नहीं है, लेकिन यह तो मात्र उन लोगो का पुनरुद्धार है जो पहले ही हिन्दुत्व की प्रथाओ के अनुयायी थे। इस विषय मे राष्ट्रीय औचित्य के सिद्धान्त का तर्क भी है।" प० मोती लाल नेहरु ने 8 अप्रैल, 1923 को इसी प्रकार का वक्तव्य दिया था। इसमे कहा गया था कि जब पजाब मे हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्ध कटु हैं, यदि इस समय यह आन्दोलन आरम्भ नहीं किया जाता तो उन्हे प्रसन्नता होती। प० जवाहर लाल नेहरु ने भी यही बोली अपनाई और कहा कि मलकाना के क्षेत्रो से सभी बाहय प्रचारको को चला जाना चाहिये और उन्हे स्वय अपनी ही सोच के अनुसार कार्य करने देना चाहिये।

स्वामी श्रद्धानन्द के शुद्धि आन्दोलन की लोक प्रियता और काग्रेसी नेताओ द्वारा उसकी वैधता को स्वीकार किये जाने पर पुरातनपथी हिन्दुओ मे भी हलचल हुई। इस हलचल के अनेक कारणो मे से एक कारण यह था कि इस आन्दोलन से उनकी हिन्दू हितो की ठेकेदारी हाथ से निकलती दिखाई देने लगी थी। अपनी पकड को उसी तेवर मे रखने के लिए 'भारत धर्म महामण्डल' के प्रतिनिधि के रूप मे महाराजा दरभंगा रियासत एव बनारस के पडितो ने 31 मार्च, 1923 को मलकाना राजपूतो की शुद्धि को अपनी स्वीकृति दे दी[10]। 4 और 5 अप्रैल को बनारस मे मलकानो से सम्बन्धित बैठके हुई और 5 पुरातनपथी पडितो ने मलकाना क्षेत्रो मे शुद्धि हेतु अपनी सेवाये अर्पित कर दीं। परन्तु सनातनियो (पुरातन पथियो) के शुद्धि कार्य मे सम्मिलित होने का कदापि यह अर्थ नहीं था कि वे आर्य समाज के झडे के नीचे कार्य करने के लिये तैयार है। मई, 1923 मे उन्होने 'हिन्दू पुन सस्कार समिति' नामक सस्था का गठन कर के स्वतन्त्र रूप से कार्य करना आरम्भ कर दिया।

हिन्दू संगठन और बनारस अधिवेशन

शुद्धि के माध्यम से स्वामी जी हिन्दू समाज को एक मच पर लाकर सगठित रूप देना चाहते थे। अत हिन्दू सगठन उनके अपने दिमाग की सूझ थी[11]। स्वामी जी का हिन्दू सगठन का विचार 'हिन्दू महासभा' के राजनैतिक विचारो से अछूता, चारित्रिक बल पर जोर देने वाला और हिन्दू समाज की अन्यायपूर्ण और अवैचारिक कुरीतियो के उन्मूलन की दिशा मे किया जाने वाला प्रयास था। अतः आपके सगठन मे प्रत्येक व्यक्ति के लिये ब्रह्मचर्य व्रत का पालन पहली अनिवार्य शर्त थी। आपके विचारो मे चौके–चूल्हे के झझट मे और अपने ही दलित भाइयो की छाया की छूवन से अपने को अपवित्र समझने वाला हिन्दू समाज कभी सगठित नहीं हो सकता। अत दलितोद्धार आपके सगठन

रूपी देह की आत्मा था। स्वामी जी की मान्यता के अनुसार विधवाओ के प्रति किये गये अत्याचारो का प्रायश्चित्त हिन्दू समाज को उनके पुनरुत्थान द्वारा करना चाहिये। यह स्वामी जी के सगठन का तीसरा मूल मन्त्र था। उपर्युक्त मान्यताओ को समर्थन मिलने की आशा से स्वामी जी ने 'हिन्दू महासभा' द्वारा 19 और 20 अगस्त को बुलाये गये बनारस अधिवेशन मे सहयोग देने की सोची। इस सहयोग के पीछे हिन्दू धर्म के सभी वर्गों को एकता के सूत्र मे बाध कर दृढ सगठन बनाना भी था। स्वामी जी ने बनारस सम्मेलन की सफलता के लिये स्वामी स्वतन्त्रतानन्द पर शुद्धि कार्य का भार डाल दिया और स्वय मदनमोहन मालवीय के साथ मिलकर इसके प्रचार कार्य मे लग गये। इसके साथ ही स्वामी जी ने बनारस सम्मेलन के विचारार्थ निम्न तीन प्रस्ताव भी प्रेषित कर दिये–

(1) हिन्दू समाज मे तथाकथित दलित वर्ग के साथ न्याय करने की दृष्टि से और उन्हे सम्पूर्ण आर्य भाईचारे का अग मानकर आत्मसात् करने के सम्बन्ध मे यह सम्मेलन प्रस्तावित करता है–

(अ) कि दलितो मे से भी अत्यन्त दलितो को जन सामान्य के कुओ से पानी भरने की स्वीकृति होनी चाहिये।

(आ) कि दलितो को 'प्याऊ' पर पानी पीने की वही सुविधा होनी चाहिये जो उच्च वर्ण के लोगो को मिलती है।

(इ) कि जन सभाओ एव अन्य उत्सवो पर दलितो को उसी दरी पर बैठने की स्वीकृति होनी चाहिये जिस पर उच्च वर्ण के व्यक्ति बैठते हैं।

(ई) कि दलित वर्ग के बच्चो को सरकारी और गैर सरकारी विद्यालयो मे उसी प्रकार प्रवेश और कक्षा मे बैठने की सुविधा प्राप्त हो जिस प्रकार की सुविधा अन्य हिन्दू एव अहिन्दू विद्यार्थियो को मिलती है।

स्वामी जी का उपर्युक्त प्रथम प्रस्ताव वस्तुत उनके अमृतसर काग्रेस अधिवेशन मे अस्पृश्यता निवारण के सकल्प का ही खुलासा था। इस खुलासे की स्पष्ट व्याख्या इस प्रस्ताव से पूर्व भी स्वामी जी ने 3 जून, 1922 को हरिद्वार से काग्रेस के महामन्त्री को लिखे अपने पत्र मे की थी। राजनीति के आँचल मे स्वामी जी का प्रस्ताव सौतले बेटे के समान ही समझा गया। वहाँ से निराश होकर हिन्दू महासभा की गोद मे इसका पोषण हो सकेगा, यह सोचकर स्वामी जी ने निम्न प्रस्ताव प्रेषित किया था।

(1) यह सम्मेलन प्रस्तावित करता है कि नये मुसलमान हिन्दू धर्म मे लिये जाने चाहिये और उन्हे हिन्दुओ के समान ही समझना चाहिये।

(2) इस तथ्य को दृष्टि मे रखते हुए कि धर्मान्तरण के कारण बने मुसलमानो और ईसाइयो की बहुत बडी सख्या हिन्दुओ की वशज है और अनार्यों को आत्मसात् करने की वैदिक धर्म की उदारता को देखते हुए यह सम्मेलन प्रस्तावित करता है कि हिन्दुओ के किसी भी वर्ग द्वारा प्रायश्चित्त विधि से शुद्ध किया गया अहिन्दू सम्पूर्ण हिन्दू जाति की दृष्टि मे प्रत्येक प्रकार के कार्य के लिये हिन्दू ही माना जाना चाहिए।

उपर्युक्त प्रस्ताव एकता की आशा मे किये जाने वाले प्रथम अधिवेशन मे प्रथम दृष्ट्या चौंकाने वाले थे। अपने पुराने घरौदे से निकल कर शुद्धि की ओर हाथ बढाने वाले पुरातनपथी हिन्दुओ का तुरन्त इसके लिये तैयार हो जाना अकल्पित था। इस बात को स्वामी जी और मालवीय जी दोनों

ही समझते थे। स्वामी जी के ये प्रस्ताव विषय समिति के समक्ष प्रस्तुत हुए। पक्ष और विपक्ष के तर्कों को सुनने के बाद आर्य और सनातनी सदस्य निम्न समझौते पर पहुँचे कि स्वामी जी का दूसरा प्रस्ताव इस सशोधन के साथ स्वीकार किया जाये कि नव मुस्लिम कहलाने वाले जिन मलकाना राजपूतो ने हिन्दू धर्म के मुख्य सिद्धान्तो को नहीं त्यागा है और वैवाहिक सम्बन्धो मे मुसलमानो मे नहीं मिले हैं, उन्हे शुद्धि द्वारा हिन्दू धर्म की उन्हीं जातियो मे सम्मिलित किया जाये, जिसमे वे धर्मान्तरण से पूर्व थे। इसके साथ ही पूर्वकृत शुद्धियो के लिये प्रसन्नता प्रकट की गई।

स्वामी जी के पहले और तीसरे प्रस्ताव के सम्बन्ध मे यह समझौता हुआ कि इनके सम्बन्ध मे हिन्दू शास्त्रो के ज्ञाता विद्वानो की एक समिति गठित की जाये जो अपनी खोजो और निर्णयो को कार्य समिति के समक्ष रखे। अधिवेशन मे स्वामी जी ने उपर्युक्त सशोधनो के पक्ष में अपनी सहमति प्रदर्शित की। सम्मेलन के अन्तिम सत्र मे स्वामी जी को हिन्दू महासभा का प्रधान निर्वाचित किया गया। सम्मेलन की समाप्ति पर लोगो द्वारा सफलता का श्रेय देने पर बनारस से लौटने के पश्चात् स्वामी जी ने अपनी प्रतिक्रिया को प्रकट करते हुए लिखा—

"मेरी इच्छा थी कि हिन्दू महासभा को गत अधिवेशन मे और अधिक पूर्ण सफलता प्राप्त हुई होती। यदि अस्पृश्यता का पाप धुल जाता और विधवाओ के पुनर्विवाह की रुकावट एकदम उठा दी जाती, तो मुझको अधिक सन्तोष होता। यदि आग्रह किया जाता तो दोनो प्रस्ताव बहुत अधिक सम्मति से अवश्य स्वीकृत हो जाते। परन्तु आदरणीय सभापति पडित मालवीय जी की सम्मति को मानते हुए मैंने काशी के ब्राह्मण पडितो को एक और अवसर देना उचित समझा, जिससे वे स्वय जनता का हित करते हुये हिन्दू जाति का सम्मान प्राप्त कर सके। मुझको यह जानकर बडा दुःख और निराशा हुई कि दलित भाइयो को महासभा के मच पर से भाषण नहीं करने दिया गया।. . . हिन्दू महासभा ने न केवल मलकाना राजपूतो को किन्तु ब्राह्मण, वैश्य, गूजर, जाटआदि सभी को जो रीति—रिवाज तथा सस्कारो से हिन्दू हैं, पर नाममात्र के परधर्मी है, अपनी—अपनी बिरादरियो मे फिर से सम्मिलित करने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत किया है। ..... अकेले मुझ को श्रेय देना इन कार्यकर्ताओ की उपेक्षा करना है, जिन्होने अपना सब समय इस काम मे लगाया हुआ है। . फिर भी मुझको प्रसन्नता है कि पुरातन आर्य सभ्यता की सेवा के लिये बलिदान का मुकुट धारण करने के लिये एकमात्र मुझको ही योग्य समझा जा रहा है[12]।"

स्वामी जी के वक्तव्य का अन्तिम अश विनीतता और कार्यकर्ताओ के सम्मान की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हुये भी भावी घटना का सकेत दे रहा था कि स्वामी श्रद्धानन्द का हिन्दू जाति के उत्थान के लिये बलिदान अवश्य होना है।

स्वामी जी की हिन्दू सभा और हिन्दू सगठन के प्रति समर्पण भावना का आकलन करते समय यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि स्वामी जी पिछले अनेक वर्षों तक इसके प्रति उदासीन क्यो रहे? जबकि 1912 मे कर्नल यू. मुकर्जी ने हिन्दू धर्म की घटती हुई सख्या के प्रति उनका ध्यान आकर्षित करते हुए आकडो के आधार पर यह बताने का प्रयास किया था कि 420 वर्षों मे भूमण्डल से आर्य जाति का समूल नाश हो जायेगा[13]। इसके अतिरिक्त 1915 मे पजाब हिन्दू महासभा ने अखिल भारतीय हिन्दू महासभा स्थापित करने के लिये स्वामी जी को आमन्त्रित किया था किन्तु स्वामी जी ने इसमे भाग लेने के लिये इन्कार कर दिया था। स्वामी जी ने अपनी उदासीनता का स्पष्टीकरण देते हुए 'हिन्दू सगठन' नामक पुस्तक मे लिखा है कि "कर्नल मुकर्जी द्वारा मेरे सम्मुख उपस्थित किये गये तथ्यो का मेरे ऊपर असर पडा। मैं पहले से ही ईसाइयो और मुसलमानो की शुद्धि के कार्य में रुचि रखता था। अब मैंने इस विषय का विशेष अध्ययन आरम्भ कर दिया। इसके बाद 13 वर्ष तक मैं अध्ययन की दृष्टि से साख्यकीय शास्त्र का विद्यार्थी रहा। परन्तु 1923 के आरम्भ मे अपना दिल और दिमाग जनता के बचाव तथा उन्नति की लडाई

मे लगा दिया और अब वह समय आ गया है जब मैं अपनी विचार धाराओ और अनुभवो को जनता के विचारशील हिस्से के सम्मुख उपस्थित करूँ[14]।"

कुछ लेखको के अनुसार इस उदासीनता के पीछे यह भावना थी कि हिन्दू सभा का नेतृत्व द्वितीय श्रेणी के उन नेताओ के हाथ मे था जो कि डी.ए.वी. सस्थाओ से सम्बन्धित थे[15]। हमारे विचार मे डी.ए.वी. के नेतृत्व वाली बात उदासीनता के मूल्याकन मे कोई कारण नहीं थी। हाँ इतना सत्य है कि स्वामी जी इन हिन्दू नेताओ को हेय दृष्टि से देखते थे जो हिन्दुत्व का दावा ठोककर ब्रिटिश भक्ति के पुजारी थे। स्वामी जी की उदासीनता का प्रमुख कारण उनका काग्रेसोन्मुख राजनैतिक दर्शन था। उनकी दृष्टि मे हिन्दू सभा उतने सबल हाथो मे नहीं थी जितने सबल हाथो मे काग्रेस की बागडोर थी। इसके अतिरिक्त स्वामी जी यह भी समझते थे कि हिन्दू महासभा के नाम पर परस्पर धार्मिक मतभेदो के कारण एकता का प्रयास स्थायी नहीं रह सकेगा।

हिन्दू सगठन के माध्यम से हिन्दू महासभा मे प्रविष्ट होने पर न तो स्वामी जी का राजनैतिक कद ही बढा और नैव धार्मिक क्षेत्र मे उनके आचार्यत्व मे कोई वृद्धि हुई। हॉ इसके विपरीत यह अवश्य हुआ कि आर्य समाज के गहरे रग मे रगे हुये स्वामी जी जो कभी आर्य शब्द के प्रयोग के लिये आग्रह किया करते थे अब 'हिन्दू आर्य' शब्द का प्रयोग करने लगे थे। मित्रो के कथनानुसारउनकी मन की मुराद भी पूरी नहीं हुई और प्राणो से भी हाथ धोना पडा। विष्णु प्रभाकर एव विष्णुदत्त राकेश ने स्वामी जी के हिन्दू सगठन का मूल्याकन करते हुए कहा है "हिन्दू सगठन का मतलब उनके लिये मुस्लिम विरोधी नहीं था बल्कि हिन्दुओ के अपने अन्दर के कलुष को धोना था[16]।" परन्तु खेद है कि धार्मिक सकीर्णता ने कलुष को धोने नहीं दिया।

शुद्धि सस्कार मे पूर्ण वैदिक प्रक्रिया न अपनाने के कारण स्वामी जी को कटूक्तियाँ सहनी पडीं। स्वामी जी ने शुद्धि प्रचारको को यह कह दिया था कि शुद्धि के लिये अनावश्यक वैदिक विधि–विधानो को काटकर सक्षिप्त विधि से सस्कार कर देना उचित है। इस कारण कट्टर आर्य समाजी असन्तुष्ट हो गए। स्वामी जी अपनी आलोचना से विचलित नहीं हुए। प्रक्रिया मे चमत्कारी परिवर्तन करना उनके स्वभाव का अग था। इस स्वभाव का सबसे प्रमुख प्रमाण वे सन्यास लेते समय दे चुके थे।

हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयास

हिन्दू महासभा और हिन्दू सगठन के समय (1923) देश मे अनेक स्थानो पर हिन्दू–मुस्लिम झगडे भडक उठे थे। 1923 ई0 के प्रारम्भ मे मुलतान और अमृतसर के झगडो के बाद कलकत्ता मे आर्यों द्वारा एक मस्जिद के सामने बाजा बजाने के कारण झगडा हो गया। अगस्त के अन्तिम दिनो मे सहारनपुर का हिन्दू–मुस्लिम फिसाद महीनो तक शान्ति स्थापित न होने के कारण बना रहा। दिल्ली में सितम्बर मास को सम्पन्न हुई काग्रेस की बैठक मे शुद्धि और सगठन को शान्ति भग का कारण मानकर नेताओं ने भरपूर कोसा। इस बैठक से कुछ दिन पूर्व दिल्ली के हिन्दू तथा मुसलमान नेता शहीद हाल (1919 के शहीदो की स्मृति मे निर्मित भवन) मे हिन्दू–मुस्लिम समस्या के समाधान के लिये इकट्ठे हुये। हकीम अजमल खाँ के प्रस्ताव पर स्वामी श्रद्धानन्द को इस बैठक का अध्यक्ष बनाया गया।

इस बैठक मे मौलाना अहमद सौद ने हिन्दू–मुस्लिम विवाद को शुद्धि द्वारा भडकाने के लिये स्वामी जी पर दोषारोपण किए। उसने यहा तक कह डाला कि स्वामी जी ने दोनों जातियो मे झगडे करवाने के लिये अंग्रेजी सरकार से पैसे लिये हैं। स्वामी जी ने शुद्धि और संगठन के सन्दर्भ में अपने ऊपर लगाये गये आरोपो का उत्तर देते हुये कहा कि हिन्दू–मुस्लिम एकता को आघात मियाँ फजल हुसैन और मुलतान

के मुसलमानो के सीमातीत भडकाऊ भाषणो से लगा है। काग्रेस भी बारदौली प्रस्ताव के उपरान्त शिथिल हो गई। मौलवी तथा हिन्दू नेता व्यर्थ मे ही शुद्धि और सगठन को एकता के भग का बहाना बना रहे हैं। इस बैठक मे मलकाना राजपूतो के क्षेत्रो मे बाहय हस्तक्षेप विषय पर भी खुलकर चर्चा–परिचर्चा हुई। स्वामी जी ने अपने विचार प्रकट करते हुये निश्चयात्मक रूप मे घोषणा की कि आगरा के समीपवर्ती क्षेत्र मे शान्ति भग करने का उत्तरदायित्व मुसलमान मौलवियो पर है।

हिन्दु–मुस्लिम एकता की बैठको के समय मे ही ख्वाजा हसन निजामी द्वारा लिखित 'दाइये इस्लाम' नामक एक छोटी सी पुस्तक स्वामी जी के हाथ लग गई थी। इस पुस्तक मे उन उचित–अनुचित साधनो का प्रयोग लिखा गया था जिनसे हिन्दुओ को मुसलमान बनाया जा सकता है। इस पुस्तक मे यह भी लिखा गया था कि इस विषय मे सर्वप्रथम अछूतो को आकर्षित किया जाये जिससे वे सब मुसलमान बन जाये और मुसलमानो की सख्या हिन्दुओ के बराबर हो जाये। इसके साथ ही इस पुस्तक मे बार–बार आर्य समाज और स्वामी जी पर आक्रमण किया गया था। स्वामी जी को मुसलमानो के प्रचार मे सबसे बडा बाधक मानते हुए लिखा गया था कि स्वामी जी को जेल मे कुछ ऐसा हो गया कि पूर्व मे हिन्दू–मुस्लिम एकता का स्वर देने की अपेक्षा अब वे हिन्दू–मुस्लिम एकता मे खाई पैदा कर रहे है। अब वे पुरातनपथी हिन्दुओ को अपने साथ मिलाकर आर्य समाज की सख्या बढाना चाहते है।

एकता की बैठक मे उपर्युक्त पुस्तक का हवाला देते हुये स्वामीजी जी ने कहा कि यह पुस्तक 'फातमाई दावत–ए–इस्लाम' नामक पुस्तक की अनुभूमिका है। 'फातमाई दावत–ए–इस्लाम' 1920 मे लिखी गई थी। अत मुसलमानो ने शुद्धि और सगठन नामक सस्थाओ की स्थापना से पूर्व ही हिन्दुओ की सख्या को कम करने की योजनाए बना रखी थी। इसके साथ ही स्वामी जी ने हिन्दू जनता को सावधान करने के लिये तुरन्त ही 'दाइये इस्लाम' नामक पुस्तक का प्रत्युत्तर देने के लिये 'हिन्दुओ सावधान, तुम्हारे धर्म दुर्ग पर रात्रि मे छिपकर धावा बोला गया' नामक एक छोटी पुस्तक लिखी। इस पुस्तक मे हिन्दुओ को सावधान करते हुये स्वामी जी ने सुझाव दिये कि हिन्दुओ को चाहिये कि वे अपने धर्म की पूर्ण शिक्षा का प्रबन्ध करे। इस कार्य को आर्य समाज ने आरम्भ किया था, लेकिन अकेले उनके बस की बात नहीं है। देशी–रियासतो के हिन्दू राजाओ को मुस्लिम रहन–सहन का त्याग करना चाहिये, क्योकि राजाओ के रहन–सहन का अनुसरण प्रजा करती है और इससे लोग मुस्लिम सस्कृति की ओर आकर्षित होते है। हिन्दुओ को चाहिये कि वे मुसलमानो के धार्मिक त्यौहारो मे जाना, उनके पीर पैगम्बरो को पूजना और उनके तीर्थ स्थलो पर जाना छोड दे। हिन्दुओ को असहाय बच्चो और विधवाओ की सुरक्षा करनी चाहिये। क्योकि ये निराशा की स्थिति मे मुस्लिम धर्म की ओर खिचे चले जाते हैं। सभी हिन्दुओ को अस्पृश्यता के भेद को भगाना चाहिये। पुस्तक के अन्त मे स्वामी जी ने मुसलमानो से अपील की कि वे निजामी की योजनाओ से दूर रहे और उनकी निन्दा करे जिन्होने इन योजनाओ मे भाग लिया है।

इस्लाम के विकास के सम्बन्ध मे निजामी की पुस्तक मे दी गई अनैतिक योजनाओ की तुलना मे स्वामी जी की पुस्तक की योजनाये नैतिकता से युक्त थीं। निजामी की पुस्तक में घृणा के भाव थे और हिन्दुओ को मुस्लिम धर्म मे लाने के सभी प्रकार के उपाय सुझाये गये थे, जबकि स्वामी जी ने अपनी पुस्तक मे मात्र हिन्दुओ को ही अपने दृष्टिकोणो मे परिवर्तन के सुझाव दिये गये थे। इस प्रकार एकता की बैठक मे यह सिद्ध करने पर कि एकता तोडने की पहल मुसलमानो की ओर से निरन्तर होती रही है, स्वामी ने सदाशयता का परिचय देते हुये कहा कि वे प्रयास करेगे कि शुद्धि सभा और हिन्दू सगठन इस बैठक के प्रस्ताव को स्वीकार करके अपने प्रचारको को मलकाना क्षेत्र से वापिस बुला ले। यदि मुसलमान अपने प्रचारको को वापिस बुलाना स्वीकार कर लेते हैं और शुद्धि सभा इसे अस्वीकार कर देती है तो वे शुद्धि सभा के प्रधान पद से त्यागपत्र दे देगे। स्वामी जी ने इसी सन्दर्भ मे कहा कि प्रथम–मुसलमानो को ही अपने बाहय प्रचारक हटाने चाहिये, क्योकि उन्होंने ही इस विषय मे पहल की थी।

इधर काग्रेस की विशेष बैठक मे भी हिन्दू–मुसलमान समस्या को सुलझाने के प्रयास जारी थे। काग्रेस की बैठक मे शुद्धि और तबलीग के सम्बन्ध मे निर्णय लेते हुये कहा गया था कि इस समस्या के समाधान के लिये मौलवियो, पडितो, मुसलमान और हिन्दू नेताओ के हस्ताक्षरो सहित एक वक्तव्य जारी होना चाहिये। जिसमे यह लिखा हुआ हो कि जो व्यक्ति एक दूसरे धर्म के व्यक्तियो की जान और माल को हानि पहुँचाने वाली गतिविधियो मे सम्मिलित होगा, वह धार्मिक दृष्टि से महापापी होगा। लगभग साठ से ऊपर हिन्दू–मुसलमान नेताओ ने उपर्युक्त वक्तव्य के पक्ष मे हस्ताक्षर कर दिये थे। इन हस्ताक्षरकर्ताओ मे स्वामी श्रद्धानन्द भी एक थे।

स्वामी श्रद्धानन्द की हिन्दू मुस्लिम एकता की वार्ता मे सलिप्तता के कारण यह किवदन्ती फैल गई कि स्वामी जी काग्रेस के हाथ बिक गये हैं और उन्होने शुद्धि और सगठन के कार्य को तिलाजलि दे दी है। लोगो के मनो मे बैठी भ्रान्त धारणा के निराकरण के लिये स्वामी जी ने 28 सितम्बर को दिल्ली से निम्न वक्तव्य दिया–

"निष्क्रिय और शरारती तत्त्वो द्वारा कभी–कभी यह प्रचार किया जा रहा है कि मैंने और मालवीय जी ने काग्रेस के नेताओ के कहने से शुद्धि और सगठन का कार्य करना छोड दिया है। इस प्रकार की कोई बात नहीं है। शुद्धि का कार्य ईमानदारी से उसी प्रकार किया जायेगा जैसा कि पहले बिना अनुचित साधनों के किया जाता रहा है। मैंने अपना त्यागपत्र साहित्यिक कार्यो के लिये समय निकालने के विचार से देने का निश्चय किया था। जब आर्य समाजी और सनातनी नेताओ ने मुझ पर दबाव डाला तो मैंने निर्णय ले लिया कि साहित्यिक कार्य को छोडकर मै पूर्ववत् लगा रहूगा[17]।

हिन्दू महासभा से मोह-भंग

बनारस प्रस्ताव के अनुसार स्वामी जी के प्रस्तावो पर विचार करने के लिये 72 पडितो की एक समिति गठित की गई। इस समिति की 24 जनवरी, 1924 को बनारस मे एक बैठक हुई। इस बैठक के निर्णयों और खोजो की रिपोर्ट हिन्दू महासभा की कार्यकारिणी को भेज दी गई। पडितो की समिति ने स्वामी जी के अछूतोद्धार के प्रस्ताव मे सुझाये गये स्कूलो, मन्दिरो और कुओ के प्रवेश वाले अशो को कुछ सशोधनो के साथ स्वीकार कर लिया। परन्तु इस समिति ने अछूतो को यज्ञोपवीत देने और उनके साथ खाने के विषय मे अपना निर्णय देते हुए लिखा कि शूद्रो को यज्ञोपवीत देना, वेदो का पढाना और उनके साथ मिल कर भोजन करना धर्मशास्त्रो के विरूद्ध है। अत एकता के लिये आवश्यक है कि महासभा के सदस्यो को इन सामाजिक सुधारो को छोड देना चाहिये। कार्य समिति के आर्य समाजी सदस्यो ने इसका डटकर विरोध किया। इस विरोध का परिणाम यह निकला कि उपर्युक्त प्रस्ताव मे निम्न प्रकार से सशोधन करना पडा–

"कि अछूतो को यज्ञोपवीत देने, वेदो को पढाने और उनके साथ भोजन करने आदि विषयो में अधिक सख्यक सनातनियो का कहना है कि ये कार्य शास्त्रानुकूल नही है। अत हिन्दू महासभा के नाम पर ये कार्य नहीं करने चाहिए।"

दूसरा विवाद का विषय शुद्धि था। पडितो के प्रस्ताव के अनुसार प्रत्येक अहिन्दू को हिन्दुत्व के दायरे मे आना स्वागत के योग्य है। लेकिन उनको हिन्दुओ की किसी जाति मे सम्मिलित नहीं किया जायेगा। यह प्रस्ताव भी सर्वसम्मति से स्वीकार हो गया। उपर्युक्त स्वीकृत दोनो प्रस्ताव स्वामी श्रद्धानन्द के मूल प्रस्तावो की भावना के अनुकूल नहीं थे। इसी कारण स्वामी जी फरवरी, 1924 मे होने वाले इलाहाबाद के विशेष अधिवेशन मे सम्मिलित नही हुए।

इस प्रकार सन् 1924 मे स्वामी जी के सम्मुख अछूतो के विषय को लेकर दो समस्याये उपस्थित थीं। प्रथम समस्या 'काकीनाडा' (1923) मे हुए काग्रेस के वार्षिक अधिवेशन पर मौलाना मुहम्मद अली

का निम्न वक्तव्य कि अछूतो के धर्मान्तरण के क्षेत्र मे आगा खा की आर्थिक सहायता आ रही है। इस आर्थिक सहायता से जो हिन्दू मुसलमानो का विरोध करते हैं, वे भी गुप्त रुप मे आधे मुसलमान बन जायेगे[18] थी। सत्यदेव ने मौहम्मद अली के अध्यक्षीय भाषण का हवाला देते हुए लिखा है "मौलाना मुहम्मद अली ने काकीनाडा काग्रेस के अध्यक्ष के भाषण मे अछूतों को लावारिस माल समझ आधा–आधा बाट लेने की बात कह कर, स्वामी जी के जीवन से भी अधिक प्रिय विषय पर, ऐसी गहरी चोट की थी कि उसके बाद स्वामी जी ने एक क्षण भी न गवा कर सब समय और शक्ति इस काम मे लगा देने का सकल्प कर लिया था[19]।

दूसरी समस्या हिन्दू महासभा मे रहने और न रहने के सम्बन्ध मे थी। स्वामी जी ने इस विषय मे अपनी अन्तरात्मा की आवाज के अनुसार न रहने का निश्चय किया। इस प्रकार 1924 ई0 मे स्वामी जी पुन चौराहे पर खडे दिखाई देने लगे और महासभा के कार्यो से उन्होने अपना हाथ खींच लिया। अब स्वामी के पास आर्य समाज को छोडकर अन्य ऐसी सस्था नहीं थी जो अछूतोद्धार के कार्य मे उनका हाथ बटा सके।

अछूतोद्धार के लिए धर्म यात्राएं

उत्तर भारत की अछूतोद्धार की समस्याओ से प्राय स्वामी परिचित थे। इस विषय मे दक्षिण भारतवासियो का दृष्टिकोण कैसा है, इसको जानने की इच्छा से स्वामी जी ने आर्य सार्वदेशिक सभा की ओर से दक्षिण भारत की यात्रा पर जाने का निश्चय किया। यात्रा पर जाने से पूर्व उन्होने अपनी भावी योजना के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए 'वर्तमान मुख्य समस्या' नामक छोटी पुस्तक लिखी। इस पुस्तक के आरम्भ मे आर्य समाज द्वारा अछूतोद्धार के क्षेत्र मे किये गये वर्णन के साथ शुद्धि का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक का उद्देश्य निजामी और मौलाना मुहम्मद अली की मुस्लिम विस्तारवादी प्रवृति की ओर हिन्दुओ का ध्यान आकर्षित करना था। स्वामी जी की मान्यता मे अछूतोद्धार का कार्य न तो काग्रेस के बस की बात है और न इसे हिन्दू महासभा ही कर सकती है, क्योकि काग्रेस की नीति मुस्लिम तुष्टिकरण की नीति है और हिन्दू परस्पर विभाजित हैं। अत यह कार्य स्वत ही आर्य समाज के कन्धो पर आ गया है। धर्माचार्य के रूप मे स्वामी जी ने इस पुस्तक मे हिन्दुओ के परस्पर विभाजित होने पर भी उन्हें एकत्रित करने की युक्ति सोच ही ली। इस युक्ति का केन्द्र बिन्दु 'गोरक्षा' था। स्वामी जी के कथनानुसार प्रत्येक अछूत जो मुसलमान या ईसाई बनता है, वह गोमास का भक्षण करता है। अत एक अछूत को मुसलमान अथवा ईसाई बनने से रोकने का अर्थ है कि वर्ष मे एक गाय की सुरक्षा हो गई। परन्तु बिखरी हुई हिन्दू जाति को इस प्रकार के कार्य के लिये सगठित करना कोई सरल कार्य नहीं था। चौराहे पर खडे स्वामी श्रद्धानन्द को आर्य समाज के अतिरिक्त कोई सस्था दिखाई नहीं दी। अत इस कार्य के लिये उन्होंने 250 धर्म प्रचारको और 25 लाख रूपये की अपील सार्वदेशिक सभा के दलितोद्धार फण्ड के लिये जारी कर दी।

इसके बाद स्वामी जी दक्षिण भारत की धर्मयात्रा पर चल पडे। अमृतसर काग्रेस मे अपने स्वागत भाषण मे स्वामी जी ने अछूतोद्धार के लिये काग्रेस का जो ध्यान आकर्षित किया था, उससे प्रभावित होकर मद्रास प्रान्त के नेता दीवान माधव राव, हिन्दू के स्वर्गीय सम्पादक कस्तूरी रगा आयगर और विजय राघवाचार्य आदि ने स्वामी को मद्रास प्रान्त मे दलितोद्धार कार्य करने के लिये आमन्त्रित किया था, परन्तु किन्हीं कारणो से स्वामी जी का उन दिनो मद्रास जाने का कार्यक्रम नहीं बन सका। स्वामी जी ने अपनी चिर सचित आकाक्षा को 1924 मे पूरा किया और वे 25 अप्रैल, 1924 को दिल्ली से मद्रास के लिये चल पडे। स्वामी जी 27 अप्रैल से 1 मई तक बम्बई रहे। बम्बई मे दलित भाइयो को सन्देश देते हुए स्वामी जी ने कहा "यदि तुम्हे बाह्य मन्दिरो मे जाकर देव दर्शन करने से रोका जाता है, तो अपने अन्तरात्मा के पवित्र मन्दिर मे सर्वव्यापक परमात्मा का दर्शन और पूजा करना

सीखो, जहा जाने से तुम्हे कोई रोक नहीं सकता। अपने बुजुर्गों की तरह अपना सिर कटवा दो, परन्तु धर्म न छोडो[70]।"

स्वामी जी का उपर्युक्त सन्देश औपनिषदिक चिन्तन की कोटि का माना जा सकता है। इस सन्देश मे वीर रस की अपेक्षा शान्त रस का आश्रय लेकर अछूतो की यथावत् स्थिति को स्वीकार करके उन्हे भाग्य के भरोसे पर ही छोड दिया गया है और साथ मे उनसे बलिदान की आशा भी की गई है। स्वामी जी की इस यात्रा के समय गाधी जी जूहू (बम्बई) मे विद्यमान थे और उन्हीं दिनो कालीकट वायकोम नामक स्थान पर मन्दिरो के आस–पास की सडको पर अछूतों के प्रवेश की निषेधाज्ञा को लेकर दलित जातियों द्वारा सत्याग्रह भी चलाया जा रहा था। स्वामी जी महात्मा जी से मिलने जुहू चले गए। महात्मा गाधी के मन मे हिन्दू सगठन के कार्यकर्ताओ और स्वामी जी के प्रति जो सन्देह उत्पन्न हो गया था, इस सम्बन्ध मे स्वामी जी एव महात्मा जी के मध्य विस्तार से बातचीत हुई। इसी मुलाकात मे स्वामी जी ने 'वायकोम' सत्याग्रह के विषय मे गाधी जी से बातचीत की थी, क्योकि जोर्ज जोसेफ ने जेल जाते समय स्वामी जी से 'वायकाम' सत्याग्रह की बागडोर सम्भालने के लिये निवेदन किया था। दोनो की मुलाकात लगभग दो घण्टे तक चली। मुलाकात के बाद दोनो तरफ से कोई वक्तव्य प्रसारित नहीं किया गया।

10 मई को स्वामी जी मगलौर आये। वहा से कालीकट, मदुरा होते हुए 20 मई को पुन मद्रास आ गए। वहा 'गोखले हाल' में आपका एक ओजस्वी भाषण हुआ, जिसने सम्पूर्ण दक्षिण भारत मे कम्पन उत्पन्न कर दिया। यह भाषण स्वामी जी के सभी पूर्ववर्ती भाषणो की परम्परा से हटा हुआ था। उस भाषण मे स्वामी ने कहा था "पुरोहित आदि के अहकार के कारण आपके यहा ब्राह्मण एव ब्राह्मणेतरो का झगडा तो चल ही रहा था। लेकिन अब उससे भी बुरा एक अन्य झगडा आने वाला है। यदि आपने अस्पृश्य कहे जाने वाले भाइयो के उद्धार की ओर विशेष ध्यान न दिया, तो मैं आपको सचेत करता हू कि वह दिन दूर नहीं, जब आपके दलित भाई, जिन्हे आप 'पचम' कहते हैं, आपसे सब तरह का सम्बन्ध तोड देगे। या तो सब के सब दूसरे सम्प्रदायो मे चले जायेगे अथवा अपनी जाति ही अलग बना लेगे। मैं स्वय कमजोर, रोगी और वृद्ध होता हुआ भी सब देश मे घूम जाऊँगा, दलित भाइयो का सगठन करूगा और उनको कहूंगा कि वे हर एक ब्राह्मण को स्पर्श करके वैसा ही भ्रष्ट कर दे, जैसा आप उनको मानते हैं। तब निश्चय ही आप सब उनके पैरो मे माथा टेक देगे[71]।"

उपर्युक्त भाषण मे सन्यासी श्रद्धानन्द न बोलकर युवावस्था का उग्र परिवर्तनवादी और नई स्फूर्ति का प्रतीक मुशीराम ही बोलता दिखाई पड रहा था। दक्षिण भारत की यात्रा मे दिये गये भाषणो का मूल्याकन करने पर हमे अनुभव होता है कि बम्बई के भाषण की शैली एक औपनिषदिक ऋषि की अहिंसात्मक और सात्त्विक भावो से भरपूर प्रवचन की शैली थी। इसके विपरीत मद्रास के भाषण की शैली आक्रोश से भरपूर हिंसात्मक राजसी वृत्ति की परिचायिका शैली थी। दोनो भाषणो का उद्देश्य समान था, परन्तु समाधान की प्रक्रिया अलग–अलग थी।

महात्मा गांधी की स्वामी जी एवं आर्य समाज सम्बन्धी टिप्पणी पर आक्रोश

स्वामी श्रद्धानन्द से अपनी मुलाकात के सबध मे महात्मा गाधी ने 29 मई, 1924 को 'यग इण्डिया' मे 'हिन्दू–मुसलमान तनाव इसका कारण और ईलाज' शीर्षक से एक लम्बा लेख लिखा। इस लेख मे महात्मा जी ने स्वामी श्रद्धानन्द और आर्य समाज के सम्बन्ध मे विपरीत टिप्पणियाँ देते हुए लिखा "स्वामी श्रद्धानन्द भी अविश्वसनीय है। मैं जानता हूं कि प्रायः उनके भाषण उत्तेजनात्मक होते हैं। लेकिन इतना होने पर भी वे हिन्दू–मुस्लिम एकता चाहते हैं। दुर्भाग्य से वे प्रत्येक मुसलमान को आर्य बनाने की सम्भावना पर विश्वास करते हैं। जैसा कि अधिसंख्यक मुसलमान सोचते हैं कि

प्रत्येक गैर मुसलमान किसी दिन धर्मान्तरण द्वारा मुसलमान बनेगा। श्रद्धानन्द निर्भीक और वीर है। उन्होने अकेले ही गगा के पवित्र किनारे पर बीहडता को आश्रम व्यवस्था वाले महाविद्यालय मे परिवर्तित कर दिया है। उन्हे अपने पर तथा अपने उद्देश्य पर विश्वास है। उनमे आर्य समाज की विरासत है। ..... दयानन्द ने ससार के सबसे अधिक सहनशील और उदार धर्म को सकुचित बनाने का प्रयास किया है .. . जहा कहीं आप आर्य समाजी देखेगे, वहीं आपको जीवन और ऊर्जा दिखाई देगी। लेकिन सकुचित दृष्टिकोण और झगडालू आदत के कारण वे दूसरे सम्प्रदायो से लडते है या उनके अभाव मे परस्पर लडने लगते हैं। श्रद्धानन्द मे यह प्रवृत्ति काफी हद तक है। लेकिन इन सब कमियो के होने पर भी मै उनको पुरानी गुहार करने वाला नहीं मानता। यह सम्भव है कि आर्य समाज और स्वामी जी के सम्बन्ध मे ऐसा रेखाचित्र देने से आर्य समाजी, क्रोधित हो जाएँ। मेरा मन्तव्य आर्य समाजियों को तिरस्कृत करने का नहीं है। मैं आर्य समाजियो को प्यार करता हूं क्योकि उनमे से बहुत से मेरे सहयोगी हैं। मैंने स्वामी जी से प्यार करना अपने दक्षिण अफ्रीका के निवास काल मे ही सीख लिया था। अब मै उन्हे अच्छी तरह जानता हू। मैं उन्हे कम प्यार नहीं करता। इसी प्यार के कारण मैंने ऐसे विचार प्रकट किए हैं।"

आर्य समाजियो ने गाधी जी के विचारो को प्यार भरा नहीं माना और विरोध मे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शोर मचाया और गाधी जी को खेद प्रकट करने के लिये लिखा गया। परन्तु गाधी जी उस समय रचमात्र भी अपने विचारो से पीछे नहीं हटे। इस विवाद के समय स्वामी जी दक्षिण भारत के दौरे पर (27 अप्रैल से 5 जून तक) थे। मद्रास से स्वामी जी 25 मई को आन्ध्र प्रदेश मे गुडीवाडा नामक नगर मे पहुँचे। यहाँ स्वामी जी ने 'आन्ध्र प्रान्तीय दलितोद्धार सम्मेलन की अध्यक्षता की। गुडीवाडा के पश्चात् स्वामी जी राजमहेन्द्री नामक स्थान पहुँचे। यहाँ वीरेशलिगम पन्तलु द्वारा सचालित विधवा आश्रम मे स्वामी जी का भाषण बडा हृदयस्पर्शी रहा। स्वामी जी ने अपने भाषण मे कहा "भगवान की सृष्टि के इन कोमल फूलो के प्रति हिन्दू समाज ने बडा भारी पाप किया है। उसको आज नही तो कल इस पाप का प्रायश्चित करना ही होगा। यह सच है कि जहॉ देवियो का सम्मान होता है, वहॉ ही दिव्य गुणो का विकास सम्भव है[22]।

इसी यात्रा के दौरान स्वामी जी वायकोम सत्याग्रह की व्यक्तिगत जानकारी लेने वायकोम भी गए। वायकोम सत्याग्रह के सचालको को उन्होने स्पष्ट शब्दो मे कहा कि वे व्यक्तिगत रूप मे इस सत्याग्रह मे भाग नहीं ले सकते, क्योकि वे काग्रेस के सदस्य नहीं हैं। स्वामी जी ने वायकोम सत्याग्रह को स्थानीय रखने के गाधी जी के आदेशो की आलोचना की, और सचालको को सुझाव दिया कि वे महात्मा गाधी से मिले जिससे बाहरी सहायता प्राप्त करने की छूट मिल सके। उन्होने कहा कि यदि काग्रेस इस सत्याग्रह को बन्द कर दे तो यह स्वतन्त्र रूप से चलाया जाना चाहिये। यदि फिर भी यह सत्याग्रह न चले तो यह हिन्दू महासभा को सौप दिया जाना उचित है।

वायकोम सत्याग्रह का आरम्भ करने का मूल कारण आर्य समाज के शुद्धि कार्यक्रम की योजना थी। वायकोम क्षेत्र मे कार्य करने वाले आर्य समाजी कार्यकर्ताओ ने दलित जाति के कुछ व्यक्तियो को शुद्ध करके वैदिक धर्मानुयायी बना दिया था। शुद्ध होने के उपरान्त मन्दिरो के समीपवर्ती प्रतिबन्धित सडको पर इनका आना–जाना भी खुल गया था। परन्तु कुछ समय के पश्चात् पुरातनपथियो के प्रभाव मे आकर अधिकारियो ने यह कहना आरम्भ कर दिया कि आर्य समाज द्वारा शुद्ध किये जाने पर भी दलितो की सामाजिक स्थिति उसी प्रकार रहेगी। इसका परिणाम यह हुआ कि 'रथोत्सव' पर मन्दिर की समीपवर्ती सडको पर दलितों के आने–जाने पर प्रतिबन्ध लग गया। स्वामी जी एव प0 ऋषिराम ने एक घोषणा–पत्र प्रकाशित किया। जिसमे लिखा गया था कि इसका अभिप्राय है कि दलित वर्ग का व्यक्ति जब तक मुसलमान या ईसाई बनकर अपने धर्म को त्याग नहीं देता, तब तक उसकी सामाजिक अयोग्यताएँ समाप्त नहीं होती।

इस घोषणा पत्र द्वारा सामान्य से सम्पूर्ण हिन्दू जनता और विशेष रूप से हिन्दू महासभा के प्रधान मालवीय जी को इस दिशा मे कुछ करने के लिये प्रेरित किया गया था[23]।

6 जून, 1924 को स्वामी जी अपनी दक्षिण यात्रा से दिल्ली आ गए। दिल्ली आने पर गाधी जी के लेख के विषय मे लोगो ने उनकी प्रतिक्रिया जाननी चाही। स्वामी जी ने चावडी बाजार, दिल्ली के आर्य समाज के साप्ताहिक सत्सग मे कहा 'मुझे आप आज्ञा दे कि मै महात्मा जी तक यह सन्देश पहुँचा दूँ कि इस सिलसिले मे जो अनुचित कलमे आर्य समाज की ओर से लिखे गये हैं, उनके लिये हमे दुःख है। .. .. मै महात्मा गाधी के प्रतिवाद मे कुछ नहीं लिखूँगा। मैं इसकी कोई आवश्यकता भीनहीं समझता। उनके लेख का कारण मैं जानता हू। केवल इतनी आवश्यकता है कि आर्य समाजी अपने आचरणो को उत्तम बना कर दीपक बने, ताकि उससे दूसरे दीपक जलाये जा सके। यदि आप इस योग्य बन जायेगे तो महात्मा या किसी अन्य के आक्रमण से आर्य समाज का काम बन्द नहीं होगा[24]।

इसी सम्बन्ध मे 13 जून, 1924 को लीडर समाचार पत्र मे लिखा गया था 'कि वे (स्वामी जी) इस प्रसग मे किसी प्रकार उत्तर देना आवश्यक नहीं समझते।' गाधी जी का स्वय का वक्तव्य इसका सबसे उत्तम प्रतिवाद है। गाधी जी का स्वय का वक्तव्य विपरीतताओ से भरपूर है और उससे स्पष्ट होता है कि वे किन कारणो से आर्य समाज को बुरा मानते हैं। आर्य समाज को महात्मा गाधी के लेख हानि नहीं पहुचा सकते। यदि आर्य समाज अपने प्रति सत्य है तो न तो महात्मा गाधी की और नैव अन्य किसी व्यक्ति की लेखनी आर्य समाज के कार्यकलापो को रोक सकती है।

लेकिन इतना सब कुछ लिखने पर यह घटना स्वामी जी के मन पर कहीं न कहीं एक टीस छोड गई। 'लिबरेटर' के लेखो मे स्वामी ने उस टीस को प्रवाहित करने के लिये गाधी जी और काग्रेस को मुस्लिम पक्षपाती आदि लाछनो से लीपने का प्रयास किया है। आर्य समाज, स्वामी दयानन्द और स्वामी श्रद्धानन्द के विषय मे महात्मा गाधी ने अपने लेख मे जो विचार प्रकट किये थे, उनका आकलन करने के बाद इन्द्र ने निष्कर्ष निकालते हुए लिखा कि–

"यहाँ प्रसगवश मै महात्मा जी के हिन्दू–मुस्लिम एकता सम्बन्धी लेख की चर्चा भी कर देना चाहता हू, जो यग इण्डिया मे प्रकाशित हुआ था। उसमे महात्मा जी ने हिन्दू–मुस्लिम विरोध के कारणो पर विचार करते हुये जिस शैली का अनुसरण किया था, उससे सम्भव है, मुस्लिम ससार पर उनकी उदारता का सिक्का जमा हो, परन्तु भारत की राजनीति और सामाजिक दशा पर इसका बहुत ही बुरा प्रभाव पडा। उस लेख मे महात्मा जी ने कुरान और इस्लाम की खूब प्रशसा की और सत्यार्थ प्रकाश और उसके मानने वालो के लिए बहुत तिरस्कार–सूचक शब्दो का प्रयोग किया। पिता जी (स्वामी श्रद्धानन्द जी) पर तो उस लेख मे विशेष कृपा की गई थी, यह मेरा ही नहीं, प्रायः सभी हिन्दू हृदय रखने वाले भारतवासियो का मत था, कि महात्मा जी ने इस लेख मे स्वामी जी के सम्बन्ध मे जो पक्षपातपूर्ण आलोचना की थी, उसने देश के साम्प्रदायिक वातावरण मे बहुत ही विषैला धुऑ फैला दिया।

मेरा विचार है कि महात्मा गाधी जी ने भी अपना लेख प्रकाशित होने के पश्चात् यह अनुभव किया था कि वे उस लेख मे आर्य समाज और स्वामी जी के साथ अन्याय कर गए हैं। यग इण्डिया मे कई सम्पादकीय लेख लिखकर उन्होने अपने आरम्भिक लेख के असर को धोने की चेष्टा की। परन्तु जो जहर फैल चुका था, वह दूर न हो सका। उस लेख के दो बुरे परिणाम हुए। एक तो यह कि देश के बिगडे हुए वातावरण की मुख्य जिम्मेदारी मुख्य रूप से आर्य समाज और स्वामी जी पर डाली गई, जो सत्य से सर्वथा विरूद्ध थी और दूसरा यह कि साम्प्रदायिक मुसलमानो को यह विश्वास हो गया कि महात्मा गाधी हम से डरते हैं। हम चाहे कुछ करे, वे हमे अच्छा और दूसरो को बुरा कहेगे।

"आगामी दस वर्षों मे भारत की राजनीति मे अव्यवस्था आ गई, इसका मुख्य कारण यह दूषित मनोवृत्ति थी, जो यग इण्डिया के एकता सम्बन्धी लेख से पैदा हुई[25]।"

स्वामी जी ने दक्षिण भारत की यात्रा के पश्चात् अछूतोद्धार की समस्या के समाधान के लिये जून मास के अन्त मे महात्मा गाधी को निम्न तार दिया–

"कृपया काग्रेस वर्किंग कमेटी मे यह प्रस्तावित कीजिये कि अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के जो सदस्य अपने घरो मे व्यक्तिगत रूप से सेवक रखने की क्षमता रखते है, वे अब से एक अछूत को अपना सेवक अवश्य रखे। जो काग्रेसी इसको स्वीकार नहीं करे, उसे काग्रेस का पद छोड देना चाहिये। यदि ऐसा असम्भव प्रतीत होता है, तो अछूतोद्धार के प्रश्न को हिन्दू महासभा के लिये छोड दे[26]।"

उपर्युक्त तार स्वामी जी की अछूतोद्धार की भावना का सजीव प्रतीक है, परन्तु खेद है कि गाधी जी इस दिशा मे बहुत अधिक सकारात्मक पग नहीं उठा सके। स्वामी जी की दक्षिण भारत की यात्रा से वहॉ के निवासियो मे नव चेतना का विकास हुआ। लोगो को अपनी रूढिगत सामाजिक वर्जनाओ की मर्यादा का पुनर्सीमाकन करने के लिये नये सिरे से विचारकरना पडा। आर्यों को स्वामी जी की यात्रा से यह लाभ हुआ कि वे विश्वस्त होकर समाज सुधार के कार्यों मे लग गए। उन्हे यह भी पता लग गया कि तुम्हारी पीठ पर आर्य सार्वदेशिक सभा का वरदहस्त है।

बाढ के कारण गुरुकुल का स्थानान्तरण

28 सितम्बर, 1924 ई0 को गुरुकुल मे आई बाढ ने स्वामी जी के चिर सचित स्वप्नो क महल को एक बडा भारी झटका दिया। बाढ की विकरालता और भविष्य मे इसी प्रकार की बाढो से गुरुकुल को बचाने मे अपनी असमर्थता को देखते हुए आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब ने निर्णय लिया कि गुरुकुल को अन्य किसी सुरक्षित स्थान पर तबदील कर दिया जाए। गुरुकुल को अन्यत्र ले जाने मे सभा मन्त्री महाशय कृष्ण, प्रो0 रामदेव और गुरुकुल के मुख्य अधिष्ठाता अग्रणी थे। गुरुकुल को स्थानान्तरित करने के लिये तीन–चार प्रस्ताव विचाराधीन थे। एक प्रस्ताव के अनुसार पुराने गुरुकुल से कुछ ऊपर कागडी ग्राम की भूमि पर गुरुकुल को ले जाने का विचार था। अन्य प्रस्तावो मे गगा के उस पार (वर्तमान गुरुकुल), पजाब मे कोई स्थान और दिल्ली के आस–पास कोई स्थान आदि विचारणीय थे। स्वामी श्रद्धानन्द का मत था कि गुरुकुल को अन्यत्र न ले जाकर यहीं रखना चाहिये और भविष्य की बाढ की आशका से निपटने के उपाय सोच लिये जायेगे। इस प्रकार गुरुकुल के स्थान परिवर्तन के विषय मे आर्य समाजी क्षेत्र मे दो विरोधी विचार उठ खडे हुए। स्वामी जी के विचारो से गुरुकुल के स्नातक सहमत थे। स्नातको मे से जनमेजय ने स्वामी जी से कहा कि तीन ही व्यक्ति तो गुरुकुल के स्थान को बदलना चाहते है। इन तीनो व्यक्तियो को आर्य प्रतिनिधि सभा से निकाल देना कोई कठिन कार्य नहीं है क्योकि सभा के प्रतिनिधि सदस्य हमारे साथ है। यदि आपकी आज्ञा हो तो सभा के आगामी चुनाव मे इनका पत्ता साफ कर दिया जाए। यह सुनकर स्वामी जी ने गम्भीर होकर कहा कि निकालने की प्रथा छोडो, आर्य समाज के पास कार्यकर्ता हैं ही नहीं। जो हैं यदि उन्हे भी निकाल देगे तो काम कैसे चलेगा[27]।

गुरूकुल की शिरोमणि स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब ने स्थान परिवर्तन के लिए किसी निश्चित स्थान का सुझाव देने के लिए एक उपसमिति का गठन कर दिया। इस उपसमिति के गठन के सम्बन्ध मे स्वामी जी ने दिल्ली से 8 श्रावण स0 1981 (सन् 1924) को एक पत्र मुख्याधिष्ठाता विश्वम्भर नाथ को लिखा। इस पत्र मे विश्वम्भर नाथ को उपालम्भ देते हुए स्वामी जी ने लिखा "आपने गुरुकुल का जलवायु खराब बताकर स्थान परिवर्तन के लिये एक उपसमिति बनवाई है। उसके दो

सदस्य तो पहले ही आपके विचारो के अनुकूल हैं। सभा ने यह समझा है कि मेरा कभी गुरुकुल से कोई वास्ता ही नहीं रहा और मुझ से इस सम्बन्ध मे कुछ पूछना उचित नहीं समझा। समाचार पत्रो से विदित हुआ है कि गुरुकुल को अकृत कार्य सिद्ध करके लाहौर मे उपदेशक पाठशाला की नींव डाली जायेगी। अब आपकी सम्मति मे गुरुकुल केवल वैदिक धर्म या आर्य समाज के उपदेशक उत्पन्न करने के लिये ही स्थापित हुआ था और वह उद्देश्य उससे पूरा नहीं हुआ, तो उस पर सवा लाख से अधिक धन खर्च करने की क्या आवश्यकता है? स्थान परिवर्तन के स्थान मे आप यही सम्मति क्यो नहीं देते कि गुरुकुल को बन्द ही कर दिया जाये[28]।

इसे दुर्भाग्य ही समझिये कि गुरुकुल की प्राचीन भूमि से इतिश्री करने के उद्देश्य से आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरग की बैठक दिनाक 21 अक्टूबर, 1924 ई0 को गुरुकुल मे ही हुई। इस बैठक मे स्वामी जी भी उपस्थित थे। इस बैठक मे गुरुकुल को गगा पार ले जाने का अन्तिम निर्णय हो गया। इस निर्णय के पश्चात् स्वामी जी की मानसिक स्थिति को शब्दो द्वारा जानना कठिन था। उनके चेहरे पर उभरी हुई रेखाये, होठो की कम्पन, नथुनो की सिहरन और आँखो की नमी, सभी तो स्वामी जी के भावो की वेदनामयी पीडा का मूक सकेत दे रहे थे। राजनीति और धर्म के क्षेत्रो मे अपनी कार्य क्षमता से हडकम्प मचा देने वाला आर्य समाज का महारथी इस निर्णय से दहल गया और बैठक मे बैठा रहना उनके लिये असहय हो गया। वे चुपके से उठकर गुरुकुल के आचार्य के बगले के पीछे, गगा के किनारे खडे खटुयें के वृक्ष के नीचे आकर निस्तब्ध खडे हो गए। खटुयं का चिर परिचित वृक्ष और गगा की नीलधारा का जल स्वामी जी को कुछ शान्ति देते कि इतने मे स्वामी सत्यानन्द ने आकर कुछ पूछने का प्रयत्न किया तो स्वामी श्रद्धानन्द की आँखो से ममता के ऑसू बह निकले। ये ममता के ऑसू अपनी कर्मस्थली के लिये अन्तिम श्रद्धाजलि के रूप मे मोती बन कर बहे थे। स्वामी जी को सभा के निर्णय से पत्नी की मृत्यु की पीडा से भी अधिक मर्मान्तक पीडा हुई। इसी भूमि पर तो उन्होंने असम्भव को सम्भव बनाकर गुरूकुल को ससार प्रसिद्ध सस्था बनाया था।

गुरूकुल के स्थान परिवर्तन का निर्णय सही था या गलत यदि इस विवाद को छोड भी दिया जावे, तो भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि नये स्थान पर गुरुकुलीय वातावरण की गरिमा नहीं बढी। हरिद्वार, कनखल और ज्वालापुर शहरो के मध्य स्थित होने के कारण आवागमन, खान–पान की वस्तुओ को जुटाने मे सुविधा अवश्य हुई, परन्तु ऋषि आश्रमो के तुल्य प्राकृतिक वातावरण की नैसर्गिक सौम्यता एव शान्ति जिससे आकृष्ट होकर देशी–विदेशी विद्वान् और यात्री गुरुकुल मे आते थे, उस गौरव को अवश्य आघात लगा। जे0 रेम्जे मैकडॉनल्ड का यह वर्णन कि "वन के अद्भुत दृश्य क्षण भर झाकी दिखाकर दूसरे ही क्षण लम्बी झाडियो मे मुँह छिपा लेते थे। एक रेतीली खाडी मे हम उतरे और उत्तप्त बालुकामय मार्ग से वन मे प्रविष्ट हुए। हमारे सिरो पर कहीं ऊँची पीली घास खडी थी। पर्वतीय शीतल पवन की हिलोरे अब बन्द हो गई थीं। सूर्य का ताप शनै शनै दु सह होता जा रहा था। अन्त मे हम वृक्षो से अशत आच्छादित एक लम्बी और सीधी सडक पर पहुँचे। सुदूर एक उन्नत बॉस के सिरे पर, एक पताका दीख पडी। गुरुकुल दृष्टिगोचर होने लगा[29]।" अतीत की बात हो गई थी। इस परिवर्तन से ईश्वर की काव्यमयी प्रकृति से नाता छूटा और मानव निर्मित नागरीय विकृति की गोद मे नया बसेरा बना। इस सम्बन्ध मे बनारस से निकलने वाले 'आज' समाचार पत्र ने भी लिखा कि "जो गलती काशी विश्वविद्यालय काशी के सचालको ने अपना पुराना कमच्छा का भवन छोडकर नगवा जाने मे की है। इस कार्य मे धन के अपव्यय के अतिरिक्त उन्होने पुराने सद्भावो का भी अपव्यय कर डाला। हमे दुख है वही गलती गुरुकुल वाले भी कर रहे है।"

मथुरा शताब्दी

स्वामी जी दक्षिण अफ्रीका से लौटने के पश्चात् लेखन कार्य मे सलग्न ही हुए थे कि फरवरी, 1925 मे मथुरा मे महर्षि दयानन्द की जन्म शताब्दी मनाने का महोत्सव निकट आ गया। महर्षि जन्म शताब्दी मे स्वामी श्रद्धानन्द की भूमिका को समझने के लिये हमे 1923 ई0 के पजाब के आर्य समाज की ओर दृष्टिपात करना होगा। सन् 1923 ई0 मे स्वामी श्रद्धानन्द ने आर्य सार्वदेशिक सभा के प्रधान पद से त्याग पत्र दे दिया था। स्वामी जी के त्यागपत्र पर विचार करने के लिये दिसम्बर, 1923 मे सार्वदेशिक की अन्तरग सभा की बैठक बुलाई गई। स्वामी जी ने अन्तरग सभा को बतलाया कि जन्म शताब्दी समारोह की सफलता की आशा उन्हे बहुत कम है। क्योकि बहुत लोग साधारणतया काम और विशेष रूप से उनका विरोध इसलिए करते है कि यह काम उनके अधीन क्यो है? स्वामी जी का सकेत पजाब मे उनके विरोधियो की ओर था। यह निस्सन्देहात्मक रूप मे स्पष्ट था कि पजाब के सहयोग के बिना शताब्दी समारोह की सफलता सदिग्ध थी। बहुत आग्रह करने पर भी जब स्वामी श्रद्धानन्द नहीं माने तो उनका त्यागपत्र स्वीकार कर लिया गया और उनके स्थान पर महात्मा नारायण स्वामी को प्रधान निर्वाचित कर लिया गया। नारायण स्वामी को प्रधान बनाने के लिए पजाब के सदस्यो का विशेष आग्रह था।

नारायण स्वामी ने प्रधान बनने पर स्वामी श्रद्धानन्द की आहत भावनाओ पर 'अमृतधारा' लगाने के लिये अनुनय–विनय करके स्वामी जी को इस बात के लिये सहमत कर लिया कि प्रधान पद पर उन्ही का नाम रहना चाहिये और वे स्वय कार्यकारी प्रधान के रूप मे सब कार्य सम्भाल लेगे। नारायण स्वामी ने इस समझौते की सूचना सभी अन्तरग सदस्यो को भी दे दी। स्वामी श्रद्धानन्द का नाम अब पद पर शोभार्थ ही था। वस्तुत: स्वामी जी की यह हार्दिक इच्छा थी कि शताब्दी उनकी अध्यक्षता मे ही सम्पन्न होनी चाहिये। इसीलिये तो उन्होने शताब्दी मनाने के वर्ष से तीन वर्ष पूर्व 22 अप्रैल, 1922 को अपनी डायरी मे लिखा था कि "जन्म शताब्दी सम्वत् 1981 (1924 ई0) को मनाना। एक सप्ताह तक कार्यक्रम रहे .. कहॉ मनाई जावे? अजमेर जहॉ मृत्यु हुई सम्वत् 1940 मे। इसलिए जब सम्वत् 1990 की दीपमालिका आवे तो अजमेर मे मृत्यु की अर्ध–शताब्दी का दिवस मनाना चाहिए। शेष दो रहे–एक जन्मभूमि का ग्राम, दूसरा देहली सार्वदेशिक सभा का मुख्य स्थान। जन्मभूमि मे पहुँचने का सुभीता पजाब, युक्त प्रान्त, बगाल आदि को न होगा और शायद सात दिन का प्रबन्ध करने मे भी कठिनाई पडे। परन्तु गुजरात प्रान्त मे धर्म प्रचार खूब हो जायेगा। गुजरात धनाढ्य है, इसलिये शायद धन भी वहॉ अधिक एकत्र हो सके। परन्तु इसका निर्णय तब हो, जब मै स्थान देख लूँ और ठीक निश्चय भी कर लूँ[30]।"

1924 ई0 मे आर्य सार्वदेशिक सभा के चुनाव के सन्दर्भ मे स्वामी श्रद्धानन्द और नारायण स्वामी मे भ्रम उत्पन्न हो गया। नारायण स्वामी के चुनाव सम्बन्धी किसी कथन को लेकर स्वामी श्रद्धानन्द ने नारायण स्वामी को निम्न पत्र लिखा–

श्रीमान महात्मा नारायण स्वामी जी

नमस्ते।

6 दिसम्बर, 1924 ई0 को जब मैने नये प्रतिनिधियो के निर्माण के लिये बातचीत की तो आपने कहा था कि मैं सार्वदेशिक का प्रधान बन जाऊँ। मैंने यह भी कहा था कि प0 केशवदेव शास्त्री सुस्त हैं। कोई चुस्त मन्त्री चाहिये। मुझे आश्चर्य था कि ऐसा भाव (स्वामी श्रद्धानन्द के प्रधान बनने का) आपने क्यो प्रकट किया?

1 अभी थोडे दिन हुये मैने डाक्टर केशवदेव को सभा का साधारण वार्षिक अधिवेशन करके चुनाव करने और बजट पास करने के लिये लिखा था। मुझे 6 दिसम्बर की रात को प0 इन्द्र ने बताया कि वह मेरा पत्र डाक्टर केशवदेव ने सुनाया था। जिस पर महाशय कृष्ण ने टिप्पणी की थी कि इसमे कोई विशेष रहस्य है। अब आपके सकेत का मतलब मेरी समझ मे आ गया।

2 मै आपको निश्चय दिलाता हू कि मेरा विचार कभी सार्वदेशिक सभा अथवा और किसी आर्य सामाजिक सस्था का अधिकारी बनने का नहीं है। मै कुछ पूछ लेता हू या सम्मति देता हू, तो केवल हित से प्रेरित होकर। अब कुछ भी नहीं लिखा या बोला करुँगा।

3 दयानन्द–जन्म शताब्दी कमेटी का प्रधान भी नहीं रहना चाहता था। आपके आग्रह पर नाम मात्र प्रधान बना रहा। अब वह तो बना ही रहूँगा। परन्तु गलतफैमियो का शिकार होने से बचने के लिये मथुरा मे केवल 14 फरवरी को ही पहुँचूँगा।

आशा है कि आप मेरे विषय मे कोई सदिग्ध विचार न बनायेगे। मुझसे कुछ सेवा नहीं हो सकती, इसका मुझे शोक है। परन्तु उस सेवा से आर्य समाज के दायरे मे खलबली पडे तो उसे मै हानिकारक समझता हू।

आपका

श्रद्धानन्द

नारायण स्वामी ने उपर्युक्त पत्र का उत्तर देते हुए दिनाक 12 दिसम्बर, 1924 को स्वामी श्रद्धानन्द को लिखा कि उन्हे महाशय कृष्ण आदि की बात का कुछ पता नहीं था। उन्होने तो अपनी ओर से आर्य समाज के हित की दृष्टि से आपसे प्रधान बनने की बात कही थी। नारायण स्वामी के पत्र के उत्तर मे जो प्रत्युत्तर स्वामी श्रद्धानन्द ने भेजा वह ममत्व और अपनत्व से भरपूर था। उस पत्र मे स्वामी श्रद्धानन्द ने सन्यासी स्वभाव का परिचय देते हुए लिखा–

17, नया बाजार, देहली

दिनाक 15–12–1924 ई0

श्रीमान् महात्मा नारायण स्वामी जी,

नमस्ते।

आपका पत्र पढकर सशय दूर हो गया।

1– मै तो अब किसी सभा का अधिकारी नहीं बनूँगा। अपने लिये बहुत से लेख के काम निश्चित कर चुका हूँ। इसके अतिरिक्त शारीरिक दशा ऐसी है कि शारीरिक परिश्रम का काम नहीं हो सकता।

2– परन्तु आप विदेश प्रचार और मुद्रण के मतलब के लिये जन्म शताब्दी पर अपील करना चाहते है। यदि आप प्रधान न रहे तो वह अपील किसके भरोसे पर होगी। यदि आपने स्थिर स्थान पहाड (रामगढ) बना लिया है तो इस काम के लिये किसी अन्य को तलाश कीजिये।

3– मैं स्पष्ट कह देना चाहता हू कि यदि आपने सार्वदेशिक सभा का काम छोड दिया तो मुझे आर्य समाज मे इस काम को सम्भालने वाला कोई नहीं दीखता और इस सभा की समाप्ति हो जायेगी और बहुत से प्रान्तीय नेताओ को यह अभीष्ट है। आप उस समय तक पूर्ण विचार कर लीजियेगा।

आपका

श्रद्धानन्द

उपर्युक्त पत्र व्यवहार से यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्य सार्वदेशिक सभा की पारस्परिक राजनीति के खेल मे स्वामी श्रद्धानन्द और नारायण स्वामी दो मोहरे थे जिनको समय, असमय और कुसमय चलाया जाता था। दयानन्द जन्म शताब्दी मे स्वामी श्रद्धानन्द को महत्व न मिले, यह भावना आर्य सार्वदेशिक सभा के एक गुट के मन मे थी। स्वामी श्रद्धानन्द को यह भ्रम हो गया कि इस गुट के साथ महात्मा नारायण स्वामी की सहानुभूति है, जबकि बात ऐसी नहीं थी। नारायण स्वामी ने स्वामी श्रद्धानन्द को स्पष्ट शब्दो मे लिख दिया था कि वे उनके पक्ष मे प्रधान पद को भी छोड सकते हैं। परन्तु स्वामी श्रद्धानन्द ने स्पष्ट शब्दो मे लिखा कि वे तो अधिकारी बनने के इच्छुक नही हैं, अत अन्य किसी की खोज कीजिये। साथ मे यह भी निवेदन किया कि आपके बिना सभा का ढाचा बिखर जाएगा।

परन्तु विधि के विधान मे अभी दोनो स्वामियो का मत–भेद होना था। शताब्दी समारोह समिति ने दोनो स्वामियो को प्रधान बनाकर द्वैध शासन की सी स्थिति उत्पन्न कर दी थी। शताब्दी के सम्पूर्ण कार्यक्रम मे नाममात्र के प्रधान माने जाने पर भी स्वामी श्रद्धानन्द के मन मे यह भावना तो अवश्य ही रही थी कि प्रत्येक कार्यक्रम की रूपरेखा बनाने मे उनसे विचार विनिमय तो किया ही जाएगा। परन्तु सयोगवश कुछ ऐसा घटित हुआ कि जन्म शताब्दी के सन्दर्भ मे नगर कीर्तन की बात को लेकर दोनो स्वामियो मे शताब्दी स्थल पर ही विरोध हो गया।

मत–भेद के कारणो पर प्रकाश डालते हुए नारायण स्वामी ने लिखा कि जन्म शताब्दी पर नगर कीर्तन करना निश्चित नहीं था। 18 फरवरी की सायकाल उसका करना निश्चित हुआ। स्वामी श्रद्धानन्द निर्णय लेने के समय उपस्थित नहीं थे। अत उन्होने केशव देव शास्त्री मन्त्री सार्वदेशिक सभा को कहा कि वे स्वय जाकर स्वामी जी को इसकी सूचना दे दे। प्रमादवश शास्त्री जी ऐसा करना भूल गये। 19 फरवरी की प्रात काल जब वे पडाल की ओर से अपने निवास स्थान की ओर आ रहे थे, तो स्वामी श्रद्धानन्द ने आवेश मे आकर कहा कि नगर कीर्तन के सम्बन्ध मे उन्हे कोई सूचना नहीं दी गई। क्या इसका अभिप्राय है कि उनका कोई उत्तरदायित्व नहीं है? उन्होने (नारायण स्वामी ने) भी इसी लहजे मे उत्तर देते हुए कहा कि शास्त्री जी को सूचना देने के लिये कह दिया था। रही उत्तरदायित्व की बात, वह तो उसी दिन समाप्त हो चुकी थी, जिस दिन उनका त्याग पत्र स्वीकार हो गया था। इस उत्तर से स्वामी श्रद्धानन्द सकपका गए और 'अन्तर्दह्यमान भोगी' की तरह असन्तुष्ट होकर चले आए। पर स्वामी जी को चैन कहा? अगले दिन पुन प्रात काल आकर पूछा कि नगर कीर्तन की व्यवस्था क्या है, सबसे आगे कौन रहे कि बात आते ही स्वामी श्रद्धानन्द ने कहा कि पहले ओ3म ध्वज रहे, उसके बाद बैंड बाजा, उसके बाद वे रहेगे और फिर अन्य सन्यासीगण। बाकी सब प्रबन्ध ठीक है। अप्रसन्न स्वामी को प्रसन्न करने की इच्छा से महात्मा नारायण स्वामी ने यह बात मान ली[31]।

मथुरा मे महर्षि दयानन्द जन्म शताब्दी के सन्दर्भ मे स्वामी श्रद्धानन्द का योगदान दो रूपो मे परखा जा सकता है। एक रूप, नाम मात्र के प्रधान होते हुये भी जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्व

के निर्वाह से सम्बन्ध रखता है। दुर्भाग्यवश शताब्दी की समाप्ति होते ही 21 फरवरी को कुछ आर्य युवको के बचपने के कारण नगर मे पौराणिको के साथ मारपीट हो गई। यह समाचार सुनते ही स्वामी जी शहर मे जा पहुँचे। वहाँ शहर के प्रमुख व्यक्तियो से मिलकर परिस्थिति को शान्त किया और शताब्दी प्रबन्धको की ओर से खेद भी प्रकट किया। शताब्दी के उपरान्त वस्तुस्थिति का आकलन करने के पश्चात् इस घटना के सम्बन्ध मे आर्य समाजियो को चेतावनी देते हुए 6 मार्च, 1925 को 'अर्जुन' समाचार पत्र मे लिखा "आर्य सामाजिक पुरुषो से साधारणतया और आर्य धर्म के प्रचारको से विशेषत अनुरोध है कि 'सहोऽसि सहो मयि धेहि' का पाठमात्र ही न किया करे। अपने मन्तव्यो पर दृढ रहते और उनका गम्भीर भाव से प्रचार करते हुए भी दूसरे भाइयो के विश्वासो को अनुचित चोट न लगाना, यही वैदिक धर्म की मर्यादा है। मैने शोक से देखा कि दयानन्द जन्मशताब्दी के मेले मे कुछ ऐसे चित्र बेचे और बाटे गये, जिससे अन्य साम्प्रदायिक भाइयो को दुःख पहुँचा। दो–एक समाचार पत्रो के शताब्दी अको मे भी ऐसे चित्र दिखाई दिये, जिन्होने धर्म के आन्दोलन और सदाचार के प्रचार की मर्यादा का उल्लघन किया। मै आर्य जनता से अपील करता हू कि ऐसे चित्रो का बहिष्कार करके उनके प्रचारको को शिक्षा दे और जो धर्म प्रचारक–वैदिक धर्म के पुनरुत्थान और उसकी रक्षा करने वाले आर्य समाज को एक सकुचित सम्प्रदाय बनाना चाहते हैं, उनके प्रयत्नो को सफल न होने दे। आर्य सस्कृति के उद्धार और ससार मे उसके प्रचार का यही समय है। उसके मार्ग मे जो भी कण्टक सिद्ध होगा, वह आने वाली आर्य सन्तति का द्वेषी समझा जाएगा। आर्य समाजी भाइयो से अन्त मे मेरी यही प्रार्थना है कि घोर से घोर उत्तेजना होते हुए भी मर्यादा का भग न करना यही आर्यत्व है और इसी सिद्धान्त पर आचरण करते हुये सारे ससार को आर्य बनाया जा सकता है।"

जन्म शताब्दी के प्रसग मे स्वामी जी के दूसरे रूप की परख उत्तरदायित्व के निर्वाह से सम्बन्धित न होकर स्वामी जी के स्वभाव से जुडी है। स्वामी श्रद्धानन्द, जन्म शताब्दी के नगर कीर्तन मे बलात् अपनी स्थिति सुमेरू पर्वत के समान मनवाकर सभी सन्यासियो मे मूर्धन्य होने का गौरव प्राप्त होने पर भी अपने मन की उत्तेजना को शान्त नहीं कर सके। उन्होने उत्तेजना मे मर्यादा का उल्लघन तो नहीं किया, किन्तु उल्लघन की सीमा तक तो पहुँच ही गये थे। मथुरा शताब्दी की समाप्ति के उपरान्त उन्होने नारायण स्वामी को निम्न पत्र लिखा–

श्रीमान् महात्मा नारायण स्वामी जी,

नमस्ते।

कल प्रात यहाँ से दिल्ली चला जाऊँगा। जानबूझ कर तो मैंने आपके काम को सुगम करने का ही प्रयत्न किया था, परन्तु आपके कहने से मालूम हुआ कि मैंने आपके काम मे विघ्न डाले। जो कुछ भी मेरे बर्ताव से आपको दुख पहुँचा या आपके काम मे हानि हुई, उसके लिये मुझे पश्चाताप है। यदि मैने जानबूझकर ऐसा किया तो परमात्मा की ओर से दण्ड मिल ही जायेगा और तभी मेरी शुद्धि होगी। आप अब मुझे भूल जाइये, क्योकि मैं अब रजिस्टर्ड आर्य समाज के किसी भी काम मे सम्मिलित न हूँगा। मेरे सम्मिलित होने से काम बिगडते हैं, बनते नहीं। मुझे निश्चय है कि आपके नेतृत्व मे सार्वदेशिक सभा एक जीवित सस्था बनकर वैदिक धर्म का प्रसार शीघ्र ही भारत वर्ष के कोने–कोने मे करेगी। मै तो अब अपने प्रायश्चित ही मे लग जाऊँगा।

आपका मगलाभिलाषी

दिनाक 21–2–1925 ई0 श्रद्धानन्द

स्वामी जी का उपर्युक्त पत्र मिलते ही नारायण स्वामी ने सहज सौम्य भाषा में निम्न उत्तर दिया–

मान्यवर स्वामी जी महाराज,

नमस्ते।

आपका कृपा पत्र मिला। मैंने समझा था कि उस दिन की घटना को आप भूल गये होगे। आपके पत्र से विदित है कि अभी आप नहीं भूले। कृपा करके आप उसे अब भूला दे। मेरे किन्हीं शब्दो से यदि आपको दु ख हुआ है तो उसके लिये मुझे अत्यन्त दु ख है। यदि इतने से आप सन्तुष्ट न हो तो फिर कृपा करके आप बतलावे कि किस प्रकार आप सन्तुष्ट होगे। ताकि वही करके मैं आपको सन्तुष्ट करूँ।

शुभ चिन्तक

दिनाक 23–2–1925 ई0 नारायण स्वामी

नारायण स्वामी के आत्म समर्पणात्मक भावो से युक्त पत्र को प्राप्त करके स्वामी श्रद्धानन्द का अह सन्तुष्ट हो गया और उन्होने नारायण स्वामी को उत्तर देते हुए लिखा–

17, नया बाजार, देहली

दिनाक 1–3–1925 ई0

श्रीमान् महात्मा नारायण स्वामी जी,

नमस्ते।

आपका निजी पत्र मिला। मुझे सन्तोष हुआ। पत्र रखने की जरुरत न थी, फाड दिया।

1– मैने पहले ही शास्त्री (डाक्टर केशव देव) जी से कह दिया था कि मैं आर्य विवाह बिल आदि के काम मे वैसे ही सहायता दूगा। 'सार्वदेशिक सभा' के सगठन के विषय मे भी सहायता दूगा।

2– मैंने जब पहले आपसे कहा था, कभी प्रधान नहीं हो सकता तो वह बनावट न थी। 'कल्याण मार्ग का पथिक' छपवाने से आपको स्पष्ट हो जायेगा। सभा (सार्वदेशिक) का काम आपको ही करना होगा। यदि आप प्रधान रहेगे तो जो सेवा हो सकेगी करूगा। अन्यथा सभा की उतनी सेवा भी न कर सकूँगा।

3– मुझे सार्वदेशिक सभा का प्रथम प्रचारक समझ लीजिये। इससे आगे मैं कुछ नहीं करूगा।

4– एक बात न भूलिये। मुरादाबाद मे पहली बार (1893 ई0 मे) जाकर ही मैने आपके सदाचार और धर्म–भाव को समझ कर आर्य समाज की सेवा के लिये अपने मन मे चुना था। यह मेरा विचार अन्यथा सिद्ध नहीं हुआ। हम दोनो ही अब ऊपर के दिखावे मे सन्यासी (त्यागी) हैं, परन्तु मेरे हृदय मे पुराने भाव अकित रहते हैं। मैं उस समय आपको अपना (धर्मानुसार) प्रिय छोटा भाई समझता था और अब भी यही भाव मेरे अन्दर है।

आपका मगलाभिलाषी

श्रद्धानन्द

आर्य समाज ने महिलाओ और अछूतो के उत्थान का जो सकल्प लिया था, उसकी पूर्ति मे वह कितना सफल हुआ, यह बात शताब्दी की समाप्ति पर 2 अप्रैल, 1924 ई0 को 'लीडर' मे लिखे एक गैर आर्य समाजी के लेख से प्रकट होती है। इस लेखक ने सबसे पहले सम्मेलन के परिसर की पवित्रता पर प्रकाश डालते हुये लिखा कि यहाँ मात्र पुस्तको और भोजन के अतिरिक्त न्य किसी भी प्रकार की भद्दी वस्तुओ को बेचने की दुकाने नहीं थी। अग्रेजी परिधान प्राय नदारद था। इसके पश्चात् लेखक ने कार्यक्रमो मे भागीदारी लेने के सम्बन्ध मे अपनी भावना प्रकट करते हुये लिखा कि महिलाये बिना पर्दे के पुरुषो के समान ही कार्यक्रमो मे भाग ले रही थी। अछूत कहलाने वाले व्यक्ति भी समाज के अन्य वर्णों के लोगो के साथ घुले-मिले दिखाई पडते थे।

दक्षिण की दूसरी धर्म यात्रा

मथुरा शताब्दी के पश्चात् दूसरी बार स्वामी जी दक्षिण भारत की यात्रा पर चल पडे। यह यात्रा 1925 ई0 के अक्टूबर तथा नवम्बर महीनो मे की गई थी। इस यात्रा का उद्देश्य 1924 ई0 मे की गई धर्मयात्रा के समय उनकी प्रेरणा से आरम्भ किये अछूतोद्धार के कार्यों का पुनरीक्षण और पृष्ठपोषण था। इस धर्मयात्रा मे 13 नवम्बर की पालाघाट की घटना ने स्वामी जी और आर्य समाज को समाचार पत्रो की सुर्खियो मे ला दिया। पालाघाट मे 'रथ उत्सव' के उद्घाटन के दिन डिविजनल मजिस्ट्रेट ने वैदिक धर्म मे परिवर्तित हुये अछूतो को सवर्ण हिन्दुओ की गलियो मे जाने के विषय मे प्रतिबन्ध लगा दिया। इस अन्याय के प्रति स्वामी जी ने आवाज बुलन्द की, परन्तु वहॉं के पढे-लिखे लोगो मे आर्य समाज और उसके सिद्धान्तो के विषय मे बहुत ही कम जानकारी थी। अत: स्वामी जी की आवाज बुद्धिजीवियो का ध्यान नहीं खींच सकी। स्वामी जी नवम्बर मास के अन्तिम दिनो मे दिल्ली लौट आये। दिल्ली आकर स्वामी जी ने विचार किया कि दक्षिण भारत मे वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिये हिन्दी भाषा के समाचार पत्रो से इतनी सहायता नहीं मिलती, अत प्रचारार्थ अग्रेजी भाषा का एक समाचार पत्र अवश्य होना चाहिये। यह सोचकर उन्होने अप्रैल, 1926 मे अग्रेजी माध्यम का 'लिबरेटर' नामक समाचार पत्र निकालना आरम्भ किया।

स्वामी जी के व्यक्तित्व की पहचान और परख

इससे पूर्व कि आगे कुछ लिखा जाए, हम यहॉं स्वामी जी की प्रकृति की पहचान और उनकी कार्य शैली की परख पर कुछ कहना प्रासगिक समझते हैं। स्वामी जी के जीवन मन्थन से उनकी प्रकृति के विषय मे किसी निश्चित सतुलनात्मक परिणाम पर पहुँचना कठिन है। स्वय उनके पुत्र इन्द्र ने लिखा है "ऐसी दुनिया मे, लगभग सारी युवावस्था मे मानसिक दृष्टि से अपने पिता और गुरु के निरन्तर समीप रह सकना वस्तुत: बडे आश्चर्य की बात है। मै स्वय इस बात को सोचकर आश्चर्यित होता हूं कि स्नातक बनने के पश्चात् लगभग 15 वर्ष के क्रियात्मक जीवन मे, मैं बिना किसी व्यवधान के पिता जी का अनुयायी कैसे रह सका[32]।" स्वामी जी के जीवन के सम्पूर्ण कार्यकलापो का लेखा-जोखा करने के उपरान्त हम कह सकते है कि आर्य सिद्धान्तो के प्रसार एव प्रचार मे उनका सर्वाधिक ध्यान गुरुकुलों की स्थापना, अछूतोद्धार, शुद्धि और स्त्रियो की सामाजिक स्थिति मे सुधार आदि विषयो पर था। आर्य समाज के सैद्धान्तिक विचार-ईश्वर, जीवन, प्रकृति, द्रव्य, गुण, कारण मुक्ति आदि के विषयो को उन्होने प्राथमिकता नहीं दी। स्वामी जी ने अपने उद्देश्यो की लक्ष्य प्राप्ति के लिए धर्मघोष, धर्मप्रचार, धर्मशिक्षा और धर्म यात्राओ का आश्रय लिया। इनमे से धर्मप्रचार, धर्मशिक्षा के साधनों में स्वामी जी को यथावाछित तो नहीं, हॉं यथावाछित के बहुत अधिक अनुकूल सफलता मिली। अछूतोद्धार और शुद्धि के उद्देश्यों में यत् किंचित् सफलता हो सकी। पूर्ण सफलता न मिलने का कारण भरत की राजनैतिक स्थिति के अतिरिक्त धार्मिक परिस्थितियॉं भी थी अछूतोद्धार और शुद्धि के कार्यों में मुसलमानों के साथ साथ पुरातन पथी हिन्दू भी उनका विरोध कर रहे थे। इन विरोधों

के बावजूद स्वामी जी जन मानस मे एक जुझारू और उच्च कोटि के नेता समझे जाते थे। 1907 ई० मे हिन्दुस्तान समाचार पत्र ने अपने पाठको से यह प्रश्न पूछा था कि उनकी दृष्टि मे भारत मे सर्वोत्कृष्ट पुरुष कौन–कौन है? इस प्रश्न के उत्तर मे स्वामी श्रद्धानन्द (तत्कालीन महात्मा मुशीराम) का नाम सातवे स्थान पर था। जब ऐसा ही प्रश्न 1912 ई0 मे लाहौर से प्रकाशित होने वाले 'प्रकाश' नामक समाचार पत्र ने अपने पाठको से पूछा तो स्वामी को छठा स्थान मिला। इससे स्पष्ट पता चलता है कि वे उत्तरोत्तर लोकप्रिय होते दिखाई पडते है।

स्वामी जी की लोकप्रियता का दोहन सभी राजनैतिक दलो ने अपने–अपने स्वार्थो की सिद्धि के लिये समय–समय पर किया। इस दोहन की प्रक्रिया मे स्वामी श्रद्धानन्द राजनैतिक महत्त्वाकाक्षाओ से सदा अछूते रहे। इसका कारण जहाँ राजनैतिक पार्टियो का छिछलापन था, वहाँ आर्य समाज के प्रति प्रथम प्यार भी एक प्रमुख कारण था। इस प्रथम प्यार को कटु आलोचनाओ के तीरो से बिध कर भी उन्होने अपने हृदय से चिपकाये रखा। इस प्रथम प्यार को मुशीराम, लाला मुशी राम, महात्मा मुशीराम और स्वामी श्रद्धानन्द सभी नामो मे ओत–प्रोत पाते हैं। लोगो ने लाला मुशीराम के रुप मे 1892 ई0 मे आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब के प्रधान के रूप मे इस प्यार की ऊँचाइयो को छूते देखा। इसी अवधि मे लोगो ने उन्हे सामाजिक, क्रान्ति के रूप मे अन्तर्जातीय विवाह का सूत्रपात करते देखा। लोगो ने उन्हे महात्मा मुशीराम के रूप मे गुरूकुल कागडी की स्थापना की प्रसव पीडा को अनेक लांछनाओ के तेवरो के मध्य सहते देखा। महात्मा मुशीराम के रूप मे वे आर्य समाज के सगठन की सर्वोच्च सभा 'आर्य सार्वदेशिक सभा' के प्रथम प्रधान के योग्य समझे गए। वस्तुतः महात्मा मुशीराम नाम का काल ही स्वामी जी की सघर्षमयी शक्ति का परिचायक है। इस काल मे (1902–17) उन्होने ही सहयोगी आर्य समाजी बन्धुओ द्वारा लगाये आरोपो को सहन करके उनका सटीक उत्तर दिया। इसी अवधि मे उन्होने आर्य समाज और गुरुकुल कागडी को सरकारी अधिकारियो की कुदृष्टि से बचाया। इसी अवधि मे उनका सम्पर्क पत्राचार द्वारा महात्मा गॉधी जी से हुआ। इसी अवधि मे वे अनेक अग्रेज प्रशासको के मित्र बने। इस अवधि मे अपने जीवन का स्वय मूल्याकन करते हुए, उन्होने एण्ड्रूज को लिखा–

"और सचमुच अब वह समय आ गया कि मेरे मन मे प्रभु के प्रति जो असीम श्रद्धा है, वह शब्दो मे व्यक्त नही हो सकती। सघर्ष मेरे जीवन का अग बन चुका है। आर्य समाज के कार्यक्षेत्र मे मेरा जीवन पूर्णतया सघर्षमय हो गया है। दिव्य जगन्माता को ही मालूम है कि पिछले 28 वर्षो मे मुझे कितने कठोर प्रहारो से जूझना पडा है(55)।"

स्वामी श्रद्धानन्द के प्रकृति प्रदत्त स्वभाव का आकलन करना सरल कार्य नहीं है। स्वामी श्रद्धानन्द ने स्वय 'कल्याण मार्ग के पथिक' मे लिखा कि किशोरावस्था मे उनकी प्रकृति' गगा गये गगादास और जमुना गये जमुनादास' जैसी थी। परन्तु आगे जाकर इनके प्रकृतिस्थ स्वभाव मे ऐसा परिवर्तन आया कि अपनी पुत्री वेदकुमारी के विवाह को छोडकर अनेक सामाजिक और धार्मिक परम्पराओ को तोडने का श्रीगणेश अपने ही घर से किया। पजाब के आर्य समाज की महात्मा पार्टी (गुरुकुल दल) मे स्वभाव की दृष्टि से ये अत्यधिक परिवर्तनवादी माने जाते थे। स्वामी जी के स्वभाव के सम्बन्ध मे उनके पुत्र इन्द्र ने बडे स्पष्ट विचार प्रकट करते हुए लिखा है–

"दुखी दिल की पुरदर्द दास्ताँ' मे पिता जी ने न केवल उन सब आपेक्षो का विस्तृत उत्तर दिया था, जो विरोधियो की ओर से उनके सार्वजनिक जीवन पर किये जाते थे, आर्य समाज के क्षेत्र मे उनके जो–जो विरोधी हुए उनके विरोधो के कारणो पर भी पूरा प्रकाश डाला था। उनकी दास्ताँ सचमुच दिल को बहुत दुखी करने वाली है। सारी पुस्तक को पढकर मन पर यह असर होता है कि पजाब के आर्य समाजो के क्षेत्र मे ऊँचे पदो पर काम करने वाले प्राय सभी प्रमुख व्यक्ति एक–एक

करके पिताजी के विरोधी बनकर समालोचकों मे शामिल होते गए। इस दशा को देखकर एक उदासीन व्यक्ति के मन में भी यह प्रश्न पैदा होने लगता है कि इसमे क्या सब दोष औरो का ही था? पाठक सोचने लगता है कि जिस व्यक्ति के इतने विरोधी हो गये कि जो आज साथी बना कल वही समालोचक बन गया। क्या इसमे सब दोष अन्यो का ही था? उनका नहीं था?

इस पुस्तक के पढने से एक और प्रश्न भी पाठक के मन मे उत्पन्न हो सकता है। वह यह कि इतने बडे सार्वजनिक कार्यकर्ता ने अपने विरोधियो की आलोचनाओ की इतनी परवाह क्यो की? उनका उत्तर इतने दुःखी दिल से दिया कि हरेक छोटे से छोटे आक्षेप का इतना विस्तृत उत्तर दिया। वह उनकी उपेक्षा कर सकते थे, कम से कम सर्वथा शान्तभाव से उत्तर दे सकते थे।

ये दोनों प्रश्न पिताजी के जीवन–काल में भी पूछे जाते थे। प्राय ज्योतिषी लोग समृद्ध व्यक्तियो का हाथ देखकर कह दिया करते हैं कि तुम्हारी हस्तरेखा से मालूम होता है कि तुम जिसे दूध पिलाओगे, वही तुम्हे डसने को आएगा। सब लोगो के सम्बन्ध मे यह बात ठीक हो या न हो, पर पिता जी के सम्बन्ध मे तो लगभग अक्षरश· ठीक सिद्ध होती रही है। सार्वजनिक जीवन मे उनके सब साथी कुछ समय के पश्चात् न केवल पिछड जाते थे, बल्कि उनके कठोर विरोधी हो जाते थे। मैने अत्यन्त समीप से जो देखा और अनुभव किया उसके आधार पर इस प्रश्न का उत्तर देने का साहस करता हू। जैसे मैं पहले लिख आया हू, पिता जी अपने निजी जीवन मे और सार्वजनिक जीवन मे इति–कर्तव्यता का निश्चय करते हुये युक्तियो या परिस्थितियो पर कभी विचार नहीं करते थे। स्नातक बनने के पश्चात् अनेक बार मैं उनके परामर्श मे शामिल होता रहा। किसी बडे कदम के उठाने के विषय में विचार करते हुए मैंने कभी उन्हे यह सोचते नहीं पाया, कि इस कार्य के लिए धन कहाँ से आएगा। पुराने साथी नाराज तो नहीं हो जायेगे। नए साथी कहाँ से आएगे? और जो बाधाये आएगी उनका निवारण कैसे होगा? उनका मन कुछ ऐसे ढग का बना हुआ था कि जिसे अक्लमन्द लोग सासारिक दूरदर्शिता या दुनियादारी के नाम से पुकारते हैं, वह कभी उनके पास नहीं फटकती थी। वह जब कोई बडा कदम उठाते थे, तब अन्तरग लोगो मे भी यही घोषणा किया करते थे, 'मैने निश्चय कर लिया'। यदि कोई यह पूछता कि कल शाम तक तो अभी विचार ही हो रहा था, तो वह उत्तर देते 'वह मेरी निर्बलता थी, आज प्रात ब्रह्ममुहूर्त मे मेरी अन्तरात्मा ने निश्चित रूप से कह दिया कि मुझे यह काम करना चाहिए''। फिर कोई सलाहकार यह पूछने का साहस कर बैठता था, कि परन्तु यह कार्य होगा कैसे? इस प्रश्न का उत्तर पिताजी का निश्चित ही था– उत्तर था– ''अब तक मेरे सब कार्य सहस्रबाहु के भरोसे पर हुए हैं, यह कार्य भी वैसे ही होगा[54]।''

उपर्युक्त लम्बे उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वामी जी दुनियादारी की चिन्ता कम ही किया करते थे। उनकी प्रकृति 'फकीरा मन आ गया दिया झौंपडा फूक'' वाली थी। उनका प्रत्येक निर्णय अन्तरात्मा की आवाज से होता था। इस आवाज की गूज मे हितैषियो से परामर्श करना प्रायः वे भूल जाते थे। इन्द्र की मान्यता के अनुसार स्वामी जी की स्वय सिद्ध प्रकृति के निर्माण में उनकी शारीरिक कद–काठी का योगदान भी निश्चित रूप से था। जिस समय वे चलते थे, उस समय उनके कन्धे अन्य लोगो के सिरो से ऊचे दिखाई पडते थे और सिर कन्धो से भी ऊँचा होता था। यदि शारीरिक सम्पति किसी को जन्म सिद्ध नेता बना सकती है, वह उनमे थी। इसके साथ सकट काल मे जनता यह चाहती है कि उसको एकदम रास्ता दिखाया जाये। उनका खून इतना उबला हुआ होता है कि न परामर्श की गुंजायश होती है और न शाब्दिक आश्वासन की। उस समय स्वामी जी वस्तुतः क्षणभर में इति–कर्तव्यता का निश्चय कर लेते थे और निश्चय कर लेने के बाद बडे से बडे सकट से जूझने के लिये चल पडते थे[55]।''

इन्द्र द्वारा प्रस्तुत प्रकृति की विशिष्टताओ के अतिरिक्त स्वामी श्रद्धानन्द ने स्वय अपनी प्रकृति के विषय मे लिखते हुए कहा है "बहुत से मनुष्यो के लिए मत परिवर्तन का निर्णायक कोई विशेष सामाजिक प्रलोभन या अन्य गौण बात हुआ करती है, किन्तु मेरे लिये यह मत परिवर्तन जीवन और मृत्यु का प्रश्न था। इस समय तक भी मेरी स्वाभाविक प्रवृत्ति इसी ओर है कि मैं साधारण से साधारण सिद्धान्त के प्रश्न को जीवन और मृत्यु का प्रश्न बना लेता हू। मेरे जीवन की बहुत सी घटनाओ को समझने मे यही एक सहायता दे सकती है। इस घटना पर (जालन्धर आर्य समाज के प्रधान बनने के प्रस्ताव के सम्बन्ध मे) दीर्घदृष्टि डालने से यह भी पता चल सकेगा कि दूसरे के गुणो तथा योग्यताओ का मान करते हुए तथा वास्तव मे उनके प्रति प्रेम और आदर का भाव मन मे रखते हुए भी क्यो मैंने ऐसे बहुत से पुरुषो को शत्रु बना लिया है, जिनका मेरे साथ मिलकर काम करना वैदिक धर्म तथा आर्य जाति की उन्नति का साधक होता[66]।"

लाला लाजपत राय ने सवत 1992–93 मे स्वामी जी की प्रकृति के विषय मे कहा था कि वे झगडालू स्वभाव के साथ नेता बनने की लालसा मे यश के पीछे दौडने वाले हैं[67]। लेकिन बाद में लाला जी ने इस टिप्पणी मे सुधार कर लिया था। जोर्डेन्स ने भी इसी से मिलती–जुलती बात लिखते हुए कहा है "इसमे कोई सन्देह नहीं कि उनके विरोधियो का स्वभाव झगडालू था, परन्तु मुशी राम के अपने स्वभाव की भी विवादो मे भागीदारी है[68]।" स्वामी श्रद्धानन्द की कार्यशैली के कटु आलोचक महाशय कृष्ण ने स्वामी श्रद्धानन्द की प्रकृति के विषय मे अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है "मेरा स्वामी जी से 25 वर्ष का सम्बन्ध रहा। इस अन्तर मे मैंने उनके जीवन को हर प्रकार से देखा। उनके गुण और दोष भी मेरे सामने आए, दोष कोई बडे न थे, केवल स्वभाव के दोष थे। उनके स्वभाव मे यह बात थी कि जो उनके सम्पर्क मे आ जाता था और उन्हे जो बात कह देता, तो उसकी बात पर विश्वास कर लेते थे। अपने समाचार पत्र 'सद्धर्म प्रचारक' मे वर्णन कर दिया करते थे और जब उसका खण्डन हो जाता था, तो उन्हे अपनी भूल स्वीकार करने मे कोई सकोच नहीं होता था[69]। महात्मा गाँधी ने स्वामी जी की प्रकृति का विश्लेषण करते हुए लिखा है" स्वामी जी सुधारक थे। वे कर्मवीर थे, वचनवीर नहीं। जिस बात मे उनका विश्वास था, वे उसका पालन करते थे। उन विश्वासो के लिये उन्हे कष्ट झेलने पड़े। वे वीरता के अवतार थे। खतरे के सामने वे कभी काँपे नहीं। वे योद्धा थे और योद्धा रोग–शय्या पर नहीं मरना चाहता। वह तो युद्ध भूमि मे मरना चाहता है[70]।" स्वामी श्रद्धानन्द के सन्यास आश्रम मे दीक्षित होने के बाद आचार्य पद सम्भालने वाले प्रो0 रामदेव के शब्दो मे "उनका (स्वामी श्रद्धानन्द) का विरोध करके सफल होना कोई सरल बात नहीं थी। उनका व्यक्तित्व बहुत बडा था और जिसका पक्ष ले लेते थे, उसकी प्राय विजय होती थी।" इस प्रकार स्वामी जी निर्णयों मे युक्तियो और परिस्थितियो की परवाह न करके इति–कर्तव्यता का निश्चय करने वाले, प्रलोभन से रहित, युयुत्सु की भावना से परिपूर्ण और स्वय की गलतियो का परिमार्जन करने वाले महान् व्यक्तित्व के धनी थे।

साहित्यिक योगदान

जोर्डन्स के कथनानुसार 1923 ई0 के अन्त से आरम्भ होकर 1925 तक स्वामी जी की लेखनी से लेखो, पम्पप्लेटो और पुस्तको की बाढ आ गई थी[71]। इस लेखनी की बाढ का साहित्य मे क्या योगदान है? इस विषय मे स्वामी जी की जीवनी लिखने वालो ने कोई सार्थक प्रयास नहीं किया। वर्ष 1993 मे 'साहित्य अकादमी' नई दिल्ली ने इस विषय पर एक पुस्तक सर्वश्री विष्णु प्रभाकर एव विष्णुदत्त राकेश से लिखवाई। 'साहित्य अकादमी' के अनुबन्ध की सीमा मे जकडे ये लेखक स्वामी श्रद्धानन्द को 100 पृष्ठो (जीवनी और साहित्य साधना) मे बाँधने मे पूर्ण सक्षम कहे जा सकते हैं। विष्णु द्वय ने स्वामी जी की हिन्दी के प्रति की गई सेवाओ का उल्लेख करते हुए साहित्यिक योगदान के सन्दर्भ मे पत्रकारिता और आत्मकथा के बिन्दुओ को उभारा है। इनके प्रयास से हिन्दी लेखको को स्वामी जी की साहित्य साधना के सम्बन्ध मे अनूठी जानकारी मिली है।

साहित्य के प्रति स्वामी जी की रुचि शरीर के उठान काल मे ही उत्पन्न हो गई थी। रेवडी तालाब स्कूल (बनारस) के विद्यार्थी जीवन मे (1875) ही उनका सम्पर्क भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से हो गया था। इस परिचय के सम्बन्ध मे लिखते हुये वे कहते हैं– "बाबू हरिश्चन्द्र कवि भी अद्वितीय समझे जाते थे। सारस्वत ब्राह्मण कक्कू जी के पुत्र ने मेरा उनसे परिचय कराया और यहाँ मेरा आना–जाना आरम्भ हुआ। उर्दू शायरी से प्रेम हो चुका था, हिन्दी का रस भी मिलने लगा। परन्तु इन दोनो का मेरे जीवन पर अच्छा असर नहीं पडा। रामचरित मानस के स्वाध्याय ने मेरे आचार–व्यवहार की आवारगी के दिनो मे रक्षा की थी, परन्तु उर्दू कवियो और भारतेन्दु की सगति मे मानसिक पवित्रता का भाव ढीला पडने लगा। सामने से कोई सुन्दरी आ रही है। उसको देखते उसके शरीर, वस्त्र, चाल–ढाल पर भारतेन्दु जी ने कविता कहना आरम्भ किया और उसके सामने पहुँचने तक पूरा हो गया। कविता का तो यह आदर्श समझा जाता था, परन्तु ब्रह्मचर्य, सदाचार ,मानसिक पवित्रता पर कुल्हाडे की चोट लगाई जाती है[42]।" शनै शनै श्रृगार परक माहौल के कारण उनका सम्पर्क भारतेन्दु से टूटता चला गया। उपर्युक्त उद्धरण से यह पता चलता है कि स्वामी जी की दृष्टि मे कविता का मूल्य श्रृगार न होकर सदाचार है। सदाचार के मूल्य के कारण ही 'रामचरित मानस' ने उनको सही रास्ता दिखाया। यह एक सुखद आश्चर्य है कि हिन्दी की पुस्तक 'रामचरित मानस' ने एक आवारा किस्म के युवक को सुमार्ग पर चलने की प्रेरणा दी और जीवन भर पग–पग पर प्रति बोधित किया।

कविता से मोहभग हो जाने पर स्वामी जी ने साहित्य के क्षेत्र मे उपन्यासकार बनने की सोची। क्वींस कालेज, बनारस के दिनो (1876) मे 'गाढी कम्पनी' अर्थात मित्र मण्डली के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि "हम सब मे दो उपन्यास लेखक बने, एक दीवान साहेब और दूसरा मैं। दीवान साहेब ने तो अग्रेजी उपन्यास लेखक डिकेस को अपना पथ प्रदर्शक बनाया और मैंने सर वाल्टर स्काट को गुरू धारा[43]।" रविवार के दिन 'गाढी कम्पनी' की बैठको मे उनके उपन्यास लेखन के सम्बन्ध मे चर्चा–परिचर्चा भी होती थी। बलिया के निवास काल मे ये अपना उपन्यास पूरा करना चाहते थे, परन्तु ऐसा नहीं हो सका[44]। मुखतारी के दिनो मे जालन्धर मे रहते हुए स्वामी जी का नाता उर्दू साहित्य से जुडता चला गया। उन्हीं के शब्दो मे "नज्म और नसर (पद्य–गद्य) का शौक बार रुम मे जोरो पर था और पजाबियो तथा उर्दू के केन्द्र स्थानो (उत्तर प्रदेश) मे घूम आने वालो मे प्रामाणिक समझा गया था। हर महफिल मे बुलाया जाता[45]।"

सन् 1884 ई0 मे आर्य समाज के सदस्य बनने के उपरान्त स्वामी जी शीघ्र ही 1886 ई0 मे आर्य समाज जालन्धर के प्रधान बना दिये गये। अब स्वामी जी पूर्णत· आर्य समाज के रग मे रगे जा चुके थे। आर्य समाज के प्रचार और प्रसार के लिये एक समाचार पत्र की आवश्यकता अनुभव की गई। जालन्धर और होशियारपुर के कुछ व्यक्तियो की भागीदारी मे एक प्रैस खरीदकर स्वामी जी ने 19 फरवरी, 1889 मे 'सद्धर्म प्रचारक' नामक उर्दू का साप्ताहिक समाचार पत्र निकालना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार स्वामी जी ने समाचार पत्र के माध्यम से लेखक वर्ग मे अपना पहला कदम रखा। समाचार पत्र के मुख पृष्ठ पर 'मित्रस्य त्वा चक्षुषा समीक्षामहे' का सिद्धान्त वाक्य लिखा गया। डा0 धर्मपाल के अनुसार "पत्र की लिपि तो उर्दू भाषा की थी, परन्तु उसकी भाषा धीरे–धीरे उर्दू के स्थान पर हिन्दी ही होती गई। इसमे सस्कृत भाषा के शब्द भी आ जाया करते थे। मुसलमानो ने इस भाषा का विरोध किया, पर धीरे–धीरे सारे पजाब मे इसी भाषा ने जोर पकड लिया। लोग इस भाषा को 'आर्य समाजी उर्दू' कहा करते थे[46]।" स्वामी जी के लेखन क्षेत्र मे प्रवेश करते समय पजाब की मुख्य भाषा उर्दू थी। आर्य समाजी उर्दू के द्वारा उन्होने शनै· शनैः सस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द रूपो को पाठको के मनो मे बैठाना आरम्भ कर दिया। इसकी अनुकूल प्रतिक्रिया देखकर स्वामी जी ने सम्वत् 1955 (1898 ई0) मे 'सद्धर्म प्रचारक' मे लिखा "दृढ प्रयत्न करना चाहिये कि प्रतिनिधि सभा का दफ्तर और आर्य समाजियो का पत्र–व्यवहार आर्य भाषा (हिन्दी) मे हो जावे। क्या

उर्दू का स्थान आर्य भाषा को लेते मैं अपनी आँखो से देख सकूँगा।"

स्वामी श्रद्धानन्द की उपर्युक्त इच्छा उनके जीवन काल मे 'गुरुकुल' कागडी की स्थापना के साथ ही पूर्ण होने लगी। गुरुकुलीय शिक्षण विधि मे आरम्भ से ही हिन्दी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया गया था। हिन्दी मे पाठय पुस्तको का अभाव था। इसकी पूर्ति के लिये गुरुकुल के आध्यापकों ने विभिन्न विषयो पर हिन्दी की पाठ्य पुस्तके तैयार कीं।

स्वामी श्रद्धानन्द बहुमुखी लेखक थे। भाषाओ पर अधिकार की दृष्टि से उर्दू, अग्रेजी और हिन्दी पर उनकी अच्छी पकड थी। उन्होने अपने जीवन काल मे तीनो ही भाषाओ मे प्रचुर साहित्य की रचना की है। इ .की रचनाओ का मुख्य विषय धार्मिक ही रहा है। पाठको को यह जानकर आश्चर्य होगा कि आर्य समाज, काग्रेस, हिन्दू महासभा, हिन्दू सगठन और गुरुकुल कागडी के प्रबन्ध मे व्यस्त रहते हुए भी स्वामी जी ने पत्र–पत्रिकाओ मे लेख लिखने के अतिरिक्त चालीस पुस्तके उर्दू, अग्रेजी और हिन्दी भाषाओ मे लिखीं. हैं। इसके साथ ही उन्हे तीन पत्रिकाओ का सस्थापक–सम्पादक होने का गौरव भी प्राप्त है। कालक्रम की दृष्टि से उन्होने सर्वप्रथम उर्दू भाषा मे ही लिखना आरम्भ किया था। उनकी उर्दू रचनाओ का कालक्रम इस प्रकार है–

1 वर्ण व्यवस्था 1891, 2. एक मास प्रचारक की गुप्तलीला का प्रकाश 1895, 3. क्षेत्रधर्म के पालन का गैर मामूली वाक्य 1895, 4. सुबह ओ–मीद 1898, 5. पुराणो की नापाक तालीम से बचो 1899, 6 सद्‌धर्म प्रचारक पर पहला लायबल केस 1901, 7 दुखी दिल की पुरदर्द दास्तॉं 1906, 8. मेरी जिन्दगी के नशेबोफराज 1911, 9 हिन्दू–मुस्लिम इत्तिहाद की कहानी 1924, 10 अन्धा एतकाद और खुफिया जिहाद 1924, 11 मुहम्मदी शाजिस का इन्कशाफ 1924, 12 अछूतोद्धार एक फौरी मसला, 13. मेरा आखिरी मशवरा, 14, दाइये इस्लाम या तबाहिये इस्लाम 1924।

इसके पश्चात् लेखन के क्रम मे अग्रेजी भाषा की रचनाये आती है। इस भाषा की रचनाओ का क्रम इस प्रकार है–

1 द फ्यूचर आफ आर्य समाज–ए फोरकास्ट 1893,

2 द आर्य समाज एण्ड इट्स डिट्रैक्टर्स–ए विन्डीकेशन 1910,

3 हिन्दू सगठन–सेव्यिर आफ द डाईंग रेस *1926*।

सबसे बाद मे हिन्दी की रचनाओ का क्रम आरम्भ होता है। इस भाषा की रचनाओ की अनुक्रमणिका निम्न प्रकार है–

1 आर्य सगीत माला 1900, 2 ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार 1910, 3. वेदानुकूल सक्षिप्त मनुस्मृति 1911, 4 पारसी मत और वैदिक धर्म 1916, 5 मातृभाषा का उद्धार 1916, 6 वेद और आर्य समाज 1916, 7 आर्यों की नित्य कर्म पद्धति 1916, 8. पचयज्ञ विधि 1916, 9. आचार अनाचार और छूतछात 1916, 10 उत्तराखण्ड की महिमा 1917, 11 मानव धर्मशास्त्र तथा शासन पद्धति 1917, 12. आदिम सत्यार्थ प्रकाश और आर्य समाज के सिद्धान्त 1917, 13 जाति के दीनो को मत त्यागो 1919, 14 गढवाल मे 1975 विक्रमी का दुर्भिक्ष और उसके निवारणार्थ गुरुकुल दल का कार्य 1919, 15 बन्दीघर के विचित्र अनुभव *1923*, 16 *कल्याण मार्ग का पथिक 1924*, 17 *हिन्दुओ सावधान, तुम्हारे दुर्ग पर रात्रि* मे छिपकर धावा बोला गया 1924, 18 वर्तमान मुख्य समस्या–अछूतपन के कलक को दूर करो 1924, 19 मुक्ति सोपान 1925, 20 आर्यों के नित्यकर्म 1925।

स्वामी जी द्वारा सचालित पत्र–पत्रिकाओ का क्रम इस प्रकार है–

1. सदधर्म प्रचारक (उर्दू) 1889, 2. श्रद्धा (हिन्दी) 1920, 3 लिबरेटर (अग्रेजी) 1926।

उपर्युक्त मौलिक पुस्तके लिखने के अतिरिक्त स्वामी जी ने कुछ पुस्तको का हिन्दी से उर्दू मे और उर्दू से हिन्दी मे अनुवाद भी किया था। इन पुस्तको मे लाला ज्वाला सहाय कृत 'विस्तारपूर्वक सन्ध्या विधि' का हिन्दी अनुवाद है। हिन्दी की पुस्तको यज्ञ का पहला अग और स्वामी दयानन्द के भाषणो की 'उपदेशमजरी' नामक पुस्तक का उर्दू अनुवाद किया। कुछ लेखको ने स्वामी जी के भाषणो और पत्र–पत्रिकाओ मे प्रकाशित लेखो का सग्रह किया है। इस कोटि मे लभूराम नय्यड द्वारा तीन भागो मे प्रकाशित 'धर्मोपदेश' और 'महात्मा मुशी राम के सात लैक्चरो का मजमुआ' नामक पुस्तके आती हैं। स्वामी श्रद्धानन्द ने सन् 1926 ई0 मे अग्रेजी भाषा मे 'लिबरेटर' नामक समाचार पत्र (साप्ताहिक) निकाला था। इसका प्रकाशन 1 अप्रैल, 1926 से आरम्भ हुआ और इसका अन्तिम अक अक्टूबर, 1926 ई0 निकला। इस समाचार पत्र के सयुक्त सम्पादक महाराष्ट्र निवासी पी0आर0 लेले थे। उन्होने इस समाचारपत्र मे स्वामी जी द्वारा लिखित काग्रेस सम्बन्धी विचारो को 'इन साइड काग्रेस' नाम से सम्पादित करके अग्रेजी भाषा मे प्रकाशित करवाया। स्वामी श्रद्धानन्द के तीनो भाषाओ मे बिखरे विचारो को हिन्दी भाषा मे प्रस्तुत करने का भी एक स्तुत्य प्रयास किया गया है। गोविन्द राम हासानन्द पब्लिशर के0 विजयकुमार ने प्रो0 डा0 भवानी लाल भारतीय के सम्पादकत्व मे 13 खण्डों मे स्वामी जी के साहित्य को निकाला है। लेकिन हमे तो यहाँ स्वामी जी की हिन्दी भाषा मे लिखी उन्हीं रचनाओ को लेना अभीष्ट है, जिनसे उनके साहित्यिक योगदान का पक्ष उजागर हो सके।

स्वामी जी, साहित्यकार के लिये यह आवश्यक समझते थे कि रचना–प्रस्तुति से पूर्व उसे रचना के कथ्य के सम्बन्ध मे सही जानकारी होनी चाहिये। यदि ऐसा नहीं होगा, तो लेखक परिस्थितियो का यथातथ्य चित्रण करने मे असमर्थ होगा। उपर्युक्त कथन की सम्पुष्टि हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार और कहानीकार आचार्य चतुरसेन के एक सस्मरण से इस प्रकार होती है–

"यही मेरा ख्याल है, परन्तु आप एक उदीयमान साहित्यकार है और साहित्यकार एकान्तप्रिय होते हैं। परन्तु अधिक एकान्त मे यह दोष पैदा हो जाता है कि साहित्यकार की दृष्टि मे कल्पना प्रधान हो जाती है। सत्य पीछे छूट जाता है। जहाँ तक भावना का प्रश्न है, इससे उतनी हानि नहीं होती, पर जब घटनाओ का प्रश्न आता है और उससे किसी व्यक्ति का सम्बन्ध स्थापित होता है और दुर्भाग्य से वह व्यक्ति यदि सार्वजनिक होता है तब कभी–कभी बहुत भद्दी भूले हो जाती है, जो पीछे किसी मूल्य पर परिमार्जित नहीं की जा सकतीं।"

इससे आगे वे लिखते हैं, मतलब मैं स्पष्ट ही समझ रहा था। पर स्वामी जी कोई बात अधूरी छोडते नहीं थे, कोई बात उधार खाते मे डालते नहीं थे। उन्होने बिना इस बात की परवाह किये तनिक कठोर भाषा मे कहा– "अब आप इस कहानी की ही बात लीजिए जिसमे मुझे और मेरे पुत्र को आपने एक पात्र बनाया है, एक बहुत गम्भीर आरोप आपने उसमे मेरे ऊपर लगाया है। मैं नहीं जानता कहाँ से ये तथ्य आपको मिले और उसमे आपने कितना कल्पना का सहारा लिया, परन्तु मैं तो अभी जीवित था, यहीं इसी नगर मे रहता था, आप यदि मेरे पास आते तो आपको मेरे पास तो सत्य की ही उपलब्धि होती और तब शायद आपकी यह कहानी कुछ दूसरा ही रूप धारण कर लेती[47]।"

इस कहानी का सम्बन्ध दिल्ली के कुछ फाँसी प्राप्त क्रान्तिकारियो से भी था। अत. स्वामी जी ने बात को अन्तिम रूप देते हुए कहा–

"अभी आप नवयुवक है। खून आपका गर्म है। पर कभी आप मेरी उम्र को भी पहुँचेगे, किन्तु कदाचित् आपका जीवन उस भयानक बबडर मे न फँसे, जिसमे मुझे फँसना पडा, क्योकि आप तो साहित्यिक है, सामाजिक कार्यकर्ता नही। विरोधी सत्ताओ के शक्ति सन्तुलन का कदाचित् आपको अवसर मिले ही नहीं। ऐसी अवस्था मे आप आपनी भूल को कभी समझ न सकेगे। परन्तु मै तो समझता हू कि साहित्यकार को समाज के समूचे ढॉचे को उसी प्रकार ठीक–ठाक जान लेना आवश्यक है जिस प्रकार एक चिकित्सक को शरीर की भीतरी–बाहरी पेचिली बनावट, साथ ही जीवन–क्रिया के मूलाधारो को जान लेना आवश्यक है। इसके लिए साहित्यकार ही रहना चाहिए[48]।"

स्वामी जी द्वारा लिखी तीनो भाषाओ की पुस्तको के तुलनात्मक अध्ययन से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दी भाषा की पुस्तको की विषय वस्तु विविध विषयो से सम्बन्धित है। विषय वस्तु की विविधता से साथ साहित्यिक विधाओ की दृष्टि से ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार, मातृभाषा का उद्धार, उत्तराखण्ड की महिमा, आदिम सत्यार्थ प्रकाश और आर्य समाज के सिद्धान्त, बन्दीघर के विचित्र अनुभव, कल्याणमार्ग का पथिक और आर्य पथिक लेखराम नामक पुस्तके महत्वपूर्ण है। उपर्युक्त पुस्तके पत्र सकलन की विधा, समालोचना की विधा, भाषा प्रयोग विधा, सास्कृतिक निबन्ध विधा आत्म चरित्र विधा और जीवन चरित्र विधा की कोटियो मे आती है। परन्तु हिन्दी साहित्य के लेखको ने स्वामी जी को मूल रूप मे धार्मिक नेता मानकर उनकी साहित्यिक कृतियो की ओर ध्यान ही नही दिया।

स्वामी श्रद्धानन्द हिन्दी साहित्य मे पत्र सकलन विधा के प्रारम्भकर्ता थे। इस विधा की ओर बढने की कहानी को सयोग ही समझिए। परोपकारिणी सभा, अजमेर ने अपने 1906 ई0 के अधिवेशन मे स्वामी दयानन्द के जीवन चरित्र की पूर्ति के लिये आर्य समाज एव परोपकारिणी सभा के इतिहास भी लिखवाने आवश्यक समझे। इसके लिए प्रस्ताव भी पारित हो गया किन्तु वर्ष भर कुछ न हो सका। इसलिए दूसरे वर्ष 1907 के अधिवेशन मे यह कार्य स्वामी श्रद्धानन्द को पूरा करने के लिये दे दिया गया। इस सन्दर्भ मे कार्य करते हुए स्वामी जी को महर्षि दयानन्द से सम्बन्धित अनेक पुराने पत्र उपलब्ध हुए। आर्य समाज का इतिहास तो किन्हीं कारणो से नहीं लिखा जा सका, परन्तु स्वामी जी ने पत्र–व्यवहार को अपने खर्चे से छपवा दिया। स्वामी जी ने पत्रो का सम्पादन करने मे एक निष्पक्ष लेखक का कर्तव्य पालन करते हुए स्पष्ट शब्दो मे लिखा "ऋषि दयानन्द के पत्र व्यवहार से यदि उनकी कोई निर्बलता भी प्रकाशित हो, या किसी पत्र से हमारे जमे हुए सस्कारो तथा विश्वासो पर यदि किसी प्रकार की चोट भी लगे तब भी किसी आर्य समाज का अधिकार नहीं कि वह इस पत्र व्यवहार मे से एक शब्द भी न्यूनाधिक करे[49]।" स्वामी जी ने उपर्युक्त कथन का अक्षरश पालन करना अपना सम्पादकीय कर्तव्य समझा। इस सम्बन्ध मे उन्होने लिखा–

"इस पत्रमाला मे कुछ पत्र कई एक सज्जनो को अनावश्यक प्रतीत होगे और कइयो की भाषा उनको ऐसी अखरेगी कि उन्हे पढते समय वे मुझ पर बहुत ही क्रुद्ध होगे। ऐसे सज्जनो को समझ लेना चाहिए कि प्रत्येक मनुष्य के आचार बहुत सी छोटी–बडी घटनाओ के समूह से ही बनते है, जिसमे से एक प्रकार की घटना को भी पाठको से छिपाने पर वे उस पुरुष के जीवन पर ठीक सम्मति स्थिर नही कर सकते। यदि मै भी इस समय पत्रमाला के सग्रहीता के स्थान मे जीवन वृतान्त का सम्पादक होता तो मै भी काट–छॉट से न चूकता, किन्तु मेरा अधिकार इस समय यह न था और जब ठीक तथ्य ही पाठको के सामने रखने का कर्तव्य हो तो भाषा को बदलना भी एक प्रकार के अनधिकार जमाने के तुल्य ही है[50]।" इस प्रकार स्वामी जी ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि जीवनी लेखक और पत्र–व्यवहार सम्पादक के बीच की सीमा रेखा क्या है?

साहित्यिक दृष्टि से स्वामी जी के पत्र–व्यवहार सम्पादन की यह विशेषता है कि प्राय उन्होने प्रत्येक पत्र की सक्षिप्त समालोचना भी प्रस्तुत की है। इनमे से कतिपय पत्र हिन्दी भाषा की तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश डालते है। स्वामी जी ने महाशय लक्ष्मण गोपाल देशमुख असिस्टेन्ट कलेक्टर खानदेश के पत्र की समालोचना मे लिखा है "ये पत्र यद्यपि केवल घडी की खरीददारी के सम्बन्ध मे होने से कई पाठको को तुच्छ प्रतीत होगे, किन्तु मेरी दृष्टि मे ये बहुमूल्य हैं। इनसे पता चलता है कि आर्य भाषा और सस्कृत के प्रचार को जिस ऋषि दयानन्द ने पुष्टि दी थी, यदि उसका अनुकरण उनके शिष्य करते तो आज यह हीन दशा न दिखाई देती कि आर्य समाज के कतिपय भूषणो (महान व्यक्तियो) को यह भी लिखने मे लज्जा नहीं आती कि यदि उनसे उत्तर–प्राप्ति की इच्छा हो तो उनके नाम पत्र इगलिश या उर्दू भाषा मे ही भेजा जावे[61]।"

समालोचना के क्षेत्र मे 'आदिम सत्यार्थ प्रकाश और आर्य समाज के सिद्धान्त' नाम पुस्तक अपना स्थान आप ही रखती है। यद्यपि इस पुस्तक मे आर्य सिद्धान्तो पर उठाई गई आपत्तियो का निराकरण किया गया है तथापि इस निराकरण मे समालोचना की जो पद्धति अपनाई गई है, वह शास्त्रीय होने के साथ–साथ साहित्यिक भी है। इस समालोचना मे एक लेखक द्वारा रचित एक ही पुस्तक के प्रथम तथा द्वितीय सस्करणों की विषय वस्तु की परस्पर तुलना करके प्रथम सस्करण के कुछ महत्वपूर्ण सन्दर्भों को द्वितीय सस्करण मे स्थान न देने की समालोचना है। वे लेखक अन्य कोई न होकर स्वामी दयानन्द है और रचना भी लेखक की अन्य साधारण रचना न होकर सत्यार्थ प्रकाश है। सम्भवतः यह इस प्रकार की समालोचना का हिन्दी लेखन जगत मे यह प्रथम प्रयास हो।

आर्य समाजियो की मान्यता के अनुसार जिस समय आदिम सत्यार्थ प्रकाश छपा उस समय अत्यधिक व्यस्तता के कारण स्वामी दयानन्द उसकी पाण्डुलिपि नहीं पढ सके थे। इसका परिणाम यह हुआ कि पाण्डुलिपि लेखक ने स्वय अपनी तरफ से कुछ ऐसी बाते लिख दीं जो आर्य समाज के सिद्धान्तो के प्रतिकूल थीं। आदिम सत्यार्थ प्रकाश छपने पर स्वामी जी के विरोधियो ने अपने पक्ष मे इसका लाभ उठाया। किसी जागरुक पाठक ने स्वामी दयानन्द का ध्यान इस ओर खींचा। स्वामी जी ने अविलम्ब अपना स्पष्टीकरण प्रकाशित करवा दिया और प्रथम सस्करण की प्रतियॉं समाप्त होते ही सत्यार्थ प्रकाश को सशोधित करके द्वितीयावृत्ति के प्रकाशनार्थ भेज दिया। दुर्भाग्य से स्वामी जी की मृत्यु सन् 1883 ई0 मे हो गई और सत्यार्थ का सशोधित द्वितीय सस्करण उनकी मृत्यु के पश्चात् 1884 ई0 मे पाठको के हाथ आ सका। इस घटना को लेकर पुरातनपथियो मेअग्रणी प0 कालूराम ने यह प्रचरित करना आरम्भ कर दिया कि सशोधित सत्यार्थ प्रकाश का स्वामी जी से कोई सम्बन्ध नहीं। स्वामी जी की असली रचना तो आदिम सत्यार्थ प्रकाश ही है और उसमे यज्ञीय हिसा और मृतक श्राद्ध आदि विषयो का समर्थन मिलता है। कालूराम ने अपने प्रयत्न से आदिम सत्यार्थ प्रकाश को छपवा कर आर्य समाज के विरोध मे वातावरण बनाना आरम्भ कर दिया।

इस परिस्थिति को देखकर स्वामी श्रद्धानन्द सचेत हुए और उन्होने अपनी लेखनी उठाई। स्वामी श्रद्धानन्द ने आदिम सत्यार्थ की समालोचना करते हुए नकारात्मक और सकारात्मक दोनो विधिया अपना कर निर्णय देने के विषय मे रचनात्मक विधि का आश्रय लिया। नकारात्मक विधि द्वारा उन्होने कालूराम के विचारो का युक्तियुक्त प्रमाण देकर निराकरण किया। सकारात्मक समीक्षा मे स्वामी जी ने आर्य समाज के मान्य सिद्धान्तो की पुष्टि करके यज्ञीय हिंसा और मृतक श्राद्ध आदि का खण्डन किया। किन्तु एक निष्पक्ष समीक्षक की दृष्टि से यह भी स्वीकार किया कि सशोधित सत्यार्थ प्रकाश मे प्रमाणो के पते आदि शब्द शुद्धि विषयक परिवर्तन जो किसी किसी सस्करण मे दिये गये हैं, ठीक नहीं हैं। ऐसे परिवर्तन, हेतु देकर फुटनोटो द्वारा होने चाहिए[62]। सत्यार्थ प्रकाश की लेखन शैली के विषय मे लिखते हुए स्वामी श्रद्धानन्द कहते हैं कि "स्वामी दयानन्द की लेखन शैली स्वामी

शकराचार्य से मिलती है। जैसे शकर स्वामी पूर्वपक्ष की प्रबल से प्रबल युक्तियो द्वारा स्थापना करके समाधान करते हैं, वैसे ही दयानन्द भी पूर्वपक्ष के साथ अन्याय नहीं करते[63]।" इसके पश्चात् स्वामी श्रद्धानन्द ने धार्मिक विषयो की समीक्षा करते हुए रचनात्मक सुझाव प्रस्तुत करते हुए लिखा "पौराणिक पडितो से निवेदन है कि वे समय के प्रवाह को समझे और वैदिक धर्म के गौरव का ध्यान करे। यह समय स्वार्थ परायणता का नहीं है। यह समय उन नियमों पर अधिक बल देने का है, जिनमे आर्य समाज और सनातन धर्म सभा ऐक्य मत हैं। ब्रह्मचर्याश्रम के अभाव से ससार का नाश हो रहा है। यदि सनातन धर्म सभा और आर्य समाज अपनी शक्तियो को मिलाकर बल लगाएँ, तो शीघ्र बेडा पार हो सकता है[64]।"

धार्मिक क्षेत्र मे रचनात्मक सुझाव देने के पश्चात् स्वामी जी ने आदिम सत्यार्थ प्रकाश की विषय वस्तु की दृष्टि से समीक्षा की। बस यहीं से उनकी रचनात्मक समालोचना का अजस्र प्रवाह आरम्भ होता है। स्वामी दयानन्द को भारतीय इतिहास मे धर्माचार्य के रूप मे मान्यता न मिल कर एक समाज सुधारक के रूप मे मान्यता मिली है। उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज के दस नियम भी यह प्रमाणित करते हैं कि स्वामी जी का रुझान सामाजिकता की ओर था और वे सामाजिक हितकारी नियमो के पालन मे प्रत्येक व्यक्ति को परतन्त्र रहने पर बल देते थे। स्वामी जी की इसी प्रकृति को उद्घाटित करने वाले कुछ प्रसग आदिम सत्यार्थ प्रकाश मे थे। इन प्रसगो को सत्यार्थ प्रकाश के सशोधित द्वितीय सस्करण मे स्थान नहीं दिया गया। स्वामी श्रद्धानन्द की मान्यता थी कि इन प्रसगो को द्वितीय सस्करण मे स्थान मिलना चाहिए था। क्योकि इन प्रसगो मे से कुछ प्रसग स्वामी दयानन्द के सामाजिक विचारो के विकास की दिशा के मापक हैं। ऐसे प्रसगो मे पर्दा प्रथा, विवाह के नियम, धनाढ्यो के खुशामदी, बनावटी स्वभाव और वास्तविक छूत आदि ऐसे प्रसग हैं जिनसे यह पता चलता है कि आदर्शोन्मुखी स्वामी दयानन्द उग्र यथार्थवादी बनते चले गये। पर्दा प्रथा के सम्बन्ध मे आदर्शोन्मुखी विचारो को प्रकट करते हुए आदिम सत्यार्थ मे लिखा गया है "और जो स्त्रियो को अत्यन्त बन्धन मे रखते हैं, वह भी बडा भ्रष्ट काम है, क्योकि स्त्रियो को बडा दुख होता है। श्रेष्ठ पुरुषो का तो दर्शन भी नहीं होता और नीच पुरुषो से भ्रष्ट हो जाती हैं। देखना चाहिए कि परमेश्वर ने तो सब जीवो को स्वतन्त्र रचा है और उनको पुरुष लोग बिना अपराध से परतन्त्र अर्थात् बन्धन मे रखते हैं, वे बडा पाप करते है। सो इस बात को सज्जन लोग कभी न करे[65]।

विवाह के नियम विषय पर आते–आते आदर्शोन्मुखी विचार धारा मे शनै· शनै परिवर्तन के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। स्वामी दयानन्द लिखते हैं कि "पशुवत् विवाह का व्यवहार करना उचित नहीं, जैसे कि गाय वा छेरी (बकरी) को पकड कर दूसरे के हाथ मे दे देते हैं, वे लेके चले जाते हैं। इस प्रकार का व्यवहार मनुष्यो को कभी न करना चाहिए। दुष्ट पुरुष के साथ श्रेष्ठ कन्या अथवा दुष्ट कन्या के साथ श्रेष्ठ पुरुष का विवाह कभी न करना चाहिये, किन्तु श्रेष्ठ गुणवालो का परस्पर विवाह होना चाहिए। .... विवाह मे बहुत धन का नाश करना अनुचित ही है, क्योकि वह धन व्यर्थ ही जाता है। इससे बहुत राज्य नष्ट हो गए और वैश्य लोगो के भी विवाह मे धन के व्यय से दिवाला निकल जाता है। सब लोगो को मिथ्या धन का व्यय करना अनुचित है, इससे धन का नाश विवाह मे कभी न करना चाहिए। एक ही स्त्री से विवाह करना उचित है। बहुत स्त्री के साथ विवाह करना पुरुषो को उचित नहीं। स्त्री को भी बहुत विवाह करना उचित नहीं। क्योकि विवाह सन्तान के लिए होता है, सो एक स्त्री एक पुरुष को बहुत है। देखना चाहिये कि एक व्यभिचारिणी स्त्री अथवा वैश्या बहुत पुरुषो को वीर्य के नाश से निर्बल कर देती है। इससे एक पुरुष के लिये एक स्त्री क्या थोडी है? अर्थात बहुत है[66]।

इससे आगे इसी प्रसग मे हम स्वामी दयानन्द के वर्णन मे नैतिकता के नग्न यथार्थवाद के रूप को देखते है। वे लिखते है "आजकल आर्यावर्त में कई–एक राजा और धनाढ्य विवाहिता स्त्री को तो कैद की नॉइ बन्द करके रखते है और आप वेश्या और पर स्त्री के साथ गमन करते है, उसमे धन और शरीर का नाश करते है और उनकी विवाहिता स्त्रियॉ रोती और बडी दुखित रहती है। उन मूर्खों को कुछ भी लज्जा नहीं आती कि वह स्त्री तो मेरे साथ विवाहित है, इसको छोडकर मै पर स्त्री गमन करता हू सो यह मै न करूं – ऐसा विचार उन पुरुषो के मन मे कभी नहीं आता। अन्य स्त्री और वेश्या–गमन जो करते हैं सो तो बुरा काम करते हैं, परन्तु बालको से भी बुरा काम करते है, यह बडा आश्चर्य है कि स्त्री का काम पुरुषो से लेते है। जो लौडेबाजी करते है वे तो सुअर वा कौव्वे की नॉई है क्योकि जैसे सुअर या कौव्वे विष्ठा से बडी प्रीति रखते है और अरुचि कभी नहीं करते, वैसे ही वे पुरूष भी विष्ठा जिस मार्ग से निकलती है, उस मार्ग से बडी प्रीति रखते है। इससे इस प्रकार के जो मनुष्य है वे मूर्ख से बढकर हैं। वीर्य, जो सब बीजो से उत्तम है, उसको व्यर्थ नष्ट करते हैं और पाप भी कमाते है(67)।"

धनाढ्य लोगो के पास रहने वाले खुशामदियो और धनाढ्यो को आडे हाथ लेते हुए स्वामी जी आदिम सत्यार्थ प्रकाश मे लिखते है कि लोग बैगन के दास न होकर धनाढ्यो के दास होते है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए उन्होने एक राजा का दृष्टान्त इस प्रकार लिखा है–

"कोई राजा था। उसके पास पण्डित, बैरागी और नौकर, खुशामदी लोग बहुत से रहते थे। किसी दिन राजा की रसोई मे बैगन का शाक, मसाले डालने से, बहुत अच्छा बना। फिर जब राजा भोजन करने बैठा तो स्वादु होने के कारण उस शाक को अधिक खाया। राजा भोजन करके सभा मे आया जहॉ कि खुशामदी लोग बैठे थे। उनसे राजा ने कहा कि बैगन का शाक बहुत अच्छा होता है। तब वे खुशामदी लोग सुनकर बोले कि वाह वा! महाराज की नॉई कोई बुद्धिमान नहीं है। महाराज, आप देखिये कि जब बैगन नाम उत्तम है तब तो परमेश्वर ने उसके ऊपर मुकुट रख दिया है तथा मुकुट के चारो और कलगियॉ रख दी है। और बैगन का वर्ण श्रीकृष्ण के शरीर जैसा घनश्याम है, वैसा ही बनाया है। और उसका गूदा मक्खन की नॉई परमेश्वर ने बनाया है। बैगन का शाक उत्तम क्यो न बने? फिर जब शाक ने बादी की, रात भर नींद न आई और आठ–दस बार शौच गया जिससे राजा बडा क्लेशित हुआ। प्रात काल जब हुआ तब भीतर से राजा बाहर आया। वे खुशामदी लोग भी आये। जब राजा का मुख बिगडा देखा तब उन खुशामदी लोगो ने उससे भी अधिक मुख बिगाड लिया और सब राजा के पास जा के बैठे। राजा बोले कि बैंगन का शाक तो अच्छा होता है, परन्तु बादी करता है। तब ये (खुशामदी) बोले कि वाह वा! महाराज के तुल्य कोई बुद्धिमान नहीं है। एक ही दिन मे बैगन की परीक्षा कर ली। देखिए महाराज! जब बैगन भ्रष्ट है तब तो उसके ऊपर परमेश्वर ने खूटी गाड दी है, उस खूटी के चारो ओर कॉटे लगा दिये है। उस दुष्ट का वर्ण भी कोयले के तुल्य रक्खा है, तथा परमेश्वर ने उसका गूदा भी श्वेत कुष्ट की नॉई बना दिया है। तब उन खुशामदियो से राजा ने पूछा कि शाम को तुम लोगो ने मुकुट कलगी, घनश्याम और मक्खन के तुल्य बैगन के अवयव वर्णन किये, उसी बैगन के अवयवो को खूटी, कॉटे, कोयले और कुष्ट की नॉई बताया। हम किसको सत्य माने, कल वाली को या आज की कही को? खुशामदी बोले, वाह वा! महाराज किस प्रकार के विवेकी है कि विरोध को शीघ्र ही जान लिया। सुनिये महाराज! जिस बात से आप प्रसन्न होगे, उसी बात को हम लोग कहेगे, क्योकि हम लोग तो आपके नौकर है। सो आप जो झूठी या सच्ची बात कहेंगे, हम लोग उसी बात को पुष्ट करेगे। हम लोग उस बैंगन के नौकर नहीं है कि बैंगन की स्तुति करे। हमको बैंगन से क्या लेना–देना है। हमको आपकी प्रसन्नता से प्रसन्नता है। आप असत्य कहो तो वह भी हमको सत्य है(68)। यह उदाहरण व्यावहारिक उग्र यथार्थवाद का निदर्शन है।

इसी पुस्तक मे स्वामी दयानन्द ने छूआछूत के सम्बन्ध मे लिखते हुए कहा है "जो अपने ही देश मे रहते है और अन्य देश मे तथा वहाँ के निवासियो का स्पर्श करने मे छूत मानते हैं, वे विचार रहित पुरुष है। देखना चाहिये कि मुसलमान वा अग्रेज से छूने मे दोष मानते है और मुसलमानी वा अग्रेज के देश की स्त्री के साथ सग करते है और अपने घर मे रख लेते है, उनसे कुछ भेद नहीं रहता। यह बडे अन्धेर की बात है कि मुसलमान और अग्रेज जो भले आदमी है, उनसे तो छूत गिनना और वेश्यादिको मे छूत न मानना। यह केवल युक्ति शून्य बात है।

उपर्युक्त सामाजिक सुधार के विषयो मे लेखनी चलाने के बाद आदिम सत्यार्थ प्रकाश मे न्याय और पुलिस विभाग की भी समीक्षा की है। इन दोनो विभागो की समीक्षा करते रकते हुए वे लिखते है "जितने अमात्य विचारपति राजघर मे हो उनके ऊपर भी कुछ दण्ड–व्यवस्था रखनी चाहिए, जिससे वे भी सच–झूठ के विचार मे तत्पर होके न्याय ही करने लगे। देखना चाहिये कि एक (विचारपति) के यहाँ अर्जी (पत्र) दिया, उसके ऊपर विचारपति ने विचार करके अपनी बुद्धि और कानून की रीति से, एक की जीत की और दूसरे का पराजय। जिसका पराजय हुआ उसने ऊपर के हाकिम के पास फिर अपील की, सो जिसका प्रथम विजय हुआ था प्राय उसका दूसरे स्थान मे पराजय हो जाता है और जिसका पराजय हुआ था उसका विजय, फिर ऐसे ही जब तक दोनो का धन नहीं चूक जाता तब तक, विलायत लो लडते ही चले जाते है। रईस लोग प्राय हठ के मारे इससे बिगड जाते है। इससे क्या चाहिए कि विचार करने वाले के ऊपर भी दण्ड की व्यवस्था होवे, जिससे वे अत्यन्त विचार करके न्याय करे। ऐसा आलस्य न करे कि जैसा हमारी बुद्धि मे आया वैसा कर दिया, तुम्हारी इच्छा हो तो जाके अपील कर दो। ऐसी बातो से विचारपति भी आलस्य मे आ जाते है। और विचारपति की अत्यन्त परीक्षा करनी चाहिए कि अधर्म से डरता हो और विद्या– बुद्धि से युक्त हो, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोकादिक दोष जिसमे न हो और सबके अन्तर्यामी परमेश्वर से जिसको भय हो, और किसी से नहीं, तथा किसी प्रकार का पक्षपात कभी न करे – ऐसा विचारपति हो तब राजा की प्रजा को सुख हो सकता है, अन्यथा नहीं।

और पुलिस का महकमा है उसमे अत्यन्त भद्र पुरूषो को रखना चाहिये क्योकि प्रथम स्थान न्याय का यही है, इससे आगे प्राय वाद–विवाद के व्यवहार चलते है। इस स्थान मे पक्षपात से, जो अनर्थ लिखा–पढा जाएगा, सो आगे भी अन्यथा प्राय लिखा–पढा जाएगा और अन्यथा व्यवहार भी प्राय हो जाएगा। इससे पुलिस मे अत्यन्त श्रेष्ठ पुरुषो को रखना चाहिए। अथवा पहले जैसे मुहल्ले–मुहल्ले मे चौकीदार रहता था उससे बहुधा अन्याय नहीं होता था। जब से पुलिस का प्रबन्ध हुआ है तब से बहुधा अन्यथा व्यवहार ही सुनने मे आता है[60]।"

इस प्रकार उपर्युक्त सभी विषय स्वामी दयानन्द और उन द्वारा स्थापित आर्य समाज के सामाजिक सुधारो के प्रकाश स्तम्भ है। इन प्रकाश स्तम्भो को अशोक के स्तम्भ एव शिलालेखो की भॉति नीति निर्धारण आदेश वाक्य ही समझना चाहिये। यह मानकर ही स्वामी श्रद्धानन्द ने आदिम सत्यार्थ प्रकाश और सशोधित सत्यार्थ प्रकाश के सम्बन्ध मे कालूराम के विचारो का खण्डन करते हुए रचनात्मक समालोचना का आश्रय लेकर अपना निर्णय देते हुए कहा "हम लिख चुके है कि सशोधित सत्यार्थ प्रकाश एक दार्शनिक ग्रन्थ है। वह एक धर्म के आचार्य का पूरा मत दर्शाने वाला और स्मृति ग्रन्थ है। उसकी शैली उसके उद्देश्य के अनुसार ही चाहिए थी। आदिम सत्यार्थ प्रकाश एक निर्भय सशोधक के खुले विचारो का पुज है। उसके बहुत से गौण वाक्य तथा विचार स्मृति (धर्म ग्रन्थ) के अन्दर नहीं आ सकते थे। हमारी सम्मति मे उस आदिम ग्रन्थ को फिर से सशोधन करके छाप देना चाहिये। सशोधन से तात्पर्य हमारा यह है कि जो शब्द वा मुहावरे की अशुद्धियॉ श्री राजा जयकृष्ण दास जी के निवेदन न0 3 के अनुसार रह गई हैं उन्हे ठीक करके और जिस इबारत को सिद्ध किया

जा चुका है कि स्वामी दयानन्द की नहीं है, उसे कोष्ठ मे देकर, ग्रन्थ ज्यो का त्यों छाप दिया जाये[60]।" स्वामी श्रद्धानन्द ने 'कल्याण मार्ग का पथिक' नामक पुस्तक लिखकर हिन्दी साहित्य मे आत्मचरित लिखने की विधा को समृद्ध किया है। इस पुस्तक को हिन्दी साहित्य के सभी समीक्षको ने एक स्वर से उत्तम रचना माना है[61]। इस पुस्तक की रचना–प्रेरणा का सकेत देते हुए स्वामी जी ने प्रस्तावना मे लिखा है "किस प्रकार क्रमशः धार्मिक दासता से उत्तरोत्तर हिन्दू समाज को मुक्ति मिल गई और अपनी राजनैतिक दासता का भी उनको परिज्ञान हुआ, इसके समझने के लिये युगविधाता आचार्य दयानन्द के जीवन–चरित्र का पाठ गहरी दृष्टि से करने की आवश्यकता है, परन्तु उस परिवर्तन के बहुत से मर्म तभी मालूम हो सकते है जबकि ऋषि के अनुगामी जिन्होने स्वय उनका सत्सग किया है अपने अन्त करण के परिवर्तनो को खोलकर जनता के समाने रख दे[62]।" स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने अन्त.करण के परिवर्तनो को आचार्य दयानन्द की कृपा मानकर इस पुस्तक का समर्पण भी उन्हीं को किया है और लिखा है–

"ऋषिवर! तुम्हे भौतिक शरीर त्यागे 41 वर्ष हो चुके हैं, परन्तु तुम्हारी दिव्य मूर्ति मेरे हृदय–पटल पर अब तक ज्यो की त्यो अकित है। मेरे निर्बल हृदय के अतिरिक्त कौन मरणधर्मा मनुष्य जान सकता है कि कितनी बार गिरते–गिरते तुम्हारे स्मरण मात्र ने मेरी आत्मिक रक्षा की है। तुमने कितनी गिरी हुई आत्माओ की काया पलट दी, इसकी गणना कौन मनुष्य कर सकता है? परमात्मा के बिना, जिनकी पवित्र गोद मे तुम इस समय विचर रहे हो, कौन कह सकता है कि तुम्हारे उपदेशो से निकली हुई अग्नि ने ससार मे प्रचलित कितने पापो को दग्ध किया है? परन्तु अपने विषय मे मैं कह सकता हू कि तुम्हारे सत्सग ने मुझे जैसी गिरी हुई अवस्था से उठाकर सच्चा जीवन–लाभ करने के योग्य बनाया?

मै क्या था इसे इस कहानी मे मैंने छिपाया नहीं। मैं क्या बन गया और अब क्या हू, यह सब तुम्हारी कृपा का ही परिणाम है[63]।" इसी 'क्या' की कहानी का विस्तार ही 'कल्याण मार्ग का पथिक' पुस्तक का सब कुछ है।

उपर्युक्त रचना को हिन्दी साहित्य के कुछ लेखको ने निर्वैयक्तिक आत्मचरित न मानकर सुधारवादी सोद्दश्य रचना माना है[64]। परन्तु विष्णुद्वय की मान्यता के अनुसार "पश्चिम मे तो अपने को सहज रूप से मुक्त कर देने की परिपाटी है, लेकिन हमारे देश मे नैतिकता और अनैतिकता का द्वन्द्व सदा लेखक को घेरे रहता है। इस तरह के अनेक चित्र इस जीवनी मे देखने को मिल जाते हैं। वे केवल यह प्रमाणित नहीं करते कि इनके लेखन का उद्देश्य मात्र सुधारवाद है, बल्कि उनके अन्तर मे जो घमासान मचता था वह इस तरह के कलात्मक चित्रो का स्वय ही कारण बन जाता था। घोर अन्धकार मे जैसे वह सौन्दर्य की ज्योतिर्मयी रेखाओ को स्पष्ट देख लेते हैं। निर्वैयक्तिक होना क्या इससे कुछ अलग होता है[65]।

हमारे विचार से अनासक्त भाव से अपनी आत्म कथा को लिखना ही निर्वैयक्तिकता की कसौटी है। अनासक्ति की भावना के उदय होने पर अह का विस्फोट लेखक की स्याही मे गोता नहीं लगाता और जो कुछ लिखा जाता है, वह निर्वैयक्तिक ही होता है। अनासक्ति का यह अभिप्राय कदापि नहीं होता कि लेखक समाज के सन्दर्भो से कट जाए और वह ऐसी रचना का निर्माण करे जो शून्य मे खो जाए। अतः हमारी दृष्टि मे 'कल्याण मार्ग का पथिक' निर्वैयक्तिक रचना है। इसको स्वामी श्रद्धानन्द ने अनासक्ति की भावना से लिखा है। यह अनासक्ति भावना यहॉ तक पहुची दिखाई देती है कि उसको जानने के बाद कुछ नहीं रह जाता।

यह आत्मकथा 1892 की घटनाओ के बाद समाप्त हो जाती है। अतः इसे अधूरी आत्मकथा माना जाता है। आत्मकथा के अधूरेपन के कारणों पर प्रकाश डालते हुए स्वय लेखक ने लिखा है

"पजाब के समस्त आर्य समाजो की प्रतिनिधि सभा का वार्षिक चुनाव था, जिसमे मुझे उक्त सभा का प्रधान बनाया गया। उस समय से मेरा जीवन निजी नहीं रहा, सार्वजनिक जीवन हो गया और इसलिए अपनी जीवन–यात्रा की दूसरी मजिल को मैं यहॉ समाप्त करता हू(66)।" कथ्य की दृष्टि से स्वामी श्रद्धानन्द ने इस आत्मकथा को पहिली मजिल और दूसरी मजिल कह कर दो भागो मे बॉटा है। पहिली मजिल आर्य समाज मे प्रवेश से पूर्व की घटनाओ से सम्बन्धित हैं और दूसरी मजिल मे आर्य समाज मे प्रवेश की घटनाओ का वर्णन है। पहली मजिल की समाप्ति को हम तमस की समाप्ति का सकेत मान सकते हैं। इस सकेत को स्वय लेखक के शब्दो मे इस प्रकार कहा जा सकता है–

"मेरा गत सारा जीवन मानसिक दृष्टि के आगे घूमने लगा और तब से पूरा वैराग्य उत्पन्न हुआ, परन्तु पराने अभ्यास के अनुसार यह सूझी कि शेष बोतल समाप्त करके सदा के लिए उसके प्रलोभन से मुक्त हो जाऊँ। इस विचार से पूरा गिलास भरा ही था कि मानसिक दृष्टि से एक और पर्दा उठा और यति दयानन्द की विशाल मूर्ति कौपीन लगाये शरीर मे विभूति रमाये और हाथ मे मोटा लट्ठ लिये सामने आ खडी हुई। ऐसा जचा मानो महात्मा कह रहे हैं– क्या अब भी परमेश्वर पर तेरा विश्वास न होगा। ऑखे मलीं। मूर्ति कहीं सामने न थी, परन्तु हृदय कॉप गया। मेरा कमरा सडक की ओर था, गिलास उठाकर जो फैंका तो सामने की दीवार मे लगकर चूर–चूर हो गया। फिर बोतल उठाकर जोर से फैकी, वह भी दीवार मे टकरा कर टुकडे–टुकडे हो गई(67)।"

पुस्तक की दूसरी मजिल सत्त्व की ओर बढते कदमो की कहानी है। इसमे आर्य समाज के सम्पर्क से तमस का प्रभाव समाप्त होकर सत्त्व की प्राप्ति का निवारण है। इसीलिए स्वामी श्रद्धानन्द ने प्रथम मजिल को अन्धकार और प्रकाश का युद्ध और दूसरी मजिल को प्रकाश की क्रमश: विजय कहा है। इस प्रकार स्वामी जी वैयक्तिकत्ता से निर्वैयक्तिकता की ओर अग्रसर होते हैं।

कथ्य के उपरान्त हम स्वामी जी की शैली के सम्बन्ध मे भी विचार कर ले। सन् 1902 तक की स्वामी जी की रचनाओ के विषय मे अपनी टिप्पणी देते हुए जोर्डेन्स ने लिखा है कि प्राय स्वामी जी के लेख अपने समाचार पत्र 'सद्धर्म प्रचारक' के लिए ही होते थे। इन्हीं लेखो ने उनकी शैली को एक ढॉचा दिया। अपने चारो और फैले संसार के सम्बन्ध मे लिखते हुए उनकी शैली एक सम्पादक जैसी होती थी। इसके साथ ही उनकी शैली मे प्रचारक का रूप भी होता था जो कि अपने पाठको को प्रभावित कर सके। मुशी राम ने शैली के सम्बन्ध में तत्कालीन समाचार पत्रो के हथकण्डो को नहीं अपनाया था। उनके लेखन मे शोध और साहित्य का अभाव था(68)।

जोर्डेन्स की मान्यता मात्र समाचार पत्र की शैली के सम्बन्ध मे ही है। यदि उसने स्वामी श्रद्धानन्द की हिन्दी भाषा मे रचित हमारे द्वारा साहित्यिक योगदान हेतु उद्धृत पुस्तको का विशेष अध्ययन किया होता तो वे निश्चय से स्वामी जी की शैली के विषय मे अपनी मान्यता को बदल देते। 'कल्याण मार्ग के पथिक' नामक रचना मे शैली की दृष्टि से पुरुषो के बाह्य व्यक्तित्व के अकन मे स्वामी श्रद्धानन्द सिद्ध हस्त थे। बुद्धु भक्त के विषय मे लिखते हुए– वे कहते हैं "कुछ लम्बा–दुबला बदन, चमडे पर आबनूस का सा स्याह रोगन और पगडी श्वेत। क्या यह मूर्ति आकर्षक लगने वाली है? परन्तु ऑखो का तेज और लबो पर निरन्तर मुस्कराहट जले से जले दिल को भी शान्त कर देते हैं(69)।

चारो वेदो और बाल्मीकीय रामायण के अनुवादक क्विन्स कालेज बनारस के प्रिंसिपल ग्रिफिथ के बाहय व्यक्तित्व के निरुपण मे तो स्वामी जी ने ग्रिफिथ की टूटी टाग की तरह अपनी कलम तोड दी और लिखा–

"पॉच फीट से शायद एक–आध इच ही लम्बे हो, परन्तु थे नख–शिख से दुरूस्त। जैसे वामन आप थे, वैसा ही बौना भृत्य आपको मिला हुआ था। उसने भी साहेब बहादुर के अनुकरण मे गलमुच्छे

रखे हुए थे। ग्रिफिथ साहेब एक टाग से लगडे हो चुके थे। इसका कारण विचित्र था कवि ही तो ठहरे। टमटम इतनी ऊँची बनवाई कि जब एक सडक से दूसरी सडक की ओर घुमाने लगे तो गला तार मे फस गया और साहेब शेष जीवन पर के लिए लगडे हो गए। लगडी टॉग की एडी जरा ऊँची रखवाते और ऐसी सावधानी से चलते कि देखने वालो को टॉग का व्यग प्रतीत न होता[70]।"

बाह्य व्यक्तित्व के वर्णन की सिद्ध हस्तता का एक उदाहरण 'गाढी कम्पनी' (मित्र मण्डली) के सदस्यो के विषय मे इस प्रकार है– "सिह जी सावले और लम्बे थे, दीवान जी नाटे और गोरे। सिह जी दाढी लम्बी, काली, दीवान जी की चौगिर्द भूरी, सिह जी का मुख गम्भीर, दीवान जी का शरीर सुडौल, दृढ बडे हसमुख, धार्मिक और दिल्लगीबाज[71]।" इसी प्रकार हैड मास्टर मथुरा प्रसाद के बाहरी व्यक्तित्व की झाकी प्रस्तुत करते हुए स्वामी जी लिखते है–

"मथुरा प्रसाद मिश्र, जो अग्रेजी मे हस्ताक्षर करते एम0पी0एम0 लिखा करते थे, बनारस कालेज की विशेषताओ की जान थे। सर्व साधारण मे उनका नाम था मथुरा मास्टर। उनकी आकृति विचित्र थी। लम्बाई छह फीट से भी कुछ सिर निकाले हुए, रग सावले से भी एक–आध पानी चढा हुआ, शरीर के अजर–पजर गिन लो, सिर पर पण्डिताऊ पगडी, पैर मे सफेद पायताबे पर हिन्दोस्तानी जूते, चढी हुई धोती लम्बी छोडे और अगरखा के ऊपर बिना तह खोले दुपट्टा लटकाये, डग बढाते जाते देखकर किसे विश्वास आ सकता था कि डॉक्टर वैलेन्टाइन से प्रसिद्ध भाषाशास्त्री, अपूर्व विद्वान के अपूर्व शिष्य बनारस कालेजिएट स्कूल के हैड मास्टर जा रहे है[72]।"

स्वय अपने ही बाह्य व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए वे लिखते है "बनारस पहॅचते ही मैने अपने जीवन की सारी गति बदल डाली। बलिया मे तीन महीने के अन्दर ही मै भोजपुरी बोली और हुकूमत के झकोलो से मस्त होकर ठाठ–बाट से सिह–सरदारो की पोशाक पहनने लग गया था। स्कूल मे प्रवेश के पन्द्रह दिनो पीछे ही हुकूमत का सारा नशा हिरन हो गया और विद्वानो के विद्यार्थी जीवन की कहानियॉ पढ–पढ कर उनके अनुकरण की चेष्टा करने लगा। बाके दस्तारे का स्थान बनारसी दुपल्लिया टोपी ने लिया, शानदार लबादे के स्थान मे अगरखा पहिर लिया, दुपट्टा बॉकेपन का तिर्छापन छोडकर गले का बना, चुस्त चूडीदार पाजामे का स्थान सीधे–सादे घुटन्ने ने लिया और चमकते हुए सल्मे–सितारो की जूती को ठोकर लगाकर लक्कड तोड बूट पैरो का श्रृगार बना[73]।" इसके अतिरिक्त वकील और मुशी रूपकालकार मानसिक स्थिति के चित्रण के लिए पर्याप्त है।

परिस्थितियो के छायाकन मे भी स्वामी जी अचूक लेखक थे। उनका वर्णन चित्रो की भॉति स्पष्ट और परिस्थितियो की सही स्थिति का मुह बोलता मानचित्र प्रस्तुत करता है। परिस्थितियो के चित्रण मे स्वामी जी ने विभिन्न दृश्यो को अपनी लेखनी का विषय बनाया है। अपने शराबी मामा की शराबी स्थिति का वर्णन करते हुए वे लिखते है–

"सायकाल का समय था। मेरे छोटे मामू जो पुलिस मे ही सवार थे, होली का मेला देखकर शहर से लौटे आ रहे थे। घोडी अटखेलियॉ करती चली आ रही थी। मेरी दृष्टि उन पर पडी तो विचित्र दशा देखी। पगडी गले मे लटक रही थी, शरीर एक ओर झुक रहा था। गिरने को ही थे कि एक भृत्य ने उन्हे उतार लिया। दो आदमी आश्रय देते हुए पिताजी की कोठी के ऑगन मे ले आए और चारपाई पर लिटा दिया। अन्य पुरुषो के बाहर जाते ही माता जी कमरे मे से निकली। भाई को विचित्र दशा मे बेहोश पडे देखा, चिकन की कुडती और तनजेब का कुडता पारा–पारा है, पगडी धूल मे लिपटी हुई है। मिट्टी और होली के लाल रग के मेल ने विचित्र दृश्य बना रक्खा है। प्रात जो मुख कमल की तरह खिला हुआ था, वह अब कुम्हला ही न गया डरावना प्रतीत होता है। हाथ–पैर चारपाई पर पटके जा रहे है। पान की राल मुह से निकल कर दाढी पर बह रही है और सारे शरीर से दुर्गन्ध फूट–फूट कर निकल रही है[74]।"

सुकेत मे 17 दिन का वर्णन तो प्राय प्राकृतिक छटाओ के मनमोहक दृश्यो से युक्त हैं। सिकन्दरे की चढाई की परिस्थितियो का वर्णन करते हुए स्वामी ने एक अजनबी की मानसिकता के दृश्य को उकेरते हुए लिखा है–

"यह सिकन्दरे की चढाई कहाती है। मेरा सामान कुलियो की पीठ पर चला। थोडी देर ऊपर चढते ही सारे पहाड श्वेत हिम से ढके हुए दिखाईदेने लगे। ज्यो–ज्यो ऊपर चढता गया त्यो–त्यो दृश्य सुन्दर होता गया। यहाँ तक कि ऐसी ऊँचाई पर पहुचा जहा हिम गिर रहा था। गरम कोट आदि पहन कर ऊपर से मैने धुस्सा ओढ लिया। मैने समझा था कि बर्फ की वर्षा के समय सर्दी ज्यादा होगी, लेकिन हालात दूसरी ही नजर आई। धुस्सा झाड कर बर्फ को नीचे फैक दिया और हांडी की ओर हाथ बढाया क्योकि भूख बहुत चमक उठी थी। बर्फ गिरने से कैसी भूख लगती है, यह बिना अनुभव के पता नहीं लग सकता। कहारो के पॉव हिम पर पडकर उसकी स्वच्छता को बिगडते देख मै सहन न कर सका। यद्यपि मेरे पैर पडने से भी हिम की स्वच्छ–साफ चादर मैली होती थी परन्तु वह मेरी दृष्टि से पीछे रह जाती थी[75]।"

उपर्युक्त उद्धरणो से यह स्पष्ट पता चलता है कि 'कल्याण मार्ग के पथिक की' शैली इति वृत्तात्मक न होकर ध्यान आकर्षित करने वाली रस वृत्तात्मक शैली है। इसी शैली को सन्दर्भित करते हुए स्वामी जी ने प्रस्तावना मे लिखा है 'कुछ स्थलो मे घटनाओ का वर्णन इस प्रकार हुआ है कि शायद उनको कल्पनात्मक उपन्यास समझा जाय, परन्तु यह नही भूलना चाहिए कि सच्ची घटनाए कभी–कभी उपन्यास को भी मात कर देती है[76]।"

साहित्यिक दृष्टि से स्वामी जी रचित 'बन्दी घर के विचित्र अनुभव' भी अपना विशेष स्थान रखता है। यह पुस्तक एक प्रकार से स्वामी जी की जीवनी का ही एक भाग है। अत 'कल्याण मार्ग का पथिक' की कोटि मे यह आती है। इस पुस्तक मे स्वामी ने विवरणात्मक और वर्णनात्मक दोनो ही शैलियो का आश्रय लिया है। इस पुस्तक मे भी परिस्थितियो को पकडकर विशेष दृश्यो का जीवन्त रूप प्रस्तुत किया है। इस प्रकार के दृश्यो मे 'कारण्टीन गृह' का वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जाता है–

"जिस गृह की निचली कोठरी मे मैंने रात काटी, उसका कारण्टीन है। सत्रह पिंजरेनुमा कोठरिया नीचे और इतनी ही ऊपर है। उससे आठ–दस कदम की दूरी पर जेल की पिछली बडी दीवार है। कारण्टीन के ठीक मध्य, इमारत और दीवार के ठीक बीचो–बीच पाखाना है। पाच बजे खुलने की घटी बजी फिर पौने छ बजे रोटी बॉटने की। पाखाने मे केवल छ आदमियो के लिए पीठ से पीठ जुडी हुई, बैठने की जगह, ईटो की खुड्डी भी नदारद और पर्दा ऐसा, जैसा भग पीने वाले पुत्र ने पिता की ऑख बचाने के लिए तिनके का कर लिया था। इस पाखाने मे 35 कारण्टीन के और 52 छौलदारियो वाले कैदियो को निवृत्त होना होता था। फिर दो तीन लम्बरदारो और उतने ही चपरासियो का भी इसी पर निर्वाह था। नहाने का तो उस समय नाम लेना ही पाप। घटी बजी और अपना–अपना लोहे का दो–ढाई आने मूल्यवाला

(दरोगा जी ने यही मूल्य बतलाया था) बाटा हाथ मे लिए कैदी पक्ति मे उकडू बैठने लग गए। कोई भाई अभी पाखाने मे बैठा ही है कि एक पठान लम्बरदार ने पकडकर उसे गर्दनिया दी। वह गरीब आबदस्त लेकर ही पक्ति मे बिना बाटे के बैठ गया और उस अध कच्ची जली हुई रोटी पर ही दाल डलवाकर खाने लगा। यदि उस समय इस उत्तम भोजन को खाना शुरू न करे तो दिन भर भूखा रहे और घेलुए (पजाबी रूगे) मे उसे शायद पाच–सात दिन के लिए डडा–बेडी भुगतनी पडे[77]।

सी क्लास के कैदियो की उपर्युक्त दयनीय और दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का वर्णन करने के पश्चात् स्वामी जी ने लिखा 'जेल मैनुअल मात्र दिखावा है।"

आत्म कथा मे अनासक्त रहकर अपने को खोलना पडता है परन्तु जीवन चरित्र मे दूसरे के व्यक्तित्व को खोलने का प्रयास होता है। अत आत्मचरित की तुलना मे जीवन चरित्र लिखना अधिक कठिन है। स्वामी जी का मान्यता के अनुसार जीवन चरित्र मे लेखक अपने विचारो और क्रम के अनुसार घटनाओ को अपनी भाषा मे लिखकर, अपने निष्कर्ष निकाला करता है। अपनी इसी मान्यता की छाया मे स्वामी श्रद्धानन्द ने आर्य मुसाफिर प0 लेखराम एव प0 आत्माराम अमृतसरी द्वारा लिखित 'महर्षि दयानन्द के जीवन चरित्र' (उर्दू) को स्वरुप की दृष्टि से सही नहीं माना है और लिखा है कि "उसे न तो" बायोग्राफी (व्यक्तिगत जीवनवृत्त) ही कह सकते हैं न ही इसे केवल आर्य समाज का इतिहास ही कहा जा सकता है[78]। स्वामी जी ने 'सच्चे जीवन चरित्र के स्वरूप' को पुस्तक मे किस प्रकार प्रतिष्ठित किया जाये इस विषय पर अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है–

"जीवन चरित्र लिखने को भी योरुप (यूरोप) की अन्वेषक जातियो ने कहीं अब समझा है। पूर्वकाल मे योरुप मे भी जीवन चरित्र का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत मनोरजन समझा जाता था और इसलिए तिथियो और साधारण घटनाओ की ऐसे ग्रन्थो मे भरमार होती थी, परन्तु उन्नति पथगामी योरुप ने अब निश्चय कर लिया है कि महान पुरुषो के जीवन–चरित्र केवल उन बडी–बडी घटनाओ का सग्रह है जिन्होने कि मनुष्य–समाज के आचरणो मे कोई विशेष प्रकट क्रान्ति उत्पन्न कर दी हो[79]।"

उपर्युक्त विचारो को ध्यान मे रखते हुए स्वामी श्रद्धानन्द ने आर्य मुसाफिर प0 लेखराम का जीवन चरित्र लिखा। प0 लेखराम उन सौभाग्यशाली व्यक्तियो मे से थे, जिन्हे स्वामी दयानन्द के समीप रहने का सौभाग्य मिला था। प0 लेखराम ने अपने अनवरत प्रचार कार्य से आर्य समाज को जीवन्त शक्ति का प्रतीक बना दिया था। अतः उनका जीवन चरित्र मनोरजनार्थ न होकर आर्य समाज को प्रचार और लेखन की दिशा मे क्रान्तिकारी पग उठाने का सन्देश देने वाला था।

स्वामी श्रद्धानन्द रचित 'आर्य पथिक प0 लेखराम' नामक पुस्तक की भाषा चुस्त और दुरुस्त होने के साथ उर्दू शैली के बॉकपन को लिए हुए है। लेख राम के बचपन के सम्बन्ध मे लिखते हुए ये कहते हैं "इस समय से पहले ही लेखराम को कुछ तुकबन्दी का भी शौक हो चला था और फारसी तथा उर्दू के अतिरिक्त पजाबी मे भी तबीयत लडाया करते थे[80]। यहाँ 'तबीयत लडाना' एक खास पैनेपन को लिए हुए है। इसी प्रकार पुलिस नौकरी को छोडने के सन्दर्भ मे लिखा है कि सवत् 1937 मे फिर से वैराग्य की लहर उठी जिसने पुलिस की हुकूमत और सासारिक ऐश्वर्य का नशा हिरन कर दिया। यहाँ भी 'हिरन होना' उर्दू का मुहावरा है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि स्वामी श्रद्धानन्द की लेखनी से निकली अन्तिम साहित्यिक कृति हिन्दी भाषा की शैली से रहित है। लेखराम द्वारा स्वामी दयानन्द के जीवन चरित्र सम्बन्धी कार्य करने के प्रसग मे हमे हिन्दीभाषा की शैली का उदाहरण इस प्रकार मिलता है–

"ऋषि दयानन्द का अन्त्येष्टि सस्कार हुये साढे चार वर्ष व्यतीत हो चुके थे। विभिन्न आर्य जनता की ओर से भी ऋषि के जीवन चरित्र की मॉग पर मॉग आ रही थी। टका साधने वालो ने साधारण लेख छापकर ऋषि के जीवन को सदिग्ध बनाना भी आरम्भ कर दिया था। सासारिक विभूतियो पर लात मारने वाले योगी को सिद्धियो का साधक बताना और मनुष्य पूजा की जड पर कुल्हाडी रखने वाले ईश्वर भक्त को पूज्य अवतार बतलाना आरम्भ हो गया था, और आर्य समाजियो के कानो पर जूँ तक नहीं रेंगती थी। ऐसे समय मे मुलतान आर्य समाज ने अपने 12 एप्रिल, सन् 1888 के अधिवेशन मे सम्मति दी कि पण्डित लेखराम को स्वामी दयानन्द के जीवन–सम्बन्धी वृत्तान्त इकट्ठा करने के लिए नियत किया जाय[81]।"

इस प्रकार यह पुस्तक मिश्रित शैली मे लिखी गई है। मिश्रित शैली अपनाने मे स्वामी श्रद्धानन्द की भावना यह थी कि प0 लेखराम उर्दू की कलम के माहिर थे, अत उर्दू शैली के माध्यम के उनके व्यक्तित्व को परखने मे आत्मीयता दिखाई पडती थी, परन्तु वे आर्य समाज के लिए समर्पित थे, अतः उनकी जीवन कथा को हिन्दी शैली मे प्रस्तुत करना भी उनके साथ न्याय था। जीवन–चरित्र लेखन मे स्वामी जी ने लेखक के दायित्व को समझते हुए निष्पक्ष होकर लेखराम के चरित्र के गुण औरदोषो की विवेचना की है। इसी कारण यह जीवन चरित्र पगु और बौना न रहकर एक आदर्श जीवन चरित्र बन गया है।

हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में भी स्वामी श्रद्धानन्द का अमिट योगदान है। पत्रकारिता के क्षेत्र मे स्वामी जी का पहला कदम उर्दू भाषा मे 'सद्धर्म प्रचारक' नामक साप्ताहिक समाचार पत्र की स्थापना (19 फरवरी, 1889) से उठा। यह पत्र धार्मिक क्षेत्र मे आर्य समाज के प्रचार और प्रसार का पोषक था, तो राजनीति क्षेत्र मे यह तिलक युग के विचारो का अनुयायी था। आर्य समाज के प्रचार के कारण आपत्तिजनक लेख लिखने के कारण इस समाचार पत्र पर पहला मानहानि का मुकदमा 1901 ई0 मे चला। उन दिनो आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब का अपना कोई समाचार पत्र नहीं था, अत यही पत्र सभा का मुख पत्र भी माना जाता था। पाठको की दृष्टि से इसकी ग्राहक सख्या भी उत्साहवर्धक थी। पजाब प्रतिनिधि सभा के आन्तरिक कलह के कारण स्वामी श्रद्धानन्द पर अनेक आरोप लगाये गए। इन आरोपो का उत्तर स्वामी जी ने 1906 ई0 मे 'दुखी दिल की पुरदर्द दास्ताँ' नामक पुस्तक लिखकर दिया। स्वामी जी के मन मे यह आशका भी उत्पन्न हो गई थी कि उनके निजी समाचार पत्र 'सद्धर्म प्रचारक' की भाषा के सम्बन्ध मे भी आपत्ति उठाई जा सकती है। स्वामी जी की यह आशका सत्य सिद्ध हुई। एक दिन किसी ने व्यग्य करते हुए कहा "स्वामी दयानन्द के अनुयायी होकर पत्र उर्दू मे निकालते हो"। व्यग्य मन मे कचोट कर गया और 1 मार्च, 1907 से 'सद्धर्म प्रचारक' हिन्दी मे प्रकाशित होने लगा। हिन्दी मे प्रकाशित ग्राहक संख्या घटी और स्वामी जी को आर्थिक हानि उठानी पडी। इस आर्थिक हानि की भरपाई इस सन्तोष के कारण हो गई कि पत्र के हिन्दी मे निकलने पर पुराने पाठको ने हिन्दी भाषा सीखनी आरम्भ कर दी। पजाब के हिन्दी साहित्य सेवी लेखक सन्तराम बी0ए0 ने अपने सस्मरण मे लिखा है–

"स्वामी श्रद्धानन्द जी के प्रति मेरे मन मे अगाध श्रद्धा है। उन्होने मेरे जीवन मे बहुत बडे ज्योति–स्तम्भ का कार्य किया है। उनकी कृपा से ही मैंने हिन्दी लिखना–पढना सीखा। मैं उनके उर्दू पत्र 'सद्धर्म प्रचारक' को बडे प्रेम से पढा करता था। स्वामी जी ने जब उसे उर्दू मे बन्द कर हिन्दी मे निकालना आरम्भ किया तो मुझे भी प्रेम से विवश होकर उसे पढने के लिए हिन्दी सीखनी पडी। मेरी ही तरह अन्य बहुत से भाइयो ने 'सद्धर्म प्रचारक' पढने के लिए हिन्दी सीखी थी। मैं मानता हू कि यह उनका मुझ पर एक बहुत बडा उपकार था[82]।"

सन् 1911 ई0 मे यह पत्र दैनिक रूप मे प्रकाशित होने लगा। 'सद्धर्म प्रचारक' गुरुकुल से ही निकलता था, अत स्वाभाविक था कि वहा के छात्रो पर पत्रकारिता का प्रभाव पडे बिना नहीं रह सकता था। ब्रह्मचारियो मे इस कला के प्रति इतना उत्साह उत्पन्न हो गया था कि गुरुकुल के वार्षिक उत्सवो पर हस्त लिखित पत्रिकाएँ निकालने लगे थे। हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र मे स्वामी श्रद्धानन्द की दूसरी देन 'श्रद्धा' नामक पत्रिका है। इस पत्रिका की लिपि और भाषा के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट करते हुए स्वामी जी ने लिखा था "मैं देवनागरी लिपि को ससार की सब लिपियो का स्रोत और मनुष्य के लिए स्वाभाविक समझता हूँ। इसलिए इस 'श्रद्धा' के साप्ताहिक दूत को उसी लिपि के द्वारा यात्रा पर भेजा करुँगा[83]।"

इस प्रकार सक्षिप्त सर्वेक्षण के आधार पर कहा जा सकता है कि स्वामी श्रद्धानन्द ने अपनी रचनाओ के माध्यम से हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि की है। स्वामी जी के समस्त कार्य कलापो के आकलन मे शायद 'साहित्य साधना वाला प्रसग स्वामी जी के जीवन चरित्र के रजत पट पर भद्दी थेगली लगाने के समान प्रतीत हो। लेकिन हमारी मान्यता है कि यदि गुरुकुल कागडी स्वामी श्रद्धानन्द की विजय का 'विश्वकप' है तो उनकी रचनाए वे 'स्वर्ण पदक' है जो उन्होने भारतीय भूमि पर जीते हैं।

भारत का भावी सुख हिन्दू-मुस्लिम एकता में है

स्वामी श्रद्धानन्द के हिन्दू–मुस्लिम एकता सम्बन्धी विचारो को अन्तिम रूप मे जानने से पूर्व यह आवश्यक है कि उनकी धार्मिक पृष्ठभूमि का सिहावलोकन कर लिया जाये। स्वामी ने 'कल्याण मार्ग का पथिक' नामक अपनी आत्मकथा मे हिन्दू–मुस्लिम एकता के प्रतिपादन मे एक स्थान पर कुछ लिखा है। शेष पुस्तक मे सनातनी पण्डितो के साथ शास्त्रार्थ, हिन्दुओ मे अछूत समझी जाने वाली जातियो की शुद्धि के विषय मे ही अधिक वर्णन है। परन्तु हमे उनकी रचना 'आर्य पथिक पण्डित लेखराम' मे आर्य समाजियो का मुसलमानो से टकराव सर्वत्र बिखरा दिखाई पडता है। इन्ही विचारो के सूत्रो को पकडकर यह कहा जा सकता है कि स्वामी श्रद्धानन्द मुहम्मदी धर्म को वैदिक धर्म (आर्य समाज) के प्रचार और प्रसार में सबसे बडा बाधक मानते थे। सन् 1982 से 1986 तक स्वामी जी आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के प्रधान रहे और मुहम्मदी मत के खण्डन का कार्य उन्ही की देख–रेख मे होता रहा। सन् 1896 ई0 मे स्वय स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने भाषण मे मुसलमानो की बुत और पीर परस्ती की आलोचना की थी। इस व्याख्यान की घटना का वर्णन करते हुए वे लिखते है–

"वजीराबाद (पाकिस्तान) के इस वार्षिक उत्सव मे मै सम्मिलित था। पहले दिन पण्डित लेखराम जी का व्याख्यान प्रात काल के समय विभाग मे छपा हुआ था, परन्तु राजा सर अताउल्ला और उसके परिवार के सम्मिलित होने के कारण उस समय मुझे खडा किया गया। न जाने मुसलमान भाई पण्डित लेखराम से क्या आशा रखते थे कि मेरे व्याख्यान को सुनकर विस्मित हो गए। उनकी समझ मे न आया कि आर्य मुसाफिर क्यो ऐसा जन–प्रिय तथा शान्तिवर्धक व्याख्यान देता है। मेरा विषय ईश्वर प्राप्ति था और मैने उसमे मुहम्मदी बुत और पीर परस्ती की खबर ली थी, श्रोतागण को निश्चय हो गया कि पण्डित लेखराम ही बोल रहे है[64]।"

इस प्रकार मुसलमानो की दृष्टि मे स्वामी श्रद्धानन्द एक कट्टर हिन्दू और मुहम्मदी धर्म के विरोधी के रूप मे उभर कर आए। इसके साथ ही राजनीति के क्षेत्र मे स्वामी जी ने प्रत्यक्षत. देख लिया था कि काग्रेस पार्टी के नेता हिन्दू हितो की उपेक्षा करके मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति अपना रहे हैं। इस तुष्टीकरण की नीति से मुसलमानो का हृदय परिवर्तन तो नहीं हुआ, अपितु उनकी माँगे ही बढती रही। यह माँगे यहाँ तक भी बढी कि हिन्दी के स्थान पर उर्दू को राष्ट्रभाषा के रूप मे यदि काग्रेस मान ले तो मुसलमान उसका साथ देने के लिए तैयार है।

राजनैतिक दृष्टि से हिन्दू–मुस्लिम विवाद को कम करने के लिए 1916 ई0 मे हुए काग्रेस अधिवेशन मे साम्प्रदायिक आधार पर प्रतिनिधित्व देने के प्रस्ताव मे सकारात्मक भागीदार होने के कारण स्वामी जी ने हिन्दू मुस्लिम एकता की ओर प्रथम बार हाथ बढाया।

शुद्धि का कार्य हिन्दू–मुस्लिम एकता मे बाधक है, यह विचार राजनैतिक क्षेत्र मे जोर पकडता जा रहा था। सन् 1924 के मध्य मे स्वामी श्रद्धानन्द के मन और मस्तिष्क मे मुसलमानो द्वारा चलाये जा रहे आर्य समाज और स्वय स्वामी के विरुद्ध प्रचार से हलचल मच गई। अत उन्होने 'हिन्दू–मुस्लिम

एकता की कहानी' नामक छोटी सी पुस्तक लिखी। इस पुस्तक मे यह दर्शाया गया कि किस प्रकार सर सैयद अहमद खा के प्रयासों से भारतीय शासक अग्रेज, हिन्दुओ के विरुद्ध हुए। किस प्रकार सर सैयद अहमद ने हिन्दी के विरुद्ध उर्दू को स्थापित करने का प्रयास किया। किस प्रकार उसने मुसलमानो को काग्रेस से काट कर मुस्लिम लीग की स्थापना (1905) मे सहयोग दिया। प्रथम विश्व युद्ध (1914–18) की समाप्ति पर रौलट एक्ट और खिलाफत आन्दोलन ने हिन्दू–मुसलमानो को परस्पर सहयोग करने के लिए अवसर प्रदान किया। लेकिन मोपला काण्ड ने इस एकता के प्रयास को गुड गोबर कर दिया।

स्वामी श्रद्धानन्द की हिन्दू–मुस्लिम एकता की विचारधारा को लेकर हिन्दू तथा मुसलमानो मे परस्पर विरोधी वक्तव्यो का अम्बार लगा हुआ है। हिन्दू (आर्य समाजी) स्वामी जी को एकता के सूत्रधार मानते है। डा0 धर्मपाल (वर्तमान कुलपति गुरूकुल कागडी विश्वविद्यालय) ने तो 'एकता के सूत्रधार' शीर्षक से स्वामी श्रद्धानन्द का जीवन चरित्र भी लिखा है। वे तो इस सीमा तक लिख गए है कि "स्वामी जी एकता के सूत्रो के अन्तर्गत ही अछूतोद्धार को मानते थे"[95]। ईस्वी सन् 1923 मे बकरीद के समय हिन्दुओ को शान्त रहने के लिए जो अपील स्वामी श्रद्धानन्द ने की थी, उसका उल्लेख करते हुए गुरुकुल के स्नातक सत्यदेव लिखते है कि स्वामी जी ने अपने सन्देश मे कहा–

'दिल्ली के हिन्दुओ! तुम्हारा धर्म प्रेम और उदारता की शिक्षा देता है। बकरीद पर इस बात की परीक्षा है कि तुम कहाँ तक धर्म को समझते हो। छोटी–मोटी बातो पर अडना कायरता है। तुम्हे चाहिये कि गम्भीर रहो और मुसलमान भाइयो की सदबुद्धि के लिये परमात्मा से प्रार्थना करो[96]।"

इसी प्रकार का एक सन्देश 1925 ई0 के ईद के त्यौहार के अवसर पर मुसलमान–हिन्दु दोनो को देते हुए स्वामी जी ने कहा था–

"परमात्मा सारे ससार का पिता है। यदि तुम्हें इस पर विश्वास है तो प्राणीमात्र को मित्र की दृष्टि से देखना चाहिये और मनुष्य मात्र को तो भाई समझना चाहिये। क्या इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आज से तीन दिनो तक अपने अमन से दोगे। आज मुसलमान स्त्री–पुरूष, बाल–वृद्ध, युवा नये कपडे पहिन कर एक अद्वितीय ब्रह्म के आगे अपनी श्रद्धा की भेट धरने जा रहे है। क्या वह श्रद्धा उनके अन्दर घर कर गई है? यदि ऐसा होगा तो वे अपने त्यौहार पर हिन्दुओ का दिल दुखाने की कोई बात नहीं करेगे। मेरे हिन्दू भाइयो! आज तुम्हे भी भ्रातृ–भाव का स्पष्ट प्रमाण देना है। परमात्मा की उपासना मे अपने मुसलमान भाइयो को निमग्न देख कर प्रसन्नता से उन्हे आशीर्वाद दो। यदि तुम्हारी आँखो के आगे से कुर्बानी के लिये गोमाता जाती हो तो क्रोध और द्वेष का लेश भी अपने अन्दर न आने दो, प्रत्युत परमात्मा से हार्दिक प्रार्थना करो कि वह परमपिता उनकी बुद्धियो को प्रेरणा करे, जिससे स्वय गोमाता की रक्षा का भाव उनमे उत्पन्न हो। तुम्हारे भाई भूल से गोवध को स्वर्ग का साधन समझ रहे हैं। उन पर क्रुद्ध होकर और उनसे घृणा दिखाकर उन्हे अधिकतर गोघात की ओर प्रवृत्त करके दूने पाप के भागी न बनो। जितना तुम सहन करोगे और मुसलमान भाइयो को प्रेम का मार्ग दिखाओगे, उतना ही भगवान तुम पर कृपा करेगे[97]।"

उपर्युक्त सन्देश के सन्दर्भ मे लेखक ने अपना निर्णय देते हुए कहा "जिस हृदय से ऐसे शब्द निकल सकते थे, उसमे मुसलमानो के प्रति घृणा और द्वेष कहाँ रह सकता है।

स्वामी श्रद्धानन्द कल्याण मार्ग का पथिक (1924) मे क्वीन्स कालेज बनारस के फारसी–अरबी के अध्यापक का स्मरण करते हुए हिन्दू मुस्लिम एकता के सम्बन्ध मे लिखते हैं कि–

"अपने मौलवी साहेब के पैतृक प्रेम का जब स्मरण आता तो अब भी दिल भर आता है और हिन्दू–मुसलमानो के झगडो को देखकर बडा कष्ट होता है। जिस पवित्र भूमि ने दोनो को जन्म दिया, जिसके अन्न–जल से उन्हे पाला, जिस गगा के शीतल जल ने शान्ति देने मे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई मे कोई भेद नहीं किया, उस मातृभूमि के पुत्र आपस में लड–झगड कर माता को सताते हैं, यह कैसे कष्ट की बात है[88]।"

गुरूकुल कागडी के भूतपूर्व कुलपति और स्वामी जी के पुत्र इन्द्र ने सन् 1926 ई0 के गोहाटी–काग्रेस अधिवेशन के सन्दर्भ मे लिखते हुए कहा है कि काग्रेस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष का सन्देश भेजने के सबध मे निजी पत्र आते ही उन्होने अपना सन्देश भेजते हुए कहा "भारत का भावी सुख हिन्दू मुस्लिम एकता पर आश्रित है।" इस सन्देश के विषय मे वे लिखते हैं– "स्नातक होने के पश्चात् लगभग 16 वर्ष तक पिता जी के निरन्तर समीप रहने पर मुझे जो अनुभव हुआ उसके आधार पर कह सकता हू कि उपर्युक्त सन्देश पिता जी की अन्तरात्मा का सन्देश था। वे हिन्दू–मुस्लिम एकता के कट्टर पक्षपाती थे, परन्तु साथ ही उनका यह भी विश्वास था कि वह एकता तब तक जन्म नहीं ले सकती, जब तक हिन्दू जाति के निर्बल हिन्दू सबल मुसलमानो के मित्र नहीं बन सकेगे। इस कारण वे हिन्दुओ को मुसलमानो के समान मित्र बनाने के पक्षपाती थे। उनके हिन्दू सगठन का अभिप्राय मुस्लिम विरोधी नहीं था, अपितु जाति के आन्तरिक दोषो को दूर करना था[89]।"

अब तक हमने ऐसे विचारो को उपस्थित किया है जो स्वामी को हिन्दू–मुस्लिम एकता का प्रतिपादक बताते हैं लेकिन ऐसे विचारो की भी कमी नहीं जो स्वामी जी को एकता की समस्या को सुलझाने मे सबसे बडा बाधक मानते हैं। इस प्रकार के विचार रखने वालो मे महात्मा गाधी के अतिरिक्त प्रत्येक काग्रेसी और गैर काग्रेसी मुसलमान हैं। वे उन्हे पक्का हिन्दू पक्षपाती मानते थे। गाधी जी के विचार अछूतोद्धार के प्रसग मे पिछले पृष्ठो मे दिये जा चुके है। दिल्ली की एकता काफ्रेस मे मुसलमान प्रतिनिधियो की प्रतिक्रिया भी लिखी जा चुकी है। इस सम्बन्ध मे डा0 गगाराम, भूतपूर्व रजिस्ट्रार एव अध्यक्ष अग्रेजी विभाग गुरूकुल कागडी ने एक लेख मे लिखा है कि 1923 के साम्प्रदायिक दगो के कारणो की जाच के लिये काग्रेस ने एक समिति बनाई थी। समिति के अध्यक्ष प0 मोतीलाल नेहरू बनाये गये थे और उसके सदस्यो मे से एक सदस्य मौलाना अब्दुल कलाम आजाद थे। इस समिति ने रिपोर्ट दी कि हिन्दू–मुसलमानो के दगे के कारण है– स्वामी श्रद्धानन्द[90]।

'हिन्दू मुस्लिम एकता' के प्रश्न मे स्वामी श्रद्धानन्द की भागीदारी रही इस सम्बन्ध मे अपना निष्कर्ष देते हुए जोर्डेन्स लिखते हैं कि स्वामी श्रद्धानन्द ने मुसलमानो के विरूद्ध जो कुछ लिखा प्राय. वह मुसलमानो द्वारा हिन्दुत्व पर किये गये आक्रमणो के प्रत्युत्तर मे था। स्वामी जी के प्रत्युत्तरो से साम्प्रदायिक तनाव बढा, जबकि स्वामी जी की भावना उसको बढाने की नहीं थी। फिर क्यो ऐसा समझा गया कि स्वामी जी साम्प्रदायिक तनाव के कारण हैं ? इसका समाधान करते हुए वे लिखते है कि स्वामी श्रद्धानन्द इस बात पर ध्यान नहीं देते थे कि उनके शब्दो का जनता पर क्या प्रभाव पडेगा? जब वे किसी विचार की सत्यता के विषय मे सुनिश्चित हो जाते थे, तो स्पष्ट रूप से उसे कह डालते थे[91]।"

हमारी मान्यता के अनुसार स्वामी श्रद्धानन्द का हिन्दू–मुस्लिम एकता का प्रयास एक पक्षीय था। दूसरे पक्ष वालो (मुसलमानों) ने कभी भी पुरजोशी के साथ स्वामी जी की ओर अपना हाथ नहीं बढाया। यदि कभी हाथ बढाया भी तो परिस्थितियो के वशीभूत होकर। परिस्थितिया नदारद तो एकता का हाथ भी नदारद। इसके अतिरिक्त काग्रेस ने भी हिन्दू–मुस्लिम एकता के बाधक कारणो पर कभी गम्भीरता से चिन्तन नहीं किया। स्वामी जी को एकता मे गतिरोधक मानकर काग्रेस का उन पर दोषारोपण करना अन्याय था। दोनो धर्मों के अनुयायियो की मानसिकता मे आकाश–पाताल का अन्तर था। हिन्दू धर्म

सहनशीलता के कारण जब तक आकण्ठ दबाया न जाए, तब तक विरोध को पलीता नहीं लगाता। दूसरी ओर मुसलमान धर्म के अनुयायी सहज ही उत्तेजित होकर विवाद खडा कर देते हैं। मुसलमानो का अपराध होने पर भी हिन्दुओ को दबाया जाता था। यह दबाया जाना स्वामी श्रद्धानन्द को अखरता था। इसके अतिरिक्त मुस्लिम धर्म मे काफिरो की हत्या करना भी एक स्वीकृत सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त का पालन हिन्दुओ को मारकर ही पूरा किया जा सकता था। स्वामी श्रद्धानन्द इस प्रकार के सिद्धान्त के विरोधी थे। तत्कालीन किसी भी भारतीय राजनैतिक पार्टी ने इस प्रकार के सिद्धान्त के विरोध मे अपने मच से आवाज नहीं उठाई। स्वामी श्रद्धानन्द ने इस अधिकार को बलपूर्वक चुनौती दी, तो उन्हे एकता मे बाधक कहा जाने लगा। काग्रेस ने मुसलमानो के 'तबलीग' (शुद्धि) आन्दोलन के विषय मे चुप्पी साधे रखी और उसके प्रतिकार मे स्वामी द्वारा शुद्धि आन्दोलन चलाने पर साम्प्रदायिकता का ठप्पा लगा दिया। इस प्रकार स्वामी जी को बलात् विरोधी चित्रित किया।

हिन्दू संगठन के धर्माचार्य

स्वामी जी जो कुछ थे, बाहर–भीतर एक थे। छद्म उन्हे ओढना आता नहीं था। उनका अपना आदर्श था। इसी आदर्श से प्रेरित होकर उन्होने सन् 1924 ई0 मे मुसलमानो की गतिविधियो से हिन्दुओ को सावधान करते हुए 'हिन्दुओ सावधान, तुम्हारे दुर्ग पर रात्रि में छिप कर धावा बोला गया', (हिन्दी) 'अन्धा एतकाद और खुफिया जिहाद', 'मुहम्मदी साजिश का इन्कशाफ' और 'दाइये इस्लाम' (तीनो उर्दू) पुस्तके लिखीं। इस प्रकार स्वामी जी हिन्दुत्व के अखाडे के खलीफा माने जाने लगे। खलीफा ने घोषणा की–

"हिन्दुओ मे प्रचलित अस्पृश्यता का अभिशाप उनके सम्मान पर बट्टा है और उनके इस पाप का दुष्परिणाम सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्र भुगत रहा है। जब कभी हमारे राजनैतिक नेता स्वराज्य की माग प्रस्तुत करते हैं, तो उनके सामने उनके पापो को रखकर उनका मुँह बन्द कर दिया जाता है। जो लोग अपने ही समाज के एक–तिहाई लोगो को गुलाम बनाए हुए हो और उन्हे पैरो तले कुचल रहे हो, उन्हे विदेशियो द्वारा किये गये अत्याचारो के विरुद्ध शिकायत करने का कोई अधिकार नहीं।"

हमने इस पुस्तक मे पिछले पृष्ठो मे लिखा है कि 1923–26 के काल मे स्वामी श्रद्धानन्द धर्माचार्य के रूप मे उभर कर आते दिखाई पडते हैं। इस बात की पुष्टि स्वामी जी द्वारा अग्रेजी मे लिखी 'सेवियर आफ दा डाईंग रेस' नामक पुस्तक से भी होती है। इस पुस्तक का 'हिन्दू सगठन' नाम से हिन्दी अनुवाद उपलब्ध है। *यह पुस्तक "राष्ट्र के उद्धार की राह को दिखाने के लिए एक प्रयत्न है," ऐसी मान्यता लेखक ने प्रकट की है।* लेकिन सम्पूर्ण पुस्तक को पढकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो स्वामी श्रद्धानन्द सन्यासी न रहकर एक धर्माचार्य के रूप मे अपने को प्रतिष्ठित करने की दिशा मे आगे बढ रहे हैं। हमे यह पुस्तक एक धर्माचार्य का 'घोषणा पत्र' प्रतीत होता है। इस घोषणा पत्र के प्रथम प्रकरण मे हिन्दू जाति की विनाशोन्मुखता के उद्धरण 'जनगणना' रिपोर्ट 1911 ई0 के आधार दिए गए हैं, और पतन के कारणो पर सक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। इसके पश्चात् अगले प्रकरणो मे मुसलमान तथा ईसाइयो द्वारा हिन्दुओ को बलात् अथवा अन्य उपायो से धर्म परिवर्तन के लिये किए गए प्रयासो का वर्णन है। इसके पश्चात् वैदिक वर्ण व्यवस्था का भग, बाल विवाह एव स्त्री–समाज का निरादर आदि को हिन्दुत्व के पतन के कारणो मे गिनाया गया है।

इसके पश्चात् स्वामी जी ने धर्माचार्य के रूप मे 'हिन्दू सगठन' के लिये कुछ सक्रिय सुझाव प्रस्तुत किए हैं। इन सुझावो को हम स्वामी जी अपनी भाषा मे प्रस्तुत करते हैं–

"स्वभावत: अब यह प्रश्न उठता है कि 'हिन्दू सगठन' की ओर प्रवृत्त होने के लिए प्रथम पग क्या उठाया जाय? मैने अपने सम्पूर्ण भारत के भ्रमण मे यह अनुभव किया है कि आज के शिक्षित एक

दूसरे से मिलने के लिए नितान्त उदासीन रहते हैं। उसका प्रमुख कारण यह है कि उनके पास मिलने के लिए तथा सभा आदि के आयोजन के लिए कोई सार्वजनिक स्थान नहीं है। उनके जातिगत मन्दिरो मे इतना भी स्थान नहीं कि वहाँ सौ या दो सौ व्यक्ति इकट्ठे बैठ जाए। दिल्ली मे जामा मस्जिद और फतहपुरी मस्जिद को छोडकर, जहाँ कि 25 से 30 हजार मुस्लिम श्रोता एक साथ बैठ सकते हैं, और भी यहाँ पुरानी मस्जिदे विद्यमान है जहाँ कि हजारो की सख्या मे लोग एक साथ बैठ सकते हैं। परन्तु हिन्दुओ के लिए केवल मात्र एक ही लक्ष्मी नारायण की धर्मशाला है जहाँ पर कि कठिनाई से 8 सौ व्यक्ति बैठ कर बन्द स्थान मे अपनी सभा कर सकते है। इस पर भी विशेषता यह है कि मुसलमानो की प्रत्येक सभा नितान्त शब्द शून्य होती है, जबकि धर्मशाला मे यात्रियो के शोर के कारण वक्ताओ की आवाज कठिनाई से सुनाई देती है।

इस कारण मेरा प्रथम सुझाव यह है कि प्रत्येक नगर और शहर मे एक हिन्दू राष्ट्र–मन्दिर की स्थापना अवश्य की जानी चाहिए जिसमे एक साथ 25 हजार व्यक्ति एक साथ समा सके और उन स्थानो पर प्रतिदिन भगवद् गीता, उपनिषद्, रामायण और महाभारत की कथा होनी चाहिए। इन राष्ट्र–मन्दिरो का प्रबन्ध स्थानीय सभा के हाथ मे रहना चाहिए और वह इन स्थानो के अन्दर अखाडे, कुश्ती, गतका आदि खेलो का भी प्रबन्ध करे। जबकि हिन्दुओ के विभिन्न साम्प्रदायिक मन्दिरो मे उनके इष्ट देवताओ की पूजा होगी, उन उदार हिन्दू मन्दिरो मे तीन मातृशक्तियो की पूजा का प्रबन्ध होना चाहिए और वे हैं–

(1) गोमाता, (2) सरस्वती माता और (3) भूमि माता।

वहा कुछ जीवित गौए रखी जानी चाहिए जो कि हमारी समृद्धि की द्योतक हैं, उस मन्दिर के प्रमुख द्वार पर गायत्री मन्त्र लिखा जाना चाहिए जो कि प्रत्येक हिन्दू को उसके कर्तव्य का स्मरण करवायेगा तथा अज्ञान को दूर करने का सन्देश देगा, और मन्दिर के प्रमुखद्वार पर भारतमाता का एक सजीव नक्शा बनाना चाहिए, इस नक्शे मे उसकी विशेषताओ को विभिन्न रगो द्वारा प्रदर्शित किया जाय और प्रत्येक भारतीय बच्चा प्रतिदिन मातृभूमि के सम्मुख खडा होकर उसे नमस्कार करे और यह प्रतिज्ञा दोहराये कि वह अपनी मातृभूमि को उसी प्राचीन स्थान पर पहुँचाने के लिये प्राणो तक की बाजी लगा देगा जिस स्थान से उसका पतन हुआ था[62]।"

उपर्युक्त सन्दर्भ से हमे यह भी विदित होता है कि धर्माचार्य बनने के लिए स्वामी श्रद्धानन्द ने अपनी वैदिक मान्यताओ मे भी ढील देना स्वीकार कर लिया था। वेदो के प्रवचनो को छोडकर उन्होने उपनिषद, गीता, रामायाण और महाभारत की कथा बाचने पर जोर दिया। हिन्दुओ के विभिन्न साम्प्रदायिक मन्दिरो मे उनके इष्ट देवताओ की पूजा की स्वीकृति देकर अप्रत्यक्ष रुप से मूर्तिपूजा का समर्थन किया। धर्माचार्य बनने की धुन मे स्वामी ने अपने दौरो मे आर्य समाजियो को शास्त्रार्थ करने की प्रक्रिया को भी समाप्त करने का सुझाव दिया। इतना सब कुछ करने पर भी 'हिन्दू सगठन' के धर्माचार्य के रूप मे उनकी छवि उभर नहीं सकी। पौराणिक हिन्दुओ ने मदन मोहन मालवीय के मुकाबले मे उन्हे सम्पूर्ण हिन्दू जाति का प्रतिनिधि न मानकर मात्र आर्य समाज का प्रतिनिधि ही माना। काग्रेस ने काग्रेस सस्कृति मे उन्हे घुसपैठिया समझते हुए कभी सहयोग नहीं दिया। स्वामी जी को साम्प्रदायिकता के कारण हिन्दू महासभा रास नहीं आई। अन्त मे शरण के लिये उसी पुराने आर्य समाज की ओर बढने का मन बनाया। और हिन्दू सगठन को 'आर्य सगठन' नाम देकर कार्य करना आरम्भ कर दिया। स्वामी जी की मान्यता के अनुसार आर्य समाज के सगठन के पश्चात् ही हिन्दू सगठन का आधार दृढ हो सकता है। अत: आर्य समाज के सगठन को दृढ करने की इच्छा से उन्होने अपनी पुरानी माँद पजाब का दौरा किया।

आर्य संगठन

इस दौरे मे उनका प्रथम उद्देश्य– सगठन की दृष्टि से आर्य समाजियो के पारस्परिक आन्तरिक विवादो को समाप्त करना था। दूसरा उद्देश्य इससे कुछ विस्तृत था जिसमे आर्य सस्कृति से ही निकले हुए सनातन, जैन और सिक्ख सम्प्रदायो के साथ ताल–मेल करके आर्य समाज के सामाजिक सुधारो के कार्यो मे उनका सहयोग प्राप्त करना था।तीसरा उद्देश्य उपर्युक्त दोनो उद्देश्यो की तुलना मे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण था। इस उद्देश्य मे मौलवियो के प्रभाव मे आए उन मुसलमानो को समझाने का कार्य था जो हिन्दुओ को मात्र हिन्दू होने के कारण अपना शत्रु समझने की गलती पर थे। पाच सप्ताह के इस दौरे मे स्वामी जी ने 26 नगरो मे भाषण दिये। 'आर्य सगठन' की एकता के लिए गुरुकुल तथा कालेज पार्टी को मिलाने के लिए समझौते के कई प्रस्ताव रखे। इन सुझावो मे दोनो दलो के अह को पूरा करने के लिए यह भी सुझाव था कि पजाब मे आर्य प्रतिनिधि सभा (गुरुकुल पार्टी) और आर्य प्रादेशिक सभा (कालेज पार्टी) दोनो ही सभाए रहे, परन्तु इन दोनो का सम्बन्ध सार्वदेशिक सभा से रहे। स्वामी जी के प्रयास वन्ध्य सिद्ध हुए, क्योकि मास भक्षण का विषय आडे आया। अन्य दो उद्देश्यो की पूर्ति के लिये स्वामी जी ने आर्य समाजियो को शास्त्रार्थ करने से विरत करना चाहा। स्वामी जी के इस सुझाव से अनेक आर्य समाजी सज्जन रुष्ट हो गए। वे यह सोचने लगे कि स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाश के अन्तिम समुल्लासो को अनुपयोगी समझकर ऐसा सुझाव दे रहे है, क्योकि इन चारो समुल्लासो मे स्वामी जी ने सनातनी, जैन सिक्ख, मुसलमान और ईसाई मत–मतान्तरो का खण्डन किया है।

'आर्य सगठन' के निमित्त किये गए इस दौरे को असफल मानते हुए स्वामी जी ने 7 नवम्बर, 1925 ई0 'अर्जुन' समाचार पत्र मे लिखा "मेरा प्रयत्न समाप्त हो गया, अब इस विषय मे दखल नहीं दूगा। कहीं–कहीं गद्दीनशीनो की ओर से ढाल के लिए भ्रममूलक अपवाद फैलाये जा रहे थे, क्योकि वे समझ बैठे थे कि वे उनके इन्द्रासन को छीनने के लिये प्रयत्न कर रहे हैं। यह उनकी भूल है। वह कौन सा पद है, जिसे मैने उत्सुक कार्यकर्ताओ के लिए स्वय नहीं त्यागा।"

असगरी बेगम की शुद्धि

इस असफलता के बाद भी स्वामी जी निराश नहीं हुए और उन्होने अपने जीवन की सन्ध्या मे अपने प्रिय विषय 'शुद्धि' की ओर पहले भी अधिक उत्साह के साथ ध्यान देना आरम्भ कर दिया।

दिल्ली मे रहकर मार्च, 1926 ई0 मे स्वामी जी ने 'असगरी बेगम' नामक विवाहिता मुसलमान महिला की शुद्धि की। असगरी बेगम कराची से अपने दो बच्चो के साथ दिल्ली आई और हिन्दू धर्म मे प्रविष्ट होने की इच्छा प्रकट की। बहुत सोच–विचार के अनन्तर स्वामी जी ने उसकी प्रबल इच्छा को जानकर शुद्धि कर दी। शुद्धि सस्कार के उपरान्त आर्य धर्म मे प्रविष्ट होने पर उसे शान्ति देवी का नया नाम दिया गया। शान्ति देवी को स्थानीय 'वनिताश्रम' मे स्थान दिलाकर उसकी पढाई–लिखाई का प्रबन्ध किया गया। वह शीघ्र ही हिन्दी एव सस्कृत सीख गई। लगभग तीन महीने के बाद उसके पिता ताज मुहम्मद खा को पता चला कि उसकी बेटी असगरी मुस्लिम धर्म छोडकर हिन्दू बन गई है और आजकल दिल्ली मे है। यह सूचना मिलते ही उसका पिता दिल्ली पहुचा और कुछ दिनो के पश्चात् असगरी का पति अब्दुल हलीम भी दिल्ली पहुच गया। उन दोनो ने शान्ति देवी से मिलकर फिर से इस्लाम धर्म स्वीकार करके वापिस चलने का आग्रह किया। परन्तु वह अपने निर्णय से टस से मस नहीं हुई। उसे डा0 अन्सारी के पास भी इस दृष्टि से भेजा गया कि वह अपना निश्चय बदल ले। परिणाम वही ढाक के तीन पात।

इस प्रकार सब प्रकार के हथकण्डो के प्रयोग से निराश होकर, इस्लामी अजुमनो द्वारा भडकाये जाने पर उसके पति ने स्वामी जी, उनके दामाद डा0 सुखदेव, स्वामी जी के पुत्र इन्द्र, लाला गणपत राय और कराची आर्य समाज के मन्त्री पर मुकदमा दायर कर दिया। मुकदमे के मध्य शान्ति देवी की सुरक्षा का प्रबन्ध करना अनिवार्य समझा गया। स्थानीय वनिताश्रम को असुरक्षित समझ कर उसे गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ जैसे दुर्गम स्थान पर भेज दिया गया और कुछ समय बाद वहाँ से भी उसे गुरुकुल कागडी पहुचा दिया गया। यह मुकदमा कुछ मास चला और सभी अभियोगी निर्दोष सिद्ध हुए। मुकदमे मे हार के कारण असगरी बेगम (शान्ति देवी) के पिता ने स्वामी जी को धमकी देते हुए कहा– "हम पठान लोग है, खून करना हमारे लिए कोई कठिन काम नही है। स्वामी जी ने भी तपाक से उत्तर दिया कि वे भी हथेली पर सिर रखे घूमते फिरते है।

मुकदमे के दौरान गुरुकुल कागडी मे रहते हुए शान्ति देवी का सम्पर्क आयुर्वेद कालेज के प्रिंसिपल डा0 राधा कृष्ण के भतीजे अयोध्या नाथ (लाहौर निवासी) से हो गया था। अयोध्या नाथ गुरुकुल का नियमित आवासीय विद्यार्थी तो नही था, तो भी वह पाश्चात्य दर्शन पढने के लिए विद्यालकार की श्रेणियो मे बैठ जाता था। दोनो ने परस्पर विवाह सूत्र मे बन्धने का निश्चय कर लिया और वे स्वामी जी के पास दिल्ली पहुँच गए। स्वामी जी की स्वीकृति से दोनो का विवाह हो गया। स्वामी जी ने इस जोडे को आर्थिक सकट से उबारने के लिए अयोध्या नाथ को बिडला मिल दिल्ली मे नौकरी दिलवा दी।

कनखल में रहने का विचार

सन् 1921 ई0 मे स्वामी के गुरुकुल छोडने पर आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब ने स्वामी सत्यानन्द को गुरुकुल का आचार्य नियुक्त किया। कुछ काल तक आचार्य पद का दायित्व निभाकर उन्होने त्याग पत्र दे दिया। इसके उपरान्त सन् 1926 ई0 की जिस घटना का हम वर्णन करने जा रहे है, उस वर्ष मे प्रो0 रामदेव गुरुकुल के आचार्य थे। आचार्य रामदेव ने स्वामी जी से आग्रह किया कि वे गुरुकुल मे रहकर कुलवासियो मे नवीन स्फूर्ति का सचार करे। आचार्य जी के बार–बार आग्रह करने पर स्वामी जी सहमत हो गए और इस सम्बन्ध मे आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब को पत्र लिखा। सभा ने स्वामी जी के पत्र पर विचार किया। सभा मन्त्री महाशय कृष्ण ने स्वामी जी को लिखा "आप थोडे समय तक गुरुकुल मे रह सकते हैं। उस उत्तर से स्वामी जी की आत्मा आहत हुई और उन्होने निश्चय कर लिया कि वे गुरुकुल के समीप कनखल मे ही मकान बनवाकर रहेगे। जमीन के लिए उन्होने बयाना भी दे दिया। सभा के अनेक सदस्यो को जब इस घटना का पता लगा तो वे सभा मन्त्री महाशय कृष्ण के उत्तर से बडे नाराज हुए। पर जो होना था सो हो गया और स्वामी गुरुकुल मे नहीं आ सके।

चुनाव में बिडला की सहायता

सन् 1926 ई0 का वर्ष भारतीय राजनीति मे चुनावो की दौड–धूप का वर्ष था। इस चुनाव मे कौसिलो (तत्कालीन विधान सभाओ को कौन्सिल्स कहा जाता था) के चुनावो के लिए काग्रेस ने अपने प्रत्याशी खडे किए थे। काग्रेस के मुकाबले मे काग्रेस के ही विद्रोहियो द्वारा निर्मित नई पार्टी के दिग्गजो मदन मोहन मालवीय और लाला लाजपतराय ने भी हिन्दू हितो के लिए 'नेशलिस्ट' पार्टी की तरफ से अनेक प्रान्तो मे अपने प्रत्याशी चुनाव मैदान मे उतारे। हिन्दू हितो के महारथी मालवीय जी और लाला जी को स्पष्ट पता था कि स्वामी का कागेस से मोहभग हो चुका है और वे हिन्दू सगठन के लिए प्राणपण से समर्पित है। अत ये दोनो स्वामी जी के पास सहायतार्थ आए और इच्छा प्रकट की कि वे इस चुनाव मे पार्टी प्रत्याशी बने और पार्टी हित मे चुनाव प्रचार भी करने की कृपा करे। स्वामी जी इस प्रस्ताव को मानने मे झिझक रहे थे। उनकी झिझक के तीन प्रमुख कारण थे। प्रथम तो वे अनेक वर्षो से राजनीति

के क्षेत्र से कटकर अछूतोद्धार और शुद्धि जैसे सामाजिक कार्यो मे अपना समय दे रहे थे। द्वितीय, काग्रेस से मोहभग होने पर भी उनकी मानसिकता इस सीमा तक तैयार नहीं थी कि साम्प्रदायिक आधार पर चुनाव लडने वाली एक नई पार्टी को, राष्ट्रहित के सन्दर्भ मे देखते हुए काग्रेस के विरुद्ध सहायता दी जाए। तृतीय इस चुनाव मे उनका पुत्र इन्द्र बडे सक्रिय रूप मे काग्रेस के समर्थन मे लगा हुआ था और स्वामी जी ने उसे कभी इस कार्य से रोका नहीं था। अन्ततः स्वामी जी इस बात के लिए सहमत हो गए कि नेशलिस्ट पार्टी की तरफ से चुनाव के लिए जो अपील की जाए, उस पर उनका नाम भी लिख दिया जाए। इसके साथ ही उन्होने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि वे इस चुनाव मे पार्टी के समस्त प्रत्याशियो के पक्ष मे समर्थन न देकर व्यक्तिगत प्रत्याशियो को ही समर्थन देगे।

अपील पर स्वामी जी के नाम को देखकर नेशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओ मे उत्साह का सचार हो गया। उसी उत्साह मे उन्होने इन्द्र को काग्रेस से झटकने के लिए तार देकर लाला लाजपत राय को लाहौर से दिल्ली बुलाया। लाला जी ने इन्द्र से काग्रेस का समर्थन छोड देने के लिए कहा। इन्द्र ने लाला जी से निवेदन किया कि ऐसे विषयो मे उन्हे स्वामी जी ने सदा स्वतन्त्र छोड रखा है और वे अपने मन्तव्य के अनुसार काग्रेस का समर्थन कर रहे है। ये सारी बाते स्वामी जी की उपस्थिति मे हो रही थी। लाला जी ने इन्द्र का उत्तर सुनकर स्वामी जी की ओर देखा। इन्द्र के पिता और गुरु स्वामी श्रद्धानन्द ने द्रोणाचार्य के समान एकलव्य का अगूठा न मागकर आत्म सन्तोष के साथ कहा– "इन्द्र ठीक कहता है, मैने इसे विचार और कार्य की पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी है([illegible])।" इस प्रकार इस चुनाव मे पिता एव गुरु और पुत्र और शिष्य राजनैतिक अखाडे मे एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी बने।

इस चुनाव मे व्यक्तिगत प्रत्याशी के रूप मे स्वामी जी ने घनश्याम दास बिडला की सहायता की। बिडला नेशलिस्ट पार्टी की तरफ से बनारस की सीट के लिए चुनाव लड रहे थे। घनश्याम दास बिडला के प्रति स्वामी जी के मन मे आदरभाव था, क्योकि उन्होने शुद्धि कार्य के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की थी([illegible])। स्वामी जी नवम्बर, 1926 के अन्त तक बिडला के चुनाव क्षेत्र मे व्यस्त रहे। इसका परिणाम यह निकला कि पहले से बिगडा हुआ स्वास्थ्य और भी बिगड गया। बनारस से आने के बाद स्वास्थ्य लाभ के लिए स्वामी जी गुरुकुल कुरुक्षेत्र मे जाकर विश्राम करना चाहते थे और उसके बाद गोहाटी काग्रेस अधिवेशन मे जाने का विचार रखते थे। गुरुकुल कुरुक्षेत्र के आचार्य सोमदत्त विद्यालकार को व्यवस्था करने के लिए पत्र भी लिख दिया था और 8 दिसम्बर, 1926 ई0 को कुरुक्षेत्र पहुँचने की सूचना भी भेज दी थी। इसी मध्य गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के आचार्य ने आकर निवेदन किया कि कुछ समय के लिए आप इन्द्रप्रस्थ चलिए। स्वामी जी उनके आग्रह को न टाल सके। इन्द्रप्रस्थ पहुँचते ही आर्य समाज के ऐरावत का स्वास्थ्य अचानक खराब हो गया और उन्हे भीषण बुखार की स्थिति मे दिल्ली वापिस लाया गया।

सीने पर गोली खाकर चल दिए

दिल्ली आने पर पता चला कि स्वामी जी को भयकर निमोनिया है। डाक्टर सुखदेव और डा0 अन्सारी के उपचारो से स्वामी जी निमोनिया के आक्रमण से बच चुके थे। निर्बलता जरूर थी। रोग का सिर कट चुका था, परन्तु सिर कटे रोग ने एक भावना अवश्य बैठा दी थी कि यह शरीर सेवा के योग्य नहीं रहा, अब ऐसा शरीर प्राप्त करुँ, जो धर्म की सेवा मे काम आ सके([illegible])। 21 दिसम्बर को मदन मोहन मालवीय की तरफ से व्याख्यान वाचस्पति दीनदयाल शर्मा भी स्वामी जी से मिलने आए थे, उन्हे भी यही शब्द कहे थे([illegible])। स्वामी जी ने अपने जीवन की अन्तिम लीला समाप्त होने की सम्भावना को देखते हुए वसीयत लिखने का आदेश दिया। इन्द्र को बैक मे पडे हुए रुपयो के लिए निर्देश देते हुए कहा– "इस शरीर का कोई ठिकाना नहीं। तुम एक काम जरूर करना। मेरे कमरे

मे आर्य समाज के इतिहास की सामग्री पडी है, उसे सम्भाल लेना और समय निकाल कर इतिहास जरूर लिख डालना। इतिहास के लिखने मे मुझे माफ नहीं करना। मैंने बडी–बडी भूले की हैं। तुम्हे तो मालूम है कि मैं क्या करना चाहता था और किधर पड गया(७७)।"

जिस प्रकार स्वामी दयानन्द का जीवन चरित्र लिखने वाले पडित लेखराम अपने बलिदान के कारण उनका जीवन चरित्र पूरा नहीं कर सके, ठीक उसी प्रकार आर्य समाज के इतिहास को अपने बलिदान के कारण स्वामी जी पूरा नहीं कर सके। आर्य समाज का इतिहास बलिदानो की घटनाओ की कहानी के लिए लालायित रहा है। इतिहास सदा लाल स्याही का ही चटोरा होता है। उसे अभी एक कषाय वस्त्रधारी सन्यासी के रक्त की इच्छा थी। अतः वह स्वामी जी के हाथो से कैसे लिखा जाता।

23 दिसम्बर, 1926 ई0 का सायकाल का पौने चार बजे का समय। स्वामी जी से मिलने वालो का ताता। नित्य नियमानुसार शौचादि कर्मों से निवृत्त होने के लिए स्वामी जी की तैयारी देखकर मिलने वाले एक–एक करके कमरे से चले गए। स्वामी जी नित्य कर्मों से निवृत्त होकर मसनद के सहारे सावधान होकर इस प्रकार बैठ गए मानो किसी की प्रतीक्षा मे बैठे हो। इतने मे दरवाजा खटका और सेवक धर्म सिह के कान चौकन्ने हुए। दरवाजे के पास जाकर देखा कि वेश–भूषा से स्पष्ट रूप मे मुसलमान दीखने वाला व्यक्ति द्वार पर खडा है। सेवक ने आने का कारण जानना चाहा। आगन्तुक का सपाट उत्तर था– 'शका समाधान' के लिए स्वामी जी से मिलने की इच्छा है। सेवक ने विश्राम करने का बहाना करके टालना चाहता, परन्तु आगन्तुक अपनी हट पर अडा रहा। दोनो की नोक–झोक को सुनकर स्वामी जी की सहज प्रतिक्रिया थी– आने दो। स्वामी जी के कमरे मे आकर उसने सर्वप्रथम स्वामी जी की बैठने की स्थिति को अपनी पैनी ऑखो से परखा और पानी पीने की इच्छा प्रकट की। कमरे से बाहर आकर पानी पिया और फिर आकर मसनद के सहारे बैठे हुए स्वामी जी पर दो गोलियॉ दाग दीं। निजी सचिव धर्मपाल ने हत्यारे को दबोच लिया, सेवक धर्म सिह भी घायल हुआ। गोली मारने वाले उस हत्यारे का नाम था अब्दुल रशीद। वह हिन्दुओ के लिए 'अब्दुल जिन्न' (गलघोटू बीमारी) बन कर आया था। अन्धकारमयी पृथ्वी को अपनी किरणो से प्रकाशित करने वाले सूर्य की अस्तगामी लालिमा के साथ आर्य समाज की राजनीति का भीष्म पितामह रक्त रजित छाती के साथ सूर्य की लालिमा के साथ अपनी अस्तगामी लालिमा मिलाते हुए परम पदवी को प्राप्त हो गया। सूर्य की लालिमा और रक्तरजित भगवे वस्त्रो की लालिमा मे से कौन सी लालिमा उस समय अधिक थी, इसकी गवाही शोकाकुल जन समुदाय स्वय दे रहा था। सर्वत्र सन्नाटा। अन्धकार ही अन्धकार। हिन्दू–मुसलमान दोनो के चेहरे शोक मे निमग्न और हक्के–बक्के। 25 दिसम्बर अन्त्येष्टि का दृश्य तो इससे भी अधिक हृदय द्रावक। निगम बोध घाट की ओर पार्थिव शरीर को ले जाते देखकर सहस्रो लोग ऑखो से अर्घ्य देकर अपनी मौन श्रद्धाजलि देने लगे। सबके मन मे यही एक भावना थी– "मरते–मरते भी हमे मरना सिखाकर चल दिये।"

सन्दर्भ (पाँचवां अध्याय)

1. इन्द्र, मेरे पिता : सस्मरण			पृष्ठ 261
2 लीडर	(दैनिक समाचार पत्र)		21 जनवरी, 1923
3. जोर्डेन्स,	वही		131
4. सत्यदेव,	वही		581
5. लीडर,			7 फरवरी, 1923
6. सत्यदेव,	वही		592
7. निरूपण एव विनोद चन्द्र,	वही		296
8. लीडर,			23 फरवरी, 1923
9. जोर्डेन्स,	वही		132
10. लीडर,			5 अप्रैल, 1923
11. (क) सत्यदेव,	वही		594
(ख) जोर्डेन्स,	वही		134
12 सत्यदेव,	वही		598
13 (क) भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड पाँच	171
(ख) जोर्डेन्स,	वही		135
14 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड पाँच	171–72
15. जोर्डेन्स,	वही		135
16 विष्णु प्रभाकर एव विष्णुदत्त राकेश, स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती			47
17. लीडर			1 अक्टूबर, 1923
18 जोर्डेन्स,	वही		144
19. सत्यदेव,	वही		589
20. सत्यदेव,	वही		569
21. सत्यदेव,	वही		571
22 सत्यदेव,	वही		572
23. लीडर,			11 तथा 12 मई, 1924
24. सत्यदेव,	वही		589–90
25. इन्द्र,	वही		264–65
26. लीडर			27 जून, 1924
27. निरूपण एव विनोद चन्द्र,	वही		328
28. सत्यदेव,	वही		560–61
29. भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड पाँच	157

30. सत्यदेव,	वही		579–80
31 निरूपण एव विनोद चन्द्र,	वही		343
32. इन्द्र,	वही		266–67
33. निरूपण एव विनोद चन्द्र,	वही		398
34. इन्द्र,	वही		163–66
35. इन्द्र,	वही		167–68
36 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड एक	103
37 बी0सी0 जोशी, लाला लाजपत राय ओटो बाईओग्रेफिकल राइटिग			601
38. जोर्डेन्स,	वही		170
39. निरूपण एव विनोद चन्द्र,	वही		340
40. निरूपण एव विनोद चन्द्र,	वही		276
41. जोर्डेन्स,	वही		150
42 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड एक	48
43 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड एक	53
44. भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड एक	54
45. भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड एक	93
46. धर्मपाल, एकता के सूत्रधार श्रद्धानन्द			41
47. निरूपण एव विनोद चन्द्र,	वही		378
48 निरूपण एव विनोद चन्द्र,	वही		379
49. भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड चार	155
50. भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड चार	157
51. भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड चार	165
52 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड तीन	54
53 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड तीन	44
54 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड तीन	62
55 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड तीन	64
56. भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड तीन	66
57. भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड तीन	67
58 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड तीन	68–69
59. भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड तीन	86–87
60 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड तीन	63
61 विष्णु प्रभाकर एव विष्णु दत्त राकेश, वही			48

62 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड एक	6
63 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड एक	8
64 विष्णु प्रभाकर एव विष्णु दत्त राकेश, वही			50
65. विष्णु प्रभाकर एव विष्णु दत्त राकेश, वही			51
66 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड एक	215
67 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड एक	94
68 जोर्डेन्स,	वही		66
69 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड एक	19
70 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड एक	29
71 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड एक	52
72 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड एक	32
73 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड एक	33
74 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड एक	13
75 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड एक	206
76 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड एक	6–7
77 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड चार	127–28
78 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड चार	184
79 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड चार	196
80 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड चार	13
81. भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड चार	33
82 निरूपण एव विनोद चन्द्र,	वही		131
83 (क) सत्यदेव,	वही		540
(ख) विष्णु प्रभाकर, एव विष्णु दत्त, राकेश, वही			60
84 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड चार	90
85 धर्मपाल,	वही		74
86. सत्यदेव,	वही		615
87 सत्यदेव,	वही		615–16
88 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड एक	31
89 इन्द्र,	वही		288
90. निरूपण एव विनोद चन्द्र,	वही		422
91. जोर्डेन्स,	वही		175
92 भवानी लाल भारतीय,	वही	खण्ड पॉच	237–38

93. इन्द्र, वही 270–71
94. जोर्डेन्स, वही 165
95. इन्द्र, वही 273–74
96. सत्यदेव, वही 637–38
97. सत्यदेव, वही 638

सहायक ग्रन्थ

1. अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द – सत्यकाम, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली 1976
2. आत्म कथा – महात्मा नारायण स्वामी (सम्पादक कपिल देव द्विवेदी), विश्व भारती अनुसधान परिषद् ज्ञानपुर, बनारस
3. आत्म कथा अर्थात् आपबीती जगबीती – नरदेव शास्त्री महाविद्यालय, ज्वालापुर 1957
4. आर्य समाज का इतिहास खण्ड एक, तीन, पाँच – सत्यकेतु, आर्य स्वध्याय केन्द्र, नई दिल्ली 1982
5. आर्य निर्देशिका – सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, रामलीला मैदान, नई दिल्ली स0 2034
6. आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब का इतिहास – भीमसेन, आर्य प्रतिनिधि सभा, लाहौर 1935
7. गुरूकुल (कागडी) के 60 वर्ष – इन्द्र, गुरूकुल कागडी 1960
8. गुरूदत्त विद्यार्थी – राम प्रकाश, प्रकाशक गुरूकुल झज्जर 1986
9. परोपकारिणी सभा का इतिहास – भवानी लाल भारतीय परोपकारिणी सभा, अजमेर 1975
10. महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र (उर्दू) – लेखराम अनुवादक रघुनन्दन सिह एवं हरिश्चन्द्र, दिल्ली 1972
11. मेरी आत्म कथा के कुछ पृष्ठ – रामदेव, आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब 1954
12. मेरे पिता : सस्मरण – इन्द्र, वाचस्पति पुस्तक भण्डार, जवाहर नगर, दिल्ली 1957
13. लौह पुरूष स्वामी स्वतन्त्रतानन्द – राजेन्द्र जिज्ञासु, दीनानगर 1966
14. वीर सन्यासी श्रद्धानन्द – रामगोपाल, वैदिक पुस्तकालय, कलकत्ता 1929
15. सम्पूर्ण गाधी वाड्.मय (हिन्दी) खण्ड 13 प्रकाशन विभाग सूचना प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार
16. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा – मोहनदास करमचन्द गाधी, सस्ता साहित्य मडल प्रकाशन, नई दिल्ली 1963

17 सत्यार्थ प्रकाश – स्वामी दयानन्द सरस्वती, दयानन्द सस्थान, नई दिल्ली स0 1935

18. सस्कारविधि – स्वामी दयानन्द सरस्वती, वैदिक मन्त्रालय, अजमेर स0 1932

19. स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (1 से 13 खण्ड) – सम्पादक भवानी लाल भारतीय, गोविन्द राम–हासानन्द, नई सडक, दिल्ली 1987

20. स्वामी श्रद्धानन्द – सत्यदेव, विजय पुस्तक भडार, दिल्ली 1933

21. स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या और इस्लाम की शिक्षा – देवेश्वर, बनारस 1927

22. स्वामी श्रद्धानन्द एक विलक्षण व्यक्तित्व – निरूपण एव विनोद चन्द्र, आर्य प्रकाशन समिति, मेरठ 1986

23. स्वामी श्रद्धानन्द की जीवन झाकी – वेणी प्रसाद जिज्ञासु, हिन्दी साहित्य स्मारिका परिषद् कनखल 1976

24. स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती – विष्णु प्रभाकर एव विष्णु दत्त राकेश, साहित्य अकादमी, दिल्ली 1993

25. हिन्दी आत्मकथा : स्वरूप और साहित्य – कमलेश सिह

26. हिन्दी आत्मकथा साहित्य – विश्वबन्धु

27. हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास – रामसरूप चतुर्वेदी

28. हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन

29 हरियाणा के आर्य समाज का इतिहास – रणजीत सिह आर्य प्रतिनिधि सभा, हरियाणा

अंग्रेजी पुस्तकें

30. आर्य समाज एण्ड काग्रेस पालिटिक्स इन दि पजाब, 1894–1908, जरनल आफ एशियन स्टडीज (26) 1967

31. लाजपत राय, आटोबाइयोग्रेफिकल राइटिगस – वी0सी0 जोशी, दिल्ली 1965

32. महात्मा हसराज, मेकर आफ माडर्न पजाब – श्रीराम शर्मा उना (पजाब) 1965

33. माई लाइफ स्टोरी आफ फिफ्टी इयर्स (1886–1941) – राजा महेन्द्र प्रताप, देहरादून, 1947

34. मोपिला मुस्लिमस आफ ए स्टडी इन इस्लामिक ट्रेन्डस– आर0ई0 मिलर, बम्बई, 1976

35. स्वामी श्रद्धानन्द हिज लाइफ एण्ड काजिज– जे0टी0एफ0, जोर्डेन्स, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रैस, न्यूयार्क 1981

36. दि आर्य समाज एण्ड इण्डियन नेशनलिज्म (1875–1920)– धनपति पाण्डेय, दिल्ली 1972

37. दि वर्क्स आफ लेट पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी– लाला जीवन दास, लाहौर 1902

समाचार पत्र

38 ट्रिब्यून (अंग्रेजी) लाहौर

39 प्रकाश (उर्दू) लाहौर

40 लिबरेटर (अंग्रेजी) दिल्ली

41 लीडर (अंग्रेजी), इलाहाबाद

42 विजय (हिन्दी) दिल्ली

43 श्रद्धा (हिन्दी) गुरुकुल कागडी

44 सद्धर्म प्रचारक (उर्दू, हिन्दी)

45 जालन्धर, दिल्ली, गुरुकुल कागडी के

46 हितकारी (उर्दू) लाहौर

इन्द्र विद्यावाचस्पति : कृतित्व के आयाम

लेखक

प्रो. कुशलदेव शंकरदेव कापसे

सम्पादक

प्रो. भारतभूषण विद्यालंकार

निदेशक – श्रद्धानन्द वैदिक शोध एवं प्रकाशन संस्थान

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार

अजय प्रिन्टर्स एवं पब्लिशर्स

रूड़की - 247 667